परमभागवत श्रीपोद्दारजी

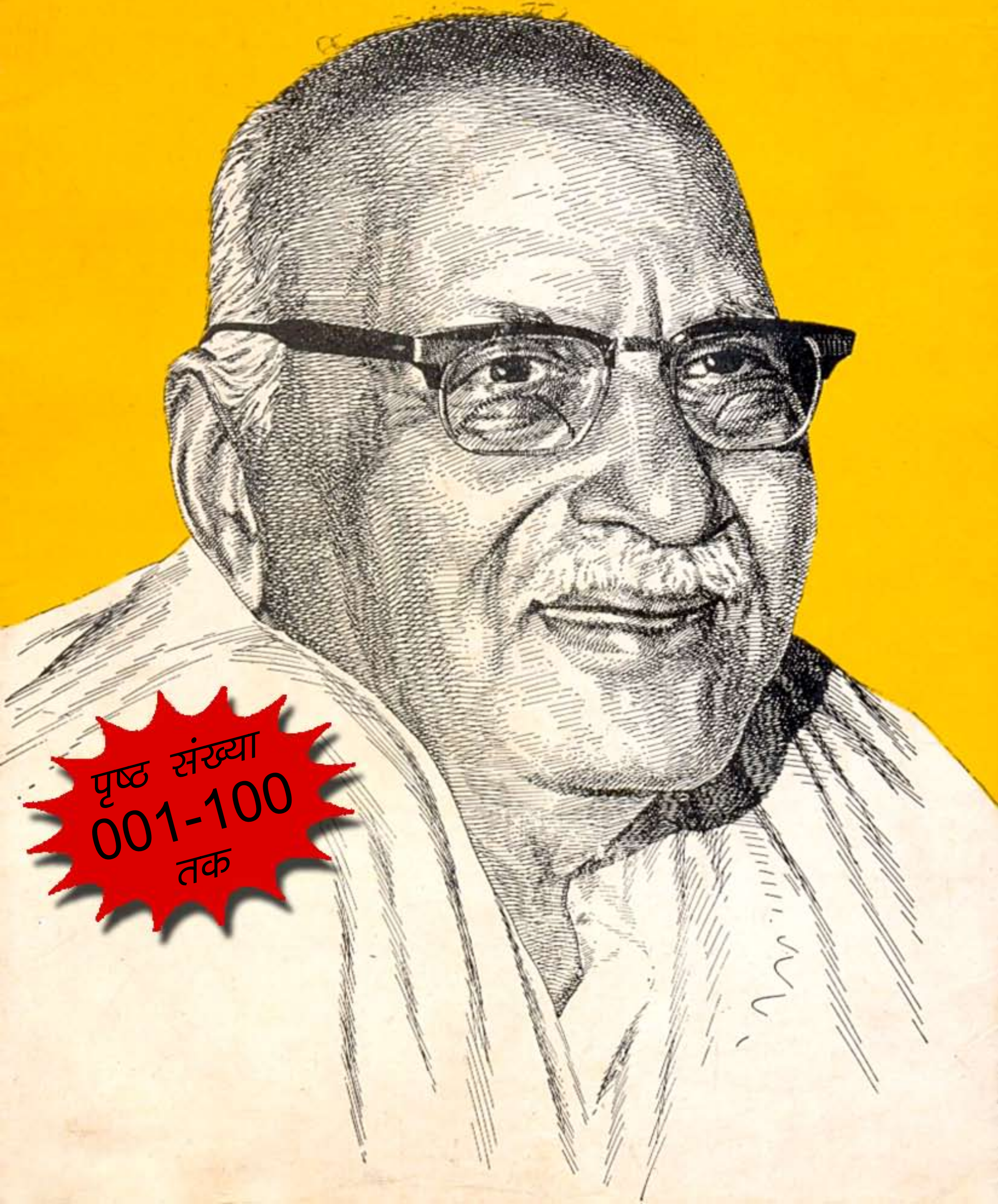

पृष्ठ संख्या
001-100
तक

परमभागवत
श्रीपोद्दारजी

प्रथम भाग

संकलन : संयोजन

राधेश्याम बंका

: प्रकाशक :

हनुमान प्रसाद पोद्दार स्मारक समिति
पो. गीतावाटिका
जि. गोरखपुर - २७३००६

: प्रकाशन तिथि :

संवत २०४८ आश्विन कृ. १२ (५ अक्टूबर १९९१)

: मूल्य :

पच्चीस रुपये

: प्रथम संस्करण :

चार हजार

: मुद्रक :

न्यू जैक प्रिंटिग वर्क्स प्रा. लि.,
पाण्डुरंग बुधकर मार्ग,
बम्बई - ४०००१३

॥ श्रीहरिः ॥

मंगलमयी शुभाकांक्षा

भगवती गंगाका सुरम्य तट, शीतल पवनका मन्द संचार, अपराह्न कालका ढलता सूर्य, गीताभवनका स्वच्छ घाट, इसी समय मैं घाटपर खड़ा हूँ और मेरे पास ही खड़े हैं पूज्य बाबूजी (परम श्रद्धेय रस-घन-मूर्ति श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)। मैं खड़ा हूँ नौकाकी प्रतीक्षामें श्रीगंगाजीके उस पार जानेके लिये और पूज्य बाबूजी खड़े हैं नौकापर चढ़ाकर विदाई देनेके लिये। मैं ही क्यों, अनेक व्यक्ति श्रीगंगाजीके पार जानेके लिये नौकाकी प्रतीक्षामें खड़े हैं, कुछ खड़े हुए हैं और कुछ बैठे हुए हैं। गंगा-पार करके मुझे ऋषिकेश स्टेशनसे ट्रेन पकड़नी है। अब मुझे सरदारशहर वापस पहुँच जाना है।

राजस्थानके सरदारशहर नगरका महाविद्यालय ग्रीष्म-ऋतुके आरम्भ होते ही दो मासके लिये बन्द हो गया था, अतः अध्यापन कार्यसे प्राप्त दो मासका अवकाश पूज्य बाबूजीकी स्नेहिल संनिधिमें व्यतीत करनेके लिये मैं सरदारशहरसे स्वर्गाश्रम चला आया था। हिमगिरिके चरण-प्रान्तमें ऋषिकेशसे लगभग दो मील दूर स्वर्गाश्रमकी पुण्य स्थली सिद्धों-साधुओं-साधकोंकी ऐसी प्रेरणा-प्रदायिनी पवित्र भूमि है, जिसका दिव्य वातावरण अपने आध्यात्मिक आलोकके लिये दूर-दूर तक विख्यात है। स्वर्गाश्रममें भगवती गंगाके तटपर ही गीताभवन निर्मित है, जो गोरखपुरके गीताप्रेसकी एक सह-संस्था है। गीताभवनमें सत्संगकी बड़ी सुविधा है और आनेवाले व्यक्तियोंके लिये आवासकी सुन्दर व्यवस्था है। भारतके कोने-कोनेसे आध्यात्मिकताके पिपासु और जिज्ञासु संत-समागमके लिये ग्रीष्म-ऋतुमें यहाँ आया करते हैं। मैं भी पूज्य बाबूजीके चुम्बकीय व्यक्तित्व, साधु जीवन एवं रसमय सत्संगसे आकृष्ट होकर सरदारशहरसे स्वर्गाश्रम आया हुआ था। सदा ही मैं आया करता था। प्रतिवर्षकी भाँति सन् १९५८ की ग्रीष्म-ऋतुमें भी आया था और अब ग्रीष्मावकाशकी समाप्तिपर सरदारशहर वापस जा रहा था।

घाटपर ही निर्मित गीताभवनके बगलमें बूबनाभवन है और बूबनाभवनके बगलमें डालमिया कोठी है, जहाँ पूज्य बाबूजी गोरखपुरसे सत्संग हेतु आकर ठहरा करते थे। प्रस्थान करनेके पूर्व मैं डालमिया कोठी गया पूज्या माँ एवं पूज्य बाबूजीको प्रणाम करनेके लिये। मुझ प्रणतको पूज्या माँने तिलक करके हाथमें फल दिया और इसके उपरान्त मेरे मना करनेके बाद भी पूज्य बाबूजी विदाई देनेके लिये घाटतक मेरे साथ चले आये। उनका डालमिया कोठीसे गीताभवन तक चलकर आना और घाटकी पचास-साठ सीढ़ियोंसे उतरकर गंगातटपर खड़े होना, यह सब सोचकर मुझे बड़ा संकोच हो रहा था, परंतु उनके उमड़ते वात्सल्यके समक्ष मेरा संकोच पूर्णतः मूक था, सर्वथा विजड़ित था। बस, घाटपर नौकाकी प्रतीक्षामें मैं खड़ा था और मेरे पास खड़े थे मुझे विदाई देनेके लिये पूज्य बाबूजी।

हमलोगोंको खड़े-खड़े पन्द्रह-बीस मिनट बीत गये, पर नौका नहीं आयी। अधिक विलम्बकी सम्भावना देखकर पूज्य बाबूजीने मुझसे कहा— राधेश्याम! ऐसा लगता है कि नाव देरसे आयेगी। मैं अब जाता हूँ। तुम ये फूल लो।

मैं भी तो यही चाहता था कि पूज्य बाबूजी लौट जायें। उनका एक-एक क्षण मात्र मूल्यवान ही नहीं, महा-मूल्यवान है। उनको घाटपर खड़े देखकर मैं संकोचमें अधिकाधिक दबा जा रहा था, पर मैं कहता क्या? मैंने पूज्य बाबूजीको प्रणाम किया। उन्होंने मेरे हाथमें चार-पाँच छोटे-छोटे अति सुगन्धित फूल दिये और वे चले गये।

पूज्य बाबूजी घाटकी पचास-साठ सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर गये और मेरा अनुमान है कि वे डालमिया कोठीके समीप पहुँच गये होंगे कि वे फिर वापस लौट पड़े। उन्होंने अनुमान लगा लिया कि यह मूर्ख राधेश्याम इन फूलोंके महत्त्वको समझ नहीं पाया है। फूलोंके महत्त्वको बतलानेके लिये पूज्य बाबूजी वापस लौटे। डालमिया कोठीसे गीताभवन आकर और फिर घाटकी पचास-साठ सीढ़ियाँ उतरकर वे मेरे पास आये। उनके पुनः आनेसे मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा था। आकर उन्होंने मेरे कंधेपर हाथ रखा और एक एकान्त किनारे ले जाकर वे कहने लगे— ये फूल साधारण नहीं हैं, अपितु भगवान श्रीकृष्णके हाथके फूल हैं। बस, यही बात बतलानेके लिये मैं वापस आया।

जिस समय पूज्य बाबूजीके ये शब्द मेरे कानमें पड़े, मैं अपनी स्थितिके बारेमें क्या बतलाऊँ? मेरे मनकी दशा विचित्र थी। अपार आश्चर्य, अचिन्त्य सौभाग्य, अगाध श्रद्धा, अनोखा दैन्य, अनवरत वन्दन, अनुक्षण प्रणति, अमाप्य कृतज्ञता जैसे अनेक भावोंकी उत्ताल तरंगें मेरे भीतर-ही-भीतर उमड़ रही थीं। मैं सर्वथा अवाक् था। मेरी वाणी सर्वथा कुण्ठित थी। मैं सजल दृष्टिसे उनकी ओर एकटक देखने लगा।

मुझसे इतना कहकर पूज्य बाबूजी गीताभवनकी ओर जाते हुए घाटकी सीढ़ियोंपर चढ़ने लगे। मैं पाषाणवत् खड़ा-खड़ा एकटक उनको देखता रहा। मैं टकटकी बाँधकर देखता रहा और तबतक देखता रहा, जबतक वे दिखलायी देते रहे। जब पूज्य बाबूजीका दिखलायी देना बन्द हो गया, तब मैंने स्वयंको सँभाला और समेटा। मुट्ठीमें बन्द उन दिव्य फूलोंको सहेजकर सुरक्षित रखा। तभी घाटपर आकर नौका एक किनारे लगी। किन्हीं दिव्य भावोंके आवर्तमें निमग्न मैंने अपनी आगेकी यात्रा की।

वे दिव्य पुष्प आज भी मेरी पूजामें विराजित हैं। जिस प्रकार मुझे ये दिव्य पुष्प पूज्य बाबूजीके कर-पल्लवसे प्राप्त हुए थे, उसी प्रकार प्राप्त हुई थी एक दिव्य पुष्प-माला भी उन्हींके कर-पल्लवसे और ये दिव्य-पुष्प एवं दिव्य पुष्प-माला मेरे जीवनकी दिव्य निधि हैं। जब-जब इस प्रसंगकी स्मृति आती है, तब-तब मैं विस्मयकी लहरोंमें खो जाता हूँ अपने सौभाग्यको देखकर। वास्तविकताके धरातलपर सच बात यह है कि मेरा जीवन ऐसा नहीं है, जो इस सौभाग्यका अधिकारी समझा जा सके, परंतु भगवदीयताके साकार स्वरूप परम भागवत बाबूजीकी उस महान अहैतुक वत्सलताका बखान किस प्रकार करूँ, जो अपात्रपर भी वात्सल्यकी वर्षा करनेके लिये अकुला रही हो। सचमुच उनका अनुग्रह पात्रता-सापेक्ष है ही नहीं। उन्होंने अपात्रको भी अपने अनुग्रहका भाजन मान लिया, यह उनके परम भागवत हृदयकी अतुलनीय अद्भुतता

ही तो है।

सन् १९५८ की उस अपराह्न वेलामें स्वर्गाश्रमकी भगवती गंगाके सुरम्य तटपर मैं आश्चर्य कर रहा था पूज्य बाबूजीके महान व्यक्तित्वकी कल्पनातीत भागवती स्थितिकी कल्पना करके। तब मैं रह-रह करके परमाश्चर्यमें डूबा जा रहा था यह देखकर कि उन्हें प्रियतम परमाराध्य श्रीकृष्णके नित्य संगका रसमय अवसर सहज और सतत सुलभ है। सन् १९६२ के उपरान्त जब पूज्य बाबूजीका निकट सांनिध्य और अधिक प्राप्त हुआ, तब उनकी भाव-समाधिकी स्थिति देखकर एवं उनके लीलावगाहनके रसोद्‌गारोंको सुनकर मेरा आश्चर्य सतत बढ़ता ही जाता था। पूज्य बाबूजीने अपनी आत्म-दशाकी ओर संकेत करते हुए कहा है—

रसमय हुई नित्य रस पाकर रसिक-रसार्णव का सब ओर।
बही रस-सुधा-सरिता-धारा प्लावित कर सब, रहा न छोर।।
श्याम रहे या रही मैं — कहीं, कुछ भी नहीं रहा संधान।
श्याम बने मैं, श्याम बनी मैं, एकमेक हो रहे महान।।

नितान्त रसिकता ही जिनका वास्तविक व्यक्तित्व है, केवल व्यक्तित्व ही नहीं, अपितु आशिख अस्तित्व है, उन पूज्य बाबूजीकी रसार्द्रताको देख-सुनकर मेरा आश्चर्य बढ़ता ही जाता था और आश्चर्यके साथ-साथ बढ़ती जाती थी आत्म-सराहनाकी भावना। मैं अपने सौभाग्यकी बार-बार मन-ही-मन सराहना करता था— *'को सुकृति हम सरिस बिसेषी'।*

मेरी तरह न जाने कितने सौभाग्यशाली लोग मन-ही मन कह रहे होंगे— *'को सुकृति हम सरिस बिसेषी'।* जिस तरह मुझे उनका सांनिध्य मिला है, ऐसे ही मिला है असंख्य जनोंको उनका सांनिध्य। सांनिध्य-सौभाग्यको प्राप्त प्रत्येक जनके लौकिक-पारलौकिक-पारमार्थिक-आध्यात्मिक-धार्मिक-सामाजिक-नैतिक आदि अनेक दृष्टियोंसे अपने-अपने विशेष अनुभव हैं, विचित्र अनुभूतियाँ हैं, विविध अनुकम्पाएँ हैं, विपुल अनुकूलताएँ हैं, विशद अनुशीलन है। रसिक-संत-शिरोमणि परम भागवत पूज्य बाबूजीके लोकोत्तर व्यक्तित्वके सम्पर्कमें आने वाले 'बिसई साधक सिद्ध सयाने' व्यक्तियोंने उनको जैसा पाया और जिस रूपमें देखा, उसीपर वे विमुग्ध हैं और उन्होंने उनका वैसा ही वर्णन किया है। व्यक्ति-भेदसे व्यक्ति-व्यक्तिके द्वारा होनेवाले स्वरूप-वर्णनमें पर्याप्त भिन्नता है। उस अनेक-रूपाय स्वरूप-वर्णनमें भिन्नता चाहे जैसी हो और चाहे जितनी हो, पर यह सत्य है कि सभी उनके महान व्यक्तित्वके कल्याणी सौरभसे अपनी-अपनी पात्रताके अनुपातमें प्रभावित और सुरभित हैं। सांनिध्य-सौभाग्य-सुरभित अगणित व्यक्तियोंमेंसे कतिपय स्वजनोंके कतिपय व्यक्तिगत एवं स्मरणीय प्रसंगोंका इस पुस्तकके आगामी पृष्ठोंपर प्रस्तुतीकरण है। प्रस्तुत प्रसंगोंमें कुछ पूर्व-प्रकाशितका संशोधित रूप है और कुछ हैं नवीन, परंतु उन प्रसंगोंका प्रस्तुतीकरण उन्हींके शब्दोंमें हुआ है। विषय, स्तर, गाम्भीर्य आदिके विचारसे भिन्न-भिन्न प्रकारवाले प्रसंगोंका यह संकलन-संयोजन-प्रकाशन मेरे-आपके-सभीके अन्तरको दिव्यालोकसे परिपूरित कर दे, यही मेरी मंगलमयी शुभाकांक्षा है।

विनीत
राधेश्याम बंका

अनुक्रमणिका

१ श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीअभिनवसच्चिदानन्दजी

कार्य-शक्तिसे प्रभावित १

२ श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीशान्तानन्दजी

स्नेह भरा अभिषेक १

३ श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी

धर्म-सेवार्थ सदैव तत्पर २

४ पूज्य ठाकुर श्रीसीताराम ओंकारनाथजी

भगवानके अनुपम यन्त्र २

५ प्रज्ञाचक्षु पूज्य श्रीरामभद्रदास रामानन्दाचार्यजी

विभूतियोंकी परम्परामें ४

६ पूज्य गुरुजी श्रीमाधवराव सदाशिव गोलवलकर

मेरे लिये उपकारक अनुभव ६

७ महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीभजनानन्दजी सरस्वती

वे मेरे अपने थे ७

८ महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती

१ *मेरे सुहृद मेरे स्वजन* ८

२ *माताजीकी सन्तुष्टि* १०

३ *लड़कीका विवाह* ११

४ *विनम्रता* ११

५ *व्यावहारिक निपुणता* १२

६ *सरलता* १३

७ *भगवद्विस्मृति* १३

८ *सर्वरूपमें भगवद्दर्शन* १३

९ *निष्ठाका आदर* १४

१० *औरोंको प्रोत्साहन* १४

११ *दोष-दृष्टिसे बचो और बचाओ* १५

१२ *नेहरूजी भी प्रभावित* १५

१३ *पड़ी हुई दवाएँ* १६

१४ *श्रीशुकदेव बाबू* १६

१५ *श्रीजयदयाल कसेरा* १७

१६ *श्रीज्वालाप्रसाद कानोड़िया* १७

	१७	श्रीदेवचन्द वर्मा	१८
	१८	उदार-दृष्टि	१९
	१९	कान पकड़ना	२०
	२०	भागवत सप्ताह कथा	२०
	२१	ठगके प्रति	२०
	२२	लार्ड विष्णु	२१
	२३	मैं करोड़ोंमें एक	२१
	२४	अपकारके बदलेमें भी उपकार	२२
	२५	इमानदारीका आदर	२२
	२६	सहृदयता	२३
	२७	मुझे भी वही दण्ड	२३
९	**प्रभुपाद श्रीभक्तिवेदान्त स्वामीजी महाराज**		
		मेरे सहयोगी दादा	२३
१०	**पूज्य श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज**		
		मेरे आत्मीय बन्धु	२४
११	**गोरखनाथ पीठाधीश्वर महंत श्रीअवैद्यनाथजी**		
	१	महान् पुजारी श्रीभाईजी	२७
	२	हिन्दुत्वकी गौरवास्पद विभूति	२७
१२	**श्रीराय कृष्णदास**		
		मेरे समर्थक और सहायक	२८
१३	**श्रीजयदयाल डालमिया**		
	१	अद्‌भुत अध्ययनशीलता	२९
	२	वे सबके भाई थे	२९
	३	जीव मात्रके प्रति कारुण्य	३०
	४	दूसरेका सुख ही उनका सुख	३०
	५	मन्त्रानुष्ठानका प्रयोग	३१
	६	अभिनन्दनीय कर्मठता	३२
	७	शिमलापालकी पुनः यात्रा	३३
	८	श्रीभाईजीका घर एक वाल्मीकि-आश्रम	३५
	९	मशीन चल पड़ी	३७
	१०	वे परम आस्थास्पद थे	३८
	११	परम स्नेही	४०
	१२	जीवन मन्त्र	४१
१४	**श्रीमती ललिता शास्त्री**		
		जी चाहता है	४१

१५ श्रीप्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका
मेरे अभिन्न मित्र ४२
१६ डा. श्रीराजबलीजी पाण्डेय
स्नेहका अनुबन्ध ४२
१७ डा. श्रीमणीन्द्रनाथजी चक्रवर्ती
१ *सम्पर्कका आरम्भ और घनिष्ठता,* ४३
२ *स्वप्नमें दिव्य प्रकाश* ४४
३ *गोरखपुर स्टेशनपर उनका दर्शन* ४५
४ *लड़कीके सम्बन्धकी समस्या* ४६
५ *महानकी महान करनी* ४७
६ *स्नेहका मर्मस्पर्शी दृश्य* ४८
१८ श्रीरमाकान्त केशवराव देशपाण्डे
धर्म-जागरण-कार्यके लिये पत्रक ४८
१९ श्रीयादवराव देशमुख
जागरणके लिये उद्बोधन ५०
२० श्रीगोकुलदासजी डागा
सरलताकी मूर्ति ५३
२१ बाबू श्रीगंगासिंहजी
क्रिया द्वारा शिक्षा ५४
२२ पं. श्रीनर्मदेश्वरजी चतुर्वेदी
१ *मेरी धारणा बदली* ५५
२ *उनका योगदान* ५५
२३ श्रीसत्यदेवजी ब्रह्मचारी
मेरे पथ-प्रदर्शक ५६
२४ सौ. श्रीगिनियाबाई नेमानी
भावीका आभास ५६
२५ श्रीबनवारीलालजी नेमाणी
व्यवहार और संतत्व ५८
२६ श्रीरामप्रसादजी दीक्षित
अहैतुक प्यार देते रहे ५९
२७ आदरणीया श्रीराजकुमारीजी दीक्षित
श्रीभाईजीका सहज व्यवहार ६०
२८ सौ. श्रीशारदादेवी त्रिवेदी
मेरे अपने हैं ६२

२९ सौ. श्रीउमाबाई पोद्दार
उनका आशीर्वाद मेरा रक्षा-कवच ६२
३० सौ. श्रीअनुराधा सिंह
दीपक नहीं जले ६४
३१ पं. श्रीजानकीनाथजी शर्मा
प्रतिमामें भगवान प्रत्यक्ष विराजमान हैं ६५
३२ श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन
उदार चेता ६६
३३ श्रीबालाप्रसादजी तुलस्यान
१ दो महापुरुषोंका पारस्परिक प्रेम ६६
२ उनका शील-स्वभाव ६७
३ कार्य-रत 'हनुमान' ६८
३४ श्रीव्रजभूषणजी गनेड़ीवाला
१ आत्मीयतासे भरपूर ६९
२ दिवंगतात्माकी विमुक्ति ६९
३ असफल अभिनन्दन-योजना ७१
३५ श्री एस. एन. मंगल
सनातन दर्शनके वरदपुत्र ७२
३६ श्रीबालकृष्णजी ओझा
'भारत-रत्न'की उपाधि ७५
३७ श्रीबजरंगलालजी सिंहानिया
१ आत्मीयजनोंकी भावनाका आदर ७७
२ अनोखी आत्मीयता ७९
३ त्रिकालदर्शीका सार्थक मौन ७९
३८ श्रीरामेश्वरप्रसादजी बाजोरिया
१ भिक्षुकको रोटी ८०
२ विलायती वस्त्रोंकी होली ८०
३ परम स्वजन ८१
३९ श्रीविश्वम्भर सहायजी प्रेमी
१ व्यक्तिगत आत्मीयता ८१
२ पारस्परिक बात-चीतके स्मरणीय क्षण ८२
३ कर्मचारीके प्रति सम-भाव ८३
४ गोमाताकी भक्ति ८३
५ जैन मुनिजी महाराजका स्वागत ८४

४० श्रीरामेश्वरप्रसादजी त्रिपाठी
प्रेमपूर्ण हृदय ८४
४१ श्रीमधु सिंहानिया
१ *प्रथम मधुर छाप* ८५
२ *मेरे तीन प्रश्न* ८५
३ *पुत्रका जन्म* ८६
४ *विवाहकी सम्पन्नता* ८७
४२ डा. श्रीरामकुमारजी वर्मा
श्रीरामकथाका नाटकीय रूप ८८
४३ पं. श्रीगणपतरायजी पारीक
साजिश और 'सजा' ८९
४४ श्रीअरुणकुमारजी भारद्वाज
रामायण और महाभारत सीरियल ९१
४५ श्रीरामकृष्णजी वैद्य
१ *एक शीशी चूर्ण* ९३
२ *उनकी अदालतमें* ९४
३ *बेटीकी जीवन रक्षा* ९४
४६ डा. श्रीनीरजाकान्तजी चौधुरी देवशर्मा
मेरा समुग्ध हृदय ९५
४७ श्रीमनोहरलालजी चौधरी
पूज्य श्रीब्रह्मचारीजीका आमरण अनशन ९६
४८ भक्त श्रीरामशरणदासजी
वे गो-भक्त थे १००
४९ कविराज डा. श्रीरघुवीरसिंहजी आर्य
देवता स्वरूप १००
५० श्रीरामरक्खाजी
स्नेह तथा नम्रताकी मूर्ति १०१
५१ श्रीहरिनारायणजी जालान
विनम्रताकी मूर्ति १०३
५२ श्रीगिरिजाशंकरजी त्रिवेदी
हिन्दू संस्कृतिके जीवन्त स्वरूप १०३
५३ डा. प्रेमस्वरूप गुप्त
मेरी मनस्थिति बदली १०४

५४ **श्रीगोविन्दजी शास्त्री**

नवयुवकोंको सन्मार्ग दिखानेवाले १०५

५५ **पं. श्रीलक्ष्मणनारायणजी गर्दे**

मेरी परोक्ष सँभाल १०६

५६ **श्रीवेणीशंकरजी शर्मा**

कृतज्ञ अन्तर ११०

५७ **श्रीकृष्णगोपालजी माथुर**

तीर्थयात्रा ट्रेन उज्जैनमें ११२

५८ **श्रीअम्बिकानाथ सिंह राय**

अद्भुत अतिथि-सेवी ११४

५९ **वैद्य पं. श्रीभैरवानन्दजी 'व्यापक' रामायणी**

सरल सुभाव छुआ छल नाहीं ११५

६० **श्रीशिवशंकरजी आप्टे**

अनुपम पथ-प्रदर्शक ११६

६१ **श्रीलखपतरायजी**

विलक्षण सतर्कता ११६

६२ **डा. श्रीगोपालकृष्णजी सराफ**

पितृतुल्य स्नेह ११७

६३ **श्रीरियाज अहमद अन्सारी**

आदमी नहीं, फरिश्ता ११८

६४ **श्रीओंकारमलजी पोद्दार**

नवजीवनकी प्राप्ति १२२

६५ **श्रीशिवशंकरजी रावल**

बापूसे वार्तालाप १२३

६६ **डा. श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू**

दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ १२३

६७ **श्रीकेशवराम एन. अयंगर**

हिन्दूधर्मके प्रमुख आधार-स्तम्भ १२४

६८ **श्रीपुरुषोत्तमदासजी मोदी**

वह वात्सल्य, वह शब्दावली १२४

६९ **श्रीभगवतीप्रसादजी खेतान**

सिद्धान्तप्रियता १२५

७० **श्रीपुरुषोत्तमदासजी चूड़ीवाला**

१ *नानाजीकी सुगति* १२६

२ गोपाल नौकर १२७
३ माफी मत माँगना १२९
४ आत्म-भावका सीमातीत विस्तार १३०
७१ श्रीमती अरुणा सिंहजी
विद्यालयको आशीर्वाद १३०
७२ श्रीरामकिशुनजी अग्रवाल
स्वजनका संकट १३२
७३ श्रीरामनिवासजी सर्राफ
सहायता और सम्मान १३३
७४ श्रीमोहनलालजी सारस्वत
अप्रतिम सेवा-भावना १३३
७५ श्रीशिवकुमारजी गोयल
अखण्ड भारत सम्मेलन १३५
७६ श्रीजयन्तीलाल ना. मान्कर
सेवा-कार्यका नेतृत्व १३६
७७ श्रीसीतारामजी जालान
यात्राका मुहूर्त १३६
७८ श्रीभालचन्द्रजी शर्मा
१ दर्शन एवं सन्निधि १३८
२ पर-दुःख कातर १३८
३ बच्चोंके प्रेमी १३९
७९ डा. श्रीजगदीशजी गुप्त
१ नैमिषारण्यमें शुभागमन १३९
२ समझौता-परस्तीसे दूर १४१
८० डा. श्रीजयशंकरजी त्रिपाठी
१ अध्यात्मका आलोक १४२
२ श्लोकोंकी अर्थ-प्रक्रिया १४३
३ हिन्दीके उन्नायक १४४
८१ श्रीओंकार शरदजी
उनकी स्मृतिको प्रणाम १४४
८२ आ. श्रीशान्तिबाई बजाज
१ सुहागकी रक्षा १४५
२ भीषण बीमारीसे मुक्ति १४८

८३ पं. श्रीगोविन्दशरणजी शास्त्री

आस्वादन और गायन १४९

८४ श्रीलीलाधरजी पोद्दार

संरक्षणकी छाया १५०

८५ स्वामी श्रीरामेश्वरानन्दजी

मेरे बड़े भैया १५२

८६ श्रीमदनलालजी शाह

१ कर्जसे मुक्ति १५३

२ विकट संकटका निवारण १५४

८७ श्रीश्रीरामजी पसारी

कालके गालसे वापसी १५५

८८ श्रीइन्द्रचन्द्रजी महर्षि

१ समान पारिश्रमिक १५६

२ अनुष्ठानकी दक्षिणा १५७

८९ श्रीछगनलालजी राँकावत

स्थित-प्रज्ञता १५८

९० श्रीमालचन्दजी गोयन्दका

१ बन्द आँखोंसे 'देखना' १५९

२ संत-सांनिध्यका शुभ परिणाम १६०

३ आँधी आयी और गयी १६२

९१ श्रीमगनलालजी गाँधी

इत्रका व्यापार १६२

९२ श्रीहरिशंकरजी गोहिल

१ उदार भावधारा १६४

२ उदार विचारधारा १६४

९३ श्रीकमलनयनजी बजाज

सरल और स्वच्छ जीवन १६४

९४ श्रीसत्येन्द्रनारायणजी अग्रवाल

विचारोंकी निर्भीक अभिव्यक्ति १६६

९५ श्रीहीरालालजी शास्त्री

गो-सेवाकी लगन १६६

९६ श्रीप्रहलाद कहार

नौकरको प्रणाम १६७

९७ पं. श्रीमंगलजी उद्धवजी शास्त्री
स्नेह और सौजन्यकी मूर्ति १६८
९८ श्रीओमप्रकाश पण्डित 'पत्रकार'
पत्रकारों एवं सम्पादकोंके प्रेरणा-स्रोत १७०
९९ श्रीजयगोपालजी मिश्र 'फतेपुरी'
महामनीषी १७१
१०० डा. श्रीतपेश्वरनाथजी
उनका शील १७२
१०१ श्रीराधाकृष्णजी
लगनवाले व्यक्ति थे १७२
१०२ श्री र. शौरिराजन्
उन्होंने अभिरुचि जगायी १७३
१०३ श्रीयुत शा. रा. शारंगपाणि
दक्षिणभारतकी तीर्थयात्रामें १७४
१०४ श्री. आर. आर. दिवाकर
उदार दृष्टि विशाल प्रयत्न १७६
१०५ श्रीयुगलसिंहजी खीची
आलोचनाके क्षणोंमें १७७
१०६ श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा
'स्वयं चिद्रूपलक्षणः' १७८
१०७ ठाकुर श्रीश्रीनाथजी सिंह
उच्चादर्शोंके प्रतीक १७९
१०८ श्रीबनारसीदासजी चतुर्वेदी
देखा एक बार, परखा बार-बार १८२
१०९ आचार्य प्रभुपाद श्रीप्राणकिशोरजी गोस्वामी
वे कितने उत्साही थे १८४
११० श्रीज्योतिषचन्द्रजी घोष
स्मरणीय सुयोग और स्नेह १८५
१११ श्री एस. रंगनाथन्
मित्रसे आदरणीय बने १८६

११२ श्रीगंगारामजी तिवारी
प्रत्यक्ष दर्शन, फिर मार्गदर्शन १८६
११३ पद्मभूषण श्रीगूजरमलजी मोदी
अनोखे दयालु १८७
११४ वैद्यसम्राट श्रीमणिरामजी महाराज
झगड़ा सलटा दिया १८७
११५ श्रीशान्तिप्रसादजी जैन
मेरे विश्वासको दृढ़ बनाया १८८
११६ आचार्य श्रीयमुनावल्लभजी गोस्वामी
गुरुजनके भक्त थे १८९
११७ श्रीश्रीगोपालजी नेवटिया
विवादसे परे १९१
११८ श्रीरामनाथजी 'सुमन'
क्या लिखें, क्या बोलें, क्या करें? १९२
११९ श्रीमृत्युञ्जयप्रसादजी
दो विभूतियोंका पारस्परिक सौहार्द २००
१२० श्रीकार्ल जी. गेश
भारतीय संस्कृतिके संदेशवाहक २०३
१२१ श्रीरुडोल्फ सुएस
मैं परदेशी नहीं, स्वजन था २०४
१२२ श्रीमाधवप्रसादजी मिश्र
मंगलमय सूक्ष्म संनिधि २०५
१२३ आ. श्रीअचलनन्दिनी श्रीवास्तव
१ *उनका शील उनका स्नेह* २०६
२ *दानके लिये वस्त्र* २०७
३ *झाडूसे सफाई* २०७
४ *विवाहमें विदाई* २०८
१२४ आ. श्रीगायत्रीबाई बाजोरिया
स्वागताभिवन्दन २०९

परमभागवत श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

परमभागवत श्रीपोद्दारजी

श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीअभिनवसच्चिदानन्दतीर्थजी महाराज

कार्य-शक्तिसे प्रभावित

बिहारके एक कोनेमें ढेभवा नामके गाँवमें सन् १९४६ में अखिल भारतीय धर्म संघका महाधिवेशन हुआ था। उसकी अध्यक्षताके लिये हमारा उत्तर भारतमें प्रथम बार जाना हुआ। जाते तथा आते समय मैं गीतावाटिका, गोरखपुरमें श्रीभाईजीके ही आतिथ्यमें रहा।

इसी अवसरपर मेरा पोद्दारजीसे प्रथम परिचय हुआ। वैसे तो कर्णाटकके एक कोनेमें निवास करते हुए बाल्यकालसे ही 'कल्याण'के सचित्र विशेषांकोंके द्वारा मैं उनके व्यक्तित्वसे सूक्ष्मरूपेण परिचित था, इसके बाद अनेक स्थानोंमें अनेक प्रसंगोमें वह परिचय बढ़ता ही गया। भगवद्भक्ति, गो-भक्ति, राष्ट्रप्रेम, संस्कृति-संरक्षणके क्षेत्रमें वे प्रेरणास्रोत हैं ही, किन्तु गोरक्षा-कार्यमें तो उनकी तन्मयता और संगठन-शक्तिको देखकर लोग चकित रह जाते थे। ■

श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीशान्तानन्दजी महाराज

स्नेह भरा अभिषेक

'भाईजी' शब्दका स्मरण आते ही मेरे सम्मुख श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका स्वरूप साक्षात् उपस्थित हो जाता है— माँसल काया, भरा-पूरा मुखमण्डल, उन्नत ललाट, चश्मेके भीतर आध्यात्मिक चिन्तनमें लीन आँखें। भाई हनुमानप्रसाद रुद्रावतार हनुमानजीके साक्षात् विग्रहके समान प्रतीत होते थे। उन्होंने गृहस्थ-धर्म एवं त्याग-धर्म, दोनोंके बीच अलौकिक सामञ्जस्य स्थापित किया। उनका जीवन गृहस्थों और संन्यासियों, दोनोंके लिये समान रूपसे प्रेरणा- स्रोत रहा। वे गम्भीरताकी साकार प्रतिमा थे। उन्होंने अपने बहिर्जगत और अन्तर्जगतको एकरस कर दिया था।

मेरा भाईजीके साथ सम्पर्क सन् १९३३ से था। पारमार्थिक कार्योंके निमित्त मुझे बाहर जाना पड़ता था। यदा-कदा उनके पारमार्थिक सत्संगका शुभ अवसर प्राप्त होता था। उस सत्संगमें उनके अगाध पाण्डित्य, विशद ज्ञान और अपरोक्षानुभूतिकी त्रिविध धारा प्रवाहित होती थी।

एक बारका संस्मरण मुझे कभी विस्मृत नहीं होता। मैं प्रयागसे ज्योतिर्मठकी आध्यात्मिक यात्रापर था। साथमें अनेक लोग थे। ऋषिकेश पहुँचकर वहीं रुक गया। दूसरे दिन गंगा पारकर

ज्यों ही उतरा, श्रीभाईजी मिल गये। सत्संगका कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। प्रसंगवश मुझसे 'संत-महिमा' पर कुछ प्रवचन करनेका आग्रह किया गया। मैंने लगभग आधे घंटेतक प्रवचन किया। मेरे प्रवचनके अनन्तर, उसी प्रसंगपर भाईजीने सामान्य श्रोताओंके सम्मुख जिस मार्मिक, ओजस्वी और हृदयस्पर्शी शैलीमें भाषण दिया, उससे मैं आश्चर्य-विभोर हो गया। मुझे ऐसी अनुभूति हुई, मानो मेरे ही भावों, विचारों एवं अनुभूतियोंको साहित्यकी नवीन अलंकारात्मक शैलीमें गुम्फित करके रख दिया गया है। उनका अन्तःकरण स्फटिकमणिके समान निर्मल था। उन्होंने अत्यधिक स्नेहसे मेरे और आश्रमके सारे समाचार पूछे। विदा होते समय उन्होंने निष्कपट स्नेहसे अपने नेत्रोंसे जो अश्रुजल बरसाये, उससे मुझे अनुभव हुआ, जैसे वे अत्यधिक स्नेहसे मेरा अभिषेक कर रहे हैं। ■

श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज

धर्म-सेवार्थ सदैव तत्पर

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार हमारे पास बराबर आया-जाया करते थे। श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सनातन धर्म और हिन्दू-जातिके महान् रत्न थे। सनातन धर्मके शीर्षस्थ नेताओंने जब हिन्दू कोड बिलका घोर विरोध करना प्रारम्भ किया, तब उसमें श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका भी बड़ा सहयोग रहा। उन्होंने सभी बड़े-बड़े अधिवेशनोंमें पधारकर अपने भाषण दिये और खुलकर हिन्दू कोड बिलका विरोध किया। जिस समय श्रीकरपात्रीजी महाराजके नेतृत्वमें गोहत्याके विरोधमें आन्दोलन चला, तब उसमें श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका पूर्ण सहयोग रहा। उन्होंने तन-मन-धनसे उसमें पूरा-पूरा साथ दिया। जिस समय भारतमाताके अंग खण्ड-खण्ड कर पाकिस्तान बनानेकी सोची गयी, तब पाकिस्तान बननेके विरोधमें जहाँ हमलोगोंने आन्दोलन छेड़ा तो उसमें भी वे हमारे साथ रहे। सनातन धर्मकी, हिन्दू धर्मकी रक्षाका जो भी कार्य होता था और देश-धर्मकी रक्षाका जो भी प्रश्न सामने आता था, श्रीपोद्दारजी उसमें अग्रणी रहते थे और उनकी रक्षाके लिये तन-मन-धनसे साथ देते थे। जिस समय गोरक्षा-आन्दोलनमें प्रदर्शनके समय निरपराध साधु-संतोंपर गोले बरसाये गये थे, तब हमारे बराबर ही उसी मंचपर श्रीपोद्दारजी भी थे। श्रीकरपात्रीजी जब गोरक्षा-आन्दोलनमें जेल गये और जब उनके ऊपर जेलमें कुछ दुष्ट लोगोंके द्वारा मार पड़ी, तब तुरंत श्रीपोद्दारजी तिहाड़ जेलमें उन्हें देखनेके लिये गये। वे गो-ब्राह्मणोंके अनन्य भक्त थे। ■

पूज्य ठाकुर श्रीसीताराम ओंकारनाथजी महाराज

भगवानके अनुपम यन्त्र

मेरे गुरुदेव नित्यलोकगत पूज्यपाद श्रीरामदयाल मजूमदार बाबाने सन् १९२६ के आसपास एक दिन 'कल्याण'की एक प्रति हाथमें लेकर मुझे कहा– देखो, गोरखपुरसे 'कल्याण' नामक एक मासिक पत्रिका निकली है। कैसे सुन्दर चित्र हैं! चित्र देखकर प्राण

भर जाते हैं।

तभी मैंने पहले-पहले 'कल्याण'का नाम सुना था। सम्भवतः एकाध वर्ष पूर्व ही 'कल्याण'का प्रकाशन आरम्भ हुआ था। इसके बाद अध्यापक-जीवनमें गीताप्रेससे भक्त-चरित, संत-अंक आदि मँगाकर उनको पढ़ता, जिससे यथेष्ट आनन्द प्राप्त होता। 'कल्याण'की भाषा संस्कृत-गर्भित होनेके कारण उसे समझनेमें मुझे विशेष असुविधा नहीं होती थी।

कुछ समय पश्चात् मैंने दस महीनेका मौनव्रत लिया। उसी अवधिमें 'कल्याण'का 'भक्तांक' प्रकाशित हुआ। एक भक्तने मेरी लिखी हुई 'दाशरथिस्मृतिभूषण'की जीवनी उसमें प्रकाशनार्थ भेज दी और श्रीपोद्दारजीने उसे प्रकाशित कर दिया। मौनव्रत पूरा होनेपर हमने लेख देखा और यहींसे श्रीपोद्दारजीसे हमारा परिचय हुआ। पीछे सम्भवतः १९५३ में उनके प्रथम दर्शन हुए।

उन दिनों मैं मौन रहता था। उस मौनकालमें मैंने गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तकोंका बंगानुवाद किया था। कुछ पुस्तकोंका अनुवाद मैं पहले भी कर चुका था। उस समय मनमें गीताप्रेसके द्वारपर दण्डवत् प्रणाम करनेकी प्रेरणा हुई। १९५५ में मैंने मौन त्याग दिया और विभिन्न स्थानोंमें नाम-प्रचार करते हुए गोरखपुर जाकर गीताप्रेसके द्वारपर दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीपोद्दार बाबाने साथ रहकर पूरा प्रेस दिखलाया। श्रीपोद्दारजीका अकृत्रिम सहज प्रेम भूलनेकी वस्तु नहीं है। उनके प्रेमने चिरकालके लिये हृदयपर अधिकार जमा लिया है।

श्रीपोद्दार बाबाके शरीरसे हमारे प्रभुने जो अपूर्व शास्त्र-प्रचार एवं धर्म-प्रचारकी लीला की है, वह न कभी हुई है और न होगी। ऐसे संतके चरणोंमें मस्तक अपने-आप नत हो जाता है। मनुष्य मन्दिरके द्वारपर देवताको प्रणाम करते हैं, इसीलिये कि मन्दिर श्रीभगवानका मन्दिर है, मन्दिरके द्वारपर प्रणाम करनेपर देवदर्शनका अधिकार-लाभ होता है। श्रीभगवानके धर्म-प्रचारके अनुपम यन्त्र श्रीपोद्दार बाबा थे— उनके हृदयपर अधिकार करके श्रीभगवान स्वयं ही कार्य कर रहे थे, उनके भीतर और बाहर श्रीभगवान ही विद्यमान थे। श्रीपोद्दार बाबा मुक्त थे। इस प्रकारका शास्त्र-प्रचार एवं धर्म-प्रचार देहाभिमानीद्वारा नहीं हो सकता। गैस बत्तीकी मैंटल (mantle) भस्म हो जानेपर ही प्रकाश फैलाती है।

पीछे मैंने पुनः मौनव्रत ले लिया और उस अवधिमें श्रीपोद्दार बाबाकृत भाषाटीकाकी सहायता लेकर मैंने श्रीरामचरितमानसका बंगानुवाद किया। उस अनुवादको मैंने श्रीपोद्दार बाबा और श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके नामसे उत्सर्ग किया। उत्सर्ग-पत्रमें मैंने लिखा—

।। श्रीश्रीगुरवे नमः ।।

अनन्त करुणा-पारावार पुरुषोत्तम श्रीभगवान दो अलौकिक अनुपम यन्त्रोंको लेकर इस दारुण कलियुगमें सर्वत्र जो धर्म-प्रचार, श्रीनाम-प्रचार और शास्त्र-प्रचार कर रहे हैं, इस प्रकारके प्रचारकी बात मैंने किसी इतिहासमें, पुराणमें नहीं देखी, अथवा किसी धर्म-प्रचारकने इस प्रकार विश्वव्यापी धर्म-प्रचार किया हो— यह नहीं सुना। श्रीभगवानके सुन्दर उदित दो रमणीय चन्द्र— परमप्रेमभाजन अशेषश्रद्धास्पद 'कल्याण-सम्पादक' श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

महाशय और श्रीयुत चिम्मनलालजी गोस्वामीके पवित्र नामपर उनके अति प्रियतम 'श्रीरामचरितमानस' का बंगानुवाद उत्सर्ग किया।

—सीताराम दास

१९६४ में मैं पुनः गोरखपुर गया। श्रीपोद्दार बाबाने मुझे अपनी गीतावाटिकामें ठहरानेकी सादर व्यवस्था की। उनके सानन्द सप्रेम व्यवहारकी कोई तुलना नहीं थी। श्रीपोद्दार बाबाके साथ तबसे बराबर पत्र-व्यवहार होता रहा।

इस सर्वहारी युगमें सनातनधर्मकी रक्षा तथा विश्वका परम कल्याण करनेके लिये ही श्रीभगवानकी इच्छासे श्रीपोद्दार बाबाके शरीरका आश्रय लेकर 'कल्याण' मासिक पत्रका आविर्भाव हुआ है। दुःख-शोक-रोग-ज्वाला-यन्त्रणासे सतत संतप्त, पथ-भ्रान्त असंख्य नर-नारी 'कल्याण'की शान्त, स्निग्ध, सुशीतल छायामें विश्राम प्राप्तकर कृतार्थ हुए हैं और हो रहे हैं। आश्चर्यकी बात है कि इस कलि-कलुष-कलुषित, शास्त्र-धर्म-विवर्जित समयमें सनातन शास्त्र और धर्मका प्रचार करनेवाले 'कल्याण'की ग्राहकसंख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है।

सन् १९६९ के अप्रैल मासमें मैं पुनः ऋषिकेश गया। श्रीपोद्दार बाबा वहाँ थे। मैं उनका साक्षात्कार करने गया। उस समय उनके पेटमें भीषण शूल था, पर मेरा सत्कार करनेके लिये उन्होंने इसकी तनिक भी परवाह नहीं की, न किसीसे कुछ कहा। वे आनन्दपूर्वक मिले। बातें हुईं, कीर्तन-सत्संग हुआ। श्रीठाकुर-सेवाके लिये प्रचुर मात्रामें फल दिये और मुझे बिदा करनेके लिये घाटतक आये। मैं उस समय नहीं समझ पाया कि वह बिदा अन्तिम बिदा थी और यह भी उस समय समझमें नहीं आया कि उनके पवित्रतम प्रेममय भुवनमंगल श्रीविग्रहको फिर देख न पाऊँगा। यह दर्शन इस जन्मका अन्तिम दर्शन था। ■

प्रज्ञाचक्षु पूज्य श्रीरामभद्रदास रामानन्दाचार्यजी महाराज

विभूतियोंकी परम्परामें

उत्तमश्लोक-शिखामणि भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार इस युगकी महान संत-विभूति थे। संतोंकी महिमाका वर्णन करनेमें जब विधि-हरि-हरकी वाणी भी संकुचित हो जाती है, तब मुझ अल्प मतिकी गति कहाँ?

बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥
सो मो सन कहि जात न कैसे। साक बनिक मनि गुन गन जैसे॥

ऐसा होकर भी *'निज गिरा पावनि करन कारन'* कुछ कहनेका साहस कर रहा हूँ।

पूज्य श्रीभाईजीके जीवनमें भगवान श्रीराम और भगवान श्रीकृष्णका अद्भुत समन्वय है। मानव-जीवनमें व्यवहारके दो पक्ष होते हैं आचार और विचार। श्रीभाईजीके विचारमें भगवान श्रीकृष्णका दर्शन है तो उनके आचारमें भगवान श्रीरामका वर्तन। 'राम' शब्द में 'र' का अर्थ है राघव और 'म' का अर्थ है माधव। राघव और माधवका समष्टि रूप है 'राम' और 'राम' का यथार्थ तत्त्व श्रीभाईजीके जीवनमें अक्षरशः चरितार्थ हुआ है। भाव-समाधिकी स्थितिमें

यन्त्र-यन्त्री-भावापन्न होकर स्वयंको यन्त्र मानते हुए जहाँ उन्होंने अपने आपको श्रीमाधवके चरणोंपर अर्पित कर दिया है, वहीं उन्होंने लोक-कल्याणकी भावनासे भावित होकर श्रीरामचरितमानस तथा विनयपत्रिकाकी सुन्दर और सुबोध टीकाके लेखनद्वारा अपने जग-हित-निरत हृदयका परिचय दिया है।

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कँह हित होई।।

भाव एवं अभिव्यक्तिकी दृष्टिसे श्रीभाईजीका जीवन एक काव्य ही है, एक ऐसा काव्य, जिसमें साहित्यका सौहित्य सन्निहित है।

कविका जीवन सदैव करुणाप्लावित ही रहता है। कविके हृदयके क्रन्दनका कभी विराम होता नहीं। राम-काव्यके महान गायक महर्षि वाल्मीकिके लिये कहा गया है:—

कवि जीवनने आप व्यथा अपने हित बोई।
कविके मनने स्वयं शान्ति अपनी ही खोई।।
लगे वाण हा! किसे और घायल हो कोई।
कविकी दुर्गति देख स्वयं कविता ही रोई।।

वाण लगा क्रौञ्च पक्षीके शरीरमें और घायल हुआ महर्षि वाल्मीकिका हृदय। महर्षि वाल्मीकिका अन्तर क्रन्दन कर उठा। यही क्रन्दन श्रीभाईजीके जीवनमें भी था। श्रीभाईजी ऐसे पर-दुःख-कातर थे कि आर्तोंकी आर्ति उन्हें सदा व्यथित बनाये रखती थी। कैंसर जैसे कठिन रोगकी विपुल पीड़ा उन्हें व्यथित न कर सकी, पर आर्तोंकी तनिक-सी आर्तिको देखकर उनका हृदय व्यथासे भर जाता था। इतना ही नहीं, अपने हिन्दू धर्म, भारतीय संस्कृति, वैदिक वाङ्मय, ऋषि-सिद्धान्त, आर्य-परम्पराकी हानि और ग्लानिको देखकर उनके अन्तरमें ऐसे रोदनका उद्‌भव हुआ कि उन्होंने सांसारिक उत्कर्षकी भावनाका सर्वांशमें संवरण करके धर्म-सेवाके महान व्रतका वरण कर लिया। व्रत-परायण श्रीभाईजीने गीतावाटिकामें बैठकर गीताप्रेसके माध्यमसे वह महान कार्य किया, जो उनकी पावन स्मृतिको युग-युगतक बनाये रखेगा। उस प्रबल रोदनसे ही प्रस्फुटित हुआ प्रकर्ष आर्ष जीवन। गोरखपुरकी गीतावाटिका ही वह दिव्य स्थली है, जहाँ भाव-समाधि और कार्य-समाधि, दोनोंका चरमोत्कर्ष श्रीभाईजीके जीवनमें प्रत्यक्षीभूत हुआ।

मेरी ऐसी मान्यता है कि श्रीभाईजी जैसे महान संतका आविर्भाव भगवदीय योजनासे ही हुआ करता है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीतामें भगवानने कहा है कि जब-जब धर्मकी ग्लानि होती है तब-तब मैं स्वयं अवतार लेता हूँ अथवा अपनी किसी विशिष्ट विभूतिका अवतरण करवा देता हूँ। यह सृष्टि भगवानका मंदिर है और भगवदीय प्रेरणासे मंदिरको स्वच्छ तथा सुव्यवस्थित रखनेके लिये महापुरुषोंका शुभागमन होता है। जब ह्रासोन्मुख वैदिक धर्मकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी, तब भगवान श्रीआदिशंकराचार्यजीका शुभागमन हुआ और उनके प्रयाससे धर्मकी ग्लानि दूर हो सकी। इसके पश्चात् जब 'अहं ब्रह्मास्मि'के थोथे नारेसे समाज-जीवनमें शिथिलता आ गयी और *'ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात'* तब भगवान श्रीरामानुजाचार्यजीका शुभागमन हुआ और उनके द्वारा दास्य-भक्तिका प्रचार हुआ। इससे समाजमें सुधार तो आया, पर आचार-बहुलता इतनी अधिक हो गयी कि अनेक लोगोंको

भगवत्सेवामें अधिकार नहीं मिल पाता था। समाजकी ऐसी विपन्न स्थितिमें भगवान श्रीरामानन्दाचार्यजीका शुभागमन हुआ और उनकी स्पष्ट घोषणा थी कि भगवानकी शरणागतिके सभी पूर्ण अधिकारी हैं। कुछ समय व्यतीत हो जानेपर जब भगवानने देखा कि वैदिक वाङ्मयकी सही-सही व्याख्या नहीं हो पा रही है और भिन्न-भिन्न व्याख्याओंके विवादमें पड़ा हुआ विद्वद्वर्ग विमूर्च्छित हो रहा है और साधारण वर्ग वास्तविकतासे वंचित हो रहा है, तब उन्होंने संतप्रवर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीको भेजकर उनकेद्वारा नानापुराणनिगमागमकी परम श्रेष्ठ टीका स्वरूप श्रीरामचरितमानसकी अवतारणा करवा दी। यह श्रेष्ठ टीका जब सुगमता पूर्वक सभीको उपलब्ध नहीं हो पा रही थी, तब भगवानने इस कमीको पूर्ण करनेके लिये भक्तप्रवर श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको भेजा। भाई श्रीपोद्दारजीके अथक प्रयाससे गीता एवं मानसका संदेश घर-घर, जन-जनतक पहुँच पाया।

श्रीभाईजीद्वारा धर्म और साहित्यकी सेवाका जो महान कार्य हुआ है, उसे देखकर यही लगता है कि अवश्य ही उसके पीछे एक कल्याणकारी भगवदीय योजना है। हिन्दूधर्मका संरक्षण एवं संपोषण करनेवाले अपने अनेक पुरातन महान आचार्य जिस प्रकार वन्दनीय हैं मेरे विश्वासके अनुसार उसी प्रकार श्रीभाईजी सदैव वन्दनीय रहेंगे। ■

पूज्य गुरुजी श्रीमाधवराव सदाशिव गोलवलकर

मेरे लिये उपकारक अनुभव

बहुत वर्ष पहले अपने नित्यके भ्रमणमें मैं गोरखपुर गया था। गोरखपुरका नाम योगिराज गोरखनाथजीके कारण प्रसिद्ध है। उन महायोगीके कारण पुनीत बने स्थानको देखनेकी इच्छा थी ही। वह पूर्ण कर सका और उस दर्शनसे हृदयमें पवित्र भावकी अनुभूति कर सका, परंतु विगत कई वर्षोंसे गोरखपुर और एक कारणसे विख्यात है। वह है गीताप्रेस और उससे प्रकाशित मासिक 'कल्याण' एवं अन्य धर्मग्रन्थ। यह प्रतिष्ठान, जहाँसे नाममात्र मूल्यपर श्रेष्ठतम ग्रन्थ उपलब्ध किये जा रहे हैं, कैसा है, उसे कौन चलाता है— इन बातोंका कौतूहल हृदयमें बहुत समयसे रहा। उसे चलानेवाले महानुभावोंके नाम तो पढ़े ही थे, परंतु प्रत्यक्ष उनका दर्शन नहीं हुआ था। वह चिरप्रतीक्षित सुअवसर उस समय गोरखपुर जानेपर प्राप्त हो सका।

किसी भी प्रतिष्ठानकी सफलता मात्र उसके उत्तम उद्देश्यसे नहीं होती, केवल धनकी प्रचुरतासे भी नहीं होती, यद्यपि उत्तम उद्देश्य और प्रभूत धनकी आवश्यकता अमान्य नहीं की जा सकती। पुनीत उद्देश्य, पवित्र सात्त्विक श्रद्धासे प्रदत्त धन और सबसे महत्त्वका साधन— उस उद्देश्यकी पूर्तिके हेतु उस पवित्र धनका सदुपयोग करनेवाला दीर्घदर्शी, योजनाकुशल, ध्येयनिष्ठ संचालक— जिसने उस प्रतिष्ठानके लिये अपना तन-मन-धनादि सब समर्पित कर दिया हो— इन तीनोंका संयोग ही सफलताका कारण होता है। गीताप्रेसमें इन तीनोंका एक समन्वय है। गीताप्रेसका धर्मप्रचारका विशुद्ध उद्देश्य, ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका आदिका शुद्ध धन-प्रदान और श्रद्धेय भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके समान धर्मनिष्ठ, कर्मठ

संचालक— इनका अभूतपूर्व संयोग— एक अभूतपूर्व वायुमण्डल बनाता हुआ अनुभव होता है।

मेरे सहयोगियोंने श्रद्धेय भाईजीसे मिलनेकी योजना बना रखी थी। ठीक समयपर मैंने उनके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त किया। एक मध्यम कदकी प्रसन्नवदन मूर्ति मेरे सम्मुख उपस्थित हुई। सौम्यता, माधुर्य उनके शब्दोंसे टपकते थे। प्रत्येक शब्दमें धर्मके प्रति अपार श्रद्धा, समाजके प्रति कारुण्यभाव, प्रखर राष्ट्रभक्ति और सबकी महान् प्रेरक, श्रीभगवानके चरणकमलोंमें प्रगाढ़ भक्ति अभिव्यक्त हो रही थी।

इसके पश्चात् मैंने अनेक बार उनके दर्शन किये। वर्तमान परिस्थिति— धर्मश्रद्धाका ह्रास, नीतिमत्ताका ह्रास, विशुद्ध राष्ट्रभक्तिकी न्यूनता, अपने समाजकी विच्छिन्नता तथा इन सबके परिणामस्वरूप अविवेकका प्रादुर्भाव इत्यादि महत्त्वपूर्ण विषयोंपर उनके प्रौढ़ विचार सुने। भगवद्भक्ति, गो-भक्तिका साक्षात्कार उनके शब्द-शब्दसे होता हुआ अनुभव किया। गोवंशकी हत्या, उसकी दुर्दशासे वे अति व्यथित रहते थे। भिन्न-भिन्न साधु-महात्माओंको अपने-अपने अलग मार्गसे चलते देख तथा उनमें सम्पूर्ण समाजकी उन्नतिके हेतु सामञ्जस्यकी न्यूनताको देखकर वे व्यथित तथा चिन्तित थे। परंतु इस मनोव्यथा एवं चिन्ताके होते हुए भी सर्व-कल्याणकारी श्रीभगवानके प्रति अटूट विश्वास तथा प्रेम होनेके कारण उनके अन्तःकरणका आनन्द और संतुलन अभंग रहता था।

यह सब मेरे लिये उपकारक अनुभव रहा है। उनके जीवनसे श्रीगीताके ज्ञान-कर्म-भक्तिका एकरस बोध प्राप्त करना, अपनी अल्प ग्रहणशक्तिके अनुपातमें, मेरा सद्भाग्य है। श्रद्धेय श्रीभाईजीके सम्बन्धमें कोई लिख सकनेवाला लिखे और दीर्घकालतक लिखता ही रहे, तो भी उसे यही कहना पड़ेगा कि—

'तदपि तव गुणानां..... पारं न याति'। ■

महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीभजनानन्दजी सरस्वती

वे मेरे अपने थे

हमारा और भाई श्रीपोद्दारजीका सम्बन्ध अति दीर्घ कालतक रहा। वे मुझे अपना मानते थे और मैं उन्हें अपना मानता था। कई बार गीतावाटिकामें जानेका मौका मिला। भाई श्रीपोद्दारजीसे अनेक बातें सीखीं। न तो उन सभी बातोंका स्मरण है और न लिख ही सकता हूँ। बहुत पहले गीतावाटिकामें जब जाना हुआ, तब हमने भाईजीसे कहा— भाईजी, मैं कुछ प्रचार भी करता हूँ और अपना साधन भी।

भाईजीने कहा— भगवान श्रीकृष्णने (गीता/१८/६८-६९ में) कहा है कि जो पुरुष मुझसे परम प्रेम करके यह परम रहस्यमय गीताशास्त्र मेरे भक्तोंसे कहेगा, वह निस्संदेह मुझे ही प्राप्त होगा। न तो इससे बढ़कर मेरा अतिशय प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई है और न इससे बढ़कर मेरा अत्यन्त प्यारा इस पृथ्वीमें दूसरा कोई होगा। पर साथ ही इस बातका भी ध्यान रखें कि कहीं इस प्रचारके अभिमानी न बन जायँ। यह भी ध्यान रखें कि अपना साधन कभी न छूटे।

उस समय श्रीभाईजीने यह भी कहा था–

पण्डित और मसालची, इनको दीखत नाहिं।
औरन को करैं चाँदनी, आप अँधेरे माहिं॥

उस समय एक और बात उन्होंने कही, वह बड़े रहस्यकी है–

यह भी देख, वह भी देख,
देखत-देखत ऐसा देख।
कि मिट जाय धोखा,
रह जाय एक॥

जबसे 'परमार्थ-निकेतन' बना, प्रायः प्रतिवर्ष उनसे कुछ-न-कुछ सत्संग हो ही जाता था। हम उन्हें आदर देने लगते तो वे बड़े संकुचित हो जाते थे। एक बार उन्होंने कहा– महाराजजी ! आप उलटी गंगा न बहाया करें।

हमने कहा– उलटी गंगा भगवानके चरणोंमें पहुँचेगी और सीधी गंगा खारे समुद्रमें।

सुनकर भाईजी खिलखिला उठे। वे कहने लगे– हम आपसे हार गये।

'गीता-भवन' और 'परमार्थ-निकेतन'वालोंमें जब कभी कोई मतभेद हो जाता था, तब वे सदा सत्यका पक्ष लेकर आपसका मतभेद दूर करके परस्परमें प्रेम-व्यवहार स्थापित कर दिया करते थे। उनके सद्व्यवहारको देखकर सभी उनसे प्रभावित थे। ■

महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती

[१] मेरे सुहृद मेरे स्वजन

मैं जितने दिन 'कल्याण-परिवार'में रहा, श्रीभाईजीसे एक होकर। उनसे कितना तादात्म्य हो गया था, इसकी एक घटना सुनिये। श्रीजयदयालजी गोयन्दका भरी सभामें भाईजीकी प्रशंसा करने लगे। मैंने देखा कि भाईजीका मुख लटक गया है, वे उदास हो गये हैं। मैंने वहीं, उसी समय खड़े होकर सबके सामने गोयन्दकाजीसे कह दिया– आप भाईजीकी प्रशंसा मत कीजिये। मुझे ऐसा लग रहा है मानो भाईजीकी प्रशंसा मेरी प्रशंसा है और उसके कारण मुझे संकोच हो रहा है।

अब जब उन्हीं भाईजीके संस्मरण लिखने-लिखवानेका मन होता है, तब हृदयमें एक पीड़ा होती है कि मैं क्या अपना ही संस्मरण लिखाऊँ ?

एक दूसरी बात और है। वे आज भी चुपचाप मेरे मनमें गुप्त-प्रकट रहकर मेरी प्रवृत्तियों और निवृत्तियोंके संचालन-सहयोगका काम करते रहते हैं। उन्होंने मेरे अन्तस्तलके सूक्ष्म प्रदेशमें ऐसा प्रवेश कर लिया है, ऐसा स्थान पा लिया है कि उनकी मानसी मूर्ति सदाके लिये प्रतिष्ठित हो गयी है।

'कल्याण'के तीसरे वर्ष (सन् १९२९) के विशेषांक 'भक्तांक'को पढ़कर भाईजीसे मिलनेकी इच्छा हुई। उस समय मनमें कल्पना होती– भाईजीकी आँखें सर्वदा बंद रहती होंगी,

मुखमण्डलसे ज्योति निकलती होगी, गौर वर्ण होगा, सबसे अलग रहते होंगे, न जाने क्या-क्या विशेषताएँ उनमें होंगी। हमसे न जाने कितनी दूर होंगे।

मिलनेकी उत्कण्ठा इतनी तीव्र हुई कि रुपये-पैसेका ख्याल न करके खाली हाथ जैसे था, वैसे ही चल पड़ा। दोहरीघाट स्टेशनतक रेलवेसे गया और वहाँसे गोरखपुर करीब २० मील पैदल।

उन दिनों भाईजी गोरखनाथके समीपवाले बगीचेमें रहते थे। पहले मैं गीताप्रेस पहुँचा और वहाँसे पैदल चलकर बगीचे आया। जब मैं वहाँ पहुँचा तो भाईजी प्रेस जा चुके थे। गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीसे कुछ बातचीत होती रही। ६-७ घंटे बाद करीब ८ बजे रात्रिको भाईजी प्रेससे लौटे।

मुझे देखते ही भाईजीने इस प्रकार मुझे पकड़कर गलेसे लगा लिया, जैसे मैं उनका कोई चिरपरिचित होऊँ। शान्तिसे बैठ जानेके बाद मैंने पूछा— भगवानमें प्रेम कैसे हो ?

भाईजी बोले—

'उमा राम सुभाउ जेहि जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना।।'

इसके बाद दो-दो, तीन-तीन मिनटपर एक-एक वाक्य बोलते— भगवानका स्वभाव कितना दयालु है! वे अपने सेवकोंके अपराधपर दृष्टि नहीं डालते।

बातें घंटोंतक होती रहीं। बीच-बीचमें भाईजीके नेत्रोंसे आँसू गिरते थे और मुझे भी रोमाञ्च हो आता था। बस, यही भाईजीका प्रथम दर्शन था। मैं तीन-चार दिन गोरखपुर रहा। भाईजीने कहा कि आपको अवकाश हो तो यहाँ कुछ दिन रहिये, परंतु मैं उस समय ठहर नहीं सका। भाईजी अपने घरके हो गये। न उनके मुखपर कोई ज्योतिर्मण्डल था, न आँखें हर समय बंद रहती थीं। वे तो हमें वैसे ही मिले, जैसे भाई भाईसे मिलता है। वे हमसे दूर नहीं थे, बहुत निकट थे, परंतु हमको इसका क्या पता था। गोरखपुरसे श्रीभाईजीके शील, स्वाभाव, प्रेम और सहानुभूतिकी स्मृति लेकर तीन-चार दिन बाद मैं घर लौट आया।

जब भगवत्प्राप्तिके लिये व्याकुलता बढ़ी तो कुछ अनुष्ठान किये, कुछ-कुछ सफलता मिली, हृदय-मस्तिष्क कुछ निर्मल हुआ, भक्ति और वेदान्तमें एक साथ ही प्रवृत्ति हुई। घरसे भागा तो नर्मदातटके लिये, परंतु झूसीमें ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजीने रोक लिया। उस समय वहाँ 'अखण्ड संकीर्तन महायज्ञ'का द्वितीय षाण्मासिक उत्सव प्रारम्भ हुआ ही था। कुछ ही दिनोंमें मैं वहाँ 'साधक' से 'कथावाचक' हो गया। लोगोंसे परिचय बढ़ा। गीताप्रेससे आये हुए साधक— गंगाबाबू, रामजीदासजी बाजोरिया एवं पुरुषोत्तम सिंहानियासे भाईजीके सम्बन्धमें कभी-कभी बातें होती। भाईजीकी ओर मेरा आकर्षण बढ़ने लगा। उन दिनों मैंने श्रीभाईजीको एक पत्र लिखा, जिसका उन्होंने बहुत सुन्दर उत्तर भी दिया।

अर्धकुम्भीके अवसरपर भाईजी झूसी आये, किन्तु वे दो-तीन दिन ही वहाँ रह पाये। मुझसे कोई विशेष बातचीत न हो पायी, क्योंकि उन्हें वहाँपर अवकाश बहुत कम था और मैं उस समय मौन था। इसलिये केवल ५-१० मिनटके लिये शिष्टाचारकी कुछ बातें हुईं और भाईजी वहाँसे वापस गोरखपुर चले गये। झूसीका अनुष्ठान समाप्त होनेपर अयोध्या, ऋषिकेश, दिल्ली एवं चित्रकूट होता हुआ आषाढ़ शुक्ला ११, सं. १९९३ (३०.६.१९३६) को मैं

गोरखपुर 'गोयन्दका गार्डन'में पहुँच गया। अब इसका नाम 'गीतावाटिका' है। मेरे साथ ग्वालियरके बाबा रामदासजी एवं प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी अपनी-अपनी मण्डलियोंके साथ थे। वहाँ एक वर्षका 'अखण्ड संकीर्तन महायज्ञ' प्रारम्भ होनेवाला था। यहींसे हमारी और श्रीभाईजीकी घनिष्ठता प्रारम्भ हुई।

मैं जब 'कल्याण'-परिवारमें एक सदस्य था, श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके दर्शन करने गंगातटपर कर्णवास आया। बाबा बोले– क्यों शान्तनु! वहाँ सब ठीक है?

मैंने कहा– हाँ महाराज! सेठजीकी निष्ठा बड़ी पक्की है। भाईजी बड़े भक्त हैं। हमसे बहुत प्रेम भी करते हैं।

बाबाने कहा– अच्छा शान्तनु! मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूँ।

एक थे महात्मा, सर्वथा विरक्त साधु! विचारशील और त्यागी। वे गाँव-गाँव, ठाँव-ठाँव कहते-फिरते– कहीं कब्र है, कब्र?

गृहस्थ उनका अभिप्राय समझ नहीं पाते थे। एक थे गृहस्थ ज्ञानी, असंग और निष्ठावान्। वे समझ गये और अपने घरकी ओर उँगली दिखाकर बोले– महाराज! कब्र तो यह है, कहीं मुर्दा भी है?

साधुने अपने शरीरको मुर्दा बताया और उनके घरमें घुस गये। उनके लिये एकान्त कमरेकी व्यवस्था हो गयी। वे किसीसे मिलते-जुलते नहीं थे। एकरस बारह वर्ष बीत गये। एक दिन गृहस्थके घर चोर घुसे। लाखोंकी सम्पत्ति समेटकर जाने लगे। साधुके मनमें आया– मैंने बारह वर्षतक इसकी रोटी खायी। मेरी आँखोंके सामने इसकी चोरी हो जाय, क्या यह उचित है? मेरा कुछ भी कर्तव्य नहीं?

वे चोरोंके पीछे लग गये और जगह-जगह कौपीनको फाड़कर कपड़े बाँध दिये। जिस कुएँमें चोरोंने सम्पत्ति डाली, उसे पहचान लिया। दूसरे दिन साधुके बतानेपर चोर पकड़े गये और सम्पत्ति मिल गयी।

स्वस्थ और शान्त होनेपर एक दिन गृहस्थने साधुसे प्रश्न किया– महाराज! मुर्दा सच्चा या कब्र?

वे बोले– कब्र सच्ची, मुर्दा झूठा।

फिर वे वहाँसे विरक्त होकर निकल पड़े।

बाबाके इस उपदेशको मैंने संन्यासकी प्रेरणा समझी। सचमुच, भाईजी और उनके परिवारसे घनिष्ठता बढ़ती जा रही थी। मैंने संन्यास अपनी आनुवंशिक घर-गृहस्थीसे नहीं, भाईजीके परिवारसे ही लिया।

[२] माताजीकी सन्तुष्टि

मैं कल्याण-परिवारसे श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजका दर्शन करनेके लिये बार-बार आया करता था। उड़िया बाबाका मुझपर बहुत अनुग्रह और स्नेह था और मैंने अनुभव किया कि वे मुझे एक उच्चकोटिके महात्माके रूपमें देखना चाहते हैं। मैंने अपने मनमें संन्यास लेनेका संकल्प कर लिया। तभीसे मन-ही-मन संन्यास लेनेकी तैयारी चलने लगी। मैं

ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य स्वामी श्रीब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराजके पास आया और संन्यास ग्रहण कर लिया। संन्यासकी पृष्ठभूमि पहलेसे तैयार थी और संन्यास ग्रहणके दिन ही रात्रिमें मुझे अपने पिता-पितामहका स्वप्नानुमोदन प्राप्त हुआ। मैं मध्यप्रदेशके कटनीके आस-पास एक नालेके निकट जाकर रहने लग गया। श्रीभाईजीको सूचना दे दी।

जब मेरी माताजीको ज्ञात हुआ कि मैं संन्यासी हो गया हूँ, तब वे भाईजीके पास गोरखपुर गयीं और दुःखी हुई। भाईजीने उन्हें बहुत सान्त्वना दी। भाईजीने समझाया– कोई साधारण व्यक्ति संन्यास ले लेता तो मैं उसको पुनः लौटाकर घरमें रख सकता था, परंतु वे विद्वान् हैं। 'कल्याण' में उनके कितने लेख प्रकाशित हुए हैं। सारा भारतवर्ष उन्हें जानता है। यदि मैं आग्रह करके उन्हें लौटानेका प्रयास करूँगा तो उनके यशस्वी जीवनमें बाधा पड़ेगी और लोग उनकी निन्दा करने लगेंगे।

माताजीने यह बात सुनकर तुरन्त कह दिया– नहीं-नहीं, ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिये, जिससे उसकी बदनामी हो। मैं भी घरबार छोड़ दूँगी। संन्यासिनी हो जाऊँगी, परंतु उसके जीवनमें ऐसा कुछ नहीं होना चाहिये, जिससे अपयश हो।

माताजी सन्तुष्ट होकर घर लौट आयीं। भाईजीने पुत्रीके विवाह और पुत्रके पढ़नेकी व्यवस्था पहले ही कर दी थी।

[३] लड़कीका विवाह

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मेरा परिवार परम्परासे ही कट्टर सनातन-धर्मी रहा है। जैसे ब्राह्मणकुमारका आठ वर्षकी अवस्थामें यज्ञोपवीत संस्कार होना चाहिये और गुरुकुलमें जाकर अध्ययन करना चाहिये, वैसे ही लड़कीका विवाह भी रजोधर्म होनेके पूर्व ही हो जाना चाहिये। लड़कीके लिए वही गुरुकुल है और वहाँका पारम्परिक आचार-विचार सीखना ही अध्ययन है। गृहस्थीका निर्वाह ही अग्निहोत्र एवं गुरु-सेवा है। मेरे मनमें भी वैसा ही संस्कार था। एक पुत्री थी कमला, उसका विवाह करना आवश्यक था। मालूम हुआ कि बलियाके पण्डित श्रीपरशुराम चतुर्वेदीके पुत्र हैं, योग्य, सुन्दर एवं सुशील हैं। भाईजीने एक चिट्ठी लिखी और मैं लेकर उनके पास गया। भाईजीने अपने सौजन्य एवं उदारतासे पत्रमें ऐसे शब्द लिखे थे, जो मेरी और कमलाकी अत्यन्त प्रशंसाके सूचक थे। जो गुण हममें नहीं थे, उनका भी उल्लेख भाईजीने किया था। फिर क्या था, चतुर्वेदीजी एवं श्यामसुन्दरजी उपाध्याय (सेक्रेटरी साहब) ने तुरन्त सम्बन्ध स्वीकार कर लिया और भाईजीने विवाहकी व्यवस्था कर दी। यह ध्यान देने योग्य है कि भाईजीके पास धन नहीं था। केवल गृहस्थाश्रमका निर्वाह ही होता था, परंतु उन्होंने अपने किसी मित्रसे कहकर विवाहमें होनेवाले व्ययकी व्यवस्था करवा दी। वैसे मैंने गीताप्रेस, कल्याणसे अपने लिये कभी कुछ धन नहीं लिया था। विवाहमें कल्याण-परिवारसे पण्डित भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' एवं पण्डित श्रीदेवधर शर्माको भाईजीने भेजा था।

[४] विनम्रता

श्रीश्रीआनन्दमयी माँके 'मातृशरणम्' आश्रममें, जो कि देहरादूनके पास किशनपुरमें है, एक बड़े उत्सवका आयोजन था। उसमें उस समयके बड़े-बड़े महात्मा आये हुए थे (श्रीहरिबाबाजी, श्रीरामदेवजी, श्रीकृष्णानन्दजी, श्रीचक्रपाणिजी आदि)। सत्संगमें

श्रीहरिबाबाजी महाराज माँके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त कर रहे थे। उन्होंने बताया कि स्वामी परमानन्दजीने माँके शील, स्वभाव, स्नेह एवं विलक्षण रहनीके बारेमें जो कुछ कहा है, उससे मेरे हृदयमें यह निश्चय हो गया है कि माँ एक जीवनमुक्त व्यक्तित्व हैं। उनके मुँहसे यह बात सुनकर श्रीअभय ब्रह्मचारी उठकर खड़े हो गये और बोले— बाबा! आप क्या कह रहे हैं? साक्षात् जगज्जननी जगदम्बा माँको आप एक जीवन्मुक्त व्यक्ति बता रहे हैं। यह तो माँके प्रति अनादरका भाव है।

श्रीहरिबाबाजीने भरी सभामें साष्टांग दण्डवत् करके क्षमा माँगी— भैया, मैंने तो सहज स्वभावसे अपने हृदयका भाव प्रकट कर दिया। इससे यदि माँका अनादर हुआ हो अथवा आप लोगोंको दुःख पहुँचा हो तो इसके लिये मैं क्षमा माँगता हूँ।

बाबाके इस विनयको देखकर सारी सभा चकित रह गयी थी।

इस प्रसंगका उल्लेख मैंने इसलिये किया है कि जिस महात्माके अनेक भक्त होते हैं, अपने श्रद्धास्पदके प्रति विविध भाव रखते हैं, उनके सम्बन्धमें कुछ कहना, लिखना बहुत कठिन होता है। वह बात किसीके अनुकूल पड़ेगी, किसीके प्रतिकूल। कोई जान-सुनकर प्रसन्न होगा, कोई अप्रसन्न।

भाई श्रीहनुमानप्रसादजीके सम्बन्धमें भी यही बात है। देश-विदेशमें उनके भक्त फैले हुए हैं। कोई उन्हें साक्षात् श्रीराधारानी मानता है, तो कोई भगवान श्रीकृष्ण, और कोई गोपीभावसे भरपूर। कोई 'आप्त-पुरुष' मानता है तो कोई भगवद्भक्त। अतः उनके सम्बन्धमें कुछ कहनेमें ऐसा लगता है कि किसीको कहीं दुःख न पहुँच जाय। मैंने सदा उनको अपने भाईके रूपमें ही देखा और उसी दृष्टि से मैं कुछ कह रहा हूँ।

मुझे न तो सन्-सम्वत्का स्मरण रहता है और न तो कालक्रमका। जैसे, जो, जब स्मृति-पथपर छलकता हुआ आ जाता है, लिख-लिखा देता हूँ।

एक बारकी बात है, रतनगढ़ (राजस्थान) की हवेलीमें हमलोग 'कल्याण'-परिवारके कई सदस्य बैठे हुए थे। छोटा-सा कमरा, मुख्य द्वारके दाहिनी ओर पड़ता था। एकाएक भाईजी आ गये। गोस्वामीजी, माधवजी, देवधरजी हम सभी उठकर खड़े हो गये। भाईजी बोले— मनुष्य ही तो आ रहा है, कोई भूकम्प तो नहीं आ रहा है। कोई कभी अपनेसे बड़ा आ जाय, तो उसको देखकर खड़ा होना चाहिये, परंतु घरके एक साथ रहनेवाले सदस्योंको इतना अधिक शिष्टाचार करनेकी आवश्यकता नहीं।

भूकम्पका नाम सुनकर हम सब लोग हँस पड़े थे और स्वयं भाईजी भी हँस पड़े थे। वे व्यवहारमें कभी भी अपना बड़प्पन नहीं दिखाते थे।

[५] व्यावहारिक निपुणता

एक दिन प्रातःकाल गीताप्रेसके महारथियोंकी मीटिंग जुड़ी। एक तो मैं लोगोंकी दृष्टिमें कोई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति नहीं था और दूसरे कपड़े-लत्ते भी स्वच्छ नहीं थे, इसलिये लोगोंने मेरी ओर ध्यान नहीं दिया। 'वेदान्त-अंक' निकालनेका निश्चय किया गया। प्रसंगवश किसीने यह चर्चा छेड़ दी कि एक सज्जनने कोई पुस्तक लिखकर रामायण और रामचरितपर बहुत-से आक्षेप किये हैं। उनका खण्डन 'कल्याण'में छपना चाहिये, विशेषकर श्रीबजरंगलाल चाँदगोठियाका ऐसा

आग्रह था।

भाईजीने कहा– वह पुस्तक तो केवल एक हजार छपी है। कल्याण, बहुत अधिक संख्यामें छपता है। यदि उसका खण्डन इसमें प्रकाशित होगा तो उसका बहुत बड़ा विज्ञापन हो जायेगा। ऐसी पुस्तकोंकी उपेक्षा कर देना ही अच्छा है।

मुझे भाईजीका यह विचार बहुत अच्छा लगा। भगवद्भक्तिके साथ-ही-साथ वे व्यवहारमें भी इतने निपुण हैं, इसकी मेरे मनपर एक अच्छी छाप पड़ी।

[६] सरलता

भाईजीकी सरलता भी अद्भुत थी। रतनगढ़में रहते समय वहाँके एक नागरिकके नाम पार्सल आया। कानूनके अनुसार उसपर ढाई रुपया नागरिकको देना चाहिये था, परंतु पोस्टमास्टर पाँच रुपया माँग रहा था। इसपर वे सज्जन भाईजीके पास आये। अपनी समस्या बतायी। बहुत दुःख प्रकट किया। भाईजी तुरंत उठकर उनके साथ पोस्ट आफिस चले गये और पोस्टमास्टरको समझा-बुझाकर ढाई रुपयेमें ही उनका पार्सल छुड़ा लिया। हम लोगोंको बहुत आश्चर्य हुआ कि भाईजी जैसे सत्पुरुषको ढाई रुपयेके लिये पोस्टआफिस ले जाना कितना हास्यास्पद है, परंतु भाईजीको अपने बड़प्पनका तो कोई अभिमान था नहीं। छोटे-से-छोटा काम कर देनेमें भी उन्हें कोई हिचक नहीं थी।

[७] भगवद्विस्मृति

एक दिन मुझसे भाईजीने कहा– पण्डितजी! भगवानकी स्मृति सदा नहीं रहती। वे बीच-बीचमें भूल जाते हैं।

मैंने कहा– भाईजी! यह विस्मृति भी तो वे ही देते हैं। उन्होंने गीतामें कहा है– *'मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।'*

'विस्मृति भी वे ही देते हैं'– भाईजीने दुहराया और उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा चलने लगी, शरीर रोमाञ्चित हो गया। वे भावविभोर हो उठे।

[८] सर्वरूपमें भगवद्दर्शन

वह दृश्य कभी-कभी मानस-पटलपर जीवन्त-सा दीखने लगता है, जब गीतावाटिकामें सम्वत्सरव्यापी अखण्ड-कीर्तनके दिनोंमें एक बार अग्निकाण्ड हो गया था। फूसकी अठारह-बीस कुटियाँ बनी हुई थीं। उनमें अनेक प्रान्तोंके साधक, मौनी और फलाहारी रहकर अपनी-अपनी साधना कर रहे थे। केवल भगवन्नामका ही उच्चारण करते थे, इसके अलावा और किसी शब्दका नहीं। भगवानकी सेवा-पूजा भी सब करते थे। रातके समय किसी कारणवश आग लग गयी। हा-हाकार मच गया। नोट-कपड़े-सामग्री आदि तो जली ही, ठाकुरजीकी सेवा, चित्रपट, पाठके ग्रन्थ भी भस्म हो गये। आग लगनेपर भाईजी अपने कमरेसे बाहर निकलकर आये और बोले– अग्निदेवके रूपमें स्वयं भगवान पधारे हैं। खूब-खूब घी लाओ, बूरा लाओ। भली भाँतिसे इस रूपमें भगवानका सत्कार करो।

वैसा ही किया गया। मैं भी गुफाके समान बनी हुई अपनी सेवाकुटीसे बाहर आ गया था और भाईजीकी यह भावभक्ति देखकर गद्गद हो रहा था। सचमुच, भाईजीने जीवनभर इसी

सिद्धान्तका प्रतिपादन किया कि सब कुछ भगवानकी लीला है। सब रूपमें भगवान ही हैं। उनके प्रवचन और क्रिया-कलापमें सर्वत्र भगवद्भावकी ही अभिव्यक्ति देखी जाती थी।

[९] निष्ठाका आदर

भगवत्कृपाके फलस्वरूप विद्यास्थानों अथवा धर्मस्थानोंके अध्ययनसे एवं महापुरुषोंके सत्संग तथा उपदेशसे मेरी निष्ठा औपनिषदिक अद्वैत-सिद्धान्तमें बन गयी थी। एकान्तमें रहनेकी रुचिसे चित्रकूटकी यात्रा कर रहा था। मार्गमें झूसी (प्रयाग) में ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी महाराजके दर्शनका अवसर प्राप्त हुआ। उनका त्याग, वैराग्य, मौन, एकान्तवास, स्पष्टभाषिता, दृढ़ता बहुत अच्छी लगी। मैं उनके स्नेह और आग्रहसे कई महीनोंतक वहाँ रह गया और उनके प्रोत्साहनसे सार्वजनिक रूपसे श्रीमद्भागवत की कथा करने लगा। उनके यहाँ बड़े-बड़े आचार्य, महात्मा, विद्वान्, समाजसेवी एवं राष्ट्रसेवी नेतागण आया करते थे। मेरे प्रवचनकी प्रशंसा होने लगी। मौन रहता, फलाहार करता, केवल प्रवचनके समय बोलता।

ब्रह्मचारीजी मुझे गोरखपुर ले आये। वहाँ भी प्रवचन आरम्भ हुआ। अद्वैतनिष्ठा होनेके कारण कभी-कभी मैं तीव्र वैराग्य, संन्यास और नेति-नेतिके द्वारा दृश्यमात्रके निषेधका प्रबल प्रतिपादन कर देता था। उसमें ऐसा लगता था जैसे मानो मैं 'उद्धार कम्पनियों' का विरोध करता हूँ। कई लोगोंको यह बात खली। परस्पर कानाफूसी हुई। भाईजीके पास जब यह चर्चा गयी तो उन्होंने सबको रोक दिया। वे बोले— इस प्रकारकी चर्चा नहीं करनी चाहिये। वे जो कहते हैं सो शास्त्रके अनुसार ही तो है। सबको अपनी-अपनी निष्ठामें दृढ़ रहना चाहिये। दूसरेकी निष्ठाकी आलोचना नहीं करनी चाहिये।

मैंने अपने मन्तव्यको स्पष्ट करनेके लिये 'सिद्धान्त एवं जीवन' नामका एक निबन्ध लिखा, जिसको भाईजीने कल्याणके 'वेदान्तांक परिशिष्ट' में प्रकाशित कर दिया।

[१०] औरोंको प्रोत्साहन

गीतावाटिका पहले गोयन्दकावाटिकाके नामसे जाना जाता था। वहाँ आयोजित भगवन्नाम-संकीर्तन यज्ञमें बड़े-बड़े महात्मा, विद्वान्, नेता आमन्त्रित किये जाते थे। महामना पं.श्रीमदनमोहन मालवीयजी पधारे। उनका पावन एवं उज्ज्वल व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था। उनके स्वागतमें पूरा 'कल्याण' परिवार संलग्न था। श्रीभाईजीका विचार इतना उदार था कि वे चाहते थे कि 'कल्याण' परिवारके सभी लोगोंके साथ श्रीमालवीयजीका निकट सम्पर्क हो जाय। उन्होंने मालवीयजीके सामने मेरे द्वारा श्रीमद्भागवतपर प्रवचन करवाया। मालवीयजी बहुत प्रसन्न हुए और मुझे अपने पास बुलाया। वे स्वयं श्रीमद्भागवतके प्रेमी एवं महान् विद्वान् थे। उन्होंने महात्मा गाँधीको सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतकी कथा सुनायी थी, जिसे सुनकर महात्माजीने कहा था कि भागवतके श्रवणसे मेरे हृदयमें अपूर्व-धर्मरसकी उत्पत्ति हुई है। मालवीयजीने मुझे वेद-स्तुति, ब्रह्म-स्तुति, गर्भ-स्तुति एवं अक्रूर-स्तुतिके विशेष अध्ययनकी प्रेरणा दी और काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें प्रवचन करनेके लिये आमन्त्रित किया। मैंने विश्वविद्यालयमें जाकर मालवीयजीको श्रीमद्भागवतकी कथा सुनायी। ऊखल-बन्धन लीला सुनकर मालवीयजीकी आँखोंसे झर-झर आँसू गिरते थे। अन्तमें उन्होंने कहा— मैं तो निहाल हो गया।

भाईजीका स्वभाव औरोंको उत्साहित करने और आगे बढानेमें बहुत रस लेनेवाला था।

गोस्वामी श्रीदामोदरलालजी महाराज काशीके धुरन्धर विद्वानोंमेंसे एक थे। 'संकीर्तन-महायज्ञ'में उनका भी शुभागमन हुआ। भाईजीने उनके सामने भी भागवतपर मेरा प्रवचन करवाया। मैंने विशेषरूपसे उन्हींके सम्प्रदायके श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीरूप गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी एवं श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीकी टीकाओंके आधारपर प्रवचन किया। भाईजीने मेरी अच्छी प्रशंसा की। गोस्वामीजीने मुझे अपने पास बुलाया। व्याकरण, साहित्य, न्याय, मीमांसा एवं वेदान्तके अनेक गूढ रहस्योंपर प्रकाश डाला, परंतु मेरी निष्ठा अद्वैत वेदान्तमें पक्की थी। मैंने गोस्वामीजीसे एक प्रश्न किया— भगवान श्रीकृष्णके नेत्रकी चिन्मयता और पदनखकी चिन्मयतामें कोई अन्तर है कि नहीं ?

वे बहुत हँसे और बोले— जो तुम मानते हो, वही मैं मानता हूँ। *'यस्येन्द्रियाणि निखिलेन्द्रियवृत्तिमन्ति सर्वत्र च स्वगतभेदनिवर्जितात्मा।'* ये बृहद्ब्रह्म-संहिताके वचन हैं, जो श्रीचैतन्य महाप्रभुको बहुत प्रिय थे। श्रीकृष्णका श्रीविग्रह जड़ नहीं है, चिन्मय है। उनमें देह-देहीका विभाग नहीं है। सभी इन्द्रियोंमें सभी इन्द्रियोंकी शक्तियाँ हैं। उनमें स्वगत-भेद नहीं है। द्वैत दीखनेपर भी वस्तुतः अद्वैत ही है।

भाईजीकी प्रशंसाने उनके साथ मेरे अच्छे सम्बन्ध बना दिये।

[११] दोष-दृष्टिसे बचो और बचाओ

भाईजीके पास आकर जब कोई किसीकी निन्दा-शिकायत करता था, तब वे निन्दा करनेवालेको ही समझाते थे— कहीं तुम्हारे देखने-समझनेमें गलती हो सकती है। दोषी व्यक्तिके जीवनमें भी कोई विवशता हो सकती है। सबके हृदयमें भगवान बैठे हैं। तुम्हें किसीकी निन्दा नहीं करनी चाहिये।

उससे यह भी कहते— यह बात और किसीसे मत कहना।

भाईजी इसके साथ-साथ उस व्यक्तिको भी अपने पास एकान्तमें बुलाते और कहते— भाई, मुझे भलीभाँति ज्ञात है कि तुम्हारे अन्दर ऐसा कोई दोष नहीं है, परंतु तुम्हें सावधान रहना चाहिये कि तुम्हारे द्वारा कोई ऐसा दिखावेका काम भी न हो, जिससे दूसरोंके हृदयमें दोष-दृष्टि बने। अपनेको दोषसे बचा लेना ही काफी नहीं है। दूसरा भी दोष-दृष्टिसे बचा रहे, हमारे कारण उसका मन कलुषित न हो, इसका ध्यान रखना चाहिये।

भाईजी प्रायः परस्पर विरोधी पक्षोंमें संगति बैठा देते थे और दोनोंसे सद्व्यवहार करते थे तथा दोनोंके प्रिय रहते थे। इस विषयमें सौभाग्यवती सावित्रीकी माँ पूर्णरूपसे भाईजीका अनुकरण करती थी और किसीकी निन्दा पसन्द नहीं करती थी। एक बार किसी सज्जनने निन्दा आरम्भ की तो वे बोलीं— भाई ! अपनी धोतीके नीचे सभी नंगे हैं। किसीको कुछ कहने योग्य नहीं है। दोष-गुण सबमें होते ही हैं। अपनी दृष्टि पवित्र होनी चाहिये।

[१२] नेहरूजी भी प्रभावित

संभवतः सन् १९३६ की बात है। उन दिनों पं. श्रीजवाहरलाल नेहरूका तेज-प्रताप बढ़ रहा था। राष्ट्रकी स्वतन्त्रताके लिये उनके त्याग, बलिदान, कष्ट-सहनकी प्रशंसा हो रही थी।

साईमन कमीशनके विरोधके प्रसंगमें, उनको और पण्डित श्रीगोविन्दवल्लभ पन्तको ब्रिटिश सरकारकी ओरसे जो पीड़ा पहुँचायी गयी थी और मार-पीट की गयी थी, वह लोगोंके हृदयपर घाव कर गयी थी। लोगोंकी उनमें बहुत रुचि थी। नेहरूजी 'संकीर्तन-महायज्ञ'में आमन्त्रित किये गये। वे यज्ञमें आये। उन्होंने यज्ञमण्डपमें भगवानको नमस्कार भी किया। उन्होंने पूछा– क्या दिन-रात यह अखण्ड संकीर्तन होता रहता है? ढोलक और झाँझ बजते रहते हैं?

उन्हें उस समयतक इन बातोंसे इतना परिचय नहीं था। भाईजीने उनके सामने भारतीय भक्ति-भाव एवं संकीर्तनकी महिमापर प्रवचन किया। नेहरूजीने आश्चर्यचकित होकर श्रवण किया।

[१३] पड़ी हुई दवाएँ

भाईजीको जब ज्वर या जुकाम होता था तो कई वैद्य और डाक्टर उन्हें देखनेके लिये स्वयं आ जाया करते थे। भाईजी सबकी बड़े प्रेमसे सुनते और उनकी दी हुई औषधि भी ले लिया करते थे। एक दिन मैंने देखा कि उनके तकियेके नीचे बहुत-सी दवाइयाँ पड़ी हुई हैं। मैंने पूछा– यह सब क्या है, भाईजी?

भाईजीने कहा– ये दवाएँ हैं। लोग आते हैं, दे जाते हैं। उनका आदर करनेके लिये ले लेता हूँ। वही ये सब पड़ी हैं।

मुझे स्मरण है कि भाईजी 'लक्ष्मी-विलास' और संजीवनी नामकी आयुर्वैदिक औषधि समय-समयपर लेते थे और आवश्यकता पड़नेपर मुझे भी दिया करते थे। उनकी मीठी-मीठी बातें कई बार रोगको भगा देती थी।

[१४] श्रीशुकदेव बाबू

ये गीताप्रेसके कोषाध्यक्ष थे। भाईजीने इनको मेरे बारेमें ऐसा संकेत कर रखा था कि जब पण्डितजी कहीं जाने लगें तो इनके मार्ग-व्यय आदिकी व्यवस्था तुम कर दिया करना। वे सर्वदा ही ऐसा करते थे। जानेके समय पर्याप्त रुपये दे देते। मैं गिनता नहीं था। लौटनेपर जो बचा होता, वह उनको सौंप देता था। उन दिनों जेब कट जानेका उतना डर नहीं था, जितना आजकल है। इस प्रसंगमें मुझे स्मरण है कि जब कभी भगवच्चर्चा होती तो शुकदेव बाबू भक्ति-भावके उद्रेकसे व्याकुल हो जाते थे– आँखोंमें आँसू, शरीरमें रोमाञ्च, अत्यन्त भावविह्वल। मुझे उनका यह भक्ति-भाव बहुत प्रिय था और मैं उनका बहुत आदर करता था।

जब गीताप्रेसकी स्पेशल तीर्थयात्रा ट्रेन निकली, तब उसमें शुकदेव बाबू तो खजांचीके रूपमें गये ही, श्रीसेठजी मुझे भी ले गये थे। शुकदेव बाबू भाईजीके अनन्य भक्त थे और इसी कारण सम्भवतः मुझसे भी उनका बहुत स्नेह था। यात्राके आरम्भमें ही उन्होंने मुझे सौ रुपये दे दिये, परंतु कुछ ऐसी घटना घटी कि इलाहाबाद पहुँचनेपर मेरे एक सम्बन्धीने अपनी अनिवार्य आवश्यकता बताकर मुझसे अट्ठानबे (९८) रुपये ले लिये। यह बात मैंने शुकदेव बाबूको नहीं बतायी। किसी स्टेशनपर ट्रेन रुकती, मैं बाहर नहीं जाता। ट्रेनपर ही स्नान-सन्ध्या करके भजन करता। शुकदेव बाबूने यह बात ताड़ ली। किसी स्टेशनपर गाड़ी खड़ी होती तो वहाँकी आवश्यकताके अनुसार वे दस-पाँच रुपये मुझे दे दिया करते। तब मैं अपने पूर्व नियमानुसार जो बचता, उसे वापिस कर देता। वे बहुत हँसते थे और बारम्बार भाईजीकी चर्चा करके प्रसन्न हुआ

करते थे। भाईजीके अनुयायियोंमें उनका व्यक्तित्व एक अलौकिक भक्तिभावसे परिपूर्ण था।

[१५] श्रीजयदयाल कसेरा

भाईजीके प्रगाढ़ मित्रोंमें एक श्रीजयदयाल कसेरा भी थे। वेदान्तको वे अच्छा समझते थे। भाईजीपर उनकी ऐसी श्रद्धा थी कि भाईजी एक उच्च कोटिके सत्पुरुष हैं, उदार हैं, सज्जन हैं। वे भाईजीसे कई प्रकारसे हँसी-विनोद भी किया करते थे और भाईजी भी उनके साथ खुलकर मिलते, व्यवहार करते। वे कह दिया करते थे— भाईजी! आपको भगवानका दर्शन हो गया है, आप यह काम क्यों करते हैं, वह काम क्यों करते हैं।

जब गोरखपुर-बस्ती जिलोंमें बहुत बड़ी बाढ़ आयी थी, कोसोंतक पानी-ही-पानी दिखलायी देता था, तब बाढ़-पीड़ितोंकी सहायता करनेके लिये नावसे हम लोग गाँवमें गये थे। भाईजी, जयदयाल कसेरा, घनश्यामदास जालान, मैं और साथमें कई और भी लोग थे। एक जगह दस-पन्द्रह गज लम्बा पुल टूट गया था। नाला वेगसे बह रहा था। नाव वहाँसे पार नहीं हो सकती थी। गाँववालोंने उस पुलकी जगहपर 'ताड़'का एक लम्बा वृक्ष पुलकी तरह लगा दिया था। तीव्र धारा देखकर सब लोग डरने लगे। जयदयाल कसेराने *'जयराम हरे सुखधाम हरे'* का उच्चारण किया और दोनों हाथ उठाकर ताड़के वृक्षके पुलसे पार हो गये, उनके पीछे भाईजी, भाईजीके पीछे मैं पार हो गया, परंतु घनश्यामदास जालान बहुत लम्बा रास्ता पार करके तब उस पार पहुँचे। भाईजीके सत्संगसे कसेराजीमें इतनी निर्भयता आ गयी थी।

जब गीताप्रेसकी पहली तीर्थयात्रा स्पेशल ट्रेन तीन महीनेके लिये तीर्थ-परिभ्रमणके लिये निकली थी, तब उन्होंने भाईजीसे सलाह लेकर ही तीर्थयात्रा आरम्भ की थी।

[१६] श्रीज्वालाप्रसाद कानोड़िया

कानोड़ियाजी मारवाड़ी-समाजके प्रतिष्ठित पुरुषोंमेंसे एक थे, गीताप्रेसके ट्रस्टी एवं भाईजीके पुराने मित्र। प्रायः भाईजी कलकत्तामें उनके यहाँ ठहरा करते थे। एक या दो बार मैं भी भाईजीके साथ उन्हींके यहाँ ठहरा, पूरा स्मरण नहीं है। कानोड़ियाजीको खिलाने-पिलानेका बहुत शौक था। तरह-तरहके व्यंजन बनवाते और अतिथियोंको खिलानेका खूब आनन्द लेते।

उन दिनों कलकत्तामें हिन्दू-मुसलमानोंका दंगा चल रहा था। वहाँके नेता लोग मोहल्लेमें जा- जाकर लोगोंको शान्ति रखनेके लिये समझाया-बुझाया करते थे। भाईजी एवं ज्वालाप्रसाद कानोड़ियाके साथ में भी इसी कामके लिये शहरमें गया था। मैं समझाता तो क्या, भाईजी स्नेहकी अधिकताके कारण ही मुझे साथ ले गये थे। मुझे मोटर-गाड़ीमें नींद आ गयी। मैंने एक स्वप्न देखा। वह स्वप्न इस प्रकार था—

ज्वालाप्रसाद कानोड़ियाने मुझे अपने घरमें आग्रह करके बहुत भोजन करवाया। मेरा पेट फट गया और मैं मर गया। मेरी अर्थी सजायी गयी और हावड़ा पुलके नीचे गंगाजीके तटपर चितामें मेरा शरीर जलाया गया। धू-धू करके चिता जल रही थी और सेठजी जयादयालजी गोयन्दका, भाईजी, जयदयाल कसेरा, ज्वालाप्रसाद कानोड़िया, बद्रीदास, रामचन्द्र गोयन्दका आदि मेरे सम्बधमें चर्चा कर रहे थे। मरनेपर लोग प्रशंसा तो करते ही हैं। मैंने अपनी प्रशंसा खूब सुनी। एकाएक ध्यान आया कि मैं तो मर चुका हूँ, शरीर चितापर जल रहा है। मैं देख रहा

हूँ और सुन रहा हूँ, फिर यह मरा कौन ? इसी बीचमें भाईजीने कन्धा हिलाकर जगा दिया और मोटर हावड़ा पुलपरसे गुजर रही थी। मैंने अपना स्वप्न बताया। भाईजीने बताया कि आपकी आयु बहुत लम्बी है, जिसको ऐसा स्वप्न आता है, उसकी आयु बहुत लम्बी होती है। सचमुच, भाईजीकी भविष्यवाणी सच हुई।

[१७] श्रीदेवचन्द वर्मा

जब मैं गोरखपुर, कल्याण-परिवारमें रह रहा था, तब इन्दौरसे श्रीदेवचन्द वर्मा पधारे। वे थे युवावस्थावाले, दुबले-पतले, मृदुभाषी। वे दक्षिणसे उत्तरतक भारतवर्षकी बड़ी लम्बी यात्रा करके वहाँ आये थे। उन्होंने अपनी इतनी यात्राका एक विलक्षण उद्देश्य बताया।

उनका कहना था, वे पाँच-सात मित्र मिलकर प्रतिदिन रात्रिके समय भगवन्नाम-संकीर्तन किया करते थे। एक दिन आश्चर्यजनक घटना घटित हुई। बारह बजे रात्रिके समय एक विमान आया। उसके द्वारपर एक हृष्ट-पुष्ट देव-पुरुष खड़े थे। उन्होंने मुझसे कहा कि तुम हाथ-पाँव धोकर विमानमें आ जाओ। मैंने वैसा ही किया। विमानमें नब्बे (९०) आसन लगे थे, जिसमें दो मुख्य थे। बुलानेवाले पुरुषने कहा की देखते रहो।

एक-एककर उस विमानमें विलक्षण सन्त आने लगे, सभी सम्प्रदायोंके और सभी जातियोंके। योगी अरविन्द, रमण महर्षि, उड़िया बाबा, हरि बाबा, अच्युत मुनि, जयदयाल गोयन्दका आदि। गणनामें नब्बे सन्त आये और आये ऐसे जो लोक-व्यवहारमें परस्पर विरोधी एवं एक दूसरेका खण्डन-मण्डन करनेवाले। अन्ततोगत्वा परमहंस श्रीरामकृष्ण भी आये। पुराने ऋषि-महर्षि भी पधारे। देवचन्द वर्माने बताया– मुझे जब परिचय कराया गया तो मैं आश्चर्यचकित रह गया। संतोंमें कुछ बहुत प्राचीन, कुछ नवीन एवं जीवित पुरुष भी थे। वे सब बड़े प्रेमसे परस्पर विचार-विमर्श करने लगे। मैंने परिचय करानेवाले पुरुषसे पूछा कि ये लोग व्यवहारमें तो परस्पर कहीं मेल-मिलाप करते हुए नहीं दीखते। यह सब एकत्र कैसे हुए हैं ?

परिचय करानेवाले पुरुषने बताया– मतभेद तो बाहरी है। परमार्थमें किसीका किसीसे कोई मतभेद नहीं है। विविध प्रकारके अधिकारियोंको भिन्न-भिन्न युक्तियोंके द्वारा एक ही परमात्माकी ओर ले जाना सबका उद्देश्य है। कोई पाश्चात्य संस्कारसे संस्कृत लोगोंको, कोई किसानोंको, कोई मूर्खोंको, कोई पण्डितोंको भगवानकी ओर ले जानेका निश्चय करके कार्य कर रहे हैं। सब एक ही तराजूके चट्टे-बट्टे हैं। भीतरसे मेल है, बाहरसे मतभेदका खेल है। इस प्रकार सभी संत अधिकारियोंके भेदसे विलक्षण मार्गका निर्देश करते हैं और अन्तर्देशमें प्रवेश कराते हैं।

देवचन्द वर्माने बताया– उस दिनतक मैंने किसी भी संतका दर्शन नहीं किया था। आश्चर्यके साथ मैं योगी अरविन्द, रमण महर्षि, उड़िया बाबा, हरि बाबाका दर्शन करके यहाँ आया हूँ। यहाँ भी वही सेठजी श्रीजयदयाल गोयन्दका हैं, वही भाईजी हैं। विमानमें सब अपूर्व दर्शन हुए थे और वे ही अब बाहर देखनेको मिल रहे हैं।

देवचन्द वर्माने आगे कहा– मुझसे एक गलती हो गयी। मुझसे कहा गया था कि बात किसीको बताना नहीं, परंतु विमानसे उतरते ही मैंने अपने मित्रोंको खुशी-खुशीके जोशमें यह बात कह दी। फलतः मुझे फिर ऐसा दर्शन नहीं हुआ।

देवचन्द वर्मा बहुत वर्षोंतक कल्याण-परिवारमें रहे। मैं बोलता था, वे लिखा करते थे। भाईजीके दिव्य-रूपके सम्बधमें उनकी अत्यन्त दृढ़ मान्यता थी और अनन्य भक्ति थी। मेरे प्रति भी बहुत प्रीति थी। कुछ ही वर्ष पहले उनका गोलोकवास हुआ है।

[१८] उदार-दृष्टि

एक थे केडियाजी, हिन्दी-साहित्यके अच्छे विद्वान्। पहले उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी रही होगी, परंतु उन दिनों वे बहुत कष्टमें थे। भाईजीने उनकी सहायता करनी चाही, तो वे बोले– मैं वैश्य होकर दान ग्रहण नहीं कर सकता। हाँ, मुझसे कोई काम लिया जाय तो मैं वेतन ले सकता हूँ।

भाईजीने उनको काम दे दिया। क्या काम दिया? भाईजीने कहा– श्रीविष्णुसहस्रनाम, गोपालसहस्रनाम आदि जो भगवन्नाम हैं, उनके अतिरिक्त व्रजभाषा या अन्य देशी भाषाओंमें जो भगवन्नाम प्रचलित हैं, उनका आप संग्रह करें और भगवानके नये-नये नामोंका भी संग्रह करें।

बस, उनको काम मिल गया। जीवनभर यही करते रहे। लाखों नामोंका उन्होंने संग्रह किया और भाईजीके पास भेजते। भाईजी बहुत प्रसन्न होते और कहते– और कीजिये। और कीजिये।

मुझे पता नहीं, इन नामोंके संग्रहका क्या हुआ? वह गीतावाटिकामें है या गीता प्रेसमें और वह प्रकाशित होगा या नहीं, परंतु केडियाजीका जीवन बड़े सुखसे और भक्ति-भावनासे व्यतीत हो गया।

भाईजीके मुखसे ही सुना था कि राजस्थानके किसी गाँवमें एक अपरिग्रही और अकिञ्चन विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। वे कभी किसीसे कुछ याचना नहीं करते थे। जो कुछ स्वाभाविक आ जाय, उसीसे अपना निर्वाह कर लेते थे। घरमें कभी आटा नहीं तो कभी दाल-नमक नहीं। उसी गाँवमें एक सेठ रहते थे। वे पण्डितजीको कुछ देनेका प्रयास करते, किन्तु वे न लेते। तब सेठजीने एक युक्ति की। घरमें दही जमवाते। उसमें दो-चार गिन्नी डाल देते। सेठानी चुपचाप पण्डितजीके घर ले जाकर उनकी पत्नीको दे आती। किसीको पता भी नहीं चलता। पण्डितजीका जीवन-निर्वाह हो जाता। जिसका हृदय उदार होता है और किसीकी सहायता करना चाहता है, उसको नयी-नयी युक्ति सूझ जाती है। उदारता, नवीन एवं प्रशस्त पथ ढूँढ निकालती है।

उत्तर प्रदेशके एक बड़े नेता थे। स्वराज्य मिलनेके पश्चात् तो वे उच्च पदपर प्रतिष्ठित हुए। सत्याग्रहके समय वे तो आन्दोलनमें लगे हुए थे, परंतु परिवारके लोग कभी-कभी भूखे रह जाते थे। एक बार उन्होंने भाईजीको तार दिया कि घरके बालबच्चे तीन दिनसे भूखे हैं। मैं जेलमें हूँ, कुछ कर नहीं सकता। भाईजीने उसी दिन उनके घर आदमी भेजा और स्वराज्य-प्राप्ति पर्यन्त उनके परिवारके भरण-पोषणकी व्यवस्था कर दी।

एक वयोवृद्ध विद्वान् थे। अनेक पत्रोंका सम्पादन किया था। कई ग्रन्थ लिखे थे, परंतु वृद्धावस्था होनेसे उनके पास खान-पान-परिधानका कोई सामान शेष नहीं रह गया था। पाँच लड़कियाँ विधवा उन्हींके घरमें रहती थीं। दो लड़कोंमेंसे एक छोटा था और एक आवारा हो गया था। भाईजीने घर बैठे ही दो सौ रुपये महीनेका प्रबन्ध करवा दिया। उन वयोवृद्ध पण्डितजीको

बड़ा संकोच हुआ कि मैं यह परिग्रह कैसे लूँ। भाईजीने उनका संकोच छुड़वानेके लिये ऐसी युक्तिकी कि कल्याणमें प्रकाशित होनेके लिये आये हुए लेख सम्पादनके लिये उनके घर भेज दिया करते थे। बादमें तो भाईजीसे इतने प्रभावित हुए कि वे जाकर गोरखपुरमें ही रहने लगे और 'कल्याण'के सम्पादन-विभागमें काम करने लगे।

[१९] कान पकड़ना

मेरे बायें कानसे पीप निकला करती थी। श्रीबिपिनचन्द्र मिश्र, जो बादमें दिल्ली हाईकोर्टके जस्टिस हुए, यथाशक्ति मेरी चिकित्सा करवाते रहे। इरविन हॉस्पिटलके डॉ. हंसराजने भी बहुत प्रयास किया, परंतु कोई सुधार नहीं हुआ। भाईजीने अपना आदमी भेजकर मुझे गोरखपुर बुलाया। जहाँ मैं उनकी जाँघपर अपना सिर रख देता, वे अपने हाथसे कानमें दवा डालते। उस समय वे हँसते-हँसते हुए कहते— देखिये, मैं आपका कान पकड़ रहा हूँ।

[२०] भागवत सप्ताह कथा

मैं कई महीने तक गोरखपुरमें रहा। श्रीमद्भागवतका जो अनुवाद 'कल्याण' पत्रिकाके विशेषांकके रूपमें पहले प्रकाशित हो चुका था, उसमें कुछ हेर-फेर करके मूल श्लोकोंके साथ बैठाया गया। बादमें जेलके पीछे श्रीपरमेश्वरलालने जो भूमिखण्ड लिया था, जिसे आजकल श्रीकृष्ण निकेतन कहते हैं, उसमें बड़े धूम-धामसे श्रीमद्भागवत सप्ताह हुआ और श्रीभाईजी अपनी पत्नीके साथ गाँठ जोड़कर 'सप्ताह' श्रवण करनेके लिये बैठे। भाईजीके कलकत्ता, बम्बई आदिके भक्त आये थे। जब मैंने प्रथम दिन माहात्म्यका श्रवण कराया, तो भाईजी सभामें उठकर खड़े हो गये और बोले— इन्होंने मूलमें-से एक अक्षर भी नहीं छोड़ा है।

किसी-किसी दिन दस-दस घंटे बोला। शामतक आँखमें सूजन आ जाती, सुबहतक ठीक हो जाती। कथाके अन्तिम दिन एक सज्जन बीचमें ही उठकर खड़े हो गये और कहने लगे— श्रीमद्भागवतमें आपने यह सुनाया कि धर्मके संरक्षण और संवर्धनके लिये ही श्रीकृष्णने अवतार लिया था, परंतु हुआ क्या? उनके वंशके लोग ही धर्म-विरोधी हो गये, परस्पर मारे गये। जिस दिन, जिस क्षण श्रीकृष्णके चरणारविन्द धरा-धामसे उठे, उसी क्षण सारे भारतवर्षमें कलियुगका बोल-बाला हो गया, यह कौन-सी धर्मस्थापना थी?

मैंने उत्तर दिया— उनका यह चरित्र ही धर्म-संस्थापना है, जो आजतक धर्मके संरक्षण, संवर्धन, प्रतिष्ठापनमें संलग्न है। यह श्रीमद्भागवत चरित्र-रूप ही धर्म-संस्थापना है।

भाईजीने उठकर उन सज्जनसे कहा— प्रश्नोत्तर करना हो तो कथामें नहीं, घरपर आकर कीजिये।

कथा निर्विघ्न समाप्त हो गयी।

[२१] ठगके प्रति

एक दिन भाईजीके पास एक व्यक्ति आया। भाईजीसे बोला— मेरी बीमार पत्नी अस्पतालमें है, सहायता दीजिये।

उन्होंने सहायता दी। कुछ दिन बाद आकर बोला— अस्पतालमें उसे बच्चा हुआ है, सहायता दीजिये।

तब भी दी। कुछ दिन बाद फिर आकर कहने लगा— हालत खराब है, कुछ और दीजिये।

तब भी दी। पाँच-दस दिन बाद पुनः आया और बोला— मर गयी, अन्त्येष्टि कैसे करें?

फिर भी दी।

फिर कहा— घर जानेके लिये किराया चाहिये।

फिर भी दी। किसीने पूछा— भाईजी, यह कैसा आदमी है? कोई ठग लगता है।

भाईजीने कहा— मुझे पहले दिनसे मालूम है। न पत्नी बीमार, न बच्चा हुआ, न अस्पताल, न मृत्यु, किन्तु जब यह मेरे सम्मुख आकर बैठता है, तब लगता है कि इसने पूर्वजन्ममें मुझे कोई ऋण दे रखा था। इसका मैं ऋणी हूँ और वही चुका रहा हूँ।

भाईजीके मनमें यह भाव ही नहीं था कि मैं इसपर उपकार कर रहा हूँ। ठगके प्रति दुर्भावकी तो बात ही क्या?

[२२] लार्ड विष्णु

भाईजी इतने सहृदय थे कि अयोग्य-से-अयोग्य व्यक्तिसे भी सद्व्यवहार करके कुछ-न-कुछ उससे लोककल्याणकारी कार्य करवा लेते थे।

एक थे पण्डित विष्णुदत्त। गोरखपुर, देवरिया जिलेके किसी गाँवमें उनका जन्म हुआ था और अनेक भाषाके अच्छे विद्वान् होकर वे अरविन्द आश्रम पाण्डीचेरीमें रहने लगे थे। कुछ समयके बाद उनका मन वहाँसे उचट गया और भाईजीके पास आ गये। उनका ऐसा विचित्र आचरण था कि लक्ष्मीनारायणके चित्रपर लक्ष्मीजीका स्वरूप कागजसे ढक दिया था। यह क्यों किया, ऐसा पूछनेपर वे बतलाया करते थे— स्त्रीकी ओर नहीं देखना चाहिये, ऐसा सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका मत है। इसीलिये मैं स्त्रीको नहीं देखता।

वेषभूषा भी विचित्र ही थी। वे पहले तो अपने नामके साथ 'लार्ड' लगाते थे— लार्ड विष्णु। किन्तु जब हिटलरका युग आया तो उन्होंने 'हर हिटलर' के जैसे 'हर विष्णु' लिखना शुरू कर दिया। हमलोग तो उन्हें आधा पागल ही समझते थे, परंतु भाईजी उन्हें अपने पास बैठाकर बातचीत करते और भिन्न-भिन्न भाषाओंसे अनुवाद करवाकर 'कल्याण'के सम्पादनमें उपयोग करते थे। ऐसे व्यक्तिसे काम ले लेना भाईजीके महान् कार्य-कौशलका ही उदाहरण था।

[२३] मैं करोड़ोंमें एक

कराचीके एक सज्जन बार-बार पत्र लिखा करते थे और पूछते थे कि आप सच-सच बतलाइये कि आप कौन है? कोई गोपी हैं, कि स्वयं राधा रानी हैं, कि और कोई महान् भक्त हैं।

भाईजी अपने स्वभावानुसार बड़े विनयसे लिखते कि मैं एक साधारण मनुष्य हूँ। जैसे सब मनुष्योंमें गुण-दोष होते हैं, वैसे मुझमें भी हैं।

पूछनेवालेका आग्रह बढ़ता ही गया। अन्तमें भाईजीने लिखा कि मैं करोड़ोंमें एक हूँ। मेरे जैसा दूसरा कोई नहीं है और न दूसरोंके जैसा मैं हूँ। अब आपको जो समझना हो समझ लीजिये।

[२४] अपकारके बदलेमें भी उपकार

'कल्याण'के सम्पादक विभागमें एक उच्च कोटिके विद्वान् एवं यशस्वी पुरुष काम करते थे। उनकी प्रकृति कहें या स्वभाव कहें, वे चुपके-चुपके सरकारी अधिकारियोंको गीताप्रेस एवं 'कल्याण'में यत्किंचित् होनेवाली त्रुटियोंकी सूचना दे दिया करते थे। जिस समय श्रीगोविन्दवल्लभजी पन्त उत्तर प्रदेशके मुख्य मंत्री थे, उस समय उन सज्जनने ऐसे अनेक पत्र लिखे, जिनसे यह प्रकट होता था कि भाईजीकी संस्था राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय हितके विरुद्ध काम करती है। पन्तजीसे भाईजीकी मित्रता थी और गोरखपुरका कलक्टर भाईजीके विरुद्ध था। दिनोंदिन गिरफ्तारीकी सम्भावना बढ़ती जा रही थी। पन्तजीने भाईजीसे कहा— आप कहें तो उन सज्जन और कलक्टर, दोनोंके विरुद्ध कुछ कार्यवाही की जाय।

भाईजीने कहा— नहीं, नहीं। उनके साथ ऐसा कुछ नहीं करना चाहिये।

उनके लिखे कई पत्र भाईजीके पास पहुँचा दिये गये। भाईजीने सब कुछ समझ लिया और प्रयास करके उन्हें एक सरकारी संस्थाके उच्च पदपर नियुक्त करवा दिया।

[२५] इमानदारीका आदर

उत्तर प्रदेशके एक ब्राह्मण बम्बईमें भाईजीके एक मित्रके यहाँ 'भैया' का काम करते थे। एक दिन उनसे दस हजार रुपया खो गया। सेठने कहा— यह रुपया हम तुम्हारे वेतनसे काट लेंगे।

डेढ़ सौ रुपये प्रति माहके लगभग उसका वेतन होगा। वह सेठ आधा रुपया काट लेता और आधा रुपया उनके निर्वाहके लिये दे देता। भाईजीको जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने सेठसे पूछा— वह भैया विश्वासपात्र है या नहीं?

सेठने बताया— उसने वर्षोंसे मेरी गद्दीपर काम किया है, परंतु कभी कोई बेईमानी तो नहीं की। कभी-कभी उसके द्वारा पाँच-पाँच लाख रुपया एक गद्दीसे दूसरी गद्दीपर भेजते थे। कभी कोई गड़बड़ नहीं की।

भाईजीने कहा— यदि वह बेईमान नहीं है तो उसका आधा वेतन काटना अन्याय है। यदि वह बेईमान है तो उसको गद्दीपर काम करनेके लिये रखना सर्वथा अनुचित है। दो टूक निर्णय करो।

सेठने कहा— वह भैया ईमानदार है। उसने चोरी नहीं की होगी।

भैयाजी बुलाये गये। सेठने कहा अब आजसे तुम्हारे वेतनसे कटौती नहीं होगी और जो काट लिया है, वह भी तुम्हें लौटा देते हैं। तुमपर मेरा पूरा विश्वास है।

उस ब्राह्मण भैयाने वहीं भाईजीके सामने ही भगवानको साष्टांग दण्डवत किया और कहा— प्रभुकी बड़ी कृपा है। मैं तो केवल आपका ऋण चुकानेके लिये ही आपका काम करता था। अब मैं साधु हो जाऊँगा।

वही भैया गंगातटपर आकर संन्यासी हुए और बम्बईवाले कृष्णानन्दजीके नामसे प्रसिद्ध हुए। हम लोगोंका वर्षोंतक परस्पर प्रेमपूर्वक सम्बन्ध रहा। नब्बे वर्षकी आयुमें उन्होंने शरीर त्याग किया। वे भाईजीके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ और श्रद्धालु थे। भाईजीको भगवानके समान ही मानते थे।

[२६] सहृदयता

गीताप्रेसके कर्मचारियोंमें भिन्न-भिन्न विचारके लोग रहा करते थे। कोई आस्तिक, कोई नास्तिक, कोई कांग्रेसी, कोई कम्युनिस्ट। कोई-कोई कर्मचारी प्रेसके विरुद्ध प्रचार और संगठनका प्रयास भी करते। उनमें एक थे पं. श्री गौरीशंकर द्विवेदी। वे अनेक भाषाओंके विद्वान् थे। रशियन, चीनी, फ्रेंच, अँग्रेजी, सभी भाषाओंके ज्ञाता थे, अनुवादक थे और लेखक थे, परंतु वे वहाँके कर्मचारियोंका संगठन बनानेमें अत्यन्त रुचि रखते थे। उनके कारण कभी-कभी प्रेसमें हड़ताल भी हो जाया करती थी। सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने उन्हें प्रेसके कार्यसे मुक्त कर दिया। द्विवेदीजी बहुत गरीब थे। विद्या बहुत बड़ी, पर स्पष्टवादिता अधिक और फिर गरीबोंका पक्ष— उनके जीवनमें आर्थिक कष्ट आ गया। भाईजी, द्विवेदीजीके विचार और कार्य-कलापपर कोई ध्यान नहीं देते थे। वे चाहे कुछ भी करें, भाईजी उनसे चुपके-चुपके काम लिया करते थे और उनके भरण-पोषणका प्रबन्ध करते रहते थे। उनसे प्रेसको हानि पहुँच सकती थी, परंतु भाईजीकी सहृदयतामें किसी प्रकारकी कमी नहीं आयी। भाईजीने श्रीमद्भागवतकी फ्रेंच भूमिकाका उनसे अनुवाद करवाया था, जिसका भागवतके सम्पादनमें बहुत उपयोग हुआ। काम न होनेपर भी भाईजी लोगोंके लिये काम निकाल लेते थे और उनकी सहायता करते थे।

[२७] मुझे भी वही दण्ड

'कल्याण' परिवारके एक सम्मानित सज्जन कहीं बाहर गये थे, मुसलमानोंकी पंक्तिमें भोजन कर आये। प्रेस और वाटिकामें चर्चा चली। भाईजीके सामने मामला पेश हुआ। भाईजीने कहा— जीवनमें कभी-कभी ऐसा भी करना पड़ जाता है। मैं जब पटनाके सदाकत आश्रममें गाँधीजीसे मिलनेके लिये गया था, तब उन्होंने मुझे अपने साथ भोजनके लिये बैठा लिया। हमारे पास ही शौकत अली एवं मोहम्मद अली, दोनों आकर बैठ गये। मैंने भोजन कर लिया, उठा नहीं। इन सज्जनको यदि मुसलमानके साथ खानेका कोई दण्ड दिया जाय तो मैं भी वही दण्ड भुगत लूँगा।

शिकायतीराम चुप हो गये। भाईजीके सौजन्यसे एक गम्भीर बात आयी-गयी हो गयी। ■

प्रभुपाद श्रीभक्तिवेदान्त स्वामीजी महाराज

मेरे सहयोगी दादा

श्रीपाद हनुमानप्रसादजी पोद्दारके साथ मेरा बड़ी ही आत्मीयताका सम्बन्ध था। मैं उनके अनुज-जैसा हूँ और वे मेरे दादा— बड़े भाई हैं। वे मुझे भाई जैसा ही स्नेह देते थे। मेरी उनसे प्रथम भेंट सन् १९६२ में हुई थी, जब मुझे अपने श्रीमद्भागवतके प्रथम भागके प्रकाशनके निमित्त कुछ आर्थिक सहयोगकी आवश्यकता थी। श्रीमद्भागवतके भावोंको अँग्रेजीमें व्यक्त करनेकी मेरी शैली उन्हें बहुत रुचिकर प्रतीत हुई। उन्होंने कहा— मैं इस प्रकारका कार्य करवाना चाहता था, आपने यह कर दिया। आपका यह प्रयास बहुत उत्तम है।

उन्होंने मुझपर बड़ी कृपा की और उन्हींके द्वारा 'डालमिया चैरिटेबुल ट्रस्ट' से मेरा परिचय

हुआ और मेरे श्रीमद्भागवतके प्रथम भागके प्रकाशनमें उक्त न्याससे आंशिक सहायता प्राप्त हुई। पश्चिमी देशोंमें वह मेरे धार्मिक कार्य-कलापोंका प्रारम्भिक काल था, क्योंकि १९६५ ई. तक अपने श्रीमद्भागवतके तीन भाग प्रकाशित होनेके बाद ही मैं अपनी पुस्तकोंके सहारे पश्चिमी देशोंकी यात्रापर जा सका। भगवान श्रीकृष्णकी कृपासे मुझे वहाँ कुछ सफलता भी मिली। पश्चिमी देशोंमें अपने भावों-विचारोंके प्रचारकी प्रारम्भिक अवस्थाओंमें मुझे कठिन संघर्ष करना पड़ा। मुझे श्रीमद्भागवत आदि अपनी पुस्तकोंका ही भरोसा था। मैं भाईजीका बड़ा अनुगृहीत हूँ कि उन्होंने अनेक प्रकारसे मेरा सहयोग किया। 'कल्याण' में मेरे कार्य-कलापोंका विस्तृत परिचय प्रकाशित करके उन्होंने उसके प्रति विशाल जनसमुदायकी रुचि जागृत की। श्रीभाईजीका यह मेरे कार्योंके प्रति विशेष सहयोग था।

जब मैं गोरखपुर गया, श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार बड़े कृपालु एवं स्नेहशील आतिथेय सिद्ध हुए। भाईजीने अपने सुरम्य उद्यान 'श्रीकृष्ण निकेतन' में हमारे आवासकी व्यवस्था की। भोजन-ठाकुरसेवाका पूरा प्रबन्ध उनकी ओरसे था। वहीं प्रतिदिन कीर्तन-सत्संग होता था। सैकड़ो लोग वहाँ पधारकर हमारे भक्तोंकें साथ सत्संग सुनते तथा भगवानकी आरतीमें सम्मिलित होते थे। ■

पूज्य श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज

मेरे आत्मीय बन्धु

एक बार कलकत्तेमें एक बड़े विद्वान् पण्डितजीने भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके आनेपर हँसते-हँसते स्वागत करते हुए कहा था— आइये ! बाल, वृध्द, युवक, स्त्री, पुत्र, पुत्री— सभीके समान रूपसे भाईजी !

यह बात कही तो विनोदमें थी, किन्तु यह अक्षरशः सत्य थी। बड़ेसे लेकर बूढ़ेतक, बालकसे लेकर युवकतक, स्त्री-पुरुष- कोई भी क्यों न हो, सब उन्हें 'भाईजी' के नामसे पुकारते थे। यहाँतक कि उनकी पुत्री सावित्रीको भी हमने उन्हें भाईजी कहते सुना है। श्रीजयदयालजी गोयन्दका भी बात-बातमें कहा करते थे कि भाईजीसे पूछ लो, इस विषयमें भाईजीकी क्या सम्मति है। भाई, मैं क्या बताऊँ ? भाईजी जो कहें, वही करो।

'भाईजी' उनका सार्थक नाम था। वे समस्त विश्वके भाई थे, सुहृद थे, सच्चे बन्धु थे। जिनका उनके साथ थोड़ा-सा भी सम्पर्क रहा होगा, वही जानता होगा कि उनमें कितनी आत्मीयता थी। किसी एक ही मानवमें एक साथ इतने सद्गुणोंका समावेश होना अत्यन्त ही कठिन है। जो उन्हें अपना सुहृद मानता था, वह यदि किसी विपत्तिमें फँसा होता और उसे किसी प्रकारका दुःख होता तो उसे उनके समीप जानेपर अवश्य ही शान्ति मिलती थी।

मेरा तो उनसे अपने आत्मीय बन्धु-जैसा घनिष्ठ सम्बन्ध था। वे कितना अधिक मेरा आदर करते और कोई बात समझानी होती तो उसे नम्रतासे कितनी सरलतासे, कितनी आत्मीयताके साथ समझाते कि उसे टालनेका साहस ही नहीं होता था। जब भी मैं स्मरण करता, वे तुरन्त उपस्थित हो जाते। वास्तवमें वे मेरे सखा, सचिव, सेवक, परामर्शदाता, पथ-प्रदर्शक, सब ही

रहे हैं। उनके सम्बधकी अनन्त स्मृतियाँ मेरे हृदयमें निहित हैं।

सर्वप्रथम वे मुझे तीर्थराज प्रयागमें कुम्भके अवसरपर मिले थे। तब उन्होंने कुम्भके अवसरपर प्रयागराजमें गीताज्ञानयज्ञका आयोजन किया था। उसमें भारतके सुप्रसिद्ध गायनाचार्य श्रीविष्णु दिगम्बर तथा अन्यान्य महात्मा एवं विद्वान् समुपस्थित थे। श्रीहरिबाबाजी भी आये हुए थे। झूसीकी ओर श्रीगौरीशंकरजी गोयन्दकाका क्षेत्र लगा था, उसीमें श्रीहरिबाबाजी ठहरे थे। उन्हींसे मिलने वे आये थे। तबतक 'कल्याण'को प्रकाशित हुए कुछ ही वर्ष हुए थे। मेरा उनसे पत्र-व्यवहार तो 'कल्याण'के निकलनेके समयसे ही था, किन्तु भेंट प्रयागमें ही हुई। उस समय उनका कोई-कोई बाल पकने लगा था। मैंने हँसीमें कहा था— मैं समझता था, हनुमानप्रसाद पोद्दार कोई धनिक, गोरे, सुन्दर, सजेधजे, मान-सम्मानके इच्छुक, किशोर व्यक्ति होंगे। ये तो श्यामवर्ण, खिचड़ी बालवाले, सर्वथा 'देहाती' वेषधारी, सीधे-सादे संत-सदृश व्यक्ति निकले।

यथार्थमें वे गृहस्थ-वेषमें संत ही थे। कपड़े रँगने मात्रसे ही कोई संत नहीं हो जाता। वे सादे-स्वच्छ कपड़ोंमें भी संत थे। जिन दिनों मैं हंसतीर्थ झूसीमें अनुष्ठान करता बीमार हुआ, वे तुरन्त दौड़े आये। जब रामलीलाके सम्बन्धमें मैं पकड़ा गया, तो सुनते ही प्रयाग आ गये। परमहंस बाबा राघवदासजीको साथ लेकर टंडनजीसे मिले। जेलमें मुझसे मिलने गये। फिर महामना मालवीयजीसे, पंतजीसे, किदवईजीसे और न जाने किस-किससे मिलकर जबतक मुझे छुड़वा नहीं लिया, उन्हें चैन नहीं पड़ा। उनकी आत्मीयताकी अनन्त स्मृतियाँ मेरे हृदय-पटलपर लिखी हुई हैं। उन सबको लिखना चाहूँ तो एक बड़ा ग्रन्थ बन जायेगा। फिर भी वे पूरी-की-पूरी लिखी जा सकेंगी, इसमें संदेह है।

उनमें एक बड़ा भारी गुण था कि वे हमारे दोषोंको जानते हुए भी हमलोगोंसे प्रेम करते थे। किसीके दोषोंको जहाँतक होता, भरसक प्रकट नहीं करते थे। अनेक प्रसंग ऐसे आये, जब कि मैं उनसे अत्याधिक नाराज हो गया, अपनी बातपर अड़ गया। उन्होंने पैर पकड़कर, रोकर, विनय करके मुझे शान्त किया। पीछे जब मेरा आवेश कम हुआ, तब मुझे पता चला कि दोष मेरा ही था। मेरा जो आदर्शवादी बननेका आग्रह था, वह मेरे अभिमानका ही द्योतक था।

प्रायः मेरे सभी आन्दोलनोंमें उन्होंने मनसा-वाचा-कर्मणा सहयोग दिया ओर मुझे प्रसिद्ध करनेमें उन्होंने अपनेको गौरवान्वित समझा। हमने जो चौदह महीनेका 'अखण्ड नाम-जप-साधन-यज्ञ' किया, जिसमें सभी साधक जप-कीर्तन करते हुए मौनी, फलाहारी रहकर अनुष्ठान करते थे। उसका उन्होंने 'कल्याण'के द्वारा यथेष्ट प्रचार किया। अपने यहाँसे चार साधक भेजे, जिनमें प्रेस-व्यवस्थापक गंगाबाबू भी थे। पोद्दारजी समय-समयपर झूसीमें मेरे पास ठहरते थे। साधकोंको बारबार लिखते रहते थे कि महाराजजीकी समस्त आज्ञाओंका अक्षरशः पालन करते रहना। अनुष्ठानकी समाप्तिपर, जो कि महामना मालवीयजीके करकमलोंद्वारा हुई थी, आप झूसी आये और कई दिनोंतक रहे।

इसके पश्चात् आपने कहा— ऐसा ही एक वर्षका अनुष्ठान आप गोरखपुरमें कराइये।

इसके लिये आपने सब व्यवस्था की, किन्तु अपना नाम कहीं भी नहीं दिया। सब मेरे ही नामसे करते रहे। हमारे साथ १०-१२ साधक थे। सबसे ठहरने, खाने-पीने और सवारीका

सारा प्रबन्ध किया। उन दिनों कैसा सुन्दर सत्संग होता था। न जाने कितने अच्छे-से-अच्छे विद्वान् बैठकर भगवत्-चर्चा किया करते थे। 'ते हि नो दिवसा गताः'— हाय, वे हमारे दिन चले गये और ऐसे गये कि फिर लौटकर नहीं आनेके !

मैं उनसे मिलने उनके पैतृक स्थान रतनगढ़ गया था। वे मुझसे बोले— कुछ दिन रतनगढ़ रहिये।

मैंने कहा— क्या रहें ? तुम्हारे यहाँ इतने सेठ लोग है, कोई उत्सव नहीं कराते।

बड़े ही उत्साहके साथ धीर-गम्भीर भावसे वे बोले— जब चाहें, जैसा चाहें, उत्सव कराइये।

मैंने कहा— इस वर्ष नव-संवत्सर-उत्सव तो हमें मुजफ्फरनगरमें करना है, फिर कभी देखा जायेगा।

वे बोले— शुभस्य शीघ्रम्। नवसंवत्सर-उत्सव यहीं कीजिये, या १५ दिन यहाँ, १५ दिन मुजफ्फरनगर।

तुरन्त निश्चय हुआ और उनके संकल्पसे रतनगढ़का उत्सव इतना भारी ओर सफल हुआ कि मारवाड़के सभी लोग कहते थे कि ऐसा उत्सव न भूतो न भविष्यति। बड़े-बड़े धनिकोंके बच्चे, जिनमें कई करोड़पति भी थे, दर्शकोंके जूते उठानेसे लेकर झाडू देना, पंखा झलना आदि छोटी-से- छोटी सेवा करनेको सर्वथा प्रस्तुत रहते थे। धनिक-समाजपर कितना भारी उनका प्रभाव था, यह दृश्य मैंने १५ दिन रतनगढ़में रहकर ही देखा। उन दिनों द्वितीय महायुध्दके कारण अधिकांश मारवाड़ी सेठ कलकत्ता छोड़कर अपने प्रान्तमें आ गये थे। वे भाईजीको प्राणोंसे अधिक प्यार करते और भाईजी उन सुकुमार किशोर बच्चोंके कंधोंपर हाथ रखकर, जैसे अत्यन्त स्नेहशील पिता अपने प्यारे पुत्रोंसे बात करता है, वैसे उन्हें छोटी-से-छोटी, नीची-से-नीची सेवाके लिये आज्ञा देते और वे करोड़पति-लखपतियोंके सुकुमार कुमार बड़े उल्लासके साथ उन आज्ञाओंका पालन करते। भाईजी जिसे आज्ञा दे दें, वह उसमें अपना बड़ा सौभाग्य समझता।

हँसमुख इतने थे कि बात-बातपर हँसते रहते। मेरी जिस बातको भी देखते, उसीपर ठहाका मारकर हँस पड़ते। रतनगढ़में शोभायात्रा निकली। वहाँ मरुभूमि होनेसे ऊँट बहुत हैं। मैं ऊँटपर उल्टा बैठकर नगर-कीर्तनमें निकला। मेरा मुख ऊँटकी पूँछकी ओर था। मार्गभर मुझे देखकर खिलखिलाकर हँसते ही गये। जब छोटे बच्चेके गलेसे सोनेकी जंजीर उतारकर मैं स्वयं पहिन लेता और बच्चा रोने लगता तो वे हँसते-हँसते उसे गोदमें लेकर पुचकारते और कहते कि कह दे बच्चा, आप ही इसे पहिन लीजिये। ऐसी उनकी अनन्त स्मृतियाँ हैं। क्या सामाजिक, क्या राजनैतिक, क्या धार्मिक, क्या साहित्यिक— हमने जो-जो भी आन्दोलन किये, भाईजीने उसमें सक्रिय सहयोग दिया। जब हमारी 'गो-हत्या-निरोध-समिति' बनी, तब आप उसके कोषाध्यक्ष हुए और आपने सब प्रकारसे उसको सँभाला। जब हमारा गो-व्रत हुआ, तब भी वे पधारे और उन्होंने हमको सब प्रकारसे उत्साहित किया। उस आन्दोलनमें कितना व्यय हुआ, कहाँसे आया, मुझे कुछ पता नहीं। भाईजी ही सब प्रबन्ध करते रहे। कहाँसे करते थे, किससे लेते थे— इसे वे ही जानें, पर सब काम सुचारु रूपसे चलते रहे, कहीं भी अभावका अनुभव नहीं हुआ।

यह बात गोरक्षा-आन्दोलनके सम्बन्ध में ही नहीं है, जितने भी परोपकार-सम्बन्धी कार्य हुए, वे चाहे महामना मालवीयजीद्वारा हुए हों, गांधीजीद्वारा, परमहंस बाबा राघवदासद्वारा अथवा श्रीगोलवलकरजी या अन्य लोगोंके द्वारा हुए, उन सबमें भाईजीका हाथ रहता था और वे मुक्तहस्त होकर विशालताके साथ सहयोग देते थे। दूसरोंके दोषोंको न देखते हुए, परोपकार-भावनासे, गुप्तरीतिसे सतत पर-हितमें निरत रहना— यही उनका असि-धारा-व्रत था। ■

गोरखनाथपीठाधीश्वर महन्त श्रीअवैद्यनाथजी महाराज

[१] महान् पुजारी श्रीभाईजी

संसारमें अनेक देशभक्त हुए हैं, वीर हुए हैं, भक्त हुए हैं, संत-महात्मा हुए हैं, कवि, लेखक, पत्रकार तथा जनसेवक हुए हैं, किन्तु ऐसे पुरुष विरले ही उत्पन्न हुए हैं, जिनमें ये सब गुण एक साथ प्रस्फुटित हुए हों। वे हिन्दू, हिन्दुत्व एवं हिन्दुस्थानके महान् पुजारी थे। मेरे पूज्य गुरुदेव ब्रह्मलीन पूज्यपाद श्रीमहन्त दिग्विजयनाथजी महाराजसे उनका अत्यन्त ही निकटका सम्पर्क था। श्रीभाईजीकी विनम्रता, उदारता, सदाशयता एवं विद्वत्तासे पूज्य गुरुजी महाराज बहुत प्रभावित थे। श्रीभाईजी गुरुजनोंके प्रति बड़ी श्रद्धा एवं आदरबुद्धि रखते थे। वे जब भी संत श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्यायजीसे मिलते थे, तब चरण छूकर उनको प्रणाम करते थे और उनके समक्ष कुर्सीपर न बैठकर भूमिपर बिछी दरीपर बैठते थे। जब कभी उनसे आग्रह किया जाता था कि वे बराबर कुर्सीपर बैठें, तब वे नम्रतापूर्वक उसे अस्वीकार कर देते थे और कहते थे— गुरुजनोंके चरणोंके समीप बैठना ही हिन्दू संस्कृति है।

स्वातन्त्र्योत्तर कालमें भी जब हमारी सरकारने हिन्दुत्वविरोधी कार्य किया, श्रीभाईजीने सदैव ही उसका विरोध किया। जिस समय मुस्लिम-तुष्टीकरण नीतिका अवलम्बन लेकर कांग्रेसी नेता पाकिस्तान स्वीकार करने जा रहे थे, तब श्रीभाईजीने उसका प्रबल विरोध किया था ओर चेतावनी दी थी कि— यह पाकिस्तान भारतके लिये सदा-सर्वदाके लिये एक बहुत बड़ा काँटा बन जायगा।

नोआखालीमें जब १९४६ ई. में हिन्दुओंके रक्तसे होली खेली गयी, भाईजीकी आत्मा रो उठी। उस समय महामना मालवीयजीका अन्तिम संदेश लाखोंकी संख्यामें छपवाकर वितरित कराया था। हिन्दू कोड बिलका भी आपने विरोध किया था और कहा था— सरकारको हमारी धार्मिक व्यवस्थामें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये।

[२] हिन्दुत्वकी गौरवास्पद विभूति

मेरे पूज्य गुरुदेव ब्रह्मलीन महन्त श्रीदिग्विजयनाथजी महाराजकी प्रथम निर्वाणतिथिपर १७ सितम्बर १७७० के दिन मठके प्रांगणमें एक विशाल श्रद्धाञ्जलि समारोह आयोजित हुआ। अस्वस्थ होते हुए भी श्रीभाईजी हमारे समारोहमें पधारे। देशके प्रसिद्ध विद्वान, ख्याति प्राप्त लेखक एवं सार्वजनिक सेवा-कार्य-क्षेत्रोंके प्रमुख नेतागण इस अवसरपर उपस्थित थे। सभी उपस्थित महानुभावोंने एक स्वर और सर्व सम्मतिसे समारोहकी अध्यक्षताके लिये

श्रीभाईजीका नाम प्रस्तावित किया और फिर उन्होंने सबके अनुरोधपर अध्यक्ष-पद ग्रहण किया।

समारोहकी कार्यवाहीके आरम्भ होनेपर विभिन्न वक्ताओंने अपने-अपने ढंगसे पूज्य श्रीमहाराजजीके प्रति अपने भावभरे उद्‌गार व्यक्त किये। एक वक्ता महोदयने पूज्य श्रीमहाराजजीके प्रति अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए बड़े ढंगसे सेक्यूलरवादकी प्रशंसा की। श्रीभाईजी, जो भारतवर्षको एक हिन्दू राष्ट्र घोषित किये जानेके पक्षमें थे, जिन्होंने हिन्दू कोड बिल जैसे हिन्दुत्व-विरोधी कानूनका प्रबल विरोध किया और जो सेक्यूलरवाद (धर्मनिरपेक्षता) को एक महान अभिशाप समझते थे, उनसे सेक्यूलरवादकी प्रशंसा सुनकर रहा नहीं गया और अपने अध्यक्षीय भाषणमें बड़ी ही तर्कपूर्ण शैलीसे और विनम्रतापूर्वक उक्त प्रशस्तिका खण्डन करते हुए उन्होंने दृढ़ताके साथ कहा– जब कभी विश्वका, भारतवर्षका और मानवका कल्याण होगा तो हिन्दुत्व और हिन्दूधर्मके आधारपर होगा। भूतकालमें भी ऐसा ही हुआ है। संसारका अन्य कोई भी मतवाद मानवको सुख और शान्ति नहीं दे पायेगा। यही कारण है कि अतीतमें विश्वने एक स्वरसे भारतको जगद्‌गुरु माना था।

श्रीभाईजीके हृदयसे निकलने वाले मधुर और प्रवाहपूर्ण विचारोंमें शक्ति, भक्ति और मुक्तिका अद्‌भुत त्रिवेणी-सा संगम था। सारा उपस्थित जन-समुदाय 'साधु-साधु' कह उठा। क्रूर मुस्लिम शासकों द्वारा हिन्दुओंके पवित्र श्रद्धा-केन्द्रोंको तोड़े जानेसे भी श्रीभाईजी अत्यन्त दुःखी थे। काशीमें पवित्र श्रीविश्वनाथ मन्दिरको तोड़कर बनवायी गयी मस्जिद, लखनऊमें श्रीलक्ष्मण टीलाको तोड़कर बनवायी गयी मस्जिद, मथुरामें भगवान श्रीकृष्णकी और अयोध्यामें भगवान श्रीरामकी जन्मभूमिको यवनों द्वारा विध्वस्त किये जानेकी घटनाएँ श्रीभाईजीके हृदयमें शूलकी भाँति चुभा करती थीं। उन्होंने कई बार सरकारसे आग्रह किया था कि वह कानून बनाकर इन स्थानोंको हिन्दुओंको हस्तान्तरित कर दे। ■

श्रीराय कृष्णदास

मेरे समर्थक और सहायक

मुझे इस बातका अत्यन्त खेद है कि मैं उनके सम्पर्कमें एकाध बार ही आया, यद्यपि पत्राचार होता रहता था।

बहुत वर्ष पहले काशीमें उन्होंने मुझे दर्शन दिये थे। संयोगवश उस समय गुप्त-सम्राटोंकी कुछ स्वर्ण-मुद्राएँ बिक्रीके लिये आयी थीं, जिन्हें मैं 'कला-भवन' के लिये खरीदना चाहता था, किन्तु रुपये नहीं थे। मैंने भाईजीसे कहा– 'गुप्तयुग' भारतका स्वर्ण-युग था। इन सिक्कोंको विदेश न जाने देना चाहिये।

उन्होंने अविलम्ब रुपयोंका प्रबन्ध कर दिया, यद्यपि यह उनके कार्यक्षेत्रके बाहरकी बात थी।

उन्होंने कृपापूर्वक मेरे लिये गीताके शांकरभाष्यका हिन्दी अनुवाद भेजा। उसे पढ़नेपर मुझे ऐसा लगा कि भगवान शंकर ज्ञानमार्गी न थे, अपितु अद्वैतवादी भक्त थे। मैंने यह बात उन्हें

लिख भेजी। उत्तरमें उन्होंने मेरा पूर्ण समर्थन किया।

एक बार मैंने उनको लिखा कि आपके पास विश्ववन्द्य बापूके जो पत्र हैं, उन्हें आप 'कला-भवन'को प्रदान कर दीजिये। उन्होंने मेरी प्रार्थनाको स्वीकार करते हुए लिखा– अभी उन पत्रोंके सम्बन्धमें कुछ लिखना है, उसके बाद 'कला-भवन'के लिये भेज दूँगा।

खेद है कि फिर मैंने उन्हें उसका स्मरण नहीं दिलाया। ■

श्रीजयदयाल डालमिया

[१] अद्भुत अध्ययनशीलता

बात उस समयकी है, जब श्रीभाईजीको बंगाल सरकारने बंगालसे निष्कासित कर दिया था और श्रीजमुनालालजी बजाजके द्वारा बुलाये जानेपर वे बम्बई आकर व्यापारका काम करते थे। शायद इस फर्मका नाम था चिरंजीलाल हनुमानप्रसाद। मैं भी श्रीभाईजीके साथ कालबादेवी रोडपर रहा करता था। साथ-साथ रहनेके कारण श्रीभाईजीकी अद्भुत अध्ययनशीलता वहाँ देखनेको मिली। रातको मैं जब भी लघुशंकाके लिये अथवा पानी पीनेके लिये उठता, मैंने सदा यही पाया कि श्रीभाईजी अपने बिस्तरके तकियेपर कोहनीके सहारे बैठे हुए ग्रन्थको देख रहे हैं। दिन भर गद्दीमें व्यापार सम्बन्धी कार्य करना और रात्रिके समय सतत गहन अध्ययन करना, ऐसी तत्परताके कारण उनके सिरमें पीड़ा होने लगती थी। फिर वे एस्प्रिनकी गोली खाते थे। गोली खानेसे पीड़ाकी अनुभूति शांत हो जाती थी और अध्ययन-क्रम चल पड़ता था। उन्होंने न जाने कितनी गोलियाँ खायी होंगी। अपने जीवनके परवर्ती कालमें श्रीभाईजी बहुत अधिक रुग्ण रहे। मेरा ऐसा अनुमान है कि यह उन एस्प्रिनकी अनगिनत गोलियोंका कुपरिणाम रहा होगा।

[२] वे सबके भाई थे

श्रीभाईजीकी भीतरी भावना रहा करती थी, केवल भावना ही नहीं, उनकी आन्तरिक मान्यता थी कि हरएक व्यक्तिको, चाहे वह कोई भी हो, अत्यधिक आत्मीयतापूर्ण सम्बोधनसे पुकारना चाहिये। अपनी इस मान्यताके अनुसार श्रीभाईजी बम्बईमें, जब वे वहाँ व्यापारकी दृष्टिसे रहा करते थे, तब वे हरएक व्यक्तिको भाईजी कहा करते थे। जो भी उनके निकट सम्पर्कमें आता, उसे वे बड़े प्यारपूर्वक भाईजी कह करके बुलाया अथवा बोला करते थे। जिसको भी उन्होंने अपने प्यारसे नहलाते हुए भाईजी कहा, वही उन्हें हृदयसे अपना भाई मानने लगा। बस, यहींसे वे जगत-भाई बन गये और हर स्वजन ही उन्हें भाईजी कहने लगा। यह सम्बोधन इतना अधिक प्रचलित और विख्यात हुआ मानो यही उनका उपनाम हो।

अब यह बात दूसरी है कि उनकी लाडली सुपुत्री बाई सावित्रीकी सन्तान उन्हें नानाजी कहती है अथवा बाई सावित्रीके प्रति बहिन-भावना होनेके कारण कुछ लोग उन्हें बाबूजी कहते हैं अथवा मेरे पुत्र मेरे भ्रातृ-नातेसे उन्हें ताऊजी कहते हैं, पर ये सारे भिन्न-भिन्न सम्बोधन एक सीमित सम्बन्ध-क्षेत्रके हैं। सीमित सम्बन्ध-क्षेत्रके इन विभिन्न सम्बोधनोंका भी अपने-अपने स्थानपर एक महत्त्व है, परंतु उनकी आत्मीयताका जैसा विशाल और व्यापक स्वरूप है, उसके

अनुसार वे भाईजी कहलाये और यह सहज सम्बोधन सर्वथा अनुरूप है उनके उस व्यक्तित्वके, जिसके रोम-रोमसे प्यार झरता रहता है।

[३] जीव मात्रके प्रति कारुण्य

प्रसंग बम्बईका है। मैं श्रीभाईजीके साथ भवनके पहले तल्लेपर रहा करता था और रात्रिके समय हमारा-उनका बिस्तर अगल-बगल बिछा करता था। सर्दीके दिन थे। एक बार एक कुत्ता रात्रिके समय आया और श्रीभाईजीके बिस्तरमें घुसकर बैठ गया। उसको घुसते हुए देखकर मुझे बहुत बुरा लगा। उसको भगानेके लिये मैं डंडा खोजने लगा। वह तो आरामसे बैठा हुआ था। ज्यों ही डंडा मेरे हाथमें आया, मैंने उसकी कमरपर एक डंडा जड़ दिया। डंडेकी मार खाते ही वह कुत्ता चिल्लाता हुआ भाग गया।

मार खाकर चिल्ला रहा था कुत्ता, पर विकल हो रहा था श्रीभाईजीका हृदय। श्रीभाईजीने मुझे कभी नहीं डाँटा था, पर आज वह संयम नहीं रहा। कुत्तेको डंडा मारते ही डाँटते और झिड़कते हुए क्षुब्ध स्वरमें मुझसे श्रीभाईजीने कहा— वह कुत्ता तुम्हारा क्या लेता था? वह मेरे बिस्तरमें सोया था और सोया रहता, उससे तुम्हारा क्या बिगड़ रहा था?

मैं कुछ बोल नहीं पाया। जीव मात्रके प्रति उनके कारुण्य भावको देखकर मैं आश्चर्य कर रहा था। इस प्रकारके आश्चर्यकी एक नहीं, अनेक घटनाएँ हैं, जिनकी स्मृति मनको विभोर बना देती है।

[४] दूसरेका सुख ही उनका सुख

श्रीभाईजी जीवमात्रके 'भाईजी' थे। अपने किसी भी कार्य या आचरणद्वारा किसीको कष्ट न पहुँचे, इसके लिये वे बड़े सतर्क रहते थे। सभीकी प्रसन्नता बनी रहे, यह उनका एक व्रत था और इस व्रतका निर्वाह वे औषध-उपचारमें भी करते थे। जो कोई भी डाक्टर-वैद्य उनको अपनी औषध सेवन करनेको देता, वे उसकी औषध ले लेते। मैंने उनसे एक बार कहा— आप बिना सोचे-समझे सबकी औषध ले लेते हैं, यह ठीक नहीं। कभी कोई औषध पूर्व-औषधके विपरीत पड़ जाय तो उसका बड़ा भयंकर परिणाम हो सकता है।

उन्होंने बड़ी सरलतासे उत्तर दिया— शरीर तो जब जानेको होगा, तभी जायगा। इस (औषध देनेवाले) की औषध ले लेनेसे इसको प्रसन्नता होगी कि भाईजीने मेरी औषध ले ली और ठीक हो जानेपर औषध देनेवालेको द्विगुण प्रसन्नता होगी कि मेरी ही औषधसे भाईजी ठीक हो गये।

एक बारकी बात है, मेरे पैरमें एक दुर्घटनासे चोट लग जानेके कारण बड़ा ऑपरेशन होनेवाला था। जिस डाक्टरसे ऑपरेशन करानेकी बात हुई, किसी कारणवश मैं उससे ऑपरेशन नहीं करवाना चाहता था। अपनी यह इच्छा जब मैंने भाईजीके समक्ष व्यक्त की, तब उन्होंने उसी सरलतासे उत्तर दिया— इनसे ऑपरेशन नहीं कराया जायगा तो इनका जी दुखेगा, इसलिये इन्हींसे ऑपरेशन करा लेना चाहिये।

मेरे पास इसका कोई उत्तर नहीं था और मैने चुपचाप स्वीकृति दे दी। सभीको प्रसन्न रखना और किसीका भी जी न दुखाना उनका व्रत था। दूसरेको सुख मिलनेसे उन्हें सहज आनन्द मिलता। दूसरेका सुख ही उनका सुख था।

श्रीभाईजीके पास प्रतिदिन बहुतसे व्यक्तिगत पत्र आया करते थे, जिनमें लोग अपना हृदय खोलकर उनके सामने रख दिया करते थे। उनमें उनके जीवनकी कई गुप्त बातें भी होती थीं। ऐसे सब पत्रोंका उत्तर अपने हाथसे लिखकर भेजनेका उनका नियम था। उन पत्रोंको लिफाफेमें भी वे स्वयं ही बंद किया करते। इतने सावधान थे।

[५] मन्त्रानुष्ठानका प्रयोग

स्वामी श्रीयोगानन्दजी अनुष्ठान-साधनके एक मर्मज्ञ महात्मा हो गये हैं। बम्बईमें भेंट होनेपर उन्होंने इस विद्याके सहारे श्रीभाईजीकी कुछ सहायता करनेकी इच्छा प्रकट की थी, किन्तु श्रीभाईजी सकाम साधनाके विरोधी थे, अतः सहमत न हुए। आगे चलकर उन्होंने मेरे बड़े भाई (परम सम्मान्य श्रीरामकृष्णजी डालमिया) को अर्थ-संकटसे ग्रस्त देखकर उनके कष्ट-निवारणार्थ स्वामीजीद्वारा निर्दिष्ट मन्त्रानुष्ठान किया। उसका विवरण श्रीभाईजीके ही शब्दोंमें नीचे दिया जा रहा है।

उत्तरप्रदेशके अनूपशहरके आस-पास गंगातटपर निवास करनेवाले बंगाली महात्मा श्रीयोगानन्दजी सरस्वतीसे बम्बईके जीवनमें मेरा परिचय हुआ। यह परिचय पण्डित श्रीश्रीलालजी याज्ञिकके द्वारा हुआ। एक बार ये बम्बई भी पधारे थे। बड़े सिद्धि-प्राप्त महात्मा थे और मन्त्रानुष्ठानके मर्मज्ञ थे। मेरे साथ बहुत निकटका सम्बन्ध होनेसे ये जान गये थे कि उस समय मुझे कुछ अर्थकी आवश्यकता थी। उन्होंने मुझे भगवान शंकरका एक मन्त्रानुष्ठान लिखकर भेजा और कहलाया– इस मन्त्रानुष्ठानके प्रयोगसे भगवान शंकरका प्रत्यक्ष दर्शन होगा और तुम्हारे अभाव पूर्ण हो जायेंगे।

मैंने उनसे कहलाया– मैं अपने लिये सकाम अनुष्ठान नहीं करता। हाँ, मेरा इन अनुष्ठानोंपर पूरा विश्वास है।

मुझे वे बराबर लिखते रहे और समझाते रहे। उनका मेरे प्रति बड़ा वात्सल्यभाव था। उन्होंने लिखा– जैसे वैद्यकी दवा ली जाती है, वैसे ही इस अनुष्ठानको कर लो। क्या आपत्ति है?

मैं उनकी बात स्वीकार नहीं कर सका, किन्तु भगवानकी माया बड़ी विचित्र है। मेरे एक मित्रकी आर्थिक स्थिति कुछ समय बाद बहुत कमजोर हो गयी। मित्रका वह आर्थिक संकट बड़ा भयानक था। उनके प्रति मेरे मनमें बड़ा प्यार था। वे बराबर अपनी परेशानियाँ मुझे बताते थे। मेरे मनमें आया– स्वामी श्रीयोगानन्दजीका बताया हुआ शिवजीका अनुष्ठान अपने लिये तो नहीं करना है, पर मित्रके लिये कर दिया जाय।

उस समय मैं गोरखपुरमें था। इसी गीतावाटिकामें मैं ऊपरके पूर्ववाले कमरेमें रहता था। मैंने उसी कमरेमें अनुष्ठान आरम्भ किया। बड़ी विधि एवं श्रद्धाके साथ इक्कीस दिनोंतक वह अनुष्ठान चलता रहा। इक्कीसवें दिन बड़े भयानक रूपमें भगवान शंकरका प्राकट्य हुआ। उनका वह भयानक रूप देखकर मैं काँपने लगा। उन्होंने कहा– तुम्हारा मन्त्रानुष्ठान सफल हो गया, परंतु तुमने उसका प्रयोग करके बहुत अनुचित किया। भविष्यमें इस मन्त्रका अनुष्ठान करोगे तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा। तुम फिर कभी इसका अनुष्ठान नहीं करना और सम्भव है, तुम इस मन्त्रको भूल जाओगे। जिसके लिये यह अनुष्ठान किया है, उसे कह देना कि फिर किसी बहुत बड़े व्यापारको न करे, उसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।

इतना आदेश देकर भगवान शंकर अन्तर्धान हो गये। उस समय मेरे वे मित्र सट्टा किया करते थे। चीनमें बड़े पैमानेपर सट्टा होता था। मुझे ठीक स्मरण नहीं है कि उन्होंने चाँदी बेचनेको लिखा था या लेनेको, पर वे जो लिखना चाहते थे, भाग्यसे उससे उल्टा लिखा गया, अर्थात् लेनेकी जगह बेचना और बेचनेकी जगह लेना लिखा गया और उसीके अनुसार वहाँ सौदा हो गया। सौदा होनेके पश्चात् जब वहाँसे तार आया, तब उनके मनमें घबराहट हुई। उन्होंने समझ लिया कि हम जो चाहते थे, उससे उल्टा हो गया है। अतएव जैसे सौदा हुआ था, उससे उल्टा सौदा करनेके लिये उन्होंने तार दिया, पर भगवानकी माया विचित्र है। वह तार भी उल्टे सौदेका लिखा गया और वह भी, जितना वे सौदा करना चाहते थे, उससे दूना हो गया। भगवानको रुपये देने थे। उनकी इच्छाके विपरीत दुगुना उल्टा काम होनेपर भी उस काममें उन्हें तीस लाख रुपये एक महीनेमें मिले। वह मन्त्रानुष्ठान कुछ दिनों बाद मुझे विस्मृत हो गया। उस अनुष्ठानकी क्रिया तो मुझे स्मरण रही, पर मन्त्र मैं सर्वथा भूल गया। इस मन्त्रानुष्ठानके प्रयोगसे मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा कि इस युगमें भी देवता सिद्ध होते हैं, उनके दर्शन होते हैं तथा उनकी आराधनासे नवीन प्रारब्धका निर्माण होकर अभीष्ट सिद्ध हो जाता है।

[६] अभिनन्दनीय कर्मठता

पूज्य श्रीसेठजीने सन् १९६५ में महाप्रस्थान किया। इसके उपरान्त उनके दत्तक पुत्र श्रीमोहनलालजी गोयन्दका गोरखपुर आकर श्रीभाईजीके पास रहने लगे थे। श्रीभाईजीकी कर्मठताकी बात सब जानते थे और वे भी बहुत सुन चुके थे। सभी यह मानते भी थे कि उनकी कर्मठताके कारण ही 'कल्याण' पत्रिकाका सम्पादन और गीताप्रेसकी पुस्तकोंका प्रकाशन हो पाता है। सचमुच उनकी कर्मठता अभिनन्दनीय है, जिससे हिन्दू वाङ्मयकी श्रेष्ठ निधियाँ विश्वके सामने आ सकीं, पर श्रीमोहनलालजीको यह स्वीकार नहीं था कि श्रीभाईजी नींदके मूल्यपर भी काम करते रहें। एक बार श्रीमोहनलालजी श्रीभाईजीके पास रातके समय देरतक बैठे रहे। श्रीभाईजीने उससे पूछा— आज तुमको सोना नहीं है क्या?

श्रीमोहनलालजीने कहा— सोना तो है, पर आपके सो जानेके बाद।

श्रीभाईजीने उसके मनकी बात जान ली और बड़ी प्यार भरी विनम्र वाणीमें उससे कहने लगे— भइया! थोड़ा-सा काम बाकी है। इसे पूरा करके सो जाऊँगा।

श्रीमोहनलालजीने कहा— आप काम पूरा कर लें। मैं कामके लिये कब रोक रहा हूँ? पूरा करके आप जब सो जायेंगे, तब मैं चला जाऊँगा।

श्रीभाईजी अपना काम करने लगे और श्रीमोहनलालजी बैठे रहे। श्रीभाईजीने देख लिया कि आज यह जायेगा नहीं। उसकी प्रसन्नताके लिये श्रीभाईजीने अपना काम बन्द कर दिया और रजाई ओढ़कर सो गये। कमरेकी बत्ती भी बुझवा दी। श्रीभाईजीके सो जानेपर श्रीमोहनलालजी चले गये।

उसके जानेके थोड़ी देर बाद ही श्रीभाईजी उठे और बत्ती जलाकर काम करने लगे। श्रीमोहनलालजीने अपने कमरेमेंसे देख लिया कि बत्ती फिर जल रही है। श्रीभाईजीका यह जागना उनको अच्छा नहीं लगा। वे फिर आये और पुनः आग्रह करके श्रीभाईजीको

सुला दिया।

उन दिनों मैं गीतावाटिका श्रीभाईजीके दर्शनार्थ आया हुआ था और मैं उनके पास बैठा हुआ था। वे बात-बातमें श्रीमोहनलालजीके प्यारकी सराहना करने लगे, पर उन्होंने यह भी कहा कि इससे काम बड़ा अधूरा रह जाता है। तब मैंने श्रीभाईजीको एक पेन दिया था, जिसके निबमें बल्ब लगा था और पेनमें लगी हुई बैटरीसे जला करता था। रातमें बिस्तरमें पड़े-पड़े भी उससे काम किया जा सकता था। अब श्रीभाईजी उस पेनसे रातके अँधेरेमें काम करने लगे। उस पेनकी निबमें लगा बल्ब जब खराब हो गया तो श्रीभाईजी विवश हो गये।

वह पेन अमेरिकासे आया था। यहाँ भारतमें उसका बल्ब बहुत खोजा, पर खोजनेपर भी मुझे मिला नहीं। उस पेनके खराब हो जानेंके बाद फिर श्रीभाईजी द्वारा वैसे ही जग-जग करके काम करनेका ढंग चालू हो गया। श्रीभाईजीने गीताप्रेसके लिये प्रत्येक क्षण तिल-तिल करके जो आत्माहुति दी है, वह सर्वथा निरुपमेय है।

[७] शिमलापालकी पुनः यात्रा

सन् १९६० के मार्च मासमें पूज्य श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) की आँखोंके मोतियाबिन्दका ऑपरेशन बाँकुड़ामें हुआ। उस अवसरपर पूज्य श्रीभाईजी, पूज्या माँजी (श्रीसावित्री बाईकी माँ) और पूज्य बाबा बाँकुड़ा गये थे। हमलोग (मैं और प्रिय विष्णुकी माँ) भी साथ हो लिये थे। उनकी आँखका ऑपरेशन करने वाले डाक्टर साहब भी उसी गाड़ीमें हमलोगोंके साथ गये थे। ऑपरेशनका कार्य जब भली प्रकारसे पूर्ण हो गया तो हमलोगोंके मनमें शिमलापाल चलनेकी बात उभरने लगी। शिमलापाल चलने की सबसे ज्यादा इच्छा तो प्रिय विष्णुकी माँकी थी।

यहाँ शिमलापालका थोड़ा परिचय देना आवश्यक लग रहा है। शिमलापाल बाँकुड़े जिलेके भीतरी भागमें एक छोटा-सा ग्राम है, जो बाँकुड़ासे २४ मील पड़ता है। यह वही शिमलापाल ग्राम है, जहाँ अँग्रेजी सरकारने श्रीभाईजीको इक्कीस मासतक नजरबन्द रखा था। श्रीभाईजी योगिराज अरविन्दकी तरह पहले राजनैतिक कार्योंमें भाग लिया करते थे। भारतसे अँग्रेजी राज्यकी सत्ताको उखाड़ फेकनेके लिये श्रीभाईजीका सक्रिय सहयोग क्रान्तिकारियोंको प्राप्त था। क्रान्तिकारियोंने रोड्डा एण्ड कम्पनीसे कारतूस और पिस्तौलकी पेटियाँ, जो जर्मनीसे आयी थीं, उनको गायब कर दिया और उनमेंसे कुछ पेटियाँ श्रीभाईजीने अपने यहाँ छिपाकर रखी थीं। श्रीभाईजी बिना किसी भयके देश-सेवाके कार्यक्रमोंमें भाग लिया करते थे। गुप्त समितिमें भाग लेनेके कारण तथा क्रान्तिकारियोंके मुकदमोंकी पैरवीमें सहयोग देनेके कारण श्रीभाईजीका नाम पुलिसकी डायरीमें नोटकर लिया गया था। पुलिस श्रीभाईजीकी गतिविधिका निरीक्षण करने लगी। किसीका सक्रिय सहयोग भला कैसे छिपा रह सकता है? बन्दी होनेके एक मास पूर्व श्रीभाईजीको सूचना मिल गयी थी कि सरकार उन्हें बन्दी बनानेके लिये प्रयत्नशील है। सूचना मिलनेके बाद भी श्रीभाईजी न तो कहीं भागकर छिपे और न अपने कार्यक्रमोंसे विरत हुए। अभी इनका विवाह हुए तीन मास भी नहीं हुऐ थे कि २० जुलाई १९१६ को अँग्रेजी सरकारने श्रीभाईजीको गिरफ्तार कर लिया। पहले तो सरकारने कुछ दिन जेलमें रखा, फिर शिमलापाल ग्राममें नजरबन्द कर दिया। इक्कीस मासकी नजर-

बन्दीके बाद मुक्ति मिली और श्रीभाईजीको सरकारी आदेशके अनुसार बंगाल छोड़ देना पड़ा।

शिमलापाल ग्रामका नाम श्रीभाईजीके जीवनके साथ जुड़ा हुआ है। राजनैतिक जीवन तथा आध्यात्मिक जीवन, दोनोंकी दृष्टिसे शिमलापालका महत्त्व है। राजनैतिक जीवनके बाद आध्यात्मिक जीवनका शुभारम्भ शिमलापालसे ही होता है। इसी शिमलापालकी नजरबन्दीमें श्रीभाईजीने कठोर साधना की और उनकी आरम्भिक साधनाका स्वरूप था नामका जप, ध्यानका अभ्यास और ग्रन्थोंका स्वाध्याय।

इस समय श्रीभाईजी हमलोगोंके साथ थे और बाँकुड़ामें ही थे, अतः शिमलापाल चलनेकी भावनाका उभरना स्वाभाविक था। प्रिय विष्णुकी माँके अति आग्रहपर श्रीभाईजीने शिमलापाल चलना स्वीकार कर लिया। श्रीभाईजीकी नजरबन्दीके दिनोंमें शिमलापाल जानेके लिये पक्की सड़क नहीं थी। बैलगाड़ीसे ही यात्रा करनी होती थी। उन दिनों पूज्य श्रीसेठजीको श्रीभाईजीके पास जो डाक-चिट्ठी या अन्य आवश्यक सामान भेजना होता था, वह सब बाँकुड़ासे उधर जानेवाली बैलगाड़ीसे वे भेजा करते थे। अब तो सड़क बन गयी है। हम सभी लोग मोटरसे शिमलापाल गये।

शिमलापाल पहुँचते ही एक बड़ा भावपूर्ण दृश्य देखनेको मिला। पूज्य श्रीबाबा (स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज) का हृदय बड़ा उमड़ रहा था। वहाँ पहुँचते ही बाबा वहाँके चौराहेकी धूलमें लोटने लगे। बाबाका सारा शरीर धूल धूसरित हो उठा। बाबाके अन्तरका आह्लाद उनके नेत्रोंमें उमड़ रहा था। इसके बाद श्रीभाईजी वहाँकी जिस नदीमें प्रतिदिन स्नान किया करते थे, वहाँ सभीने स्नान किया।

सरकारने श्रीभाईजीके रहनेका प्रबन्ध श्रीअधरचन्द्र मण्डलके घरपर कर रखा था। श्रीभाईजीने श्रीअधरचन्द्रजीके घरमें ही इक्कीस मास बिताये थे। हम सब लोग उनके घरपर गये। उस घरकी जिस कोठरीके दीवालपर श्रीभाईजीने 'श्रीनृत्य गोपाल' लिख रखा था, वह इतने वर्षोंके बाद भी उसी प्रकार लिखा हुआ था। श्रीभाईजीने वह 'श्रीनृत्य गोपाल' दिखलाया। नजरबन्दीके मध्यमें सरकारने श्रीभाईजीके पास पत्नीको जाने और रहनेकी अनुमति दे दी थी और वे आकर रही भी थीं। वे बताने लगीं कि यहाँ रसोई बनती थी, यहाँ स्नान होता था, यहाँ विश्राम होता था। श्रीभाईजी एवं पूज्या माँजीके श्रीमुखसे यह वर्णन सुनकर बड़ा अच्छा लग रहा था। पूज्या माँजीने वे सब प्रसंग सुनाये कि कैसे फूलोंके पौधे लगाये तथा कैसे लोगोंकी होमियोपैथिक चिकित्सा की और उससे स्थानीय लोगोंको कितना लाभ हुआ। एक गूँगा और बहरा व्यक्ति होमियोपैथिक दवाके लिये आया और जिद्द करके बैठ गया कि दवा लिये बिना नहीं जायेगा। बात टालनेके लिये उसके लक्षण अफीमचीकी तरह देखकर पूज्य श्रीभाईजीने उसको होमियोपैथिक 'ओपियम' दे दिया। भगवानकी ऐसी कृपा हुई कि उसीसे वह बोलनेमें और सुननेमें सक्षम हो गया। श्रीभाईजी सभीके लिये बड़े आदरणीय-विश्वसनीय बन गये थे।

श्रीभाईजी वहाँके पुलिस थानेके अधिकारियोंके इतने विश्वस्त हो गये कि वे लोग श्रीभाईजीसे अपने कार्यालयकी डायरी आदिके विवरण लिखवाने लगे। इससे उनकी अपनी मेहनत बचने लगी।

श्रीभाईजी हमलोगोंको थानेपर ले गये। श्रीभाईजीने आलमारीमेंसे निकलवाकर वे सब

रेकार्ड दिखलाये, जो वे थानेमें बैठकर लिखा करते थे। एक प्रकारसे थानेका सारा काम वे ही किया करते थे। श्रीभाईजीने पोस्टमास्टर साहबके घरका वह पुस्तकालय भी दिखलाया, जहाँके गौड़ीय ग्रन्थोंको ले-लेकर उन्होंने विशद स्वाध्याय किया था।

इस शिमलापाल यात्रामें श्रीभाईजीका संकोच शिथिल पड़ गया था। वे अपने अनुभव सुनाने लगे कि नामजपके क्या-क्या विशेष चमत्कार जीवनमें हुए तथा भगवानके रूपका ध्यान कितना सुदृढ़ और प्रगाढ़ हो गया था। ध्यानकी साधना इतनी सुपुष्ट हो गयी थी कि खुली आँखोंको भी जगत नहीं, भगवान विष्णुके रूपका दर्शन होता था।

हमलोग तो सब देख-देखकर तथा सुन-सुनकर विभोर हो ही रहे थे, वे ग्रामवासी भी प्यारमें विह्वल हो रहे थे। उनको याद आ रहा था श्रीभाईजीका मधुर स्वभाव, निष्काम सेवा, सच्चा सौहार्द। जो नाई श्रीभाईजीकी हजामत बनाया करता था, वह मिलनेके लिये आया। एक बुढ़िया भी श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये आयी। वह श्रीभाईजीको पुत्रवत् माना करती थी। श्रीभाईजीने तथा माँजीने उसके चरण छूकर प्रणाम किया। उस बुढ़ियाने पूछा— तुम्हारे कितने बच्चे हैं?

श्रीभाईजीने बतलाया— मेरे तो केवल एक पुत्री है।

उस बुढ़ियाने माँजी और श्रीभाईजीको बहुत-बहुत शुभाशीर्वाद दिया। श्रीभाईजीको देखकर उस बुढ़ियाकी आँखें प्यारके मारे भर-भर आ रही थीं। केवल वह बुढ़िया ही क्यों, सभी पूर्व परिचित ग्रामवासियोंके नेत्र बार-बार गीले हो रहे थे।

शिमलापालमें एक जगह धान सूख रहा था। पूज्य बाबाने उसको भाड़में भुनवाया। उस धानकी लाईको बाबाने अपनी झोलीमें भरकर ले लिया। हम जितने लोग साथमें थे, सबको एक-एक दाना प्रसादके रूपमें दिया। जिसका धान था, बाबाने उसे धानके मूल्यसे कई गुना अधिक मूल्य दिलवाया।

पूज्या माँजी, श्रीभाईजी तथा पूज्य बाबाके साथ हमलोगोंकी शिमलापालकी यात्रा और श्रीभाईजीकी पुनः यात्रा एक चिरस्मरणीय प्रसंग है। शिमलापालसे विदा होते समय हम सभीने उस पवित्र भूमिको बार-बार प्रणाम किया।

[८] श्रीभाईजीका घर एक वाल्मीकि-आश्रम

आदिकवि ब्रह्मज्ञानी श्रीवाल्मीकिजीने राम-परित्यक्ता भगवती सीताको अपने आश्रममें आश्रय दिया था। भगवान श्रीरामके जीवनकी यह जग-प्रसिद्ध गाथा है। वैसे ही श्रीभाईजीका घर अनेकों दुखिता बहिनोंका आश्रय-स्थल बना हुआ था।

एक बहिनके पतिमें बहुत अधिक विरक्तिका भाव उमड़ा और वे अपनी पत्नीके गोदमें एक वर्षीय बालक एवं एक तीन-चार वर्षीय कन्याको छोड़कर चुपचाप रात्रिके अँधेरेमें सदाके लिये चले गये। कहाँ गये वे, कुछ पता नहीं चला। उस अनाश्रिता बहिनको श्रीभाईजीने अपने घरमें आश्रय दिया। उसका घरमें वही सम्मान था, जो अपनी बेटी सावित्रीका था। उस बहिनके बेटे-बेटीकी पढ़ायी-लिखायी, सुख-सुविधाका सारा दायित्व श्रीभाईजीने सहर्ष स्वीकार कर रखा था।

मैं उस आदरणीया बहिनके मनकी भावधाराके सम्बन्धमें विचार करने लगा, जिसने

श्वसुर-गृह और पितृ-गृह, इन दोनों गृहोंके स्थानपर गोरखपुरकी गीतावाटिकामें श्रीभाईजीके घरपर रहनेका निश्चय किया। क्या यह निश्चय इस बातका परिचय नहीं देता कि उस बहिनका श्रीभाईजीपर, श्रीभाईजीके परिवारपर और श्रीभाईजीके घरके वातावरणपर कितना अधिक विश्वास था ? न जाने कितनी बहिनों और माताओंके अत्यधिक विश्वसनीय श्रीभाईजी रहे, जिन्हें श्रीभाईजीके पास अपने मानसिक दर्दकी दवा मिला करती थी, जिन्हें अपने पारिवारिक प्रश्नोंका उत्तर मिला करता था और जिन्हें अपनी सांसारिक समस्याओंका समाधान मिला करते थे।

कई बहिनें, जिन्हें बाल-वैधव्यका दुर्दिन प्रारब्धवशात् भोगना पड़ गया था, वे बहिनें सात्त्विक जीवन व्यतीत करनेके लिये श्रीभाईजीके घरमें बेटी सावित्रीकी तरह रहती थीं। उनको जो प्यार और जो संरक्षण श्रीभाईजीसे मिला, उससे उन्हें अपने घरकी याद ही नहीं आती थी, वह घर चाहे पीहर हो अथवा ससुराल हो। श्रीभाईजीने उनकी जैसी सँभाल की, उनको जैसा वात्सल्य दिया, वह आज कहीं भी देखने-सुननेमें नहीं आता, अपितु आश्चर्य होता है श्रीभाईजीके हृदयकी इस विशालताको देखकर। वस्तुतः सभीके प्रति श्रीभाईजीकी जैसी आत्म-भावना थी, उसकी हमलोग कल्पना शायद ही कर पायें।

एक बहिन परिस्थिति विशेषमें अपने छोटे बालकको साथ लेकर श्रीभाईजीके घरपर और उनके परिवारका एक अंग बनकर रहा करती थी। श्रीभाईजीने उसको भी बहुत प्यार दिया, बहुत दुलार दिया, सदा लाड लड़ाया। अपनी बेटी सावित्रीसे भी बढ़कर उसे अपने वात्सल्यकी स्निग्धता प्रदान की। उसकी हर सुविधाका ध्यान रखा और उसकी प्रत्येक आवश्यकता— चाहे छोटी हो या बड़ी, सभीको पूर्ण किया। केवल उसीकी ही बात नहीं, उसके बालकपर तो भाईजीका अत्यधिक वात्सल्य था।

एक दिन सूर्यास्त हो जानेके बादकी बात है। बालक अपनी माँके सामने मचल पड़ा कि मुझे लूडो मँगवा दो। लूडो चौपड़ जैसा एक बच्चोंका खेल है। माँने उसे समझाना चाहा— बेटे! बाजार बन्द हो गया। मैं कल सबेरे मँगवा दूँगी।

बाल-हठ इस प्रकारके समझावन-बुझावनको भला कब स्वीकार करता है? उसे तो लूडो चाहिये, आज चाहिये और अभी चाहिये। माँने उसे फुसलाना चाहा, पर सारा प्रयास असफल गया। वह भी परेशान थी कि बच्चेको कैसे मनाया जाये। लूडो मँगवा देना वह चाहती थी, पर विवशता थी। बाजार बन्द होनेका समय जो हो चुका था। बालककी मचलनने अब रोदनका रूप ले लिया। श्रीभाईजीके कानमें उसके रोनेकी आवाज पड़ गयी। वे तुरन्त वहाँ पास आये और लगे पूछने— यह क्यों रोता है ?

बालक भाईजीकी धोती पकड़कर कहने लगा— मुझे लूडो चाहिये।

भाईजी बोले— तुमको मैं लूडो अभी दूँगा।

उसी क्षण श्रीभाईजीने अपना व्यक्ति बाजार भेजा। अतिकाल होनेसे थोड़ी कठिनाई तो सामने आयी, पर भाईजीने लूडो मँगवाकर उसी दिन दिया।

संतप्रवर पूज्य स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजकी बहिन आदरणीया श्रीसत्यमूर्तिजी न जाने कितने दिनोंतक श्रीभाईजीके पास गीतावाटिकामें रहीं। वे कुछ नाजुक मिजाजकी थीं।

श्रीभाईजीका उस ओर ध्यान ही नहीं था। अपनी बहिनके रूपमें उसे माना और सदा उसी रूपमें सम्मान दिया।

एक बालिकाकी माँका असमयमें देहान्त हो गया। जब वह बालिका सयानी होने लगी तो उसके पिताजीको बड़ी चिन्ता हुई। फिर वह बालिका श्रीभाईजीके घरपर ही रही। उसने भी श्रीभाईजीके घरको अपना घर माना और तदनुसार आचरण किया। श्रीभाईजी उसकी सेवा-भावनासे इतने प्रसन्न थे कि वे उसका विवाह किसी योग्य सम्पन्न बालकके साथ करवा देना चाहते थे। योग्य वरकी तलाश हो रही थी कि श्रीभाईजीका शरीर लाचार होने लगा। ऐसी परिस्थितिमें उन्होंने उसके विवाहका दायित्व अपने परिवारवालोंको सौंप दिया, जिसे परिवारवालोंने श्रीभाईजीके तिरोधानके पश्चात् सुन्दर रूपमें निभाया।

हम भले इन प्रसंगोंको जीवनकी सामान्य घटनाएँ मान लें, परंतु इन घटनाओंके भीतर झाँकनेसे सहज ही दिखलायी देगी श्रीभाईजीके हृदयकी विशालता-उदारता-आत्मीयता-मृदुलता-स्निग्धता-वत्सलता, जिसके कारण श्रीभाईजी सभीके हृदय-धन बने हुए थे। श्रीभाईजीके घरकी छाया थी ही ऐसी, जहाँ कोटि-कोटि पितृत्व और मातृत्वका वात्सल्य उमड़ता और बरसता रहता था।

ये तो प्रत्यक्ष प्रसंग है। न जाने कितनी आर्त बहिनोंको श्रीभाईजीसे राहत मिली है। श्रीभाईजीने अनेकानेक बहिनोंका पतिके साथ सम्बन्ध, पिताके साथ सम्बन्ध, भाईके साथ सम्बन्ध, इस प्रकार पारस्परिक सम्बन्धोंको सुधारा और सँवारा है।

[९] मशीन चल पड़ी

एक बारकी बात है। मैं गोरखपुर गया हुआ था और गीतावाटिकामें श्रीभाईजीके पास ठहरा हुआ था। गीतावाटिका तो शहरके उत्तरी छोरपर है, पर गीताप्रेस शहरके बीचमें है। इन्हीं दिनों गीताप्रेसमें छपाईका काम करनेके लिये एक बहुत बड़ी इटैलियन प्रिंटिग मशीन आयी थी। वह मशीन प्रेसमें लगा दी गयी, पर ठीकसे चल नहीं रही थी। प्रेसमें जो मशीनमैन थे, वे प्रयास करके थक गये, पर मशीनका चलना सही रूपमें नहीं हो पाया। इससे काममें बड़ी हानि होनेके सम्भावना थी।

यह समाचार गीताप्रेससे गीतावाटिका पूज्य श्रीभाईजीके पास आया। मशीनकी गड़बड़ीका समाचार पाकर श्रीभाईजीने मुझसे कहा— तुम जाकर उसको देखो।

मैंने श्रीभाईजीसे कहा— सीमेंटकी या चीनीकी मशीनके सम्बन्धमें मुझे थोड़ी-बहुत जानकारी है, पर प्रेसकी प्रिंटिंग मशीनके सम्बन्धमें तो मुझे कुछ भी जानकारी नहीं।

इसपर श्रीभाईजीने जोर देते हुए कहा— तुम एक बार प्रेस जाओ और जाकर मशीनको देखो तो सही।

श्रीभाईजीके ऐसा कहनेपर मैं रिक्शेपर बैठकर गीताप्रेस गया, गया यह जाननेके लिये कि मशीनमें क्या खराबी है, जिससे निर्माता कम्पनीको लिखकर अथवा किसी कुशल मेकैनिकको बुलवाकर उसे ठीक करवाया जा सके। गीताप्रेसमें प्रेसके मैनेजर श्रीदुर्गाबाबूको साथ लेकर मैं मशीनके पास गया। बड़े आश्चर्यकी बात यह है कि मशीनको मैंने छुआ ही था कि मशीन चल

पड़ी और सही प्रकारसे काम करने लगी। यह सर्वथा सच है कि मैंने उसमें कुछ भी नहीं किया, फिर भी हाथ लगाते ही जादूका-सा काम हो गया और मशीन सही रूपमें चल पड़ी। कोई माने अथवा न माने, पर सच्ची बात यह है कि यह पूज्य श्रीभाईजीकी कृपाकी ही करामात थी।

[१०] वे परम आस्थास्पद थे

श्रीभाईजीपर केवल मेरी और आपकी ही आस्था नहीं थी, अपितु देशके और समाजके सर्वसम्मान्य महापुरुषोंके भी विश्वासनीय थे। महात्मा गांधी, महामना मालवीयजी जैसे सर्ववन्द्य लोग भी आड़े समयमें श्रीभाईजीको याद किया करते थे।

सन् १९३२ में महात्मा गाँधीजीके सुपुत्र श्रीदेवदास गाँधी गोरखपुर जेलमें कैद थे। जेलमें वे बीमार हो गये। उनको टायफायड हो गया। जेलके अधिकारी उनकी चिकित्सा तथा उनकी सँभाल ठीक प्रकारसे नहीं कर सके। बापूको इसका पता चला। बापूने श्रीभाईजीको पत्र लिखा— देवदास गोरखपुर जेलमें बीमार है। उसकी देखभालका, चिकित्साका सारा भार तुम पर है।

बापू उस समय यरवदा जेलमें थे। बापूका संदेश मिलते ही श्रीभाईजी श्रीदेवदासकी सेवा-सँभालमें संलग्न हो गये। कानूनके अनुसार प्रतिदिन जेल जाकर मिलना सम्भव नहीं था, परंतु अधिकारियोंकी सद्भावना सदा ही श्रीभाईजीके प्रति रही है। अधिकारियोंने श्रीदेवदाससे प्रतिदिन मिलनेकी अनुमति दे दी। श्रीभाईजीने श्रीदेवदासकी तत्परतापूर्वक सेवा और सँभाल की। श्रीभाईजी तार और पत्र द्वारा बापूको बराबर श्रीदेवदासकी स्थितिका समाचार देते रहते थे। श्रीभाईजीकी इस सेवासे बापू बहुत अधिक मुग्ध हो गये थे।

बापूने श्रीभाईजीको लिखा था—

यरवदा मंदिर
२१-७-३२

भाई हनुमानप्रसाद,

आपका पत्र मिला और आज तार भी। देवदासके लिये चिन्ता नहीं करूँगा, क्यों कि आप वहाँ हैं और देवदासने मुझको भी...... है कि आपने उससे बड़ा प्रेम किया था। डाक तार तो अच्छा है। आपके पत्रकी आजकल हमेशा प्रतीक्षा करता रहूँगा।

बापूके आशीर्वाद

* * * * *

२-८-३२

भाई हनुमानप्रसाद

देवदासकी चिन्ता तुम्हारे सिरसे उतरी। मुझे सब खत मिले हैं। मैं अनुग्रह क्या मानूँ? क्यों मानूँ? सेवा मूक रहकर लेना ही मुझे तो सभ्यता प्रतीत होती है। सब सच्ची सेवाका बदला मनुष्य नहीं दे सकता। ईश्वर ही दे सकता है।

बापूके आशीर्वाद

कुछ दिनोंमें श्रीदेवदास ठीक हो गये और वे जेलसे छोड़ दिये गये तो श्रीभाईजी उन्हें

वाराणसी पहुँचानेके लिये उनके साथ गये थे।

काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके संस्थापक पूज्य श्रीमदनमोहनजी मालवीयके चार लड़के थे, श्रीरमाकान्त, श्रीराधाकान्त, श्रीमुकुन्द और श्रीगोविन्द। श्रीमालवीयजीने प्रिय मुकुन्दको श्रीभाईजीके पास बम्बई भेज दिया। वे बहुत दिनों तक बम्बईमें श्रीभाईजीके पास रहे। इसके बाद दूसरे लड़के श्रीराधाकान्त भी वकालतको छोड़कर प्रयागसे बम्बई चले गये सट्टेका व्यापार करनेके लिये। एक मित्र ज्योतिषीकी सलाहपर विश्वास करके श्रीराधाकान्तजी सट्टेका व्यापार करने लगे। सट्टेबाजीमें श्रीराधाकान्त बरबाद हो गये। इन्हीं दिनों श्रीभाईजी काशी गये और श्रीमालवीयजीका दर्शन किया। उन्होंने श्रीराधाकान्तके विषयमें बात चला दी। वे श्रीराधाकान्त की बरबादीसे बड़े दुःखी थे।

श्रीमालवीयजीसे मिलकर श्रीभाईजी काशीसे बम्बई गये। बम्बई पहुँचनेपर शीघ्र ही श्रीमालवीयजीका तार मिला— तुम राधाकान्तको कहो कि विश्वास पूर्वक आर्त भावसे श्रीगजेन्द्रमोक्ष स्तोत्रका पाठ करे, ऋण उतर जायेगा।

श्रीभाईजीने श्रीमालवीयजीका संदेश श्रीराधाकान्तजीको सुनाया तथा उनको समझाया। इसके बाद श्रीमालवीयजीका पत्र श्रीभाईजीको मिला। पत्रमें भी इस स्तोत्रकी महिमाका वर्णन था। भविष्यमें न जाने कितने भाई-बहिनोंको श्रीभाईजीने ऋणसे मुक्त होनेके लिये अथवा अन्य संकटोंसे मुक्त होनेके लिये गजेन्द्रमोक्ष स्तोत्रका पाठ बतलाया था और इस स्तोत्रका अनुष्ठान करनेसे वे सभी लोग लाभान्वित भी हुए हैं।

पूज्य श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) के कोई सन्तान नहीं थी, अतः उन्होंने अपने सहोदर छोटे भाई श्रीमोहनलालजीको ही गोद ले लिया। श्रीमोहनलालजी पर श्रीसेठजीका बड़ा वात्सल्य था। स्नेह-सम्बन्ध कितना ही मधुर हो, पारिवारिक जीवनमें घर-गृहस्थीके प्रश्नोंको लेकर कभी-कभी खीझ हो ही जाया करती थी। श्रीमोहनलालजीके हितका चिन्तन करते-करते भी श्रीसेठजीको कोई उपाय नहीं सूझ पाता था कि मोहनको कैसे समझाया जाये। हार करके श्रीसेठजी श्रीभाईजीसे कहा करते थे— हनुमाना ! मोहन तो बाल हठ कर बैठा है। वह मेरी बात नहीं मानता। तुम कह दोगे तो वह मान जायेगा।

और न जाने श्रीभाईजीके शब्दोंमें क्या जादू था, श्रीसेठजीकी आज्ञानुसार ज्यों ही श्रीभाईजीने मोहनलालाजीसे कहा कि त्यों ही वे श्रीसेठजीकी इच्छाके अनुसार कार्य करने लगते थे।

यही बात ज्यों-की-त्यों घटित होती थी पूज्य महन्त श्रीदिग्विजयनाथजी महाराजके साथ। गोरखपुरमें श्रीगोरखनाथ मन्दिर है, जो योगिराज श्रीगोरखनाथकी तपस्यास्थली है। इस मन्दिरके पीठाधिपति रहे महन्त श्रीदिग्विजयनाथजी महाराज। अब आपका शरीर नहीं रहा। आपके पट्टशिष्य हैं श्रीअवैद्यनाथजी महाराज। अब ये ही पीठाधिपति हैं। पुत्र दो प्रकार होते हैं, विन्दु-पुत्र और नाद-पुत्र। मन्त्र-दीक्षा द्वारा बनने वाले नाद-पुत्र ही होते हैं। जब कभी श्रीअवैद्यनाथजी और गुरुदेव श्रीदिग्विजयनाथजीके मध्य कुछ पारस्परिक प्रश्न उठ खड़ा होता था तो श्रीअवैद्यनाथजीको समझानेके लिये पूज्य श्रीदिग्विजयनाथजी श्रीभाईजीसे कहा करते थे

और इस उपायसे उनको सफलता मिलाकरती थी।

संगीत सम्राट श्रीविष्णु दिगम्बरजीको अपनी समस्याका समाधान मिलता था श्रीभाईजीके पास। कितने प्रसंग उद्‌धृत किये जायँ ? श्रीभाईजी न जाने किनके-किनके परम आस्थास्पद थे। आस्थापद वही बन पाता है जिसके घरका द्वारा, इतना ही नहीं, जिसके हृदयका द्वारा सबके लिये खुला हो, सर्वकाल खुला हो। केवल खुला ही नहीं, जिसके हृदयका प्यार सभीके लिये बहता रहता हो। श्रीभाईजीके अकलुष प्यारका प्रभाव अद्‌भुत होता था। उनका अहैतुक प्यार एक ऐसा अचूक मन्त्र था, जो सारी बिगड़ी बना देता था। तभी तो वे सभीके परम आस्थास्पद थे।

[११] परम स्नेही

मेरे सहोदर बड़े भाईजीका शुभ नाम पूज्य श्रीरामकृष्णजी डालमिया है। कलकत्तेमें भाई श्रीडालमियाजीका पूज्य श्रीभाईजीसे सम्पर्क कैसे हुआ, यह मुझे ज्ञात नहीं। सम्भव है, किसी सामाजिक काम-काजके सिलसिलेमें हुआ होगा। सम्पर्क चाहे जैसे और जब हुआ हो, पर यह सम्पर्क घनिष्ठ सम्बन्धके रूपमें परिणत हो गया। परस्परमें भ्रातृ-भाव होनेसे भाई श्रीडालमियाजी और श्रीभाईजी एक दूसरेका नाम बोलकर सम्बोधन किया करते थे। बम्बई-निवासकी अवधिमें यह सम्बन्ध और अधिक घनिष्ठ हो गया और श्रीडालमियाजी श्रीभाईजीको 'भाईजी' कहकर सम्बोधन करने लगे।

मनमें अत्यधिक उपरामताके जग उठनेपर जब श्रीभाईजीने प्रापञ्चिक जगतसे विदाई लेनेके लिये और भगवच्चिन्तनमें निमग्न हो जानेके लिये बम्बईमें अपना सारा कार्य-व्यापार समेट लिया, तब श्रीभाईजीके पारिवारिक दायित्वका निर्वाह करनेके लिये भाई श्रीडालमियाजीने भाईजीके अभिन्न आत्मीय स्वजनके नाते अपनी ओरसे स्वतः और सहज सहयोग प्रदान किया था। श्रीभाईजीने अपने वसीयतनामेमें स्वयं लिखा है– सन् १९२७ में व्यापारके सारे काम-काजसे सम्बन्ध तोड़कर जब मैं बम्बईसे चला, तब यही निश्चय था कि एक बार गोरखपुर जाकर फिर सदाके लिये कहीं पवित्र गंगा तटपर एकान्त निवास करके जीवनके शेष दिन केवल भजनमें ही बिताना है। साधारण खर्चकी व्यवस्था भाई श्रीरामकृष्ण डालमियाके स्नेहपूर्ण सहयोगसे हो गयी थी, पर होता वही है, जो श्रीभगवानके मंगल विधानके अनुसार होता है।

पूज्य श्रीभाईजीके इन्हीं परम आत्मीय स्वजन भाई श्रीडालमियाजीको नेहरू सरकारने एक केसमें फँसा लिया। कानूनके चंगुलमें कब और कौन आ जायेगा, यह कहा नहीं जा सकता। सरकारी अधिकारियोंने भाई श्रीडालमियाको जेलमें डाल दिया। तब श्रीशान्तिप्रसादजी जैनने सरकारी अधिकारियोंसे कहा– जितने रुपये उन्होंने (भाई श्रीडालमियाजीने) दूसरी कम्पनियोंसे लेकर अपने व्यापारिक काममें लगा लिये हैं, वे सब हम चुका देंगे, पर उनको सजा न हो।

सरकारी अधिकारियोंने कहा– आप रुपया तो चुका दें, बाकी बात आप हमपर छोड़ दीजिये।

सरकारी अधिकारियोंके कथनका मतलब यही समझा गया कि रुपये चुका दिये जानेके बाद मुकदमा नहीं चलेगा, पर रुपयोंको चुका देनेके बाद भी सरकारने मुकदमा चलाया और भाई श्रीडालमियाजीको सजा सुनायी गयी। आश्वासन मिलनेके बाद भी सरकारने जो किया, उसे राज हठ ही कहना चाहिये। बाल हठ और नारी हठके समान राज हठके लिये भी क्या कहा जाय और क्या न कहा जाय।

अब यह बात अलग है कि प्रारब्धानुसार भाई श्रीडालमियाजीको सजा भुगतनी पड़ी, पर जब तक मुकदमा चलता रहा, तब तक पूज्य श्रीभाईजीने भाई श्रीडालमियाजीके लिये जो-जो किया, उसका वर्णन सम्भव नहीं। उन्होंने सरकारी अधिकारियोंसे जितना पत्र-व्यवहार किया, वह उनकी भीतरी आकुलताका परिचय देता है। श्रीभाईजीके मनमें बड़ी आकुलता थी भाई श्रीडालमियाजीके परिवारके लिये भी। पूज्या भाभीजीके प्रति और उनके बच्चोंके प्रति श्रीभाईजीके ममत्वकी धारा फूट पड़ी थी। अपने आत्मीयके लिये परम स्नेही श्रीभाईजीने जिस प्रकार जमीन-आसमान एक दिया था, इसको कैसे भुलाया जा सकता है?

[१२] जीवन मन्त्र

बात उस समयकी है, जब मैं छोटा था। कलकत्तामें पूज्य श्रीभाईजी हमलोगोंके घरपर आया करते थे। मेरी स्कूल छूट गयी थी। मैं खाली बैठा रहता था, अतः बड़ी सुस्ती छायी रहती थी। पूज्य श्रीभाईजीने मुझसे कहा— सुस्त नहीं रहना चाहिये। सदा प्रसन्न रहो। प्रसन्न व्यक्ति ही प्रगति कर पाता है।

पूज्य श्रीभाईजीसे मिला हुआ यह प्रथम जीवन-मन्त्र है और इस मन्त्रने मेरे जीवनमें पर्याप्त प्रकाश प्रदान किया है। ■

श्रीमती ललिता शास्त्री

जी चाहता है

मेरा व्यक्तिगत सम्बन्ध 'कल्याण'से सन् १९४१ से है। उस समय शास्त्रीजी (श्रीलालबहादुरजी शास्त्री) जेलमें थे और आज्ञानुसार मैं 'कल्याण' पत्रिकाकी सदस्या बनी। उस समयसे आजतक बराबर मैं 'कल्याण' पढ़ रही हूँ। श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार 'कल्याण'के जन्मदाता थे और उनके विचार बराबर 'कल्याण'में प्रकाशित होते थे। इस तरह मैं उनके विचारोंसे तो अवश्य ही परिचित थी, लेकिन व्यक्तिगत परिचय न था। सौभाग्यवश जब शास्त्रीजी गृहमंत्री थे, तब मैं उनके साथ गोरखपुरमें स्थित गीताप्रेस देखने गयी। वहाँका वातावरण और कार्य देखकर शास्त्रीजी इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने भाई पोद्दारजीसे कहा— यह स्थान तो इतना रमणीक और शान्तिमय है कि जी चाहता है— राजनीतिसे छुट्टी लेकर यहींपर रहूँ।

उसी समय मेरा परिचय भाई पोद्दारजीसे हुआ। ■

श्रीप्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका

मेरे अभिन्न मित्र

भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार मेरे अभिन्न मित्रोंमेंसे थे। युवावस्थामें हम दोनोंने कई ऐसे काम एक साथ मिलकर किये थे, जिनमें हम दोनोंके विचार मिलते-जुलते थे। वैसे सन् १९१६ के मध्यतक उनका कलकत्तामें ही निवास रहा और कलकत्तामें ही वे व्यापार करते रहे।

युवाकालमें उग्र क्रान्तिकारियोंसे मेरा सम्पर्क था और १९१४ में मैं एक राजनैतिक षड्यन्त्रमें फँस गया। 'आर. बी. रोड्डा एन्ड कम्पनी' द्वारा जर्मनीसे निर्यात की गयी पचास हजार कारतूस और पचास पिस्तौल क्रान्तिकारियोंके हाथ लगीं। उसका बड़ा भाग सुरक्षित स्थानमें छिपानेके लिये मुझे सौंपा गया। उन पिस्तौलों और कारतूसोंको छिपानेके उद्देश्यसे मुझे जगह-जगह घूमना पड़ा। पता लग जानेका तो पूरा भय था ही। कारतूसोंका एक बक्स मैंने भाई श्रीहनुमानप्रसादजीको उनकी गद्दीमें सौंप दिया। मेरी दृष्टिमें वह घटना उनके जीवनमें बहुत महत्त्व रखती है। हमलोगोंके साथ-साथ वे भी ब्रिटिश हुकूमत द्वारा इस षड्यन्त्रमें फँसा लिये गये।

प्रथम महायुद्धके समय 'भारत सुरक्षा-कानून' पास किया गया। मार्च १९१६ में मुझे बंगालसे निर्वासित कर दिया गया। कुछ सप्ताह बाद भाई हनुमानप्रसादजीको भी पकड़ लिया गया और पीछे बंगालके बाँकुड़ा जिलेमें पौने दो वर्ष वे नजरबंद रखे गये। १९१८ में उन्हें बंगालसे निर्वासित कर दिया गया। विधिका विधान बड़ा विचित्र है। बंगालसे हट जानेके बाद वे बम्बई रहे, पीछे गोरखपुर आ गये।

जब मैं अपने वकील-बैरिस्टर मित्रोंको और हाईकोर्टके जजोंको 'भाईजी' कहकर भाई हनुमानप्रसादजीकी सेवाओंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते सुनता हूँ, तब बड़ा हर्ष होता है। ■

डा. श्रीराजबलीजी पाण्डेय

स्नेहका अनुबन्ध

'कल्याण'के साथ पूज्य भाईजीकी स्मृति शरीरके साथ प्राण, बुद्धि तथा आत्माकी भाँति अभिन्न रूपसे जुड़ी हुई है। यह धारणा मेरे प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष अनुभवोंपर आधारित है। मेरे अप्रत्यक्ष अनुभव भी मेरे मनके लिये तो प्रत्यक्ष हैं ही। मेरा पहला सम्पर्क १९३४ में श्रीभाईजीसे उस समय हुआ था, जब 'कल्याण'का सम्पादकीय कार्यालय गोरखनाथ-मन्दिरके पास एक पुराने बँगलेमें था। उसके चारों ओर वृक्ष, वनस्पतियाँ तथा वन्य दृश्य थे। पूरा वातावरण आरण्यक था। कार्यालय क्या था, वास्तवमें 'आश्रम' था। श्रीभाईजी उसके कुलपति थे। उनका स्नेह और सम्मान सभी सदस्योंको सहज रूपसे प्राप्त था। मैंने देखा, श्रीभाईजी पुरुष होनेके कारण 'भाईजी' कहलाते हैं, किन्तु उनका स्नेह तो माताका स्नेह है, जो अपना वात्सल्य बच्चोंपर बिना किसी प्रत्याशाके बरसाया करती है। मैं प्रथम दर्शनसे ही अभिषिक्त हो

गया। 'कल्याण' के सम्पादकीय परिवारमें अपने रहने और कार्य करनेका सुखद संदर्भ अभीतक नहीं भूला है। मैं उसको आदरपूर्वक सँजोये हुए हूँ।

वहाँकी कार्यप्रणाली बड़ी अनोखी थी। मैं श्रीभाईजीके पास पहुँचा और कार्य करने लगा। आवेदन, नियुक्तिपत्र, वेतन आदिका कुछ पता नहीं, न मुझसे पूछा गया कि मैं क्या वेतन लूँगा और न मैंने पूछा कि क्या वेतन मिलेगा। श्रीभाईजीका आकर्षण था। वे ही अनुबन्ध थे। वहाँ पहुँचनेपर सम्पूर्ण 'योगक्षेम' की व्यवस्था थी— आवास, भोजन, वस्त्र, औषध आदि सभीकी। कार्यालय परिवार था, कार्य-पद्धति पारिवारिक। कार्यका संकेत मात्र था, आदेश भी नहीं। कार्य करनेका स्थान प्रायः निश्चित था, समय नहीं। अपनी सुविधा और रुचिसे कार्य-सम्पादन करना था। इसके अतिरिक्त नित्य संध्या-वंदन, प्रार्थना, कथा, प्रवचन आदि चलते रहते थे। इनमें भाईजीकी उपस्थिति विशेष प्रेरणादायक थी। उनके प्रवचन भी बराबर होते थे। उनकी बोलनेकी शैली अनुभूतिपरक, सरस और हृदयग्राही थी। भावुकता, सद्भाव और स्नेहका वातावरण उनके चारों ओर तना-बुना था। लोगोंमें एक सहज विनयिता, परंतु साथ ही भक्तिसिक्त मादकता थी। श्रीभाईजी केन्द्र-बिन्दु थे।

१९३६ में गोरखपुर जिलेमें भयंकर बाढ़ आयी। बर्डघाटके आगेका बाँध बाढ़के वेगसे टूट गया और उसके आस-पासके बीसों गाँव जल-मग्न हो गये। वहाँके निवासी घोर संकटमें पड़ गये। उनको वहाँसे उबारने, आवास, भोजन, औषध आदिकी अनिवार्य आवश्यकता थी। शासनकी ओरसे व्यवस्था की गयी थी, किन्तु वह पर्याप्त नहीं थी। भाईजीको इस स्थितिका पता था। भाईजी केवल भावभीने भक्त ही नहीं, जागरूक सक्रिय तथा दृढ़ लोक-संग्रही भी थे। उन्होंने गीताप्रेसकी ओरसे राहतकार्यका तुरन्त संगठन किया। जलप्लावनमें रात-दिन कार्य हुआ। लोग बाढ़से निकालकर कूड़ाघाट छावनीमें लाये गये। वहाँ एक बड़ा राहत-शिविर संगठित किया गया। तत्कालीन उत्तरप्रदेशके गवर्नरतक उस सहायता-कार्यको देखकर आश्चर्यचकित थे। सभी शिविरके कार्योंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे।

उसी वर्ष काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें, 'प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति' विभागमें सहायक प्रोफेसरके पदपर मेरी नियुक्ति हो गयी। मैंने श्रीभाईजीका आशीर्वाद लिया और काशी चला गया। 'कल्याण' परिवारसे मैं अलग हुआ, परंतु श्रीभाईजीके प्रति मेरा आदरभाव और सम्मान कभी अलग नहीं हुआ। उनका अनुबन्ध नौकरीका नहीं, स्नेहका था। उनका स्नेह और मंगल-कामना अपने साथ लाया। वह सम्पत्ति आज भी मेरे मानस-कोषमें है। ■

डा. श्रीमणीन्द्रनाथजी चक्रवर्ती (पारिवारिक चिकित्सक)

[१] सम्पर्कका आरम्भ और घनिष्ठता

सन् १९२७ की बात है। गोरखपुर शहरके आस-पास बाढ़ आयी हुई थी। बाढ़-पीड़ित लोगोंकी सहायताके लिये हम कुछ लोग नाँवमें बैठ कर जा रहे थे। मैं तो अपने साथ अनेक प्रकारकी दवाएँ ले रखा था, पर उसी नाँवमें पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) भी बैठे हुए थे। गीताप्रेसकी ओरसे अन्न और वस्त्रके वितरणके रूपमें जो सहायता-कार्य चल रहा

था, उसीके लिये अपने सहयोगियोंके साथ बाबूजी भी हमारे साथ जा रहे थे। उनकी सेवा-भावनाको देखकर मैं उन्हें मात्र एक भला व्यक्ति मान रहा था। यही मेरी और उनकी प्रथम भेंट थी। भविष्यमें हम लोगोंका सम्पर्क क्रमशः घनिष्ठ होता चला गया। प्रथम भेंटका यह प्रसंग मुझे तनिक भी स्मरण नहीं था। बहुत आगे चलकर जब उन्होंने ही इस प्रथम भेंटकी चर्चा चलायी, तब सारा दृश्य मेरे आँखोंके सामने आ गया।

बाबूजीके यहाँ जब कोई बीमार पड़ता था, तब वे मुझे बुलाते थे और मैं एक डाक्टरके नाते उनके यहाँ जाता था। जानेकी फीस वे मुझे देते थे और डाक्टरी धन्धेकी परम्पराके अनुसार मैं ले लिया करता था। फीस देनेके साथ-साथ जो प्यार और सम्मान उन्होंने दिया, उसका वर्णन शब्दों द्वारा सम्भव है नहीं। वे मुझे फीस देते थे, मुझे सम्मान देते थे, मुझे स्नेह देते थे, यह सब मेरे प्रत्यक्ष अनुभवकी बात थी, पर इसके साथ-साथ वे चुपचाप मुझे सुसंस्कारित भी कर रहे थे। उनके सम्पर्कसे मेरे जीवनमें जो आस्तिकता और आध्यात्मिकता आयी, उसका बदला मैं कभी चुका नहीं सकता। जितना-जितना उनसे मेरा सम्पर्क बढ़ता चला गया, उतना-उतना उनके प्रति मेरा पूज्य भाव घना होता चला गया।

मैं उन्हें प्रणाम करना चाहता था, पर उन्होंने कभी भी मुझे अपने चरणोंका स्पर्श करने नहीं दिया। मेरा जन्म ब्राह्मण वंशमें हुआ है। उन्हें यह स्वीकार ही नहीं था कि कोई ब्राह्मण मुझे प्रणाम करे। वे मर्यादाका ख्याल बहुत ज्यादा रखते थे। वे मेरे लिये पूज्य थे, इसके बाद भी वे मुझे ही प्रणाम करते थे।

[२] स्वप्नमें दिव्य प्रकाश

बाबूजीके जीवन-कालकी ही बात है। एक बार मैं स्वप्न देख रहा था। मेरे घरके पास जो चौराहा है, वहींपर बाबूजी इक्केसे चले आ रहे हैं। वे गीतावाटिकासे आ रहे थे और गीताप्रेस जा रहे थे। जिस इक्केपर बाबूजी सवार थे, वह बहुत ही घटिया था और इक्केका घोड़ा भी महा मरियल था। ऐसे इक्केपर बाबूजीको सवार देखकर मुझे गीताप्रेसके लोगोंपर बड़ा रोष हो रहा था कि ये लोग बाबूजी जैसे महान संत व्यक्तिके लिये एक अच्छे वाहनकी भी व्यवस्था नहीं कर सकते।

मुझको बाबूजीने देख लिया और मेरे मनकी खिन्नताको उन्होंने समझ लिया। मुझे संतुष्ट करनेके लिये बाबूजी उस चौराहेपर इक्केसे उतर गये और मुझसे कहने लगे— आप अपना मन छोटा क्यों करते हैं ? मैं आपके साथ पैदल चलूँगा।

फिर बाबूजी मेरे साथ पैदल चलने लगे। मेरे घरके बाहर मेरा अस्पताल है। अस्पतालके सामने आते ही मैंने एक विचित्र दृश्य देखा। बाबूजीका शरीर एक विशाल गुब्बारेके रूपमें बदल गया। बदलनेकी प्रक्रियाको मैं बहुत ही चकित दृष्टिसे देख रहा था और मेरे मुखसे विस्मयसूचक शब्दावली निकलने लगी। फिर मैंने देखा कि उस गुब्बारेसे बहुत अधिक दिव्य प्रकाश निकल रहा है। मेरा आश्चर्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था और मेरी नींद खुल गयी। नींद खुल जानेके बाद भी वह सपना प्रत्यक्षवत् लग रहा था।

मैं दिनमें पूज्य बाबूजीके पास गीतावाटिका गया और उन्हें वह स्वप्न सुनाया। सब सुनाकर मैंने वास्तविकताके बारेमें बाबूजीसे जिज्ञासा व्यक्त की। गम्भीर स्वभाववाले बाबूजीने संकेत

रूपमें केवल इतना ही कहा— आपने जो देखा है, वह सही देखा है।

बाबूजीने रहस्यको खोला नहीं और स्वप्नका स्पष्टीकरण भी नहीं किया, किन्तु बाबूजीके उत्तरसे उनके प्रति मेरी आस्था और अधिक दृढ़ हो गयी।

[३] गोरखपुर स्टेशनपर उनका दर्शन

मेरी पारिवारिक कठिनाइयोंको बाबूजीने सदा ही दूर किया है। मेरे दो सन्तान हैं, एक लड़का और एक लड़की। सन् १९४८ के अगस्त मासकी बात है। उस समय मेरे लड़केकी आयु लगभग तीन वर्षकी होगी। लड़का अपने नानाके यहाँ कलकत्तेमें था। उसके नाना विश्वके इने-गिने वैज्ञानिकोंमेंसे एक थे और वे ट्रॉपिकल्स स्कूल ऑफ मेडिसिनके डाइरेक्टर थे। उनका एक पत्र एक्सप्रेस डेलिवरीके रूपमें रविवारके दिन दोपहरके बाद मुझे मिला। आज कल डाकतार विभागने एक्सप्रेस डेलिवरीकी पद्धति समाप्त कर दी है। पहले एक्सप्रेस डेलिवरी पत्रको तारके समान बाँटा जाता था। यही कारण था कि छुट्टीका दिन होते हुए भी रविवारके दिन डाकियेने आ करके पत्र दिया।

जब पत्र मिला, उस समय घनघोर वर्षा हो रही थी। पत्रमें लड़केके नानाने मुझे लिखा था— लड़केकी स्थिति अत्यधिक चिन्ताजनक है। उसके जीवनकी आशा हम लोग छोड़ चुके हैं। पत्र पाते ही आप कलकत्ते चले आयें, जिससे आप अपने लड़केको एक बार देख लें। इससे आपके मनको कुछ शान्ति हो जायेगी और उसे भी आपके दर्शन हो जायेंगे।

पत्र पाते ही मेरा मन अकुला उठा। मैंने कलकत्ते जानेका कार्यक्रम बना लिया। मैं चाहता था कि गोरखपुरसे रवाना होनेके पहले एक बार बाबूजीके दर्शन कर लूँ, पर दो भीषण बाधाएँ मेरे सामने थीं। सबसे पहली बात तो यह थी कि ट्रेनके छूटनेका समय हो रहा था। ट्रेन अपराह्न कालमें तीन बजे छूट जाती थी। दूसरी समस्या यह थी कि गीतावाटिकाको जानेवाली सड़क बड़ी कच्ची थी। आजकी तरह तारकोलवाली काली सड़क नहीं थी। सड़क इतनी कच्ची थी कि तनिक-सी वर्षाके हो जाते ही सड़कपर बहुत कीचड़ हो जाया करता था और चलनेवालेके पैर धँस जाया करते थे। मेरे पास मोटर कार थी, पर मैं जानता था कि आज पानी खूब अधिक बरस रहा है और कारके पहिये कीचड़में जरूर-जरूर फँस जायेंगे। बाबूजीके दर्शनकी उत्कण्ठा बहुत अधिक होते हुए भी सड़ककी खराबी और समयकी तंगीको सोचकर मैं लाचार हो गया और मैं अपने घरसे ट्रेन पकड़नेके लिये सीधे गोरखपुर स्टेशन चला गया।

गोरखपुर स्टेशनके बाहर पोर्टिको है। जब मैं अपनी कारसे वहाँ पहुँचा तो मैंने देखा कि बाबूजी वहाँ खड़े हैं। ज्यों ही मैं अपनी कारसे उतरा, उन्होंने मेरी पीठपर हाथ रखा। मेरा मन आनन्दसे भर गया। मैं बार-बार भगवानको धन्यवाद देने लगा कि आपने बाबूजीके दर्शनकी इच्छाको पूर्ण कर दिया। बाबूजीसे मेरी बात प्रायः बँगला भाषामें हुआ करती थी। उनका बँगला उच्चारण और उनकी बँगला शब्दावली ऐसी उत्तम हुआ करती थी कि कोई भी सुननेवाला अवश्य ही उनको बंगाली मान लेगा। उन्होंने मुझसे बँगला भाषामें पूछताछ की कि स्टेशन आनेका कारण क्या है। मैंने लड़केकी हालतका वर्णन करके कलकत्ते जानेकी बात उन्हें बतला दी। मेरी सारी बात सुनकर बाबूजीने यही कहा— आप घबड़ायें नहीं। भगवानपर भरोसा करें। वे मंगल ही करेंगे।

बाबूजी मेरे साथ प्लेटफॉर्मपर गये। पहले ट्रेनमें कुल चार क्लास हुआ करते थे, फर्स्ट, सेकेंड, इंटर और थर्ड। मैंने बाबूजीसे कहा– मैं तो इंटर क्लासमें बैठूँगा। क्या आप वहाँ खड़े होंगे? आपको इंटर क्लासके सामने खड़े देखकर लोग क्या कहेंगे?

बाबूजीने कहा– इसमें मेरा क्या बिगड़ता है? मुझे लोगोंसे क्या मतलब? मैं तो आपके लिये खड़ा हूँ। जिसे जो समझना हो, समझता रहे।

उनके प्यारको देखकर मैं कुछ बोल नहीं पाया। मैं इंटर क्लासमें बैठा हुआ था और बाबूजी इंटर क्लासकी खिड़कीके पास खड़े रहे। जब ट्रेन चल दी, तभी वे गये।

मैं कलकत्ते पहुँचा। लड़केकी हालत नाजुक थी ही, पर चिकित्सा भी अच्छी तरहसे हो रही थी। भगवानकी कृपासे स्थितिमें सुधार होने लगा और कुछ ही दिनों बाद मैं अपने काम-धन्धेके लिये गोरखपुर लौट आया। गोरखपुर आनेके बाद मैं गीतावाटिका गया, जिससे मैं अपने लड़केकी स्थितिका सारा वर्णन बाबूजीको सुना दूँ। बाबूजीके पास जानेके पहले मेरी भेंट श्रीदूलीचन्दजी दुजारीसे हो गयी, जो बाबूजीके निजी सहायक और अत्यधिक अन्तरंग व्यक्ति थे। मेरा मन तो उमंगसे भरा हुआ था ही, मैंने उन्हें बतलाया कि किस प्रकार कलकत्ते जानेके पूर्व गोरखपुर स्टेशनपर बाबूजीसे भेंट हो गयी। मेरा वर्णन सुनकर उपेक्षाभरे स्वरमें व्यंग करते हुए श्रीदूलीचन्दजीने कहा– आप पागल तो नहीं हो गये हैं? आप डाक्टर तो हैं, पर ऐसा लगता है कि आपका दिमाग ठिकाने है नहीं। एक तो यहाँ कार नहीं है और दूसरे उस दिन वर्षा बहुत थी। इस कारण बाबूजी कहीं गये ही नहीं। आप क्या कह रहे हैं?

जिस विश्वासके साथ दूलीचन्दजी बोल रहे थे, उससे भी अधिक विश्वासके साथ मैंने उनसे कहा– क्या बहकाने वाली बातें कर रहे हैं? मुझे स्टेशनके बाहर मिले, मेरे साथ प्लेटफॉर्मपर गये, मेरे साथ बहुत देरतक बात की, उन्होंने मुझको ट्रेनपर चढ़ाया और ट्रेनके चले जानेके बाद वे गये। ये सब तो मेरे साथ हुआ है। मैं कैसे आपकी बातोंको मान लूँ?

मेरी बात सुनकर श्रीदूलीचन्दजी कुछ ठंडे पड़ गये, पर उन्होंने वही बात दोहरायी– आप मानें अथवा न मानें, पर सच्ची बात यही है कि उस दिन बाबूजी कहीं नहीं गये।

इतना कहकर श्रीदूलीचन्दजी तो मौन हो गये, पर भगवानने इस घटनाका वास्तविक सत्य मेरे हृदयमें उद्भासित कर दिया कि बाबूजी अपने सूक्ष्म शरीरसे मुझसे मिलनेके लिये उस दिन गोरखपुर स्टेशनपर आये थे। अब मेरे मनकी जो दशा थी, मैं क्या बताऊँ? आँखोंमें आँसूको रोक पाना बड़ा कठिन हो रहा था। इस घटनाने मेरे मनको बाबूजीके प्रति अत्यधिक श्रद्धावान बना दिया।

[४] लड़कीके सम्बन्धकी समस्या

मेरी लड़कीके विवाहकी समस्या भी बाबूजीने ही हल की। लड़की विवाहके योग्य हो गयी थी। योग्य वर ढूँढनेके लिये मैंने रात और दिन एक कर दिया था। भारतवर्षका ऐसा कौन सा मुख्य नगर है, जहाँ योग्य वरको खोजनेके लिये मैं नहीं गया होऊँ? चारों दिशाओंमें मैंने खोज की, पर कहीं भी पटरी बैठी नहीं। कहीं मैंने सम्बन्धको अस्वीकार कर दिया और यदि कहीं वर मुझे पसन्द आया तो वर-पक्षवालोंने मेरा प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। सम्बन्ध न होनेके कारण मेरा मन बड़ा परेशान था।

एक दिन गीतावाटिकामें मकानके सामने वाले बरामदेकी सीढ़ियोंपर मैं बैठा था। पहले पोर्टिको नहीं बना था। मैं सीढ़ीपर यों ही बैठा हुआ लड़कीके बारेमें सोच-विचार कर रहा था। उसी समय किसीने मेरे कन्धेपर हाथ रखा। तत्काल मेरी दृष्टि पीछेकी ओर गयी। मैंने देखा कि बाबूजी खड़े हुए हैं। मैं उसी समय खड़ा हो गया और उनसे पूछा– आप कब आये? आप कितनी देरसे खड़े हैं?

बाबूजीने कहा– मैं यहाँ लगभग पन्द्रह-बीस मिनटसे खड़ा हूँ। मेरे खड़े होनेकी खबरतक आपको नहीं हुई, इससे यह पता चलता है कि आप किसी बहुत गहरे विचारमें डूबे हुए थे। इतना ही नहीं, आप कुछ परेशानसे दिखलायी दे रहे हैं। क्यों, क्या उलझन है?

मैंने लड़कीके सम्बन्धके बारेमें शुरूसे अन्त तककी सारी बात बतला दी और कहा– योग्य वर न मिलनेके कारण मन बड़ा चिन्तित है।

बाबूजीने कहा– इतनी चिन्ता क्यों करते हैं? भगवान कहीं गये थोड़े ही हैं। वे अवश्य सारी बाधाओंको दूर करेंगे।

अब सबसे बड़े आश्चर्यकी बात यह है कि जिस दिन बाबूजीसे यह बात हुई, उसके आठ-नौ दिनके भीतर-भीतर सम्बन्ध तय हो गया। मुझे कहीं भी जाना नहीं पड़ा, बल्कि वरके नाना स्वयं मेरे पास आ गये और सम्बन्ध निश्चित हो गया।

[५] महानकी महान करनी

महाप्रस्थानसे तीन-चार सप्ताह पहलेकी बात है। मेरे मनमें यह बात आयी कि रोगका विधिवत् निदान करानेके लिये, हर प्रकारकी सही जाँच करानेके लिये और तत्परतापूर्वक चिकित्सा करानेके लिये बाबूजीको बम्बई ले चलना चाहिये। अवसर पाकर मैंने एक दिन बम्बई चलनेकी बात कही, तब बाबूजीने कहा– बम्बई चलनेमें थोड़ी आपत्ति है।

बाबूजी अभी और भी कहना चाहते थे, तभी मैं बीचमें बोल पड़ा– आपकी बात मैं समझता हूँ। मैं भी तो डाक्टर हूँ। मैं आपके धर्मकी रक्षा करूँगा। मैं इन्सुलिनका प्रयोग होने नहीं दूँगा।

बाबूजीने कहा– इतना तो मैं भी जानता हूँ कि आपके रहते कोई भी मुझे इन्सुलिन नहीं दे सकता, पर मैं तो एक और ही बात सोच रहा हूँ। बम्बई जानेपर जिस डाक्टरसे मैं चिकित्सा कराऊँगा, उसका पूर्ण प्रयास यह होगा कि जैसे भी हो, मैं अपने रोगीको रोग-मुक्त कर दूँ। यदि उस डाक्टरकी अन्तरात्मा कहती है कि रोग निवारणके लिये इन्सुलिन देना आवश्यक है तो वह उसका प्रयोग करना चाहेगा। यदि मैं अथवा मेरे सहयोगी इन्सुलिनका प्रयोग करनेके लिये मना करेंगे तो बम्बईवाले डाक्टरके सामने धर्म-संकटकी स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। आप लोगोंके कहनेसे वह इन्सुलिन नहीं देगा, पर उसके विवेकपर कितना अधिक जोर पड़ेगा? उसे बार-बार ऐसा अनुभव होगा कि मैं अपने कर्तव्यका पालन नहीं कर पा रहा हूँ। उसके लिये मैं ऐसे धर्म-संकटकी स्थिति उत्पन्न क्यों करूँ? यही कारण है कि मैं दुविधामें पड़ा हुआ हूँ। एक ओर मैं आप लोगोंकी सद्भावनाका आदर करना चाहता हूँ, पर दूसरी ओर उन सब बातोंको सोचकर मनमें संकोच भी हो रहा है।

बाबूजीकी इन बातोंको सुनकर मेरा मन कितना द्रवित हुआ, मैं क्या बताऊँ? बाबूजीका जीवन संकटमें था, ऐसा होनेके बाद भी उन्हें यह अभीष्ट नहीं था कि मेरे कारण किसीके

सामने धर्म-संकटकी स्थिति उत्पन्न हो। बाबूजीकी महानताकी इस ऊँचाईको छू सकनेकी बात अलग रही, मैं तो उसकी छायाको भी नहीं छू सकता।

[६] स्नेहका मर्मस्पर्शी दृश्य

महाप्रयाणके चार-पाँच दिन पहले एक अद्भुत हृदयस्पर्शी दृश्य देखनेको मिला। रोगकी अधिकता और उसकी पीड़ाके कारण बाबूजी अब बोल भी नहीं पाते थे। कोई पेय पदार्थ बड़ी कठिनाईसे कण्ठमें उतर पाता था। ड्रॉपरसे बूँद-बूँद करके पानी पिलाया जाता था। जीभ, तालु कण्ठ आदि फंगस (एक प्रकारकी विकट काई) से आक्रान्त थे। शरीरमें हिलने-डुलनेकी शक्ति नहीं थी। जब मैं रात्रिके समय उनके कमरेमें गया, उनको देखकर उनके पास ही बैठ गया। कुछ मिनटोंके बाद उन्होंने अपने दाहिने हाथको उठाना चाहा, पर उठानेकी शक्ति नहीं थी। उठाते समय उनकी हथेली बहुत काँप रही थी। मैंने तुरन्त पूछा— आपको क्या चाहिये ?

काँपती हुई अँगुलियोंको वे अपने मुखकी ओर ले जाने लगे। मैं तो उनकी चेष्टाका आशय समझ नहीं पाया, पर पासमें खड़े हुए श्रीदूलीचंदजी दुजारी तुरन्त समझ गये और बाबूजीके मनके भावोंको व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा— बाबूजी पूछ रहे हैं कि आपने भोजन किया अथवा नहीं ?

मैंने तुरन्त समाधानके स्वरमें बाबूजीको सन्तुष्ट करनेके लिये कहा— मैंने भोजन कर लिया है।

मैंने ऐसा कहा अवश्य, पर मेरा हृदय और मेरी आँखें भर-भर आ रही थीं कि मरणासन्न स्थितिमें भी प्यारकी ऐसी वर्षा और वात्सल्यका ऐसा प्रवाह! बार-बार यही लगता है, ऐसा अद्भुत स्नेह अब कहीं नहीं मिलेगा। वस्तुतः ऐसा अनोखा व्यक्तित्व केवल उनका ही था। उनके समान वे ही थे। ■

श्रीरमाकान्त केशवराव देशपाण्डे

धर्म-जागरण-कार्यके लिये पत्रक

विदेशी ईसाई मिशनरियाँ सारे भारतमें बड़ी तत्परतासे सक्रिय हैं और इस सक्रियताका उद्देश्य है हिन्दुओंका धर्म-परिवर्तन। उनको अपने उद्देश्यकी सिद्धिमें सफलता भी मिली है। यह हिन्दुत्वके लिये विघातक है। भगवान श्रीकृष्णने कहा है—

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' (श्रीगीता ३/३५)

अपने वनवासी हिन्दुओंमें निज-धर्म-निष्ठा-भावको जगानेके लिये मध्य प्रदेशके जशपुर नगरमें हमलोगोंने 'कल्याण आश्रम' नामक संस्थाकी स्थापना की है। सन् १९६३ में कल्याण आश्रमके नवनिर्मित भवनके उद्घाटनका कार्य श्रीभाईजीके द्वारा होनेवाला था, परंतु वे अपनी अस्वस्थताके कारण उक्त अवसरपर पधार नहीं पाये। भले उद्घाटनके अवसरपर श्रीभाईजीका शुभागमन नहीं हो पाया, परंतु कल्याण आश्रमके द्वारा आरम्भ किये गये धर्म-जागरण-कार्यकी सफलता हेतु उन्होंने बहुत बड़ी संख्यामें रामायण, गीता, हनुमानचालीसा आदि धार्मिक

पुस्तकें भिजवायी थीं।

कल्याण आश्रमको अपने धर्म-जागरण-कार्यमें उल्लेखनीय सफलता मिली और दिन-प्रति-दिन इसके कार्य-क्षेत्रका और प्रभाव-सीमाका विस्तार होता चला गया। कार्यकी प्रगतिको देखकर कल्याण आश्रमकी कार्य-पद्धतिको आदर्श रूपमें स्वीकार करके आसाम तथा भारतके अन्य वन्य भागोंमें धर्म-जागरण-कार्य होने लगा और आज भी हो रहा है। कार्यके विस्तार होनेके साथ-साथ हमें पद-पदपर आर्थिक कठिनाई तथा अन्य प्रकारकी बाधाओंका सामना करना पड़ता था। मैं अपनी अनेक समस्याओंका समाधान प्राप्त करनेके लिये सहयोगी श्रीमिश्रीलालजीके साथ गीतावाटिकामें श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये गया। वहाँ मेरे अभिन्न स्वजन श्रीभीमसेनजी चोपड़ा पहलेसे ही थे।

श्रीभाईजीका स्वास्थ्य बहुत ढीला था, इसके बाद भी उन्होंने मिलनेके लिये समय दिया और हमारी समस्या सुनी। हमारे कार्यकी पर्याप्त जानकारी श्रीचोपड़ाजीके माध्यमसे उन्हें थी, अतः हमलोगोंको कुछ विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। उन्होंने 'कल्याण' पत्रिकाके लेटर पैडपर एक ऐसा पत्रक लिखकर दिया, जिससे समाजमें हमारे उद्देश्यके प्रति श्रद्धा, हमारी योजनाके प्रति आस्था तथा हमारी समस्याके प्रति सहानुभूति जन-मानसमें जग सके और समाजके उदार बन्धु हमारे कार्यमें हर प्रकारसे सहयोग दे सकें। यह पत्रक भी टाइप करवाके नहीं, 'कल्याण' पत्रिकाके बड़े लेटर पैडपर व्यस्त होते हुए भी अपने हाथसे लिख करके दिया, जो स्वयंमें एक प्रकारका संकेत है कि श्रीभाईजीके मनमें धर्म-जागरण-कार्यके लिये कितनी अधिक महत्त्व भावना थी। वह पत्रक इस प्रकार है—

॥ श्रीहरिः ॥

'कल्याण'
गीताप्रेस, गोरखपुर
१९-८-१९७०

एक ऐसा कल्याणमय अतीत युग था, जब चराचर प्राणीमात्रमें एक आत्मा या एक भगवानको देखनेवाली पवित्र संस्कृतिका सर्वत्र प्रचार था। इस महान संस्कृतिकी साधन भूमि भारतवर्षके ऋषि-मुनि-महात्माओंकी शिक्षा विश्व भरमें आदरकी दृष्टिसे देखी और मानी जाती थी। आज वह युग नहीं है और दुर्भाग्यकी बात तो यह है कि पुण्यभूमि भारतवर्षमें इसकी सनातन संस्कृतिका ह्रास तेजीसे होता जा रहा है। इस समय तो शिक्षित कहलाने वाला भारतीय समाज इस पुण्य संस्कृतिके विरुद्ध आचरण करनेमें गौरव मान रहा है। यह दयनीय स्थिति अँग्रेजी शासनकालमें पैदा हो गयी थी और वन तथा पर्वतवासी जनतामें तो अपनी इस प्राचीन धर्माधिष्ठित संस्कृतिका सर्वथा लोप-सा होने लगा था। इस परिस्थितिका लाभ उठाकर सुदूर देशीय पाश्चात्य ईसाई-प्रचारकोंने उन लोगोंमें खीष्ट धर्मका प्रचार किया तथा लाखों-करोड़ों व्यक्तियोंको ईसाई बनाया। अवश्य ही ईसाई प्रचारकोंकी कार्य पद्धति बड़ी सराहनीय और आदर्श है।

इस ओर बहुत कम लोगोंका ध्यान गया था, पर बड़े सौभाग्यकी बात है कि गत कुछ वर्षोंसे

भारतके प्राचीन आदर्शोंसे अनुप्राणित होकर वनवासियोंमें कुछ संस्थाएँ कल्याणकारिणी भारतीय शुद्ध संस्कृतिका प्रचार-प्रसार कर रही हैं। ऐसे ही शुभ प्रयत्नका मंगलमय निदर्शन यह 'कल्याण आश्रम' है। शिक्षा संस्थानोंकी स्थापना, छात्रावासोंका निर्माण, शुद्ध आचरणका आदर्श क्रियात्मक रूपमें सामने रखने वाले आश्रमोंकी प्रतिष्ठा, रोगियोंकी सेवाकी सुव्यवस्था, मन्दिर और उपासना-स्थानोंका निर्माण, शुद्ध आचार-विचार, आध्यात्मिक शिक्षा, पवित्र खान-पान, सेवा भावनाका प्रचार, भगवानके भजन-कीर्तनमें रुचि उत्पादन, दैवी सम्पत्तिकी वृद्धिके लिये क्रियात्मक प्रयत्न, भारतीय संस्कृतिके प्रति श्रद्धा, सत्साहित्यका प्रचार आदि अनेक साधनोंके द्वारा 'कल्याण आश्रम' अपनी शक्तिभर इस उपेक्षित वनवासी जनताकी सेवामें लगा है। आश्रमके अध्यक्ष सम्मान्य श्रीदेशपाण्डेजी, संचालक श्रीकेतकरजी, मन्त्री श्रीतिवारीजी तथा अन्यान्य सदस्यगण सभी भगवानके कृपा पात्र हैं, जो वनवासी जनताकी सेवाके द्वारा भगवत्सेवाका पवित्र कार्य कर रहे हैं। मैं इस कार्यका हृदयसे समर्थन करता हूँ तथा इसके समस्त कार्यकर्ताओंके प्रति श्रद्धा प्रकट करता हुआ यह चाहता हूँ कि भगवान उन्हें इस कार्यमें सफलता प्रदान करें। साथ ही देशवासी सभी महानुभावोंसे मेरा अनुरोध है कि वे इस पवित्र कार्यमें यथायोग्य सहायता करके अपने साधनोंको सफल बनायें।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

यह पत्रक कल्याण आश्रमके लिये एक महान वरदान सिद्ध हुआ। इससे समाजके अग्रगण्य बन्धुओंका ध्यान हमारी ओर आकृष्ट हो सका और हमारे मार्गकी कठिनाइयाँ पर्याप्त अंशतक दूर हो गयीं। हमें अपने कार्यमें जो सफलता मिली और मिल रही है, उसका बहुत कुछ श्रेय श्रीभाईजीके सतत सहयोग और पूर्ण आशीर्वादको है। ■

श्रीयादवराव देशमुख

जागरणके लिये उद्बोधन

राष्ट्रीय विचारोंकी प्रचार करनेवाली पत्र-पत्रिकाओंमें 'पाञ्चजन्य' साप्ताहिकने महत्त्वपूर्ण गौरव प्राप्त कर लिया है। भारतीय संस्कृति एवं जीवन-पद्धतिका पोषक होनेके कारण हिन्दी जगतमें इसका मुख्य स्थान है। 'पाञ्चजन्य'का प्रकाशन पहले लखनऊ नगरसे होता था। इस साप्ताहिक पत्रमें प्रकाशित होनेवाली सामग्रीको समृद्ध बनानेके लिये, इसके पाठकोंकी संख्याको बढ़ानेके लिये, प्रभाव-क्षेत्रका विस्तार करनेके लिये तथा प्रचार-स्तरको समुन्नत बनानेके लिये यह सोचा गया कि इसका प्रकाशन यदि दिल्लीसे हो तो उत्तम रहेगा। दिल्ली भारतकी राजधानी है, अतः उपर्युक्त हेतुओंकी सिद्धि सरलतासे हो सकेगी। इसे क्रियान्वित करनेमें अनेक कठिनाइयाँ थी, फिर भी पत्रके सुन्दर.भविष्यका विचार करके यह निर्णय ले लिया गया कि 'पाञ्चजन्य'को लखनऊसे दिल्ली स्थानान्तरित कर दिया जाना चाहिये।

सन् १९६८ में 'पाञ्चजन्य' अपना इक्कीसवाँ वर्ष पूर्ण करके बाइसवें वर्षमें प्रवेश करने वाला था। इस अवसरको स्थानान्तरणके लिये उपयुक्त समझा गया। इतना ही नही, २१ वर्षोंतक 'पाञ्चजन्य' द्वारा जो समाज-सेवा हुई, उसका आकलन करनेके लिये तथा इन

सेवा-कार्योंका अभिनन्दन करनेके लिये भी यह एक उपयुक्त अवसर था। एतदर्थ एक समितिका गठन कर लिया गया। उसका नाम था 'पांञ्चजन्य स्नेहाभिनन्दन समारोह समिति'।

हमलोगोंकी चाह थी कि विख्यात धार्मिक पत्रिका 'कल्याण'के धर्म-प्राण यशस्वी सम्पादक पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार इस समितिके अध्यक्ष-पदको स्वीकार कर लें। उनके सम्पादकीय सार्वजनिक जीवन एवं आध्यात्मिक वैयक्तिक जीवनके द्वारा हिन्दू समाज, हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू वाङ्मय, हिन्दू आदर्शोंको जितना और जैसा संरक्षण एवं पोषण प्राप्त हुआ है, उसको देखते हुए अध्यक्ष-पदके लिये सर्वाधिक श्रेष्ठ यही लग रहा था। उनसे अनुरोध करनेके लिये मैं लखनऊसे गोरखपुर गया। काशी हिन्दू विश्व-विद्यालयके मेरे सहपाठी तथा भावी जीवनके मेरे प्रिय मित्र श्रीराधेश्यामजी बंका इन दिनों 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागके सदस्यके रूपमें श्रीपोद्दारजीके पास ही रहते थे। श्रीबंकाजीके माध्यमसे मैं श्रीपोद्दारजीसे मिला।

'पाञ्चजन्य' पहलेसे ही प्रति सप्ताह श्रीपोद्दारजीके पास आया करता था। उसका परिचय देनेकी मुझे आवश्यकता नहीं थी। उसके स्थानान्तरणके महत्त्व को बतलाते हुये 'पाञ्चजन्य स्नेहाभिनन्दन समारोह समिति'के अध्यक्ष-पदको स्वीकार करनेके लिये मैने उनसे विनम्र प्रार्थना की।

मेरी बातोंको सुनकर श्रीपोद्दारजीने 'पाञ्चजन्य'के कार्योंकी सराहना की और उसके प्रकाशनकी आवश्यकताका प्रतिपादन किया, परन्तु साथ ही अपनी व्यस्तता-अस्वस्थता-एकान्तप्रियताके कारण अध्यक्ष-पदके लिये विवशता भी व्यक्त की। श्रीपोद्दारजीकी विवशताको मैं अच्छी प्रकारसे समझ रहा था। इसकी भनक गोरखपुर आनेपर श्रीबंकाजीसे बात करते समय मुझे भली प्रकार मिल गयी थी, पर मैं यह भी समझ रहा था कि इस अध्यक्ष-पदके लिये पूज्य श्रीपोद्दारजी जैसा अन्य महान व्यक्ति भला कहाँ मिलेगा? वे हिन्दुत्वके मूर्तिमान स्वरूप थे तथा अपनी आध्यात्मिक उपलब्धियोंके कारण सभीके लिये वन्दनीय बन गये थे, इसके साथ-साथ 'कल्याण'के सम्पादकके नाते उन्होंने पत्रकारिताके जिस आदर्श स्तरकी प्रतिष्ठा की थी, उसको देखते हुए यह बात मेरे मनमें बार-बार आ रही थी कि यदि श्रीपोद्दारजी अध्यक्ष-पदको स्वीकार कर लें तो बड़ा उत्तम हो। उन्होंने अनेक बार अपनी विवशता व्यक्त की, पर हिन्दू समाजके हितकी दृष्टिसे मैं रह-रह करके उनसे अनुरोध करता रहा। आग्रहभरे मेरे अनुरोधको देखकर उन्होंने अध्यक्ष-पदके लिये स्वीकृति दे दी। यह बात मेरे ध्यानमें आ गयी कि उन विवशताओंके होते हुये भी मेरे मनको रखनेके लिये उन्होंने यह स्वीकृति प्रदान की है। मेरा मन प्रसन्नतासे भर गया।

श्रीपोद्दारजीने कहा— आप अध्यक्षके रूपमें मेरा नाम तो दे रहे हैं, पर मुझे ऐसा नहीं लगता कि समितिके समारोहके अवसरपर मैं उपस्थित हो पाऊँगा। मेरे साथ जो बाधाएँ लगी हुई हैं, उसीके आधारपर मेरा ऐसा अनुमान है।

मैंने निवेदन किया— आपका अध्यक्षीय-संदेश लिखित रूपमें हमें मिल जायेगा, वही हम लोगोंको पर्याप्त मार्ग-दर्शन एवं प्रेरणा प्रदान करेगा।

श्रीपोद्दारजीसे अध्यक्ष-पदके लिये स्वीकृति प्राप्त करके मैं तो लखनऊ वापस चला गया।

बादमें श्रीपोद्दारजीने जो संदेश भेजा, उसमें सामाजिक जीवनके क्षेत्रमें पत्रकारिताके महान दायित्वका, हिन्दू समाजकी वर्तमान दुरवस्थाके कारणोंका, महान भारतके विभाजनके महापापका और हिन्दू संस्कृतिके संरक्षणके अमोघ उपायका वर्णन बड़े स्पष्ट शब्दोंमें किया गया है। श्रीपोद्दारजीसे प्राप्त संदेशका महत्त्वपूर्ण अंश इस प्रकार है—

पत्रकारिता वास्तवमें एक महान सेवाका कार्य है, पर है बहुत बड़े दायित्वका। पत्रके द्वारा समाजका, देशका, विश्वका, प्राणिमात्रका हित साधन किया जा सकता है। सबके सुख तथा हितके लिये सत्प्रेरणा देकर सबको सबके सुख-हित-संपादनमें लगाया जा सकता है, सबमें एक आत्मा या भगवानकी अनुभूतिकी बात समझाकर सबमें आत्मीयता तथा विशुद्ध प्रेमका विस्तार किया जा सकता है।

ऐसे सुन्दर स्वस्थ विचारोंका प्रचार किया जाय, जो सर्वभूत हित-कारक हों, सदाचारके प्रवर्तक हों और सादगी, मितव्ययिता एवं उच्च चरित्रका निर्माण करने वाले हों। वे विचार और भाव संयम, नियम, सेवा, त्याग तथा कर्तव्यपालनके लिये उत्साह दिलाने वाले हों और वीरता, निर्भयता, धैर्य तथा आनंदके साथ पर-हितार्थ बलिदानकी भावना जगाने वाले हों। धन कमानेका साधन न हो, अपितु सुन्दर स्वस्थ सुझावोंके प्रचारका साधन हो।

दायित्व-ज्ञान-संपन्न, बुद्धिमान, यथार्थ तथा लोक-कल्याणकारी पत्रकार महानुभाव तो इन सब बातोंपर ध्यान रखते ही हैं। पत्रकार मात्र इसे ध्यानमें रखें, यह विनीत प्रार्थना है। इन सब बातोंपर ध्यान रखकर चलनेमें ही वस्तुतः मानवता है। यही व्यवहार यथार्थमें धर्म है और सर्वभूत हितकर हिन्दू धर्म है।

हमारे वेदों, उपनिषदों, पुराणों, शास्त्रोंमें संतवाणियाँ भरी पड़ी हैं। इसीसे हमारा प्रत्येक कार्य इस अध्यात्मकी भूमिकापर स्थित है, इसीसे धर्म और मोक्षके साथ हमारे अर्थ और काम भी पुरुषार्थ-चतुष्टयमें सम्मिलित है, अर्थात् अर्थ और काम धर्मसे नियंत्रित हैं और उनका भी लक्ष्य मोक्ष है। इसीसे महात्मा गाँधीने कहा था कि उनकी यह स्वराज्य-साधना स्वराज्यके लिये नहीं, अपितु मोक्ष-प्राप्तिके लिये है। इसीसे वे सबसे निर्वेर, हिंसा-वृत्ति-रहित राजनैतिक आन्दोलनमें प्रवृत्त थे। वस्तुतः हमारी भारतीय राजनीति कभी धर्म-रहित नहीं रही। धर्मके आधारपर ही इनका निर्माण, संचालन और व्यवहार होता रहा। इसीसे हमारे सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओंके मन्त्री-मण्डलमें ऋषि, महर्षि रहे और वस्तुतः राजा भी उन्हीं त्यागी, आत्मानुभवी, धर्मपरायण ऋषियोंके अनुशासनको मानते हुए उन्हींके द्वारा धर्ममय प्रवर्तमान राजनीतिका पालन करते रहे। परन्तु दुर्भाग्यसे पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षाके कुप्रभावसे हमने अपना मस्तिष्क विदेशियोंके हाथ बेच दिया। हमारी नीयत बुरी नहीं, परन्तु हमारी मनोवृत्ति ही परमुखापेक्षी तथा परानुकरण-परायण हो गयी। इसीके फलस्वरूप महान भारतके विभाजनका महापाप हुआ। हमारे शास्त्रोंमें वर्णित राजनीतिकी शास्त्रीय पद्धतिकी ओरसे सर्वथा अपरिचित रहकर और उसीके फलस्वरूप सेक्युलर (धर्मनिरपेक्ष), दूसरे शब्दोंमें धर्मरहित राज्यका निर्माण करके हमने अपनी सर्वभूतहितकारिणी महान संस्कृतिके प्रति महान अवज्ञा प्रकट की। देश स्वतंत्र हुआ, पर हम स्वतंत्र नहीं हुए। हमारे मस्तिष्कमें दासत्व ज्यों-का-त्यों बना रहा।

'स्वत्व'के त्याग रूप मोहके कारण 'धर्म-निरपेक्षता' या सेक्युलरवादके नामपर देशमें इन

विगत वर्षोंमें जिस प्रकार स्वधर्म तथा भारतीय संस्कृतिका तिरस्कार और उसपर कुठाराघात किया गया और किया जा रहा है, वह अत्यन्त शोचनीय है। यहाँतक हो गया है कि भारतको हिन्दू राष्ट्र घोषित करनेकी बात तो दूर रही, हम अपने धर्मसे इतने अपरिचित हो गये हैं या उसके प्रति इतने अश्रद्धालु तथा द्वेषी बनाये जा रहे हैं कि आज हमें विश्वके अनादि, सबसे विलक्षण, अत्यन्त उदार, स्वभावसे ही सबका हित-सुख-चाहने वाले हिंदू धर्म तथा हिंदू संस्कृतिमें संकुचितता और हीनता दिखलायी देने लगी है और हम अपनेको हिंदू कहनेमें भी हिचकने लगे हैं कि कहीं हमारे सेक्युलरिज्यमें बाधा न आ जाय। कितना दुर्भाग्य है !

ऐसे कुसमयमें कुछ महानुभवोंने परम उदार आत्मधर्म रूप हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू गौरव, हिन्दू परम्परा तथा हिन्दू आदर्शकी रक्षाके लिये बीड़ा उठाया। विविध क्षेत्रोंमें विविध प्रकारसे संस्कृति-रक्षाके कार्य सम्पन्न हुए और हो रहे हैं। इन्हीमेंसे एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है हमारे 'पाञ्चजन्य'का। हिन्दू संस्कृतिको उड़ा ले जाने के लिये प्रवृत्त काली आँधीके विरुद्ध 'पाञ्चजन्य'ने इस प्रकार प्रकाश-ध्वनिका विस्तार किया है, जिससे आँधीमें रुकावट भी आने लगी है। अवश्य ही 'पाञ्चजन्य'के २१ वर्षके जीवनमें इसका अपने ही शासकों द्वारा तिरस्कार किया गया, आघात भी हुए, पर भगवानकी कृपासे यह धीरता, वीरता तथा साहसके साथ सबका सामना करता रहा एवं इसकी लोकप्रियता और प्रचार बढ़ता ही गया और हर्षका विषय है कि इस समय देशके प्रत्येक स्थलमें कोने-कोनेमें इसका जागृति करनेवाला गंभीर स्वर गूँज रहा है, जिससे जनतामें अपनी संस्कृतिके प्रति आस्था, अनुराग, श्रद्धा और कर्तव्य-परायणताके भाव सक्रिय रूपमें उदित और वर्धित हो रहे हैं। भगवान इसकी बाधाओं, त्रुटियोंको दूर करें और इसे विशुद्ध संस्कृति-परायण बनाकर धर्म तथा संस्कृतिकी रक्षाके लिये विशेष बल प्रदान करें और पूर्ण सफलता दे, यह भगवानसे मेरी प्रार्थना है।

मैं इस स्नेहाभिनन्दन समारोहके संयोजकोंके कार्यकी प्रशंसा करता हुआ उनको सफलताके लिये बधाई देता हूँ और समारोहमें सम्मिलित न हो सकनेकी अपनी विवश स्थितिके लिये क्षमा प्रार्थना करता हूँ। ■

श्रीगोकुलदासजी डागा

सरलताकी मूर्ति

बात सन् १९५४ की है। पूज्य स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजकी प्रेरणासे गोहत्या-निरोध-आन्दोलन कलकत्तामें चल रहा था। ऐसा समाचार मिला कि किसी कार्यवश पूज्य भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार कलकत्ता आये हुए हैं। स्थानीय नवयुवक कार्यकर्ताओंने उनकी उपस्थितिका लाभ उठाना चाहा और इसके लिये एक प्राइवेट मीटिंगका आयोजन किया गया। उस मीटिंगमें पधारनेके लिये श्रीभाईजीसे प्रार्थना की गयी।

दिनके तीन बजे मीटिंग प्रारम्भ होनेवाली थी। पूज्य भाईजीके अलावा कुछ विशिष्ट कार्यकर्तागण भी आमन्त्रित थे। सभी लोग भाईजीके इन्तजारमें थे। अन्तमें करीब साढ़े तीन बजे एक सज्जन बोल उठे— भाईजी न मालूम आयें या न आयें या कब आयें, पर अपनी मीटिंग

चालू कर देनी चाहिये।

इतनेमें कमरेके द्वारके पास ही बैठा हुआ सीधा-सादा लिवास पहने एक व्यक्ति बोल उठा— मैं तो आ गया हूँ।

सुनते ही हम सब अवाक् रह गये। हममेंसे कोई भी व्यक्ति भाईजीको चेहरेसे नहीं पहचानता था, अतः सीधे-सादे व्यक्तिको द्वारके पास बैठा हुआ देखकर हमलोगोंने न तो कोई आपत्ति की और न ज्यादा परिचय लेनेकी आवश्यकता समझी। जब यह मालूम हुआ कि ये ही हैं पूज्य भाईजी, तब हम सभी बड़े शर्मिन्दा हुए। फिर आदरपूर्वक उनके लिये निश्चित स्थानपर उन्हें बैठाया गया। ■

बाबू श्रीगंगासिंहजी

क्रिया द्वारा शिक्षा

परमपूज्य श्रीभाईजीसे मेरा सम्बन्ध सन् १९२८ ई. में हुआ। उनके स्वभाव, गुण एवं अत्यन्त आत्मीयता और प्यारभरे व्यवहारसे वह उत्तरोत्तर घनिष्ठ होता गया। उनके साथकी अनेकों सुखद एवं प्रेरणाप्रद स्मृतियाँ हैं।

एक बार भाईजी अपनी मौजसे लेटे हुए थे। मैं उनके बिलकुल समीप बैठा हुआ था। मैंने उनके शरीरपर एक तिनका पड़ा हुआ देखा तो उसे उठाकर फेंक दिया। उन्होंने पूछा— क्या है ?

मैंने कहा— कचरा था।

इसपर वे बोले— शरीर भी कचरा ही है, कचरेपरसे कचरेको उठाकर क्या फेंकना ?

उनके इस कथनसे मुझे पता चला कि वे शरीरके प्रति कितने तटस्थ थे। श्रीभाईजी छोटे-से-छोटे कामको करनेमें भी संकोचका अनुभव नहीं करते थे, बल्कि उस कार्यको उत्साहपूर्वक करके एक आदर्श स्थापित कर देते थे। जब मैं 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादकीय विभागमें कार्य करता था, तब हमलोग कुएँपर स्नान किया करते थे। कुआँ आफिसके समीप था। आफिस जाते समय श्रीभाईजी जान-बुझकर उधरसे नहीं निकलते थे, इसीलिये कि लोगोंको संकोच होगा और इनके स्वच्छन्द स्नानमें बाधा आयेगी। एक दिन जब और लोग नहीं थे, मैं अकेला ही था, वे कुएँके समीप चले आये। उन्होंने देखा कि स्नान करनेवाले सज्जनोंने नीमकी दातुन करके दातुनोंको जिस डिब्बेमें डालना चाहिये, उसमें न डालकर इधर-उधर फेंक दिया है। इस प्रकार यत्र-तत्र पड़े हुए दातुनोंसे गन्दगी फैल रही थी। उन्हें यह अच्छा नहीं लगा और वे अपने हाथसे दातुन उठा-उठाकर उस डिब्बेमें डालने लगे। मैंने कहा— भाईजी, आप यह क्या कर रहें हैं ? आप रहने दीजिये।

इतना कहकर मैं भी दातुन उठा-उठाकर डिब्बेमें डालने लगा, पर श्रीभाईजी इस कार्यसे विरत नहीं हुए और वे दातुन तबतक उठाकर डिब्बेमें डालते रहे, जबतक दातुन समाप्त न हो गये। पीछे लोगोंको श्रीभाईजीकी इस चेष्टाका पता चला और सब यथास्थान ही दातुन डालने लगे। यह था उनका किसीको अपने कर्तव्यका बोध करानेका तरीका। उन्हें जो कहना था, वह

उन्होंने वाणीसे नहीं, क्रियासे कहा। ■

पं. श्रीनर्मदेश्वरजी चतुर्वेदी

[१] मेरी धारणा बदली

श्रीछबीलेलाल गोस्वामी, श्रीशान्तनुविहारी द्विवेदी, श्रीभुवनेश्वर मिश्र 'माधव', श्रीसुदर्शनजी प्रभृति का जब स्मरण हो आता है तो चित्त अनायास ही गीतावाटिकाके गौरवपूर्ण अतीतमें खो जाता है। उस गरिमामय गीतावाटिकाके प्राण भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके नाम और कामसे तो मैं थोड़ा-बहुत किशोरावस्थासे ही परिचित हो चला था, किन्तु उनके दर्शन करनेका सुयोग बहुत बादमें मिला। उनके क्रान्तिकारी जीवनके प्रति मेरे मनमें सहज सम्मानका भाव था, किन्तु उनके क्रिया-कलापसे मुझे पुनरुत्थानवादी मनोवृत्तिका आभास मिलता था और मैं आमूल क्रान्तिका पक्षधर था, इसलिये उनके प्रति आदर भाव होते हुए भी मैं उनसे मिलनेके लिये अधिक आतुर न था, परंतु जब मैं उनसे मिला तो मेरी पूर्व धारणा भ्रान्त सिद्ध हुई। उस क्रममें मैं यह जान सका कि श्रीभाईजी वस्तुतः उन दिग्भ्रमित तथा कथित बुद्धिजीवियोंको भी सही दिशामें प्रबुद्ध एवं जागरूक बनानेमें लगे हैं, जो जाने-अनजाने राष्ट्र-विरोधी कार्योंमें रत हैं, जो धर्मके मर्मको नहीं समझते और जो सांस्कृतिक जीवनधाराके प्रति उदासीन हैं। भाईजीकी यह सूझबूझ भले ही नितान्त मौलिक न हो, पर मुझे पूर्णतः व्यावहारिक लगी और मैं उनके उद्देश्योन्मुखी कार्योंके प्रति उत्तरोत्तर श्रद्धालु होता चला गया।

मैं कभी-कभी अनुकूल अवसर पाकर भाईजीके समक्ष मुखर हो जाया करता था। ऐसे ही एक बार मैं पूछ बैठा था— क्या स्वार्थमूलक व्यवस्थाके रहते हुए परमार्थपरक सद्वृत्तियोंको फूलने-फलनेके लिये कभी अवसर या अवकाश मिल पायेगा?

यह सुनकर उन्होंने सहज मुस्कानके साथ कहा था— भूतलपर मानव प्रवर्तित कोई भी व्यवस्था अपरिवर्तनीय नहीं है। कालक्रमसे वह अपनी उपयोगिता गवाँकर निरस्त हो जायेगी। विधिका यह विधान ऐसा ही है, जिसका कोई अपवाद ढूढ़े न मिलेगा। काल सबका निर्णायक होता है।

भिन्न-भिन्न अवसरोंपर ऐसे जो अनेक प्रबोधक एवं प्रेरक उत्तर मुझे सुननेको मिले, उसके फलस्वरूप मेरी धारणामें धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा और क्रमशः मुझे श्रद्धालु बना लिया उनके रचनात्मक महान कार्योंने।

[२] उनका योगदान

भाईजीका स्मरण आते ही उनकी स्मृतिके चित्र कई रूपों और रंगोंमें उमड़कर चल-चित्रकी भाँति मानस-पटलपर तरंगायित हो जाते हैं और वे हैं एक-से-एक बढ़कर मोहक एवं आकर्षक। उनके सम्पर्कमें आना सञ्चित शुभ कर्मोंका सुफल था। उनसे एक बार मिलकर उन्हें भुलाया नहीं जा सकता था। ऐसा लगता था जैसे किसी आत्मीयसे मिल रहे हैं।

विद्यावारिधि महामहोपाध्याय पण्डित श्रीगोपीनाथजी कविराजको अभिनन्दन ग्रन्थ अर्पित

करनेकी योजना बनायी गयी। सीमित साधनोंसे कार्यारम्भ तो हुआ, किन्तु अर्थाभावके कारण उसमें बाधा पड़ने लगी। डा. श्रीसम्पूर्णानन्दका ध्यान जब इस ओर आकर्षित हुआ, तब उन्होंने स्वभावतः भाईजीसे भी सम्पर्क करनेका सुझाव दिया। श्रीगोपालचन्द्र सिंहने दिल्लीसे अपनी कारद्वारा ऋषिकेश साथ चलनेके लिये मुझे प्रेरित किया। हमलोग श्रीभाईजीसे गीताभवनमें मिले। हमारी सुख-सुविधाका उन्होंने बहुत ध्यान रखा। भाईजीका आतिथ्य भारतीय आदर्शोंके अनुरूप था। दूसरे दिन जब हम बिदा होने गये, तब भाईजीने हमें भाव-भीनी ममताभरी बिदाई दी। उनका अर्थगर्भित योगदान हमारी योजनाके कार्यान्वयनमें बड़ा सार्थक सिद्ध हुआ। ■

श्रीसत्यदेवजी ब्रह्मचारी

मेरे पथ-प्रदर्शक

संन्यास-आश्रम ग्रहण करनेपर भी मैं प्रायः सार्वजनिक हितके कार्योंमें रुचि लेता रहा हूँ। जब कभी संघर्ष या कर्तव्याकर्तव्यके निर्णयकी कठिन स्थिति आती, मैं श्रीभाईजीसे सलाह लेता और वे कृपापूर्वक मेरा पथ-प्रदर्शन करते।

श्रीभाईजीकी आत्मीयता ऐसी थी कि उसके स्मरण मात्रसे हृदय द्रवित हो जाता है। पिछले दिनों 'भारतीय चतुर्धाम वेदभवन न्यास'की स्थापनाके सम्बन्धमें उड़िसाके भुवनेश्वरमें चर्चा चली तो वहाँके मुख्य मंत्री श्रीविश्वनाथदासजीकी आँखोंसे आँसू झरने लगे। उन्होंने कहा—पहले मेरा विचार केवल बदरीनाथधाममें ही वेद-भवन स्थापित करनेका था। चारों धामोंमें वेद-भवन स्थापित करनेका प्रयास श्रीभाईजीकी ओरसे ही हुआ।

मैं भी श्रीभाईजीके आदेशानुसार ही निष्कामभावसे 'वेद-भवन-न्यास'का कार्य देख रहा हूँ। मेरा विश्वास है कि श्रीभाईजीकी प्रेरणासे ही 'वेद-भवन-न्यास'का कार्य हो रहा है। ■

सौ. श्रीगिनियाबाई नेमानी

भावीका आभास

बम्बईके श्रीभगवानदासजी सिंहानियाकी बहिन सोहनीबाईका विवाह मेरे बड़े भाई श्रीमन्नालालजी खेतानसे हुआ था। मेरी भाभीजी सोहनीबाई स्वभावसे बड़ी सौम्य, विचारमें बड़ी उदार, बोलीमें बड़ी मधुर और पड़ोसियोंके प्रति बड़ी विनम्र थीं। कुलदेवी भगवती दुर्गाके प्रति उनकी बड़ी निष्ठा थी और ऐसा लगता है कि श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के प्रति श्रद्धाका भाव उन्हें अपने भाई श्रीभगवानदासजीसे महानिधिके रूपमें प्राप्त हुआ था। भाभीजीकी श्रीभाईजीके प्रति अगाध श्रद्धा थी। क्या भाभीजी और क्या मन्ना भइया, दोनों ही बड़े श्रद्धालु थे।

सन् १९६६ में भाभीजी बहुत रुग्ण हो गयीं। उनका इलाज बम्बईमें हो रहा था। चिकित्सा और सेवामें कोई कमी नहीं थी, पर रोग घटनेके बजाय बढ़ता ही जा रहा था। डाक्टरोंने एक

प्रकारसे जवाब दे दिया। भाभीजी भी अपने रोगसे तंग आ गयी थीं। उन्होंने यह इच्छा प्रकट की– मुझे गोरखपुर ले चलिये। मैं श्रीभाईजीके पास जाऊँगी। एक आशा है कि उनके पास जानेसे शायद मैं ठीक हो जाऊँ। यदि मृत्यु भी आ गयी तो उनकी कृपासे मेरी सुगति हो जायेगी। मुझे बार-बार उनकी याद आ रही है। मैं श्रीभाईजीके पास जाना चाहती हूँ।

भाभीजीको गोरखपुर लाया गया। गीतावाटिकामें श्रीराधाष्टमी महोत्सवकी भीड़ थी, इसके बाद भी श्रीभाईजी भाभीजीको देखनेके लिये वाटिकासे शहर आये, एक बार नहीं, कई बार आये। अपने सामने गोरखपुरके अच्छे-अच्छे डाक्टरों और वैद्योंको दिखलाया एवं अपने पाससे भी दवाएँ दी। श्रीभाईजीको स्वयं भी चिकित्साका अच्छा ज्ञान और अनुभव था। मेरे ममेरे भाई श्रीराधेश्यामजी बंका भी श्रीभाईजीके पास गीतावाटिकामें रहा करते थे। श्रीभाईजीकी आज्ञासे राधेश्याम भइया रोज शहर आकर भाभीजीको 'रामरक्षास्तोत्र' सुनाया करते थे।

भाभीजीका रोग कुछ ठीक होनेके ढंगपर आ गया। वे कुछ-कुछ चलने-फिरने लगीं। एक दिन भाभीजीने कहा– अब मुझे घर पड़रौना ले चलिये।

पड़रौना गोरखपुरसे लगभग ४५ मीलकी दूरीपर है। मन्ना भइया उनको गोरखपुरसे पड़रौना ले आये। पड़रौना आनेपर भाभीजी कुछ दिन ठीक रहीं, पर फिर बीमार पड़ गयीं। चिकित्सा तो हो रही थी, पर बीमारी बढ़ती चली गयी। भाभीजीको देखनेके लिये श्रीभाईजी पड़रौना दो-तीन बार आये। अन्तिम बार जब आये, उस दिन भाभीजीकी हालत नाजुक थी। कुछ भी खाना-पीना हो नहीं पाता था। कुछ भी निगलनेमें बड़ी कठिनाई होती थी। श्रीभाईजीने मोसम्बीका रस मँगवाया और अपने हाथसे एक-एक चम्मच करके उन्हें पिलाया। हम लोगोंको आश्चर्य हो रहा था कि जो भाभीजी कई दिनसे कुछ निगल नहीं पा रही थीं, वह आज रस कैसे ले पा रही हैं। जब श्रीभाईजी चलने लगे तो उन्होंने कहा– तुलसी पत्तेको गंगाजलमें पीसकर बूँद-बूँद इसके मुँहमें देना चाहिये।

मेरी माँ श्रीभाईजीको भगतजी कहा करती थीं। माँने उनसे कहा– भगतजी! सोहनीका आपपर बड़ा विश्वास है। आपका चित्र उसने अपने सिरहाने रख रखा है। जब-तब आपको याद करती रहती है और नाम लेती रहती है। आप उसे ठीक कर दें।

श्रीभाईजीने मधुर स्वरमें उत्तर दिया– माँजी! ठीक होनेके बारेमें मैं क्या कहूँ? मेरा विश्वास है कि भगवान मंगल ही करेंगे। उनके प्रत्येक विधानमें मंगल-ही-मंगल है।

मेरी माँको सान्त्वना देनेके लिये राधेश्याम भइयाने कहा– बुआ! वह ठीक हो जायगी। तुम क्यों घबरा रही हो?

श्रीभाईजी कुछ बोले नहीं। वे राधेश्याम भइयाके साथ गोरखपुर वापस चले गये। मार्गमें उन्होंने राधेश्याम भइयासे कहा– यह तुमने कैसे कहा कि वह ठीक हो जायेगी। क्या तुम उसका प्रारब्ध या भविष्य जानते हो? पता नहीं भगवानको क्या अभीष्ट है।

राधेश्याम भइयाने अनुभव किया कि ऐसा कहना ठीक नहीं था। १७ सितम्बर १९६८ को भाभीजीकी तबीयत ज्यादा खराब हो गयी। भाभीजीने कहा– मेरा जी बहुत घबरा रहा है। मुझे गोरखपुर श्रीभाईजीके पास ले चलो।

छोटी भाभीजीने उनसे कहा– आपकी तबीयत इतनी खराब है कि गोरखपुर ले चलना

सम्भव नहीं। आप कहें तो टेलीफोनसे आपकी बात उनसे करा दी जाय।

वह तो किसी प्रकार श्रीभाईजीसे मिलना चाहती थीं। यदि दर्शन सम्भव नहीं है तो कम-से-कम बात हो जाय। तुरन्त टेलीफोनसे सम्पर्क स्थापित किया गया। फोनपर भाभीजी श्रीभाईजीसे बड़े करुण स्वरमें कहने लगीं— बड़ी तकलीफ हो रही है। अब सहा नहीं जाता। मुझे आप अपने श्रीचरणोंमें कब ले लेंगे?

श्रीभाईजीने बड़े प्यार-भरे, वात्सल्य-भरे स्वरमें कहा— बाई! घबरा मत। थोड़ा धीरज रख। अब देर नहीं है। बस, दो दिनका कष्ट और है।

टेलीफोनका तीन मिनट पूरा हो गया और उस बातचीतमें विराम आ गया। सचमुच श्रीभाईजीने ठीक ही कहा था और दो दिन बाद १९ सितम्बर १९६८ को भाभीजी हम लोगोंके पाससे सदाके लिये 'विदा' होकर चिर विश्रामके लिये उनके श्रीचरणोंके पास चली गयीं। श्रीभाईजीको बड़े खिन्न मनसे मन्ना भइयाने टेलीफोन द्वारा शोक संवाद दिया। अगले दिन २० सितम्बरको श्रीभाईजी गोरखपुरसे पड़रौना गये परम श्रद्धालु भाभीजीके 'पाञ्चभौतिक अवशेष' को अभिमन्त्रित जलसे अभिषिक्त करनेके लिये और फिर श्रीभाईजी उनकी शवयात्रामें भी सम्मिलित हुए। ऐसे थे वे निज-जन-वत्सल। ■

श्रीबनवारीलालजी नेमाणी

व्यवहार और संतत्व

श्रद्धेय श्रीभाईजीकी दौहित्री आदरणीया श्रीपुष्पाबाईका श्वसुरालय कहलानेका मंगल अवसर विहार प्रदेशके गिरिडीह नगर निवासी भरतिया परिवारको मिला, पर विवाहके पूर्व जब सुयोग्य वरकी खोज हो रही थी, तब खोज करने वालोंकी निगाहमें हमारा नेमाणी परिवार भी आया था। हमलोगोंको भी श्रद्धेय श्रीभाईजीके परिवारसे ऐसा सम्बन्ध हो जाना बड़ा प्रिय था। पहलेसे ही हमारे नेमाणी परिवारसे श्रद्धेय श्रीभाईजीका बड़ा घनिष्ठ सम्पर्क रहा है।

जब बम्बईमें श्रद्धेय श्रीभाईजीने अपना व्यावसायिक जीवन आरम्भ किया था, तब हमारे सम्मान्य चाचाजी श्रीगुलावरायजी नेमाणीकी साझेदारीमें हुआ था और यह व्यवसाय था रूईकी दलालीका। श्रीचाचाजी तो श्रद्धेय श्रीभाईजीके परम मित्र थे। उन्होंने अपने जीवनके अन्तिम कई वर्ष श्रद्धेय श्रीभाईजीके पास गीतावाटिकामें रहते हुए बिताये थे। जब परम पूज्य श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) की प्रेरणासे बम्बईमें सत्संगका शुभारम्भ हुआ तो यह सत्संग हमारी नेमाणी बाड़ीमें होता था। हमारे कुलके वरिष्ट परम पूज्य पर-दादाजी श्रीशिवनारायणजी नेमाणीने अपनी बाड़ी सत्संगके लिये दे दी और श्रद्धेय श्रीभाईजी वहाँ प्रवचन दिया करते थे। यह प्रवचन प्रतिदिन होता था। मारवाड़ी अग्रवाल सभाका सातवाँ अधिवेशन जब फतेहपुर (सीकर) में हो रहा था, तब उसके सभापति हमारे परम पूज्य पर-दादाजी थे और उसका सभापति-भाषण श्रद्धेय श्रीभाईजीने ही लिखकर तैयार किया था। इस प्रकारके और भी कुछ प्रसंग बतालाये जा सकते हैं, पर कहनेका तात्पर्य यही है कि श्रद्धेय श्रीभाईजीके साथ हमारे परिवारका बड़ा निकट सम्पर्क रहा है।

एक ओर श्रद्धेय श्रीभाईजीसे ऐसी निकटता और दूसरी ओर उनका महान संतत्व, अतः हमलोग भी चाहते थे कि यह सगाई तय हो जाय तो हर प्रकारसे अति उत्तम होगा। जब सम्बन्धको निश्चित करनेकी बात चलने लगी तो यह बात बहुत ज्यादा आगेतक बढ़ गयी थी, पर बहुत आगेतक बढ़ी हुई बात भी अनुकूल निर्णयकी सीमातक पहुँच नहीं पायी। सम्बन्धका संयोग तो प्रारब्धके अधीन होता है। बस, यही कहना चाहिये कि सम्बन्धका संयोग नहीं बन पाया।

इस सारी बातचीतके बीच एक विचित्र तथ्य देखनेको मिला। कन्या-पक्षके होकर भी श्रीभाईजीने एक बार भी आग्रह नहीं किया कि आप लोग यह सम्बन्ध स्वीकार कर ही लें। सांसारिक व्यक्तियोंके जीवनमें प्रायः यह देखा जाता है कि कन्या-पक्ष वालोंके मनमें सम्बन्धको पक्का कर देनेकी उतावली बनी रहती है, पर श्रद्धेय श्रीभाईजीने एक बार भी अपनी रुचि हमलोगोंपर थोपनी नहीं चाही। कन्याके अभिभावकके नाते सम्बन्ध हो जानेकी चाह मनमें होते हुए भी उन्होंने सदा इसी बातको महत्त्व दिया कि वर-पक्ष वाले मेरी रुचि नहीं, अपनी रुचिको सर्वोपरि स्थान दें। व्यावहारिक जीवनमें ऐसा संतत्व भला कहाँ देखनेको मिलता है? ■

श्रीरामप्रसादजी दीक्षित (जज साहब)

अहैतुक प्यार देते रहे

प्रथम भेंटमें ही मैंने श्रीभाईजीका सहज सौहार्द प्राप्त किया। पीछे जब-जब मैं उनसे मिला, उन्होंने वही प्रेम-वर्षा मुझपर की। मुझे वे अपने अनुजके रूपमें मानकर वैसा ही व्यवहार करते। कभी भी मुझसे न कुछ चाहा, न कभी लिया, अपितु सदा देते ही रहे। जीवनकी अनेकानेक घटनाएँ हैं, जिनमेंसे दो-चार पंक्तिबद्ध करता हूँ।

उनसे मिलनेके दो वर्ष पश्चात् मैं बीमार पड़ा। दशा बिगड़ती ही गयी और डाक्टर भी निराश होने लगे। मेरी पत्नीने श्रीभाईजीको पत्रद्वारा सूचना दी। भाईजीने तार दिया, जिसमें उन्होंने भगवानके मंगलमय विधान और कृपापर विश्वास रखनेको कहा। मेरी स्थिति सुधरने लगी और मैं दस-बारह दिनमें स्वस्थ हो गया।

मेरी कन्याका बड़ा ऑपरेशन प्रयागमें हुआ। डाक्टरोंने कहा था कि बचनेकी आशा पचास प्रतिशत है। कन्या बहुत घबरायी हुई थी। ऑपरेशन होनेपर कन्याने मुझे बताया कि ऑपरेशन थियेटरमें उसका पेट चीरनेके पहले उसने अपने समीप श्रीभाईजीको मेजपर बैठे देखा, वे मुस्कुरा रहे थे। उसकी सारी घबराहट चली गयी और ऑपरेशन सफल हुआ। हमलोग तो बाहर बैठे ऑपरेशनके समय 'नारायण' नामका जप कर रहे थे, क्यों कि भाईजीने एक बार कहा था कि किसी संकटमें इस नाम-जपसे संकटकी निवृत्ति हो जाती है। भाईजी उस समय प्रयागसे लगभग १५० मील दूर गोरखपुरमें थे।

जब मैं मुजफ्फरनगरमें न्यायाधीशके रूपमें नियुक्त था, तब भाईजी दिल्लीसे ऋषिकेश कारद्वारा जा रहे थे। रास्तेमें मुजफ्फरनगर पड़ता है। लगभग तीन बजे जब मैं कोर्टमें काम कर रहा था, वे एकाएक आ गये। मैं उनको लेकर तुरन्त घर आया और वहाँ पूजाके कमरेमें

भगवानके श्रीविग्रहके सामने बैठाया। भगवानको भोग लगाया गया एवं थोड़ा जलपान करके वे चले गये। इसके बाद उस कमरेमें दो दिनतक अत्यन्त सुगन्ध आती रही, जो बाहरतक फैल जाती थी।

मेरी कनिष्ठ पुत्रीको लकवा मार गया। भाईजीको फोनद्वारा सूचना देकर मैं उन्हींके पास ले आया। तीन मासतक वह बिल्कुल नहीं उठ पाती थी, पर कोई औषध भी नहीं दी गयी। जिस दिन भाईजीने अपनी इहलीला संवरण की, उसी दिन वह अपने आप खड़ी होकर चलने लगी और अबतक ठीक है।

जीवनमें अनेकानेक घटनाएँ हैं, जिनका लिखना सम्भव नहीं है। यह तो उनके अहैतुक प्रेमका स्वरूप था, जो वे सबको मुक्तहस्तसे वितरण करते थे। ■

आदरणीया श्रीराजकुमारीजी दीक्षित (प्रयागवाली मैया)

श्रीभाईजीका सहज व्यवहार

बात सन् १९५६ की है, जब श्रीभाईजी और बाबा तीर्थयात्राट्रेनसे इलाहाबाद आये थे। मुझपर, श्रीजजसाहबपर और मेरे परिवारपर श्रीभाईजी और बाबाकी विशेष कृपा रही है। हम सभीके लिये वे परम श्रद्धेय हैं। जब ट्रेन इलाहाबाद स्टेशनपर प्रातःकाल पहुँची तो श्रीभाईजी, बाबा तथा सभी तीर्थ-यात्री त्रिवेणी संगमपर स्नानके लिये चले गये। स्नानके बाद यात्रीगण मुख्य-मुख्य दर्शन करनेके लिये चल पड़े। बाबा मेरे घरपर चले आये। मेरे घरपर ही बाबाके विश्रामकी व्यवस्था की गयी थी। श्रीभाईजी श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजीसे मिलनेके लिये गंगाजीके उसपार झूसी चले गये।

बाबा मेरे घरपर बड़े प्यारसे सभीसे बात करते रहे। बाबा वहीं बैठे हुए थे, जहाँ उनके लिये भिक्षा बनायी जा रही थी। अत्याधिक शुद्धता तथा पवित्रताके साथ भिक्षा बनायी गयी। लगभग चार बजे अपराह्नकालमें भिक्षा बनकर तैयार हो गयी। भिक्षा बन जानेके बाद मैंने बाबासे ग्रहण करनेके लिये अनुरोध किया। मेरे अनुरोधको सुनकर बाबा कुछ क्षण स्तब्ध रहे और फिर बोले— मैया! मेरे लिये तो एक धर्म-संकट उपस्थित हो गया है।

बाबाके इस उत्तरको सुनकर मेरा चित्त कुछ अस्त-व्यस्त हो उठा। ऐसे उत्तरकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। कुछ व्यग्र स्वरमें मैंने पूछा— बाबा! क्या बात हो गयी?

बाबाने कहा— एक और तुम्हारा प्रबल वात्सल्य और दूसरी ओर मेरा नियम-निर्वाह, इन दो बातोंको लेकर मेरे मनमें द्वन्द्व मचा हुआ है। तुम्हारे प्यारको देखकर मनमें ऐसा भाव उठता है कि भिक्षा ग्रहण कर लेनी चाहिये, परंतु मेरा नियम ऐसा है कि जिस घरमें श्रीपोद्दार महाराज भोजन करते हैं, वहीं मैं भिक्षा किया करता हूँ। मैं निश्चित नहीं कर पा रहा हूँ कि क्या करूँ?

यह सुनते ही मैंने कहा— इसमें धर्म-संकटकी बात ही क्या है? आपका नियम भंग क्यों हो? ऐसी क्या जल्दी है? श्रीभाईजी यहाँ आकर भोजन कर लें, उसके बाद आप भिक्षा कीजियेगा।

इस उत्तरसे बाबाको संतोष हो गया। उनको तो संतोष हो गया, पर मेरे मनमें उथल-पुथल मच गयी। मैं विकल मनसे सोचने लगी— श्रीभाईजी झूसी ब्रह्मचारीजीके पास गये हुए हैं। वे सबेरे गये थे और अब तीसरा पहर हो रहा है और क्या श्रीब्रह्मचारीजीने उनको भोजन नहीं कराया होगा ? यदि वे वहाँ भोजन करके आयेंगे तो फिर बाबा यहाँ भिक्षा कैसे ग्रहण करेंगे ? तो क्या बाबाको भूखा रहना पड़ेगा ?

इस तरहकी कई बातोंको सोच-सोच करके मेरे मनकी विकलता और खिन्नता पल-प्रति-पल बढ़ती जा रही थी। वर्तमान परिस्थितिमें कोई उपाय भी नहीं था। व्यग्र मनसे मैं भगवानको और भाईजीको याद करने लग गयी। मेरी विकलताके थोड़ी देर बाद ही श्रीभाईजीने मेरे घरके प्रवेश-द्वारमें प्रवेश किया। उनके साथ पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी और श्रीचक्रपाणिजी महाराज थे। साथमें और भी बहुत-से लोग थे। श्रीभाईजीको आते देखकर मेरा मन विस्मय और प्रसन्नतासे भर गया।

मैं रसोई घरके पास थी। श्रीभाईजी सीधे मेरे पास आये और कहने लगे— मुझे भूख लगी है। जल्दी कुछ खानेको दो।

मुझे तो पहले उनके आनेपर विस्मय हो रहा था और अब उससे भी बढ़कर विस्मय हो रहा था भोजन माँगनेके ढंगको देखकर। सदा ही ऐसा होता रहा है कि आसन बिछाया जाता था, उसपर श्रीभाईजीको सम्मानपूर्वक बैठाया जाता था, फिर थाली परोसकर रखी जाती थी, पर आज तो एक विचित्र रूप देखनेको मिल रहा था। इस अचानक माँगको देखकर मैं हड़बड़ा गयी कि क्या करूँ और क्या न करूँ ? मैं आसन बिछानेका उपक्रम करने लगी तो श्रीभाईजीने कहा— व्यर्थ देरी कर रही हो। मैंने बताया ना मुझे जल्दी है ! तुम मुझको जल्दी भोजन दे दो।

उस हड़बड़ीमें मैं सोच ही नहीं पायी कि क्या उचित और क्या अनुचित है। उस शीघ्रतामें आसन बिछानेकी बात ही दिमागसे गायब हो गयी। जैसे भाईजीने कहा, वैसे ही जल्दीमें मैंने उनको थाली परोसकर भोजन दे दिया। थाली लिये हुए श्रीभाईजी कमरेके अन्दर जाकर और टेबुल-कुर्सीपर बैठकर भोजन करने लगे। यह टेबुल बच्चोंके पढ़ने-लिखनेके काममें आया करती थी, अतः छोटी थी और इसपर बच्चोंके स्कूलकी किताब-कापियाँ रक्खी हुई थीं। इसी टेबुलपर एक किनारे थाली रखकर श्रीभाईजी भोजन कर रहे थे। आज तो सारे ही कार्य विस्मयपूर्ण हो रहे थे। टेबुल-कुर्सीपर उनके बैठनेसे मुझको बड़ा आश्चर्य हो रहा था। इधर श्रीभाईजी टेबुल-कुर्सीपर भोजन कर रहे थे और उधर बाबा, श्रीब्रह्मचारीजी, श्रीचक्रपाणिजी आदि समागत लोगोंसे खड़े-खड़े बात कर रहे थे। मुझे मेरी आँखोंपर विश्वास नहीं हो रहा था कि क्या श्रीभाईजी इतने सामान्यातिसामान्य स्तरपर अपनेको उतार ला सकते हैं। आँगनमें ही समाजका वह सम्मान्य संत-समुदाय खड़ा-खड़ा पारस्परिक चर्चा कर रहा था और वहीं सबके समादरणीय श्रीभाईजी अपने बड़प्पनको सर्वथा भुलाकर और नितान्त सामान्य स्तरपर स्वयंको लाकर बड़े ही सहज भावसे खाना-पीना कर रहे थे। उन्होंने भोजन करनेमें अधिक समय नहीं लगाया। कुछ ही मिनटोंमें खाकर और हाथ-मुँह धोकर उस संत-समुदायके साथ चले गये।

आज श्रीभाईजीका एक अद्भुत स्वरूप देखनेको मिला। उनके चले जानेके बाद मैं बाबाकी भिक्षाकी तैयारी करने लगी और उसी समय मेरे विचारोंके प्रवाहमें एक मोड़ आया— क्या

श्रीभाईजीको मेरी विकलताकी जानकारी हो गयी थी, जो वे थोड़ी देरके भीतर ही मेरे घरपर आ गये और क्या उस उलझनपूर्ण परिस्थितिकी भी उन्हें जानकारी हो गयी, जो वे तुरन्त आकर भोजन करने लग गये ? मैं कुछ निर्णय नहीं कर पायी, पर उस समय मेरा मन कितना अधिक श्रद्धापरिपूरित हो उठा था और श्रीभाईजीके चरणोंको कितने देर प्रमाण करता रहा था, यह मैं कैसे बतलाऊँ ? भिक्षा करते-करते बाबाने कहा भी था– आज श्रीपोद्दार महाराजने तुम्हारी बात रख ली। ■

सौ. श्रीशारदादेवी त्रिवेदी

मेरे अपने हैं

श्रीभाईजीके अनन्य श्रद्धालु एवं निज जन श्रीजजसाहबकी पुत्री कहलानेका गौरव मुझे भगवानने ही दिया है। श्रीभाईजी जैसे परम भागवत महामानवके प्रति जो यत्किंचित् श्रद्धाका भाव है, वह मेरे पूज्य पिता श्रीरामप्रसादजी दीक्षितकी देन है। पूज्य बाबा तथा श्रीभाईजी जब कभी प्रयाग आते थे तो हमारे घरपर ही ठहरा करते थे। अब मैं क्या कहूँ उन महारुषके लिये, उन देवपुरुषके लिये ? उन जैसे तो वे ही थे। कहाँ है उनकी उपमा ?

बात सन् १९६४ की है। मेरी माँ बहुत अस्वस्थ थी। दिल्लीके एक बड़े अस्पतालमें उनका ऑपरेशन होनेवाला था। श्रीभाईजी भी अस्पतालमें उपस्थित थे। माँका ऑपरेशन लगभग दो-तीन घंटेतक चलता रहा। भाईजी अपनी समस्त भगवत्ताको अपने ही भीतर पूर्णतः छिपाये हुए एक साधारण पुरुषकी तरह ऑपरेशन रूमके बाहर बेंचपर चिन्तित-से बैठे थे। वे ऐसे चिन्तित थे, जैसे मानो आज उनका न जाने कितना प्रिय सुहृद् अस्वस्थ हो। वे कैसे चिन्तित न होते ? सम्पूर्ण संसार तो उनका अपना ही था, प्रत्येककी पीड़ा उनकी अपनी पीड़ा थी। ऑपरेशन प्रारम्भ होनेपर वे हम सब लोगोंसे बोले– 'हरिःशरणम्' मन्त्रका मनमें जप करो।

उन्होंने हमलोगोंसे जप करनेके लिये कहा और स्वयं भी बराबर जप करते रहे। उनके अधर मन्त्र-जपसे बराबर स्फुरित हो रहे थे। ऐसी थी उनकी ईश्वर-निष्ठा एवं प्रत्येक प्राणीके कष्ट-निवारणके लिये आतुरता !

कहीं मान नहीं, कहीं बड़प्पन नहीं, सम्मानकी भावना उन्हें छू तक नहीं गयी थी। न वेष-भूषासे उनकी महानताका आभास होता था, न उनकी सरल मुख मुद्रासे और न उनके व्यवहारसे ही। सबको सदा यही अनुभूति होती थी कि वे तो मेरे ही हैं, बिल्कुल मेरे अपने हैं। ■

सौ. श्रीउमाबाई पोद्दार

उनका आशीर्वाद मेरा रक्षा-कवच

मैं उनका नाम कैसे लूँ ? ऐसा कहा जाता है कि कुल-वधूको अपने बड़ोंका नाम नहीं लेना चाहिये। उनका नाम कौन नहीं जानता ? 'कल्याण'-सम्पादक, धर्म-रक्षक, महान संत, परम

भक्त, आर्त-सेवक, दीन बन्धु, आदि-आदिके रूपमें सर्वत्र उनकी ख्याति है और जगह-जगह उनकी गुण-गाथा गायी जाती है। यह सब है, पर वे तो मेरे पोद्दार कुलकी वंश-विभूति हैं। वे कुल-भूषण मेरे लिये पूज्य चरण हैं। उनके आविर्भावसे पोद्दार वंश धन्य हो गया।

मेरी सास और मेरे श्वसुरके वे परम श्रद्धास्पद रहे, नितान्त श्रद्धेय रहे। मेरे श्रद्धालु सास-श्वसुरकी आन्तरिक चाह थी कि मुझ नव-परिणीताको उन्हें प्रणाम करना चाहिये, अतः मैं अपने नव-आत्मीयजनोंके साथ राँचीसे गीतावाटिका आयी, अपितु यथार्थ शब्दोंमें यह कहना चाहिये कि माता-पिताके घरसे बेटी पहली बार बिदा होकर गीतावाटिका ही आयी।

गीतावाटिका आकर मैंने देखा कि वे रुग्ण थे, अत्यन्त रुग्ण थे। परिवारके लोग भीतर-ही-भीतर भाँति भाँतिसे कुशंका कर रहे थे कि क्या भगवान सूर्य अस्ताचलको जानेवाले हैं। रुग्णावस्थामें ही उनका प्रथम दर्शन मुझे मिला। मैंने उन्हें प्रणाम किया। रुग्ण होते हुए भी उनके प्यारका प्रवाह मेरी ओर फूट पड़ा। उनके वात्सल्यसे मेरा रोम-रोम संसिक्त था। वे वस्तुतः प्यारके पुञ्ज थे, नेहके निर्झर थे, वात्सल्यके सिन्धु थे। मैं उनके चरणोंपर नत-मस्तक थी। वही मेरा अन्तिम दर्शन था, वही मेरा अन्तिम प्रणाम था। प्रणाम आज भी करती हूँ। करती हूँ उनके चित्रको। उनका सुन्दर चित्र मेरे पूजा-घरमें है। मैं नित्य प्रणाम करती हूँ। प्रतिदिन फूल चढ़ाती हूँ।

बचपनमें मैंने उनका नाम सुना था। मेरा जन्म एक वैष्णव परिवारमें हुआ है। मेरे माता-पिता साधु स्वभावके हैं। घरपर मैंने 'कल्याण' पत्रिकाको देखा है। उस पत्रिकामें छपे चित्रोंको मैं देखा करती थी। कभी-कभी कुछ पन्ने भी मैं पढ़ लिया करती थी। तभी मैंने सुना था कि वे ही इस पत्रिकाको गीताप्रेससे निकालते हैं। चित्रोंको देखकर और पत्रिकाको पढ़कर उनके पावन दर्शनकी प्रबल इच्छा मेरे मनमें होती थी, परंतु मनकी बात मनमें ही रह जाती थी। उन दिनों मैं क्या रंच मात्र भी कल्पना कर सकती थी कि भविष्यमें मैं पोद्दार कहलाऊँगी ? मैं क्या कभी सोच सकती थी कि बिना किसीसे कहे-सुने ही और बिना तनिक-सा प्रयास किये ही मैं इतनी सरलतापूर्वक उन विभूतिके दर्शन कर पाऊँगी, जिनके दर्शनकी बहुत अधिक चाह बचपनसे ही मनमें थी ? प्रभु-कृपासे और मेरे सौभाग्यसे यह भी कैसा संयोग सुघटित हो गया कि माता-पिताने मेरा सम्बन्ध पोद्दार कुलमें कर दिया। सचमुच अब पोद्दार कहलानेमें गौरवकी अनुभूति होती है। मैं उनके वंशकी कुल-वधू हूँ। ज्यों ही पोद्दार वंशकी कुल-वधु बननेका अवसर मेरे जीवनमें आया, मुझे उनका आशीर्वाद मिला, कविताके रूपमें लिखित आशीर्वाद। मैं तो धन्य हो गयी। यह आशीर्वाद मेरे जीवनकी सच्ची निधि है।

शुभ भावना

तन-मन स्वस्थ, बुद्धि निर्मल हो, हो पवित्र दीर्घायु उदार।
संयम- सदाचार- सद्गुण- सद्भाव युक्त हों भाव- विचार।।
न्यायोपार्जित धन-वैभव हो, हो पर-हितमें उसका त्याग।
देश- जाति- कुल- दीन- आर्त -सेवामें हो सक्रिय अनुराग।।
सतत समृद्धि समुन्नति पावन करे नम्रताका विस्तार।
त्याग और कर्तव्य मुख्य हो, रहें न मुख्य अर्थ अधिकार।।

श्रीराधामाधव- पद- पद्म- युगलमें हो रतिका संचार।
लाभ करे भार्यासह यह स्थिति कृष्णमुरारी सुखद अपार।।

-हनुमानप्रसाद पोद्दार

आशीर्वादकी ये कतिपय पंक्तियाँ लिखी उन महानात्माने अपनी लेखनीसे— यह भावना ही मनमें एक विचित्र आह्लादका उद्रेक कर देती है। अन्योंको ये पंक्तियाँ साधारण-सी लग सकती हैं, परंतु मेरे लिये तो ये अति असाधारण और अति अमूल्य हैं। इसीके मिससे तो मुझे उनकी छत्र-छाया मिली है, ऐसी छाया, जिसे कोई कभी छीन ही नहीं सकता। किसीके भी गृहस्थ जीवनमें चढ़ाव-उतार आते ही हैं। मेरे जीवनमें भी आये हैं। उन सारी घाटियोंको मैं इसी आशीर्वादके बलपर पार कर गयी। विश्वास है, आगे भी कर जाऊँगी। वस्तुतः उनका यह आशीर्वाद ही मेरा रक्षा-कवच है। उन पूज्य चरणोंमें बार-बार प्रणाम। ■

सौ. श्रीअनुराधा सिंह

दीपक नहीं जले

मेरे पिताजी श्रीजीवबोधन सिंह पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के पास काम किया करते थे। वे गीताप्रेससे प्रूफके पन्ने गीतावाटिका शामको लाया करते थे और रातमें जब बाबूजी प्रूफको देख लिया करते थे तो सबेरे वे उन्हें गीताप्रेस पहुँचा देते थे। गीताप्रेससे सम्पादकीय विभागकी डाक भी वे ही लाया करते थे। गीतावाटिका डाकघरकी स्थापना तो सन् ६९ या ७० के आस-पास हुई है। इसके पहले सम्पादकीय विभागकी सारी डाक गीताप्रेसमें ही आया करती थी। डाक और प्रूफको लानेके अतिरिक्त बाबूजीके और भी कई प्रकारके कामोंको वे किया करते थे। बरसातके दिनोंमें बाढ़ ग्रस्त लोगोंके मध्य अन्न बँटवाना, जाड़ेके मौसममें ठण्डसे ठिठुरते लोगोंके मध्य वस्त्र बँटवाना, महत्त्वपूर्ण पत्रोंको विशिष्ट व्यक्तियोंके हाथमें देकर आना, इस प्रकारके अपने कई निजी काम बाबूजी मेरे पिताजीसे करवाया करते थे। ऐसा नहीं था कि मेरे पिताजी दस बजे आकर केवल छः घंटे काम करें और शामको चार बजे घर चले जायें। पिताजी सपरिवार गीतावाटिकामें ही रहते थे। चाहे रात हो या दिन, चाहे सुबह हो या शाम, बाबूजीका जब-जो काम सामने आता, उसे वे किया करते थे। मेरे पिताजीपर बाबूजीका बड़ा विश्वास था और उनके विश्वासको मेरे पिताजीने भलीभाँति निभाया।

जो अगली बात मैं लिख रही हूँ, वह मैंने अपने माता-पिताजीसे सुनी थी। यह बात उस समयकी है, जब मैं एक अबोध बालिका थी और मेरी आयु मात्र पाँच वर्षकी थी। मेरे कोई भाई नहीं था। जब मेरे भाईका जन्म हुआ तो पिताजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। एक साधारण गृहस्थ यही चाहता है कि मेरा वंश चले। भाईका जन्म होते ही केवल पिताजीको ही नहीं, हमारे कुटुम्बके सभी लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। परिवारमें प्रसन्नता छायी हुई थी, परंतु विधिका विधान बड़ा

विचित्र है। भाग्यमें जब कोई वस्तु बदी नहीं रहती तो मिली हुई वस्तु भी छिन जाती है। सन् १९५८ की ठीक दीपावलीके दिन मेरे शिशु भाईका देहान्त हो गया। वह इस संसारमें कुल दस माह ही रह पाया। परिवारकी सारी प्रसन्नताको शोकने निगल लिया। इकलौते लड़केकी मृत्यु होती ही है परम दुःखकारी। घरमें बहुत अधिक रोना-धोना मच गया। माताजीके हृदयमें अपार शोक था और उनकी आँखोंसे लगातार आँसुओंकी धारा बह रही थी। किसी प्रकार उस शवको ठिकाने लगाया गया। ठीक दीपावलीके दिन यह अति करुण दृश्य देखनेको मिला। इस दिन घरमें जब चूल्हा ही नहीं जला तो भला दीपक कैसे जल पाते!

सबसे अधिक आश्चर्यमें डालनेवाली बहुत बड़ी बात यह थी कि उस दीपावलीके दिन गीतावाटिकाकी कोठीकी छतपर भी दीपक नहीं जले। दिन गया और रात आयी। रातके आते ही पास-पड़ोसके घरोंकी छतपर दीपोंकी कतार जगमगाने लगी, पर गीतावाटिकामें अँधेरा ही था। दीपावलीकी रातमें भी कोठीकी छतपर दीपोंकी पंक्ति नहीं जलायी गयी, इसीलिये कि बाबूजीने दीप जलानेके लिये मना कर रखा था। बाबूजीको यह रंचमात्र भी पसन्द नहीं था कि हमारे एक कर्मचारीका परिवार शोकमें डूबा रहे और हम लोग दीप जलायें और उत्सव मनायें। देवोपासनाकी दृष्टिसे बाबूजीके घरमें रातको श्रीगणेशजी एवं श्रीलक्ष्मीजीके पूजनके समय दीपक जलाये गये, जिससे पूजनका कार्य विधिपूर्वक पूर्ण हो सके। पूजनमें जितने दीपोंकी आवश्यकता थी, उतने ही दीपक जलाये गये, उससे अधिक एक भी नहीं। एक कर्मचारीके दुःखसे उनकी इतनी एकात्मता देखकर पिताजीके मनमें सचमुच बड़ा आश्चर्य हो रहा था। बाबूजीकी इस आत्मीयतापर मेरे पिताजी और हमारा सारा परिवार न्योछावर था। सचमुच, ऐसे मालिक भला कहाँ होते हैं, जो अपने कर्मचारियोंके दुःख-दर्दको अपना दुःख-दर्द मानें। ■

पं. श्रीजानकीनाथजी शर्मा

प्रतिमामें भगवान प्रत्यक्ष विराजमान हैं

एक बार किसी कट्टर इस्लाम मतानुयायी सज्जनने श्रीभाईजीसे कहा— खुदा तो हर जगह हैं, फिर आप लोग मूर्ति-पूजा क्यों करते हैं? उससे क्या लाभ?

श्रीभाईजीने उनसे ईश्वरके निवासकी जगहको एक कागजपर लिखनेके लिये कहा। उन्होंने लिख दिया— खुदा हर जगह है, ऐसी कोई जगह नहीं, जहाँ खुदा न हो।

भाईजीने कहा— अब आप बदलेंगे तो नहीं?

उन मुस्लिम सज्जनने कहा— नहीं।

तब श्रीभाईजीने कहा— आपके ही वचनोंसे मूर्तिमें भी भगवान सिद्ध हो गया, क्यों कि आपने यह नहीं लिखा कि मूर्तिको छोड़कर हर जगह खुदा रहता है।

मियाँजी निरुत्तर थे। ■

श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन

उदार चेता

सम्भवतः सन् १९३६ के आस-पासकी बात है। मैं मेरठमें रहता था। वहाँसे पं. श्रीदुर्गाप्रसादजी 'संकीर्तन' नामक एक धार्मिक मासिक पत्रिका निकालते थे। पत्र घाटेमें चलता था। धार्मिक पत्र घाटेमें चलते ही हैं। उनके पाठकोंकी संख्या भी बहुत थोड़ी होती है। एकमात्र 'कल्याण'को इसका अपवाद कहा जा सकता है। पं. श्रीदुर्गाप्रसादजीने 'कल्याण' सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको लिखा– हमें भी कोई ऐसा मंत्र बतलाइये, जिससे 'संकीर्तन'की भी ग्राहक संख्या बढ़ायी जा सके।

श्रीपोद्दारजीने लिखा– आप अपने पत्रको सचित्र करें और इसके लिये 'कल्याण' अपने प्रकाशित चित्रोंके ब्लाक आपको बिना कुछ लिये भेजता रहेगा।

इसपर श्रीदुर्गाप्रसादजीने लिखा– जो प्रकाशित हो चुके हैं, ऐसे बासी चित्रोंके छापनेसे 'संकीर्तन'का क्या भला होने वाला है?

उत्तरमें श्रीपोद्दारजीने लिखा– 'कल्याण'में जो चित्र छपने वाले होंगे, उनके ब्लाक हम आपको भेज दिया करेंगे। आप उनको उपयोगमें लाकर हमें लौटाते रहें। चित्र 'संकीर्तन'में छप लेंगे, तब उसके पश्चात् ही 'कल्याण'में छपेंगे।

इससे 'संकीर्तन'की ग्राहक संख्या कुछ बढ़ी, परंतु फिर भी वह अपने पैरोंपर खड़ा न हो सका। पं. श्रीदुर्गाप्रसादजीने फिर लिखा– कुछ दूसरा मंत्र और बतलाइये।

इसपर श्रीपोद्दारजीने उन्हें 'कल्याण'के ग्राहकोंकी एक सूची भेज दी और बारह सौ ग्राहकोंके नामके सामने चिह्न लगा दिया और लिखा– इन बारह सौ व्यक्तियोंको आप 'संकीर्तन' भेजना आरम्भ कर दें। मेरा विश्वास है कि इनमेंसे नौ-दस सौ व्यक्ति आपके ग्राहक अवश्य बन जायेंगे।

पं. श्रीदुर्गाप्रसादजीने ऐसा ही किया और वे सभी बारह सौ व्यक्ति 'संकीर्तन'के ग्राहक बन गये। पत्रकारिताके क्षेत्रमें ऐसी सहायता न कभी सुनी और भविष्यमें न कभी सुननेकी सम्भावना है। ■

श्रीबालाप्रसादजी तुलस्यान

[१] दो महापुरुषोंका पारस्परिक प्रेम

पूज्य श्रीभाईजीका राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके सरसंघचालक श्रीगुरुजी (परम पूज्य श्रीमाधवराव सदाशिवजी गोलवलकर)से बहुत आत्मीय सम्बन्ध था। यह निकटता गोहत्या-विरोधी आन्दोलनके समय साथ-साथ कार्य करनेसे और निरन्तर मिलनेसे और भी अधिक घनिष्ठतामें परिणत हो गयी। समय-समयपर श्रीभाईजी ऐसा कह दिया करते थे कि मैं

भी तो संघका एक स्वयंसेवक हूँ। परमपूज्य श्रीगुरुजीके गोरखपुर आगमनपर दोनों महापुरुषोंका मिलन अवश्यम्भावी था। कभी पूज्य श्रीभाईजी पूज्य श्रीगुरुजीके ठहरनेके स्थानपर मिलने आ जाते थे तो कभी पूज्य श्रीगुरुजी गीतावाटिका चले जाते थे। मिलन होनेपर कुछ समयतक एकान्तमें देशकी परिस्थिति एवं घटनाचक्र आदिके बारेमें दोनों महापुरुषोंका विचार-विमर्श होना स्वाभाविक बात थी। दोनों ही महापुरुषोंमें परस्पर एक दूसरेके प्रति अतीव श्रद्धाका भाव रहता था। खान-पानमें दोनों ही महापुरुष संयमित और अल्पाहारी थे। पूज्य श्रीभाईजी बाहर कुछ खाते ही नहीं थे और पूज्य श्रीगुरुजी भी केवल एक समय ही मध्याह्न-भोजन करते थे, बाकी समय वे चायके अतिरिक्त कुछ नहीं लेते थे।

एक बारकी घटना है। श्रीगुरुजी संघ-कार्यके निमित्त प्रवास करते-करते गोरखपुर पधारे हुए थे। पूज्य श्रीभाईजी उनसे मिलने आये। चार या पाँच बजे अपराह्नका समय था। उस समय चाय-जलपान आया, आगन्तुक सभी लोग बैठे थे। परोसनेवाले भाईने पूज्य श्रीभाईजीके सामने भी जलपानकी तस्तरी रखी। पूज्य श्रीगुरुजी जानते थे कि श्रीभाईजी कुछ नहीं लेते, पर सब लोग चाय या जलपान लेवें और पूज्य श्रीभाईजी यों ही बैठे रहें, यह पूज्य श्रीगुरुजीको अच्छा नहीं लगा। उन्होंने स्नेह पूर्वक एक हाथसे सूखे मेवोंकी मुट्ठी भरी और दूसरे हाथसे पूज्य श्रीभाईजीका हाथ पकड़ा और उसमें रख दी। मैं यह दृश्य कौतुक भरी निगाहोंसे देख रहा था। मैं मन-ही-मन सोच रहा था कि पूज्य श्रीभाईजी तो खाते नहीं। इतनेमें ही मैंने देखा कि इधर पूज्य श्रीगुरुजीने चायकी चुस्की ली और उधर पूज्य श्रीभाईजी श्रद्धा पूर्वक काजूके दाने मुँहमें डालते हुए दिखायी देने लगे। मैंने तत्क्षण दोनों ही महापुरुषोंको श्रद्धाभिभूत होकर मन-ही-मन प्रणाम किया, बार-बार प्रणाम किया।

इसी प्रकारका एक और प्रसंग भविष्यमें देखनेको मिला। प्रवास कार्यक्रमके अनुसार पूज्य श्रीगुरुजी गोरखपुर पधारे। पूज्य श्रीगुरुजी नगरके सभी कार्यक्रमोंके पश्चात् स्टेशन वापस जानेके पूर्व गीतावाटिका पूज्य श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये गये। मिलनेका कार्यक्रम पूर्वायोजित था। साथ जाने वाले हम सभीके स्वागत-सत्कारके लिये सूखे मेवे आदिकी व्यवस्था थी। हम सब लोग बरामदेमें ठहर गये थे और पूज्य श्रीगुरुजी श्रीरज्जू भैयाके साथ पूज्य श्रीभाईजीके कक्षमें वार्तालाप हेतु चले गये। पूज्य श्रीगुरुजी मध्याह्न-भोजनके अतिरिक्त केवल चाय भले ही पी लें, पर और कुछ खाते नहीं हैं। यह बात मैं जानता था, पर गीतावाटिकासे स्टेशन जाते समय जीप गाड़ीमें एक बड़ा भावपूर्ण दृश्य देखनेको मिला। पूज्य श्रीभाईजीने पूज्य श्रीगुरुजीके कुर्तेकी जेबमें खूब सारे काजू-किशमिश रख दिये थे और मैंने देखा कि पूज्य श्रीगुरुजी प्रेम पूर्वक दिये हुए काजू-किशमिशको जेबसे निकाल-निकालकर बहुत ही स्नेहभावसे खा रहे हैं। केवल जीपमें ही नहीं, वे प्लेटफार्मपर भी खाते रहे और खानेसे उनके हाथ तब ही रुके, जब कुर्तेकी जेब खाली हो गयी।

ऐसे परम पारस्परिक परम अहैतुक परम निर्मल प्रेमको कोटिकोटि प्रणाम।

[२] उनका शील-स्वभाव

गोरखपुर योगिराज श्रीगोरखनाथजीकी तपस्यास्थली है। शहरके उत्तरकी ओर श्रीगोरखनाथजीका मन्दिर है। वहाँ प्रतिदिन हजारों व्यक्ति दर्शनार्थ उपस्थित होते हैं। कुछ वर्ष

पूर्व प्राचीन मन्दिरको नवीन भव्य रूप देनेके लिये कार्य प्रारम्भ हुआ था। उसके शिलान्यास समारोहमें शहरके प्रायः सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति एवं विद्वान आमन्त्रित थे। श्रीभाईजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) भी उसमें उपस्थित थे। श्रीभाईजी सबसे आगे वाले सोफेपर बैठे हुए थे। पासमें पूर्वोत्तर रेलवेके जनरल मैनेजर महोदय भी बैठे हुए थे। वयोवृद्ध संत एवं प्रसिद्ध विद्वान श्रीअक्षयकुमारजी वन्द्योपाध्याय महोदय मंचपर भाषण दे रहे थे। वे अपने भाषणमें हिन्दू-संस्कृतिके स्वरूपपर प्रकाश डाल रहे थे। सभी उपस्थित महानुभाव मन्त्र मुग्ध-से हुए भाषणको सुन रहे थे। भाषण पूरा होनेपर वे बैठनेके लिये आये। श्रीभाईजी एवं जनरल मैनेजर महोदयने उठकर उनका स्वागत किया और उन्हें सोफेपर बैठा लिया। जनरल मैनेजर महोदय श्रीअक्षयबाबूके साथ-साथ सोफेपर बैठ गये, पर श्रीभाईजी श्रीअक्षयबाबूके समान आसनपर भला कैसे बैठते ? वे तो उन्हें सदा अपने गुरुजनके रूपमें आदर देते आये थे। वे श्रीअक्षयबाबूके चरणोंके समीप नीचे जमीनपर बैठ गये। जनरल मैनेजर महोदयको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और वे श्रीभाईजीका हाथ पकड़कर उन्हें ऊपर सोफेपर बैठानेका प्रयत्न करने लगे, पर श्रीभाईजी अपने स्थानसे नहीं हिले। श्रीभाईजीने विनम्रता पूर्वक कहा– मुझे श्रीमहाराजजीके चरणोंके समीप बैठनेमें ही प्रसन्नता है।

श्रीअक्षयबाबू श्रीभाईजीके इस शील-स्वभावको देखकर गद्‌गद हो गये। उनकी आँखोंसे स्नेहके आँसू टपक पड़े तथा उन्होंने जनरल मैनेजर महोदयसे कहा– यही हिन्दू संस्कृति है।

जनरल मैनेजर महोदय हिन्दू संस्कृतिके इस महान आदर्शको देखकर मुग्ध हो गये।

[३] कार्य-रत 'हनुमान'

'श्रीभाईजी' कहते या सुनते ही एक भव्य और दिव्य, पर सादगीसे परिपूर्ण संताकृति आँखोंके और मनके सामने तैरने लगती है। परम पूज्य श्रीभाईजी साधनाकी साकार मूर्ति थे। साधना और सिद्धिसे उद्‌भूत सर्वदानन्दका भाव सदैव उनकी मुखाकृतिपर झलकता एवं उनकी वाणीसे छलकता रहता था। इसके बाद भी किसीका थोड़ा-सा दुःख-दर्द देख-सुनकर वे करुणार्द्र हो उठते थे। गीताप्रेसकी प्रगति और उन्नतिके लिये उन्होंने जो कठोर साधनामय जीवन अंगीकार किया, उसके कारण ही श्रीभाईजी और गीताप्रेस मानो पर्यायवाची शब्द बन गये थे। अन्त समयतक भी वे गीताप्रेसके कार्यसे अपनेको अलग नहीं कर सके। आप कार्य करते-करते थककर चारपाईपर लेट जाते या फर्शपर ही लेटकर पुनः थोड़ी देरमें कार्य करने लगते थे। यही क्रम निरन्तर चलता रहा। शारीरिक अस्वस्थताकी स्थितिमें डाक्टरोंके नेक परामर्शकी उपेक्षा करके भी वे 'कल्याण' पत्रिकाका सम्पादन-कार्य निरन्तर करते रहते थे। भगवच्चरणोंमें विलीन होनेके लगभग एक सप्ताह पूर्वकी बात है। शारीरिक कष्ट काफी बढ़ गया था। समाचार सुनकर हमलोग गीतावाटिका उनका दर्शन करनेके लिये गये। कल्पना थी की वे चारपाईपर लेटे होंगे, पर वहाँ जाकर देखा कि वे चारपाईपर ही बैठे हुए 'कल्याण' पत्रिकामें प्रकाशित होनेवाले लेखोंकी प्रूफ-रीडिंग कर रहे हैं। इतनेमें गर्म पानीकी थैली आयी। प्रूफ-रीडिंगका कार्य चालू रहा और उन्होंने थैली अपने नीचे सेकनेके लिये लगा दी। दूसरी बार एक और थैली आयी, वह भी पैरके नीचे बैठे-बैठे पूर्ववत् पन्ने देखते हुए लगा ली, पर उनका प्रूफ-रीडिंगका काम अबाध

गतिसे चलता रहा मानो कोई रोग उन्हें है ही नहीं। शारीरिक रोग उनके कार्यमें कभी बाधक नहीं बन सके। वे थे भी तो 'हनुमान'। ■

श्रीव्रजभूषणजी गनेड़ीवाला

[१] आत्मीयतासे भरपूर

'मारवाड़ी इण्टर कालेज साहित्य परिषद' का उद्‌घाटन होने वाला था। स्वर्गीय पिताजीकी स्मृतिमें यह आयोजन रखा गया था। उनके प्रति श्रीभाईजीकी बड़ी आत्मीयता थी। उस आयोजनके सम्बन्धमें मेरे परम मित्र श्रीगंगाधरजी शुक्लसे बात हुई। उन्होंने कहा– यह कार्यक्रम तो श्रीभाईजीकी अध्यक्षतामें होना चाहिये, क्यों कि उनसे बढ़कर पिताजीका आत्मीय और कौन होगा?

इन दिनों श्रीभाईजी प्रायः सार्वजनिक कार्योंसे अलग रहते थे। वे न कहीं जाते थे और न उनमें भाग लेते थे। यह बात हम लोगोंकी जानकारीमें थी, फिर भी हम दोनों ही श्रीभाईजीके पास गीतावाटिका गये। वे सम्पादन कार्यमें व्यस्त थे। हम दोनों ही निस्संकोच उनके पास चले गये। अपनी सहज सुलभ वाणीमें उन्होंने पूछा– भाई! मजेमें हो न?

हम लोगोंने कहा– आपकी कृपा एवं आशीर्वादसे सब नेक ही है।

बजाय इसके कि हम लोग उनको कुछ कहें, उन्होंने स्वयं ही पूज्य पिताजीके जीवनके कुछ मधुर प्रसंग छेड़ दिये। वे कहने लगे– यह बगीचा तो उन्हींका था। श्रीसेठजीने उनसे खरीदकर गीताप्रेसको दे दिया। तुम लोगोंको देखकर पुरानी बातें याद आने लगती हैं। मेरे लायक कोई कार्य हो तो बताओ।

मैंने मौका देख करके निवेदन किया– आज तो उन्हींके निमित्तसे कुछ याचना करने आये हैं।

वे कुछ चकितसे हुए और अपनी स्निग्ध मुद्रामें जिज्ञासा प्रकट करने लगे– बताओ, जल्दी बताओ, क्या बात है?

हमने 'साहित्य परिषद' की पृष्ठभूमि, योजना, समारोह एवं आनेका प्रयोजन उनको बतलाया। वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपना आशीर्वाद दिया। पहले तो वे कुछ हिचके और कुछ असमंजसमें पड़े, पर फिर प्रफुल्ल मनसे अपनी स्वीकृति प्रदान की। उन्होंने कहा– वे तो मेरे महान आत्मीय थे और उस आयोजनमें अवश्य उपस्थित होनेका मेरा मन है।

इन शब्दोंको सुनकर हमलोग गद्‌गद हो गये और अपने भाग्यकी सराहना करने लगे। यह हमारा सौभाग्य था कि उन्होंने आयोजनमें पधारनेकी भी कृपा की।

[२] दिवंगतात्माकी विमुक्ति

महाभागवत श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका हमारे परिवारसे सदा घरका-सा व्यवहार रहा और मेरे ऊपर तो उनकी विशेष प्रीति रही। उनके ही शुभाशीर्वादका एक प्रसंग है। मेरी भतीजीका

विवाह वाराणसीमें हुआ। वाराणसीमें उसके पतिकी बड़ी दुःखद मृत्यु हुई। उन्हें अकाल ही कालके गालमें चला जाना पड़ा। उनके एक मित्रने उन्हें विष दे दिया। संयोगकी बात है कि उस अशुभ घटनाके दिन मैं भी वहीं था। घरमें हाहाकार मच गया। बड़ा हृदय विदारक दृश्य था। शब्दोंमें उसका वर्णन सम्भव नहीं। किसी प्रकार उनकी और्ध्वदैहिक क्रिया पूरी की गयी।

गोरखपुर आनेपर सारा शोक-वृत्त पूज्य श्रीभाईजीको बतलाया गया। उसे सुनकर श्रीभाईजी भी सिहर उठे। उनका हृदय शोकाकुल हो उठा। हमलोगोंने उनसे विनती की कि उस दिवंगत आत्माकी शांति एवं उद्धारके लिये कोई उपाय करना चाहिये। श्रीभाईजीने हमलोगोंको तथा मेरी भतीजीको बड़ी सान्त्वना और बड़ा प्यार दिया। उन्होंने कहा— आप लोग कुछ दिनोंके बाद आइयेगा, तब कुछ बतलाऊँगा।

हमलोग जानते थे कि श्रीभाईजीकी अन्य लोकोंमें भी गति है तथा वे जानकारी प्राप्त कर सकते हैं कि दिवंगत आत्मा किस लोकमें और किस स्थितिमें है। कुछ दिनों बाद हम लोग श्रीभाईजीके पास गये। श्रीभाईजीने कहा— आपलोग श्रीमद्भागवतकी सप्ताह-कथा करवाइये। यह सप्ताह-कथा भतीजीके ससुराल वाराणसीमें हो। विधि-विधानसे पाठ तथा कथा होनेसे बात बन सकती है। पाठ एवं कथामें जहाँतक बन सके, शौचाचारका अधिक-से-अधिक पालन किया जाय। प्रतिदिन हरिनाम संकीर्तन हो। श्रद्धाभक्ति भरे हृदयसे आयोजन करनेपर अपेक्षित लाभ मिल सकता है।

श्रीभाईजीके कथनानुसार श्रीमद्भागवत-कथाकी सारी व्यवस्था वाराणसीमें निवास-स्थानपर की गयी। उनके निर्देशानुसार सारे विधि-विधानका निर्णय लिया गया, सारे कार्यक्रम बनाये गये और सारी सामग्रियाँ इकट्ठी की गयीं। योग्य पण्डितोंको आमन्त्रित किया गया। भगवान शंकरकी पावनपुरी वाराणसीमें श्रीमद्भागवत्के सप्ताह-कथा-यज्ञका शुभारम्भ हुआ। सात गाँठ वाले एक बाँसको भी प्रस्थापित किया गया था। हमारी भावना यही थी कि यही इस कथाका प्रधान श्रोता है। इस अवसरपर परिवारके बहुत-से सदस्य एवं सम्बन्धी आये। वाराणसी नगरके लोग भी आये।

यह सारा आयोजन श्रीभाईजीके निर्देशनपर ही हो रहा था। मेरा निश्चित मत है कि वे गोरखपुरकी गीतावाटिकामें बैठे रहकर भी वहींसे वाराणसीके सारे कथा-यज्ञको सँभाल रहे थे। सारा कार्यक्रम बड़े उत्साह और उमंगके वातावरणमें सम्पन्न हो रहा था।

सात दिनोंतक भागवत-कथाका कार्यक्रम चलता रहा। किसी प्रकारका कोई विघ्न नहीं आया। उस जीवकी विमुक्तिके लिये गोरखपुरमें बैठे हुए श्रीभाईजी, सच कहा जाय तो उन सिद्ध संत श्रीभाईजीका करुणार्द्र हृदय सतत कृपाकी वृष्टि कर रहा था। सात दिनके बाद हम सबने देखा कि बाँसकी सातों गाँठोंका अपना वह रूप है ही नहीं, जो प्रस्थापित करते समय था। प्रतिदिन एक-एक गाँठमें चीर आ जाती थी और वह चीर क्रमशः दरारका रूप ले लेती। सातवें दिन वे सब गाँठें फटी हुई थीं। बाँसकी फटी हुई ये गाँठें भागवत-सप्ताह-कथाकी महिमा तथा संत श्रीभाईजीकी कृपाकी घोषणा कर रही थीं। ऐसा स्पष्ट प्रमाण पाकर अब उस दिवंगत आत्माकी सुगति और विमुक्तिके बारेमें संदेह नहीं रह गया था। उनकी विमुक्तिसे मेरी भतीजीको बड़ा संतोष मिला। वाराणसीसे गोरखपुर आकर हमारे परिवारने सजल नेत्रोंसे

श्रीभाईजीके प्रति कृतज्ञता व्यक्त की।

[३] असफल अभिनन्दन-योजना

कलकत्ता-निवासी श्रीओंकारमलजी सर्राफ मेरे निकट सम्बन्धी थे। उनको श्रीभाईजी हमेशा सहोदर भाईसे भी अधिक सम्मान दिया करते थे। उनका बाल्यकालसे ही श्रीभाईजीके साथ बड़ा घनिष्ठ सम्पर्क था। जबतक श्रीभाईजी कलकत्तेमें रहे, तबतक सामाजिक और राजनैतिक कार्य-कलापोंमें दोनों एक दूसरेके सहयोगी थे। देशको विदेशी शासनसे मुक्त करानेके लिये क्रान्तिकारी गतिविधियोंमें दोनोंने साथ-साथ भाग लिया था। मातृभूमिके लिये दोनों ही बलिदान होनेके लिये आतुर रहा करते थे। दोनों ही जेल भी गये।

श्रीसर्राफजीका मन आनन्दसे भर जाता था और गर्वसे फूल उठता था यह देखकर कि मेरा अपना भाई आज विश्वकी एक महान आध्यात्मिक विभूति है। राजनीतिसे धर्मके क्षेत्रमें आकर श्रीभाईजीने जो महान कार्य किया तथा उन्हें जो महान उपलब्धि हुई, उसका अभिनन्दन करना चाहते थे श्रीसर्राफजी। अभिनन्दनकी बलवती चाहको मूर्त रूप प्रदान करनेके लिये श्रीसर्राफजीने हीरक जयन्ती मनानेकी एक योजना बनायी। वे जानते थे कि यह योजना श्रीभाईजीकी रुचिके अनुकूल नहीं है, इसके बाद भी योजनाको क्रियान्वित करनेके लिये वे प्रयत्नशील हो गये। श्रीसर्राफजीके हृदयमें उमड़ता हुआ प्यार कुछ कर देनेके लिये बड़ा उत्सुक हो रहा था। अभिनन्दन समारोहके मनानेमें किसी प्रकारकी कोई बाधा सामने न आये, एतदर्थ बड़ी चतुराईसे उन्होंने योजनाके साथ-साथ श्रीमद्भगवद्गीतापर एक अन्तर्राष्ट्रीय रंगीन फिल्म बनानेकी योजना भी संलग्न कर दी थी। यह कार्य सुयोग्य निर्देशक श्रीमंगलजीके हाथमें सौंप दिया गया। भारतके तत्कालीन उप-प्रधान मन्त्री आदरणीय श्रीमोरारजी देसाई इस योजनाके संरक्षक थे। देशके विद्वानों तथा धनिकोंका इसके लिये समर्थन और सहयोग मिल रहा था।

इस योजनाके निमित्तसे श्रीमंगलजी श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये गोरखपुर आये और वाटिकामें ही ठहरे। मैं भी कई बार इस कार्यके लिये कलकत्ते गया। कलकत्तेसे लौटनेपर मैं श्रीसर्राफजीका संदेश श्रीभाईजीको सुनाया करता था। श्रीभाईजी बार-बार यही कहा करते थे— भइया! ओंकारने क्या कहा है? वह तो मेरा सगा भाई है।

श्रीभाईजीके इन उद्‌गारोंको सुनकर मैं विभोर हो जाया करता था और मेरा साहस बहुत अधिक बढ़ जाया करता था। कभी-कभी मैं कुछ बातें उनकी इच्छाके विरुद्ध भी कह जाया करता था, यह समझते हुए कि यह उनके 'सगे' भाईका संदेश है। श्रीओंकारमलजी सर्राफने, श्रीमंगलजीने, मैंने तथा अन्य कई महान व्यक्तियोंने बड़ा प्रयत्न किया, परंतु श्रीभाईजीने किसी भी रूपमें इस अभिनन्दन-आयोजनको स्वीकार नहीं किया।

अब याद करके पद-पदपर विस्मय होता है कि वे कितने दूर थे ख्याति और प्रसिद्धिसे। वे धर्म और समाजके लिये काम इतना कर गये और ऐसा कर गये कि युग-युगतक उनका नाम रहेगा और यही उनके महान कार्यका सच्चा और स्थायी अभिनन्दन है। इसके सामने हमलोगोंके द्वारा होने वाले अभिनन्दनोंका महत्त्व ही क्या? ■

श्री एस. एन. मंगल

सनातन दर्शनके वरदपुत्र

मुझे श्रीपोद्दारजीसे दो बार मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त उनका भाव-सम्पर्क मुझे करीब दो वर्षतक उपलब्ध रहा। कलकत्तामें मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटीके संस्थापक तथा मूर्धन्य समाजसेवी श्रीओंकारमलजी सर्राफका मैं विशेष कृपाभाजन रहा हूँ। श्रद्धेय सर्राफजी श्रीपोद्दारजीके अभिन्नतम मित्रोंमेंसे थे। गोरखपुर और कलकत्ताके बीचकी लम्बी दूरी भी इन दोनों मित्रोंको एक क्षणके लिये भी भावात्मक रूपसे विलग नहीं कर सकी थी। ये दोनों 'अग्नियुग' के साथी थे।

सर्वप्रथम मैं श्रद्धेय पोद्दारजीसे श्रीसर्राफजीके निर्देशपर गोरखपुरमें मिला। मेरे मिलनेका प्रसंग था— गीतापर फिल्मनिर्माण और उसके लिये उनका आध्यात्मिक संरक्षण एवं दिशादर्शन प्राप्त करना। यह योजना तत्कालीन उप-प्रधानमन्त्री श्रीमोरारजी भाई देसाईके मार्ग-दर्शनमें संचालित हो रही थी तथा श्रीसर्राफजी इसके आयोजक थे। इस फिल्मके निर्माणका भार मेरे निर्बल कन्धोंपर था, जो इन दोनों महारथियोंका स्नेहपात्र था।

फिल्म-जगतसे श्रद्धेय पोद्दारजीका सम्बन्ध नहींके बराबर था और वे फिल्मों द्वारा फैलायी जा रही चरित्रहीनताके कट्टर आलोचक थे। मुझे भय था कि वे मुझसे बात नहीं करेंगे तथा इस सम्बन्धमें उनके बहुश्रुत विचार मेरे सामने थे। मैं जब गोरखपुर पहुँचा और अपने आनेकी सूचना भिजवायी तो उनकी ओरसे सर्वप्रथम संदेश आया— सामान रखकर हाथ-मुँह धोएँ, जलपान करें, विश्राम करें।

उस समय श्रीपोद्दारजी भावसमाधिकी स्थितिमें थे। उनके अन्तेवासी उस अवस्थाको 'अन्तर्मुख-अवस्था' कहते थे। हमारी दृष्टिमें वह थी सर्वोच्च ऊँचाईपर पहुँची पराभक्तिमें परमात्मासे अभिन्न आत्माकी तुरीयावस्था या समाधिकी चरम स्थिति, जो गीतामें बार-बार दुहरायी गयी है। उनकी इस उच्चतम अवस्थाने गीताके सम्बन्धमें हमारे लिये कई नये-नये अनुभव प्रदान किये थे। मुझे दूसरे दिन मिलनेका समय दिया गया।

जब मैं नियत समयपर उनके पास पहुँचा, तब वे लोगोंसे घिरे हुए थे और 'कल्याण'का प्रूफ-संशोधन भी कर रहे थे। उनका कमरा ग्रन्थों और पुस्तकोंसे भरा था। मुझे आश्चर्य हुआ, ये भीष्मपितामह इस अवस्थामें भी कितना काम करते हैं। मुझे ईशावास्योपनिषद्का दूसरा मन्त्र स्मरण हो आया और मैंने उन्हें सुना दिया—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ २॥

इस लोकमें कर्तव्य कर्मोंको ईश्वर-पूजार्थ करते हुए ही सौ वर्ष जीनेकी ईच्छा करे। तुझ मनुष्यके लिये इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं है, जिससे तुझे कर्मका लेप न हो।

वे मुस्कुरा दिये। वह मुस्कान क्या थी, आज भी उसकी गम्भीरता और रहस्यमयता मानसमें कौंध रही है। उस मुस्कानमें एक निर्लिप्त शिशु, एक कर्मठ युवक, एक अनुभवसिद्ध वृद्ध, एक

वीतराग गृहस्थ, एक आत्मलीन संन्यासी, एक प्रखर वक्ता तथा विद्यार्णवका मन्थन करनेवाले एक तेजोद्दीप्त व्यक्तिकी आभा एक साथ समाहित थी। मैं उनके पास बैठ गया और वे मुझे गीताके कुछ चित्रात्मक विषयोंपर 'गीतांक' दिखाते रहे। फिर उन्होंने गीता और फिल्म-कलाके सम्बन्धमें कतिपय नियमोंकी जानकारी ली। मैंने 'पटकथा'की प्रतिलिपि उन्हें दे दी तथा डरते-डरते उसके एक प्रसंगके सम्बन्धमें पूछा। वह था 'यज्ञ'के सम्बन्धमें अपने विचार। गीताके तीसरे अध्यायमें जो 'यज्ञ'की चर्चा देवताओं और मनुष्योंके परस्पर सहयोगके संदर्भमें हुई है, उसका मैंने अर्थ किया था— सभी ऐसे कर्म या उद्योग 'यज्ञ' हैं, जिनसे समाजका हित होता है और जो परस्पर सहकारकी भावनासे मिलकर किये जाते हों तथा जिनकी उपलब्धियाँ भी मिल-बाँटकर उपभोगमें लायी जाती हों। उसी प्रसंगमें गीताने यज्ञावशिष्ट खानेवालेके लिये सब प्रकारके पापोंसे छूटनेकी बात कही है और इसके विपरीत देवताओंका भाग न देकर अपने लिये ही बनाने-खानेवालेको चोर और पापका खानेवाला कहा है। तात्पर्य यह कि सामूहिक उद्योग यज्ञकी भावनासे हो और प्रत्येक उद्योगी सबसे अन्तमें खानेकी निष्ठा रखे। इसके विपरीत जो छल-छद्मका आश्रय लेकर दूसरोंका भाग चुरा लेता हो या नहीं देता हो, वह चोर है एवं केवल स्वयंके लिये उद्योग करना और उसकी उपलब्धियोंपर अकेले अधिकार रखना पाप है। इसपर मैंने गाँधीजीके 'ट्रस्टीशिप' का हवाला भी दिया। मुझे डर था, श्रद्धेय पोद्दारजी— जैसे सनातन-संस्कृतिके उपासक शायद मेरे अर्थको स्वीकार न करें। मैं उनकी ओर देखने लगा और मेरा संकोच बढ़ता रहा। दूसरे क्षण मुझे चौंकने और आश्चर्यमें पड़नेकी बारी थी। मेरी बात समाप्त होते ही उन्होंने तत्क्षण हँसते हुए कहा— यदि आपकी आधुनिक व्याख्या और गाँधीवादी दृष्टि स्वीकार करती हो तो मेरे विचारसे इसमें इतना अवश्य जोड़ लें कि ऐसे 'चोर' और 'पापी' को दण्ड देना अनिवार्य है। उसका बहिष्कार किया जाय और उससे किसी प्रकारका सहयोग न रखा जाय।

मैं हक्का-बक्का-सा रह गया और उनकी दृष्टिकी ऊँचाईको अपने बौने पैमानेसे मापते-मापते थक गया। मेरा रोम-रोम उनके लिये श्रद्धासे भर गया और मैंने कहा— आप पुरातनके ही पृष्ठपोषक नहीं, अधुनातनके भी नेता हैं। आप सचमुच सनातन दर्शनके वरदपुत्र हैं।

वे बच्चोंकी तरह सकुचाये, हँसे और फिर अगले विषयपर बढ़ गये। कहना नहीं होगा कि उन्होंने गीता-फिल्मका आध्यात्मिक संरक्षण ही नहीं स्वीकार किया, बल्कि उस सम्बन्धमें श्रीसर्राफजी द्वारा लिखे गये दो लेखोंको 'कल्याण'में प्रकाशित भी किया, जिनमें एक पर फिल्म और गीताके सम्बन्धमें अपने सम्पादकीय विचार भी व्यक्त किये और टिप्पणी प्रकाशित की। यह उस जनताके लिये आश्चर्यजनक घटना थी, जो उन्हें केवल फिल्म-विरोधी मानती थी। वे प्रत्येक अकल्याणकारी कार्य और साधनके विरोधी थे, किन्तु जहाँ भी कल्याणकारी विचार और कार्य मिलते थे, वे उनका डटकर समर्थन भी करते थे।

दूसरे दिन अन्तरंग वार्तामें उन्होंने कई संस्मरण सुनाये, जो इतिहास और समाजमें 'अग्नियुग' के नामसे विख्यात अध्यायसे सम्बन्धित थे तथा उनके सशस्त्र क्रान्तिमें सहयोग देनेके सम्बन्धमें थे।

मेरी दूसरी भेंट उनसे ऋषिकेशमें हुई। वहाँ उनका रूप तो वही था, लेकिन भावनामें एक

ओर जहाँ हिमालयकी ऊँचाई और गम्भीरता थी, वहीं ऋषिकेशकी गंगाकी तरह सुशीतलता और प्रवाह भी था, जो तीव्र वेगसे महामिलनकी ओर दौड़ा जा रहा था। इस संदर्भमें यह चर्चा भी कर देना आवश्यक है कि मैं श्रीओंकारमलजीके नेतृत्वमें उनके त्यागमय जीवनको प्रचारित करनेके उद्देश्यसे 'हीरक जयन्ती' समारोह मनानेका उद्योग कर रहा था। कलकत्ताके प्रसिद्ध धार्मिक एवं समाजसेवी महानुभावोंमें अग्रणी श्रीछोटेलालजी कानोड़िया भी इस समारोहके लिये बड़े उत्सुक थे। रोग-शय्यापर पड़े-पड़े भी वे मुझे बुलाकर इसकी प्रगतिके बारेमें पूछते रहते थे और परामर्श दिया करते थे। उनकी तीव्र कामना थी कि यह समारोह हो जाय। साथ ही कतिपय साहित्य-महारथी भी इस आयोजनमें सब प्रकारका सहयोग देनेके लिये प्रस्तुत थे। हमारा यह चौथा प्रयास था। इसके पूर्व तीन प्रयास हो गये थे, जिसे श्रद्धेय पोद्दारजीने विनयपूर्वक अस्वीकार ही नहीं किया था, बल्कि अपनी सारी विनयशीलता और सारे आग्रहसे उन्होंने ऐसे आयोजनोंको बन्द करा दिया था। ऐसे सम्मानजनक समारोहोंकी सूचना पाकर उन्हें इतना दुःख होता था, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सभीको विश्वास था कि हमारा यह आयोजन अवश्य सफल होगा, क्यों कि श्रीओंकारमलजी इसके आयोजक थे और श्रीपोद्दारजी अपने अभिन्न मित्रकी अन्तिम इच्छाको टाल नहीं सकेंगे। इस आयोजनकी जानकारी होते ही श्रीपोद्दारजीने उन्हें एक अत्यन्त ही मार्मिक पत्र लिखा और अपने प्रेमकी याद दिलाते हुए उसका यही बदला माँगा कि वे तुरन्त यह आयोजन बंद कर दें। श्रीसर्राफजी भी कम जिद्दी नहीं थे। पत्राचार आरम्भ हुआ। दो मित्रों या भाइयोंके अपने-अपने दावे आरम्भ हुए। हमने श्रद्धेय पोद्दारजीको आश्वासन दिया था कि हम अगले ग्रन्थ और आयोजनमें भारतीय संस्कृतिके पचहत्तर वर्षोंके आध्यात्मिक उन्नयन मात्रमें उनके योगकी चर्चा करेंगे। इसे भी उन्होंने नहीं माना। तब हमने इस संदर्भमें गीताप्रेसकी भूमिकाकी चर्चा की। उसे भी उन्होंने अस्वीकार कर दिया। श्रीशान्तिप्रसादजी जैनने परामर्श दिया कि उनकी इच्छाके विरुद्ध 'गार्हस्थ्य और साधुत्व' के सामञ्जस्यपर एक वृहद् ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय, क्यों कि श्रीपोद्दारजी इसके सर्वोत्कृष्ट प्रतीक थे, किन्तु सब व्यर्थ। ऐसा आदमी मैंने अपने जीवनमें नहीं देखा, जो अपनी प्रशंसा सुनकर उसकी कल्पना मात्रसे इतना दुःखी हो जाता हो। उस दिन प्रवचनमें उन्होंने इस अभिनन्दन-कार्यक्रमपर स्नेहमें पगी हुई मीठी चुटकी ली।

ऋषिकेशमें मुझे उनके दो गुणोंका व्यापक परिचय मिला, एक अतिथि-सेवा और दूसरा परदुःखकातरता। मेरे पहुँचनेके साथ ही उन्होंने पहला प्रश्न किया था— कैसा है ओंकार?

श्रीसर्राफजी उन दिनों अस्वस्थ थे। हम अभी बैठे ही थे कि एक साधु आये। कुशल क्षेमके बाद उन्होंने उनकी आवश्यकता पूछी। उन्होंने चालीस रुपयेकी आवश्यकता बतलायी। तुरन्त उन्होंने साठ रुपये दिलवा दिये। हम कलकत्तासे गये थे। बार-बार वे हमारे रहने-खानेके सम्बन्धमें जानकारी लेते रहते थे। हमारे पहुँचनेके दिन ही वे भावसमाधिकी स्थितिमें चले गये। जब कई घंटों बाद उनकी वृत्ति बहिर्मुखी हुई, तब उन्होंने सर्वप्रथम हमें बुलाया। हमलोग उसी दिन कलकत्ता लौट रहे थे। अतः बड़े संकुचित भावसे बोले— बात नहीं हुई आपसे। देखिये न, आज आप जा रहे हैं। यदि आवश्यकता हो तो जितना चाहे रुपये ले लें। घरकी बात है।

मैंने विनयपूर्वक उन्हें आश्वासन दिया— हमें रुपयोंकी आवश्यकता नहीं है। पर्याप्त खर्च लेकर चले थे।

श्रीसर्राफजी जब 'मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी'की स्थापनाके लिये प्रयत्नशील थे, तब प्रारंभसे ही श्रीपोद्दारजी उनके साथ मूक समाजसेवीके रूपमें जुट गये थे। श्रीसर्राफजीने मुझे बताया था— हनुमान नहीं होता तो मैं सोसाइटीका काम पूरा कर नहीं पाता। वह मेरे साथ ऐसा जुड़ गया था जैसे दूध-पानी एक रंग हो जाते हैं। सारा काम तो हनुमान देखता था। वह हिसाब रखता, भाषण तैयार करता, अपने आकर्षक वाग्बलसे लोगोंको सहयोगके लिये विवश कर डालता। उस समयसे ही वह नाम नहीं चाहता था, एक मूक सेवाभावी होकर सेवा ही करता। सोसाइटी आज जो इस प्रकार एशियाकी प्रमुख संस्था बन गयी है, उसकी नींवमें दबी हुई है हनुमानकी ईंट।

मैंने उस दिन नींवकी ईंटका महत्त्व समझा। बेचारी नींवकी ईंट इमारतके लिये कितनी महत्त्वपूर्ण है। वह मूकभावसे सारी इमारतका बोझ अपने सीनेपर सँभाले हुए, कँगूरोंकी तरह अपना प्रचार नहीं करती, बल्कि उन्हें चमकाने और गर्वसे इठलानेके लिये समुन्नत करनेमें अपना बलिदान करती है। श्रीपोद्दारजी किस-किस इमारतकी नींवकी ईंट बने हैं, यह गवेषणाका विषय है, क्यों कि उनके उपकारसे केवल हिन्दू संस्कृति ही नहीं, समाज और इतिहास भी दबा हुआ है। कौन जानता है कि व्यवसायी मारवाड़ी केवल व्यवसाय करना ही नहीं जानते, बल्कि अवसर आनेपर मातृभूमिके लिये शस्त्र उठाने और फिर समाजके उन्नयनके लिये शास्त्रका उपयोग करनेमें भी कोर-कसर नहीं रखते। श्रीपोद्दारजी इसके एकमात्र उदाहरण हैं, जिनके जीवनका आरम्भ शस्त्रसे लेकर अन्त शास्त्रमें हुआ। क्रान्तिका यथार्थ स्वरूप तो उन्हींके जीवनमें दिखायी पड़ता है। क्रान्ति केवल रक्तपात नहीं, रक्त-संचार भी है। रक्तपात तो दूषित रक्तका होता है और फिर शुद्ध रक्तका संचार भी क्रान्तिका दूसरा पहलू है। शस्त्रधारी श्रीपोद्दारजीने आत्म-विकासकी प्रेरणासे संसारको अभिषिक्त करनेके लिये केवल शास्त्र ही नहीं उठाया, बल्कि अपने जीवनको प्रतीक बनाकर यह भी दिखा दिया कि 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' कैसे हुआ जाता है। आध्यात्मिक अभ्युत्थानके लिये चोला नहीं, चेतनता बदलनी पड़ती है, वस्त्र नहीं, मन बदलना पड़ता है। विदेह होना अब केवल शास्त्र-कल्पना नहीं, श्रीपोद्दारजीका जीवन उसका साक्षात् उदाहरण है। ■

श्रीबालकृष्णजी ओझा

'भारत-रत्न'की उपाधि

मैं दक्षिणी हैदराबादका रहने वाला हूँ तथा पत्रकार हूँ। पत्रकारिता मुझे अपने पूज्य पिताजी श्रीवैंकटलालजी ओझासे विरासतके रूपमें प्राप्त हुई है। पूज्य पिताजी एक प्रबुद्ध एवं निष्ठावान् पत्रकार थे। आध्यात्मिक अभिरुचि होनेके कारण पूज्य पिताजी युवावस्थासे ही प्रसिद्ध आध्यात्मिक पत्रिका 'कल्याण' एवं गीताप्रेसके प्रकाशनोंका परिशीलन-मनन करने लगे थे, जिसके परिणामस्वरूप उनके हृदयमें श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीके प्रति सहज आकर्षण उत्पन्न हो गया था, परंतु हैदराबाद स्थित राष्ट्रपति निलयम्‌के एक प्रसंगके बाद तो वे श्रीपोद्दारजीके भक्त ही हो गये। अपने सम्पर्कमें आने वालोंसे वे श्रीपोद्दारजीकी महानताकी चर्चा हृदय भरकर करते थे।

अपने परिवारके सदस्योंको भी वे श्रीपोद्दारजीकी इस महानताके विषयमें बताना अपना कर्त्तव्य समझते थे, जिससे उनके हृदयमें श्रीपोद्दारजी जैसे संतके प्रति श्रद्धाभावना प्रतिष्ठित हो। इसी संदर्भमें पूज्य पिताजीने बताया कि श्रीपोद्दारजी विशुद्ध संत थे, वे जागतिक मान-प्रतिष्ठासे कोसों-कोसों दूर थे। पूज्य पिताजीके श्रीमुखसे सुने इस प्रसंगने मुझे भी अत्यधिक प्रभावित किया और वह प्रसंग मेरे हृदयपर अंकित हो गया। मैं श्रीपोद्दारजीके प्रति अपने श्रद्धा-सुमनके रूपमें उसी प्रसंगको लिख रहा हूँ।

सन् १९५५ के आस-पासकी बात है। राष्ट्रपति श्रीराजेन्द्र बाबू अल्पकालिक आवासके लिये राष्ट्रपति निलयम्में विराज रहे थे। श्रीराजेन्द्र बाबूने पत्रकारोंको आमन्त्रित कर रखा था और पत्रकार सम्मेलन चल रहा था। पत्रकारके नाते मेरे पूज्य पिताजी भी उस सम्मेलनमें उपस्थित थे और यह संयोगकी बात है कि वे श्रीराजेन्द्र बाबूके अति निकट कुर्सीपर बैठे हुए थे। उसी समय दिल्लीसे केन्द्रीय सरकारके गृहमंत्री श्रीपन्तजी (पंडित श्रीगोविन्दवल्लभजी पन्त) का एक गोपनीय पत्र आया, जिसे मेरे पिताजीके सामने ही खोला और पढ़ा गया। उस पत्रमें लिखा था कि श्रीभाईजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ने 'भारत रत्न'की उपाधिके प्रस्तावको बहुत अनुरोध और आग्रहके बाद भी स्वीकार नहीं किया।

इस समाचारको पढ़ते ही दर्द भरे स्वरमें श्रीराजेन्द्र बाबूने कहा— मेरे मनमें बड़ी भावना थी कि श्रीपोद्दारजीको 'भारत रत्न'की उपाधिसे विभूषित किया जाय। इस प्रस्तावको स्वीकार करनेके लिये मैंने बड़ी कठिनाईसे श्रीनेहरूजीको राजी किया था, अब वे यह सुनकर क्या कहेंगे?

श्रीराजेन्द्र बाबूके इन भावोद्गारोंको सुनकर मेरे पूज्य पिताजी मन-ही-मन सोचने लगे श्रीभाईजीके बारेमें और साथ-साथ श्रीराजेन्द्र बाबू और श्रीपन्तजीके बारेमें भी। श्रीराजेन्द्र बाबू और श्रीपन्तजीके हृदयमें श्रीभाईजीके प्रति कितना अधिक स्नेह और सम्मान है कि वे भारतकी सर्वोच्च उपाधिसे श्रीभाईजीको विभूषित करना चाहते हैं और श्रीभाईजी भी कैसे निःस्पृह और निःस्वार्थी हैं कि वे प्रतिदानकी भावनासे दूर रहकर धर्म और समाजकी गुप्त सेवा करना चाहते हैं।

मुझे एक पत्र भी पढ़ने को मिला, जो पूज्य श्रीभाईजीने पं. श्रीगोविन्दवल्लभजी पंतको लिखा था। श्रीभाईजी द्वारा लिखा गया पत्र श्रीपंतजीके एक पत्रका उत्तर था। श्रीपंतजीके पत्रको श्रीभाईजीने इस विचारसे नष्ट कर दिया कि उससे अहंभावके परिपोषण होनेकी संभावना है और उस संभावनाका अस्तित्व ही क्यों रहे? भले श्रीपंतजीवाला पत्र नष्ट हो गया, पर उत्तर स्वरूप लिखे गये पत्रको पढ़नेसे अनेक बातोंकी जानकारी हो ही जाती है। श्रीभाईजी द्वारा लिखा गया पत्र इस प्रकार है:—

माननीय श्रीपंतजी,

सादर प्रणाम।

आपका कृपापत्र मिला। आप सकुशल दिल्ली पहुँच गये, यह आनन्दकी बात है। आपके इस नये ढंगके पत्रको पढ़कर बड़ा आश्चर्य हो रहा है। पता नहीं, भगवानके मंगल विधानसे क्या होनेवाला है।

आपने जो स्वप्न तथा प्रत्यक्ष चमत्कार देखनेकी बात लिखी, वह मेरी समझमें तो आयी नहीं। हाँ, आपके अज्ञात मनके किन्हीं संस्कारके ये चित्र हो सकते हैं। मेरे बाबत आपने जो कुछ देखा-लिखा, उसके सम्बन्धमें तो इतना ही कह सकता हूँ कि मैं न योगी हूँ, न सिद्ध महापुरुष हूँ, न पहुँचा हुआ महात्मा हूँ, न किसीको दिव्य दर्शन देकर कृतार्थ करनेकी या वरदान देनेकी ही मुझमें शक्ति है। मैं साधारण मनुष्य हूँ, मुझमें कमजोरियाँ भरी हैं। भगवानकी अहैतुकी कृपा मुझपर अनन्त है, इसमें मेरा विश्वास है। मुझे इस पत्रसे पहले आपके स्वप्न तथा जाग्रतमें चमत्कार देखनेका कुछ भी पता नहीं था। अतएव मैं क्या कहूँ? अवश्य ही आपके निकट भविष्यमें देहावसानकी जो सूचना इसमें मिली है, उससे मुझे चिन्ता हो रही है। आप उचित समझें तो स्वयं मृत्युञ्जय-मन्त्रका जप कीजिये और किन्हीं विश्वासी शिवभक्तके द्वारा सवा लाख जप करा दीजिये। मैं यह जानता हूँ कि आप आस्तिक हैं। भगवानमें और शास्त्रमें आपका विश्वास है। आपने लिखा, 'जवाहरलाल भी, ऊपरसे कुछ भी कहें, आस्तिक हैं' सो ठीक है। उनके बारेमें मैं भी यही मानता हूँ।

आपने मेरे लिये लिखा कि ''आप इतने महान् हैं, इतने ऊँचे महामानव हैं कि भारतवर्षको क्या, सारी मानवी दुनियाको इसके लिये गर्व होना चाहिये। मैं आपके स्वरूपके महत्त्वको न समझकर ही आपको 'भारत रत्न'की उपाधि देकर सम्मानित करना चाहता था। आपने उसे स्वीकार नहीं किया, यह बहुत अच्छा किया। आप इस उपाधिसे बहुत-बहुत ऊँचे स्तरपर हैं। मैं तो आपको हृदयसे नमस्कार करता हूँ।''

आपके इन शब्दोंको पढ़कर मुझे बड़ा संकोच हो रहा है। पता नहीं, आपने किस प्रेरणासे यह सब लिखा है। मेरे तो आप सदा ही पूज्य हैं। मैं जैसा पहले था, वैसा ही अब हूँ, जरा भी नहीं बदला हूँ। आप सदा मुझपर स्नेह करते आये हैं और मुझे अपना मानते रहे हैं। मैं चाहता हूँ, वैसा ही स्नेह करते रहें और अपना मानते रहें। मैं आपकी श्रद्धा नहीं चाहता, कृपा तथा प्रीति चाहता हूँ, स्नेह चाहता हूँ। मेरे लायक कोई सेवा हो तो लिखें। आपके आदेशानुसार पत्र जला दिया है। आप भी मेरे इस पत्रको गुप्त ही रखियेगा।

शेष भगवत्कृपा।

आपका,
हनुमानप्रसाद पोद्दार

पूज्य श्रीभाईजीका वह आध्यात्मिक व्यक्तित्व कैसा अनूठा है, जो प्रसिद्धिसे दूर रहकर और सदा छिपकर कार्य करते रहनेमें ही अपने कर्तव्यकी सार्थकता मानता है। ■

श्रीबजरंगलालजी सिंहानिया

[१] आत्मीयजनोंकी भावनाका आदर

बात पुरानी है। श्रीभाईजी और पूज्य बाबा एक बार बम्बई आये और हमारे घरपर ही ठहरे। लगभग तीन सप्ताह रहे होंगे। इसके बाद जानेका कार्यक्रम बन गया। मेरे मनमें यह चाह जाग उठी कि यदि श्रीभाईजी तीन-चार दिन और ठहर जायें तो बड़ा उत्तम रहे। मैंने अपनी चाह

बाबाके सामने व्यक्त की। बाबाने मुझसे कहा— एक लाख नाम जप रोज करो तो ठहरनेकी बात बन सकती है।

मैंने तुरन्त बाबाकी बात शिरोधार्य कर ली। फिर बाबाने श्रीभाईजीसे सारी बात बताकर कहा— मैंने इसे वचन दिया है, अतः ठहरना चाहिये।

श्रीभाईजीने वह अनुरोध उसी समय स्वीकार कर लिया। श्रीभाईजीने कहा— आपने जो वचन दिया है, वह एक प्रकारसे मैंने ही दिया है। अतः मैं अवश्य ठहरूँगा, पर इससे भी उत्तम बात एक और है। यात्राके कार्यक्रमका बनना-बिगड़ना-बदलना तो अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोंका परिणाम हुआ करता है। ईश्वरेच्छासे जो होना उचित हो, वही हो, पर सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है जीवनका भगवन्नाम-परायण होना। बजरंगने नाम-जपका नियम लिया है, यह अतीव सुन्दर एवं लाभप्रद बात बन गयी। मुझे प्रसन्नता है कि मेरे ठहरनेसे आपके वचन तथा बजरंगकी इच्छा— दोनोंकी परिपूर्ति हो जायेगी।

श्रीभाईजीकी भगवन्नाम-निष्ठाको देखकर मन तो गद्‌गद था ही, पर बहुत अधिक भावमय हो रहा था यह देखकर कि वे आत्मीय लोगोंकी भावनाको कितना अधिक आदर दिया करते हैं।

ऐसा ही एक प्रसंग गीतावाटिकाका है। मैं दर्शन एवं सत्संग-लाभकी दृष्टिसे गीतावाटिका गया हुआ था। जब सत्संगके समयके बारेमें श्रीभाईजीके निजी परिकर श्रीकृष्णचन्द्रजीसे पूछा तो उन्होंने बतलाया— आजकल सत्संग नहीं होता। बाबूजी तो अपने कमरेके एकान्तमें रहा करते हैं। यदि आप जाकर कहें तो वे शायद बात मान लें।

मैं श्रीभाईजीके पास गया और उनसे कहा— आजकल सत्संग नहीं होता क्या? हमलोग तो इसीके लिये आते हैं।

श्रीभाईजी थोड़ी देर तक तो चुप रहे। मैं उनके उत्तरको सुननेके लिये उत्सुक हो रहा था। कुछ क्षणोंके बाद वे बोले— चलो, पंडालमें बैठो। औरोंको भी बुलाओ। मैं आता हूँ।

थोड़ी देर बाद श्रीभाईजी पंडालमें आये और एक घंटेतक उनका प्रवचन सुननेको मिला। सत्संगके पूर्ण होनेपर मुझे कुछ-कुछ संकेत मिलने लगा मानो यह सत्संग केवल आज भर हुआ और फिर कलसे नहीं होगा। आजका सत्संग तो मेरे मनको रखनेके लिये हो गया था। जब श्रीभाईजी पंडालसे अपने कमरेकी ओर जाने लगे तो मैं उनके पीछे-पीछे चलने लगा और अवसर देखकर मैंने धीरेसे निवेदन किया *'राम सदा सेवक रुचि राखी'।*

उन्होंने मेरी बात सुन ली और मेरे मनकी बात जान ली। सचमुच उन्होंने मेरी रुचिको रखा। मैं सात-आठ दिन गीतावाटिका रहा और प्रतिदिन सत्संग हुआ। बादमें पता चला कि मेरे जानेके बाद सत्संग नहीं हुआ।

उनके प्यारकी बात कहाँतक बतलाऊँ? एक और अवसरपर जब मैं गीतावाटिका गया तो उन्होंने भाई श्रीकृष्णजीसे कहा— जावो, माँसे कह दो कि आज बाजरेकी खिचड़ी बनायी जाय। बजरंग आया है। इसे बहुत पसंद है।

पता नहीं, मेरी रुचिका उन्हें कैसे पता लगा। फिर उस दिन चौकेमें बाजरेकी अति स्वादिष्ट खिचड़ी खानेको मिली। ऐसा अन्य भला कौन है, जो आत्मीयजनोंकी रुचिका ध्यान रखे? अपने कहलाने वाले घरके लोग भी शायद ही इतना ध्यान रख पायेंगे। श्रीढोलकियाजी कहा

करते थे– घरपर अपनी पत्नी अथवा पुत्र-वधूसे चाय माँगनेमें संकोच हो जाया करता था, पर यहाँकी बात ही दूसरी है। अपनेपनके आधिक्यमें संकोचका अस्तित्व रहता ही नहीं।

[२] अनोखी आत्मीयता

मेरे छोटे भाई श्रीपुरुषोत्तमदास सिंहानियाके सुपुत्र उमेशका गोरखपुरमें मंगल विवाह था। विवाहके निमित्तसे हम सभी भाई गोरखपुर आये हुए थे। मुझे मंगल-पत्रिकाको बाँटनेका कार्य दिया गया। श्रीभाईजीको भी मंगल-पत्रिका देनी थी। हम सभी भाई एक साथ गीतावाटिका गये। पंडालमें श्रीभाईजीका सत्संग हो रहा था। हमलोग सत्संगमें बैठ गये। सत्संगके उठनेके बाद मंगल-पत्रिका लेकर हम सभी भाई श्रीभाईजीके सामने खड़े थे। हम उनको मंगल-पत्रिका दें, इसके पहले ही श्रीभाईजी बोल पड़े– क्यों, मुझे पत्रिका देने आये हो ?

संकोचके मारे न मैं कुछ बोल पाया और न उनको मंगल-पत्रिका दे पाया। मैं जड़वत् वहीं खड़ा रहा। क्षण बीतते-बीतते श्रीभाईजी बोले– मैं जैसा-जैसा कहता हूँ, वैसा-वैसा तुम करो। पहले एक पत्रिका तुम लो, फिर अपने तीनों भाइयोंको दो और फिर मुझको दो।

ऐसी आत्मीयताके दर्शन क्या कभी और कहीं हो पायेंगे ? बड़ी कठिनाईसे मैं अपने आँसुओंको रोक पा रहा था। इसके बाद भी नेत्र सजल हो ही उठे।

इतना ही नहीं, परिवारके 'बड़े' होनेके नाते उन्होंने विवाहके नेगका 'नाल' भी धारण किया। उन्होंने एक बार सत्संगमें कहा था– जहाँ सच्चा प्रेम होता है, वहाँ निमंत्रणकी राह नहीं देखी जाती।

[३] त्रिकालदर्शीका सार्थक मौन

बात गीतावाटिकाकी है। मैं अपने विचारोंसे उलझा हुआ था। मनमें उलटे-सीधे-अटपटे विचार उभर रहे थे। इन विचार-लहरियोंकी कोई सीमा थी नहीं। मनमें खिन्नता भी थी कि जीवन निखर नहीं पाया और आयुके दिन घटते चले जा रहे हैं। खिन्नताके साथ एक सन्तोष भी था कि श्रीभाईजी जैसे समर्थ संतका चरणाश्रय मिला हुआ है। मैं सोच रहा था– कब भगवत्प्रेममें सदा छका रहूँगा ? कब सदाके लिये तन-मन-जीवन श्रीकृष्ण-भक्तिमें डूब जायेगा ? मानव जीवनको बड़ा दुर्लभ बताया गया है। यदि भगवत्प्राप्ति नहीं हुई तो फिरसे चौरासीके चक्करमें फँस जाना पड़ेगा। श्रीभाईजी जैसे समर्थ संतका आश्रय मिलनेके बाद मेरे मनमें यह संदेह क्यों जगा ? न जाने, पूर्व जन्म कैसा था और न जाने मृत्युके समय क्या स्थिति होगी तथा मृत्युके बाद क्या स्वरूप रहेगा ?

अपने विचारोंके प्रवाहमें बहता हुआ मैं श्रीभाईजीके पास जाकर बैठ गया। थोड़ी देर बाद ज्यों ही उन्होंने मुझसे रुख जोड़ा, मैं उनसे पूछ बैठा– मेरे मनमें बड़ी जिज्ञासा यह जाननेकी है कि पहले मैं क्या था, अब क्या हूँ तथा आगे चलकर क्या होऊँगा ? आपसे कुछ छिपा नहीं है। आप चाहें तो बतला सकते हैं।

मेरी बात सुनकर भी श्रीभाईजी मौन रहे। ऐसा लगा कि वे मेरी बातोंका उत्तर देना नहीं चाहते। उनके प्यारने मुझे थोड़ा मुँहलगा बना दिया था। मैंने आग्रह किया, इसपर भी वे मौन रहे। जब मैंने पुनः अधिक आग्रह किया तो श्रीभाईजी बोले– हाँ, यह तो पता है कि क्या थे और क्या हो, पर क्या होवोगे, यह पता नहीं।

मेरे मनमें तुरन्त एक विचार उठा कि जो भाईजी भूतकालकी एवं वर्तमानकालकी सारी बातोंको जानते हैं, वे क्या भविष्यकालकी बात नहीं जानते होगें ? अवश्य जानते होगें, पर ये भविष्यकी बात न बताना चाहें तो उनकी मर्जी।

मैंने एक-दो बार और मधुर स्वरमें अनुरोध किया, पर उन्होंने कुछ बतलाया नहीं। एकको बतला देने पर दूसरा व्यक्ति, तीसरा व्यक्ति, इस प्रकार अनेक लोग आकर व्यर्थमें तंग करेंगे तथा समय नष्ट करेंगे, अतः उन्होंने मौन रहनेमें ही लाभ समझा और वे अन्ततक इस विषयमें मौन ही रहे, परन्तु एक बात अवश्य है। उनकी मुख-मुद्रासे तथा उनके शाब्दिक आश्वासनसे यह समाधान पूर्ण रूपसे मिल गया कि भविष्य परम सुन्दर परम मंगलमय है। ■

श्रीरामेश्वरप्रसादजी बाजोरिया

[१] भिक्षुकको रोटी

उन दिनों मैंने गीताप्रेसमें कार्य करना आरम्भ ही किया था। श्रीभाईजी जालानोंके बगीचेकी कोठीमें सकुटुम्ब रहते थे। मैं उनके साथ ही रहता-खाता-पीता था। कोठीमें बाहरकी तरफ बरामदा था और उसके दोनों तरफ कमरे बने थे। एकमें श्रीभाईजी बैठकर लिखा-पढ़ा करते थे। और दूसरेमें उनके कर्मचारी बैठते थे।

एक दिन एक भिक्षुकने बरामदेके पास आकर खानेके लिये रोटी माँगी। श्रीभाईजीने एक आदमीको घरमेंसे रोटी लाकर देनेको कहा। वह जाकर रोटी ले आया और दरवाजेके पास खड़ा रहकर रोटी भिक्षुककी तरफ फर्शपर फेक दी। भिक्षुकने रोटी ले ली, पर श्रीभाईजीको इससे बहुत दुःख हुआ। उन्होंने रोटी लाने वालेको पास बुलाकर कहा– रोटी इस तरह नहीं फेंकनी चाहिये। इससे गरीबको दुःख होता है, भले वह कुछ बोलता नहीं। भिक्षुकके रूपमें भगवान ही हैं, जो याचना कर रहे हैं। उपेक्षापूर्वक देनेसे श्रीदरिद्रनारायण और अन्न-देवताका अपमान होता है। रोटी भिक्षुकके हाथमें धीरेसे आदरपूर्वक देनी चाहिये।

[२] विलायती वस्त्रोंकी होली

यह बात तबकी है, जब श्रीभाईजी गोरखनाथके मन्दिरके पास एक बगीचेमें रहते थे और मैं भी सकुटुम्ब उनके सामनेके ही एक बगीचेमें रहता था। श्रीभाईजी कोई विशेष काम होनेसे ही गीताप्रेस जाते थे, पर मैं तो नित्य ही जाता था।

एक दिन हम दोनों प्रेस गये थे। संध्याको लौटकर जब बगीचेमें आये तो मालूम हुआ कि श्रीभाईजीका कोई सम्बन्धी या घनिष्ठ मित्र लाड़ली सावित्रीके पहननेके लिये कपड़े दे गया है। सावित्री श्रीभाईजीकी एक मात्र सन्तान है। वे सब कपड़े विलायती थे।

श्रीभाईजीके मनमें स्वदेशी वस्त्रोंके लिये आग्रह था। उन्होंने तो महात्मा गाँधीसे भी पहले खादी पहननी आरम्भ कर दी थी। विदेशमें निर्मित वस्त्र श्रीभाईजीको किसी भी रूपमें स्वीकार नहीं थे। उन्होंने वे सब वस्त्र निकलवाकर बँगलेके सामने आँगनमें रख दिये और जलाकर उनकी होली कर दी। वे तो वर्षोंसे शुद्ध खद्दर पहनते ही थे, घरमें भी भाभीजी (उनकी

धर्मपत्नी) और फुआजी (उनकी माताजी) खद्दर पहनती थीं। घरवालोंने शिष्टाचार निभानेके लिये वे सारे कपड़े रख लिये थे। श्रीभाईजीने उसका प्रायश्चित कर लिया।

इस घटनासे एक बार तो सबका मन कुछ खिन्न हो गया और कुछ लोगोंने अपशकुन भी समझा। समय बीतते क्या देर लगती है? कुछ ही दिनों बाद वे ही लोग श्रीभाईजीके स्वदेशी-व्रतकी और व्रत-दृढ़ताकी सराहना करने लगे। श्रीभाईजीकी दृढ़ताका प्रभाव और परिणाम सुन्दर निकला। पीछे सब लोग और भी दृढ़तासे स्वदेशी-व्रतका पालन करने लगे। स्वदेशी-व्रतके प्रति श्रीभाईजीके मनमें जो दृढ़ता थी, वह स्वतः आचरणमें परिव्याप्त हो गयी।

[३] परम स्वजन

सन् १९५७ में मेरी माताजीका कलकत्तेमें स्वर्गवास हो गया। श्रीभाईजी सकुटुम्ब तब रतनगढ़में थे। मैंने उनको लिखा— आप कलकत्ते आनेका कष्ट नहीं कीजियेगा और वहींपर आपको जैसा जँचे, उतना अन्नादिके वितरण, ब्राह्मणोंके भोजन-दक्षिणा और कुटुम्बियों आदिके खिलाने-पिलानेका काम करवा दीजियेगा।

इसके साथ ही मैंने कुछ रुपये उनके पास रतनगढ़ भेज दिये। मेरे पास वापसी डाकसे उनका उत्तर आया— तुम्हारी जैसी हैसियतवाले तुम्हारे ही एक कुटुम्बकी माताजीका यहाँ खर्च हुआ है। उसीके अनुसार मामीजी (अर्थात् मेरी माताजी) का भी खर्च होना ठीक रहेगा। तुम्हारे पाससे रुपये आये थे, वे कुछ कम पड़ते हैं। वे मेरी भी 'माँ' ही थीं, सो कुछ अधिक खर्च होगा, वह मेरे पाससे लग जायगा।

श्रीभाईजी मेरी सगी बुआजीके सुपुत्र थे। मैं यह समाचार पाकर बहुत लज्जित हुआ और परम प्रसन्न भी। लज्जा इसलिये कि मैंने बिना पूरी जानकारी प्राप्त किये ही रुपये भेज दिये, जो कम पड़े और प्रसन्न इसलिये हुआ कि आज भी इस कलियुगी दुनियामें ऐसे 'अपने' स्वजन हैं। श्रीभाईजीका ऐसा पत्र आनेके बाद मैंने तत्काल यथेष्ट रुपये भेज दिये। फिर उनका समाचार आया— कुछ रुपये बच गये हैं।

मैंने उनको लिखा— वे आप अपनी मामीकी तरफसे अपने पास रख लें।

हमारे लोगोंमें इस प्रकारके देने-लेनेका रिवाज है। मेरे लिखनेके बाद भी उन्होंने एक पैसा नहीं रखा। सब रुपये लौटा दिये। धन्य हैं ऐसे स्वजन! ■

श्रीविश्वम्भर सहायजी प्रेमी

[१] व्यक्तिगत आत्मीयता

श्रीपोद्दारजीसे मेरा व्यक्तिगत आत्मीयताका सम्बन्ध रहा है। वे मुझे अपना अनुज समझते थे और मैं उन्हें अपना संरक्षक मानता था। ग्रीष्म ऋतुमें जब वे गीताभवन (स्वर्गाश्रम) आते थे, तब मैं भी समय निकालकर वहाँ जाता था उनके सांनिध्यके लोभमें। उनका व्यक्तित्व था ही ऐसा आकर्षक। उन्हें ज्ञात था कि कुछ वर्षोंसे मैं श्वासके रोगके कारण बहुत अस्वस्थ रहता हूँ। गीताभवनके श्रीवैद्यजी महाराज मेरी बहुत देखभाल करते थे। श्रीभाईजीकी हिदायत थी कि

मुझे स्वस्थ रखनेके लिये बढ़िया-से-बढ़िया औषधियाँ दी जायँ। मैं उनके इस उपकारको जीवन भर नहीं भुला सकूँगा।

[२] पारस्परिक बात-चीतके स्मरणीय क्षण

श्रीभाईजीके स्वर्गाश्रम आ जानेपर वहाँ एक नया ही जीवन दिखलायी पड़ने लगता था। उनके प्रवचनोंको असंख्य व्यक्ति बड़ी श्रद्धाके साथ सुना करते थे। व्यक्तिगत रूपसे विद्वानों, साहित्यकारों और साधु-संन्यासियोंका उनके निवास-स्थानपर आना-जाना लगा रहता था। साहित्यकारोंके प्रति उनके मनमें बड़े सम्मानका भाव था। आश्चर्यकी बात यह है कि अनेक ग्रन्थोंकी रचना करनेपर भी वे अपनेको साहित्यकार नहीं मानते थे। वे तो यही कहा करते थे— मैं साहित्यकार नहीं हूँ, गीताप्रेसका सेवक हूँ।

मैं भी एक छोटी-सी पत्रिकाका सम्पादक हूँ, अतः मिलनेपर विचारोंका आदान-प्रदान होता ही था। एक बार संस्कृतिके बारेमें बात चल पड़ी। श्रीभाईजी भारतीय संस्कृतिके प्रबल पोषक रहे। वे इस बातसे दुःखी होते थे कि देशका नैतिक स्तर गिर रहा है और आज भारतीय संस्कृति नष्ट होती जा रही है। एक बार अनौपचारिक बातचीतके मध्य वे कहने लगे— कितना आश्चर्य है कि आज विदेशी विद्वान तो हमारी संस्कृतिका आदर कर रहे हैं और उसे जाननेके लिये इच्छुक हैं, परंतु अपने देशके लोग पश्चिमी संस्कृतिका अनुकरण कर रहे हैं। यह बड़े खेद की बात है कि आजकल व्यवहारमें माता-पिता-चाची-चाचा आदिको सम्बोधित करनेके लिये अँगरेजी शब्दोंका प्रयोग किया जाता है।

एक बार हिन्दी भाषाके बारेमें बात होने लगी। हिन्दीके उन्नायक प्रयागनिवासी राजर्षि श्रीपुरुषोत्तमदासजी टण्डन श्रीभाईजीको बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते थे और उन्होंने कहा था कि श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार हिन्दीके लिये बड़ा काम कर रहे हैं। बातचीतके बीच अपने विचार प्रकट करते हुए श्रीभाईजीने मुझसे कहा था— भाषाका प्रश्न सीधा-सादा था, पर राजनीतिज्ञोंने काफी उलझा दिया है। हिन्दी भाषा हमारी राष्ट्रीय एकताको सुदृढ़ करने वाली भाषा है। सम्पूर्ण भारतमें प्रयोग की जाने वाली हिन्दीकी ओरसे उदासीनता बरती जाना लज्जा और दुःखकी बात है। हमें अँगरेजी बोलना सम्मान सूचक लगता है और अपनी भाषाका प्रयोग करना शानके खिलाफ।

एक बार समाजके मध्यम-वर्गीय सफेदपोश, किन्तु अभावग्रस्त लोगोंके बारेमें बात चल पड़ी। बातकी धारा फिर बह चली रोगियों, विधवाओं, विद्यार्थियों, अनाथों, भिखारियोंकी दर्द-भरी स्थितिकी ओर। मैंने देखा कि उन दुखियोंकी चर्चा चलनेपर श्रीभाईजी उदास और विह्वल हो जाया करते थे। मानवता तो उनके रोम-रोममें समायी हुई थी। उन्होंने बड़े भाव-भरे शब्दोंमें कहा— किसी दुःखी व्यक्तिकी सहायता करके हम उसपर एहसान नहीं करते, बल्कि अपने कर्तव्यका पालन करते हैं। इससे भी अधिक सच्ची बात यह है कि उस दुखीका हमारे ऊपर एहसान है, जो उसने हमारी सेवाको स्वीकार कर लिया।

इस प्रकारका चिन्तन करने वाले व्यक्ति आज समाजमें क्वचित् ही मिलते हैं। श्रीभाईजीका जीवन अत्यन्त सादगीसे बीता। उनका खान-पान सात्त्विक था। वे संयमित भोजन करते थे। भोजनकी प्रत्येक वस्तु शुद्ध होनी आवश्यक थी। सीधा-सादा कुर्ता उनका पहनावा था। भालपर

चन्दनकी गोल टिक्की बड़ी शोभा देती थी। उनकी वाणीमें बड़ी मधुरता थी। ऐसे संत महापुरुषकी सन्निधिमें यदा-कदा बातचीतके समय जो क्षण बीते, वे क्या कभी विस्मृत हो सकते हैं? उन क्षणोंमें धर्म-पथका परिचय मिलता था और मिलती थी जीवनके निर्माणकी प्रेरणा।

[३] कर्मचारीके प्रति सम-भाव

गीताभवनके कर्मचारी श्रीभाईजीके चरणोंमें झुककर प्रणाम किया करते थे। अक्खड़ लोगों और अकड़ने वालोंको भी मैंने झुकते देखा है। मुझे ऐसा नहीं लगा कि वे हठीले लोग किसी स्वार्थके वशीभूत होकर दिखावटी सम्मान दे रहे हैं। उनके प्रणाममें सच्चा विनय-भाव था। ऐसे उद्धत व्यक्तित्वमें विनय-भावका उद्भव होना मेरे लिये एक आश्चर्य ही था। यह उद्भव कैसे हो गया? मेरे मनकी यह जिज्ञासा एक पहेली थी।

एक दिन श्रीभाईजीकी वाणीसे ही यह पहेली अपने आप सरल हो गयी। श्रीभाईजीका कहना था— जैसे मैं गीताप्रेसका एक सेवक हूँ, उसी प्रकार ये सब भी गीताप्रेसके सेवक हैं। ये मेरे सेवक नहीं, अपितु उस संस्थाके सेवक हैं, जिसमें ये काम करते हैं।

श्रीभाईजी अपने छोटे-से-छोटे कर्मचारीको नौकर नहीं, अपना सहयोगी मानते थे। गीताभवनके विभिन्न विभागोंमें काम करनेवालोंको वे बड़ा सम्मान देते थे। छोटे-छोटे कर्मचारियोंके प्रति इतना समभाव रखना साधारण बात नहीं है। हम अपने साथ काम करने वाले कर्मचारीपर बात-बातमें क्रोध कर बैठते हैं और उन्हें वेतन-भोगी समझते हैं, पर श्रीभाईजीकी बात तो सर्वथा भिन्न है। उनका दिव्य चिन्तन, उनका सरस जीवन, उनका मधुर वचन, उनका नम्र नमन सबको झुककर प्रणाम करनेके लिये बाध्य कर देता था।

[४] गोमाताकी भक्ति

गोमाताके प्रति श्रीभाईजीकी बड़ी भक्ति थी। श्रीभाईजीसे वर्ष १९६७ में गोरक्षा प्रश्नपर मेरी देरतक बातें हुईं। मेरा दृष्टिकोण यह था कि केवल सरकारके कानून बना देनेसे गोरक्षाका प्रश्न हल न होगा। इसके लिये इस बातकी भी आवश्यकता है हिन्दू मात्रमें यह भावना जाग्रत हो कि वे थोड़ेसे धनके लोभमें अपाहिज गोवंशको न बेचें। दूसरी बात यह है कि वे चमड़ेका अनावश्यक प्रयोग न करें। श्रीभाईजी मेरे इन विचारोंसे पूर्णतया सहमत थे। वे कहने लगे— मैं तो गो और ब्राह्मण दोनोंका पुजारी हूँ। हिन्दुओंको अपने अपाहिज पशुओंकी रक्षा करनी ही चाहिये। यदि कोई व्यक्ति उनके रखनेमें असमर्थ हो तो दूसरे व्यक्ति उसके रखरखावमें सहायता दें या फिर गोशाला अपने ऊपर यह भार उठाये, परंतु कसाईको ऐसे पशु नहीं बेचने चाहिये।

श्रीभाईजीने दिल्लीके गोरक्षा आन्दोलनमें सक्रिय भाग लिया। ७ नवम्बर १९६६ को जब संसद भवनपर गोभक्तोंने विशाल संख्यामें प्रदर्शन किया, तब श्रीभाईजी प्रदर्शन-मंचपर विद्यमान थे। यद्यपि वे शारीरिक दृष्टिसे इस प्रकारके किसी आन्दोलनमें सम्मिलित होनेकी क्षमता नहीं रखते थे, परंतु गो-भक्तिके प्रेमवश वे अपने आपको अलग न रख सके। सरकारी गोहत्या सम्बन्धी योजनाओंकी चर्चाके समय उनके नेत्रोंमें आँसू आने लगते थे।

[५] जैन मुनिजी महाराजका स्वागत

सन् १९६९ के जून मासमें जैन मुनि श्रीविद्यानन्दजी महाराज स्वर्गाश्रम पहुँचे। उनके साथ मैं भी था। वे सर्वदा दिगम्बर रहते थे। गीताभवनके अधिकारियोंने उन्हें अपने सभा-भवनमें प्रवचन करनेका अवसर नहीं दिया और नहीं दिया इसीलिये कि वे दिगम्बर थे। उस समय श्रीभाईजीके भावोंकी सदाशयता एवं विचारोंकी विशालताको देखनेका मुझे मौका मिला। गीताभवनके स्वयं प्रधान होते हुए भी श्रीभाईजीने न तो अपने पदाधिकारका प्रयोग किया और न उन अधिकारियोंपर किसी प्रकारका दबाव डाला कि जैन मुनिजी महाराजका प्रवचन गीताभवनमें होना चाहिये। श्रीभाईजीने एक दूसरा ही समाधान निकाल लिया। कट्टर सनातनधर्मी होते हुए भी श्रीभाईजीने जैन मुनिजी महाराजका स्वागत किया और अपने निवास-स्थान डालमिया कोठीपर जैन मुनिजी महाराजके प्रवचनोंकी व्यवस्था की। आश्चर्यकी बात तो यह है और यही श्रीभाईजीके व्यक्तित्वका महत्त्व और चुम्बकत्व है कि गीताभवनके श्रोताओंने डालमिया कोठीके बरामदेमें बैठकर उन प्रवचनोंको सुना।

श्रीभाईजीने जैन मुनिजी महाराजके आतिथ्यमें पूरा सहयोग दिया। उन दिनों श्रीभाईजीका स्वास्थ्य बहुत गिरा हुआ था, परंतु वे जैन मुनिजी महाराजके कार्यक्रममें बराबर भाग लेते रहे। श्रीभाईजीने अपना व्यक्तिगत समय भी एक-दो बार दिया महाराजजीको बात करनेके लिये। एक बार जैन मुनिजी महाराजने श्रीभाईजीके सामने ही मुझसे कहा— ये एक संत हैं।

श्रीभाईजीने तत्काल निवेदन किया— महाराज! आप जैसे महान संतोंको दूसरे व्यक्ति भी संत दिखलायी देते हैं।

सभी धर्मोंके आचार्योंके प्रति श्रीभाईजीका ऐसा आदर भाव देखकर यदि मेरा अन्तर गद्गद हो रहा था तो मस्तक विनत हो रहा था। ■

श्रीरामेश्वरप्रसादजी त्रिपाठी

प्रेमपूर्ण हृदय

बात सन् १९५५ के जून मासकी है। मैं श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा. लि. के संस्थापक पं. श्री श्रीरामनारायणजी शर्मा वैद्यके साथ रतनगढ़ (राजस्थान) गया था। वहाँ ज्ञात हुआ कि श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार आजकल यहाँ आये हुए हैं। हम लोग उनसे मिलने उनके स्थानपर गये। बातचीत होते-होते दोपहरका समय हो गया था। उस दिन एकादशी थी। श्रीपोद्दारजीने आग्रह किया— आप लोगोंके लिये फलाहार तैयार हो गया है, इसलिये अब उसे पाकर ही जाएँ।

उनके आग्रहको हम लोग नहीं टाल सके। हमने देखा कि हमारे लिये फलाहारमें कूट्टूकी पूड़ी, हलुवा, मेवेकी खीर, काजू-किशमिश तथा उत्तम फल थे, परंतु पोद्दारजीने केवल फल ही लिये। ऐसा देखकर हम लोगोंने उनसे भी सभी वस्तुओंको पानेकी बात कही, परंतु वे तो साधारण फलाहार ही करते थे, इसलिये उन्होंने यह कहकर हम लोगोंको समझा दिया कि आप तो अतिथि हैं। आपका स्वागत तो अधिक ही रहना चाहिये।

उन दिनों उनकी बड़ी बहन डालमिया दादरीमें रहती थीं। उनके दोनों पुत्र श्रीसीताराम तथा श्रीराधेश्याम सीमेन्ट फैक्टरीमें उत्तम पदोंपर कार्य करते थे। मैं उनका पूज्य था। जब यह बात श्रीपोद्दारजीको मालूम हुई, तब तो वे मेरे चरणोंको पकड़कर दण्डवत् प्रणाम करके लेट गये। बहुत मना करने तथा उठानेपर वे बोले— आप तो मेरी पूज्या बहिनके भी पूज्य हैं।

उस समय उनके नेत्रोंमें स्वाभाविक स्नेहके अश्रु थे। उनका संत हृदय प्रेमपूर्ण था। ■

श्रीमधु सिंहानिया

[१] प्रथम मधुर छाप

मैं जब बालक था, तब रतनगढ़में दो महीने रहा था। मैं प्रायः बाबाजीके पास जाकर बैठ जाया करता था। आज जिन्हें सारा जगत श्रीभाईजी कहा करता है, मैं बालक होनेके कारण उन्हें बाबाजी कहता था और अब भी मैं उन्हें बाबाजी ही कहता हूँ। जब मैं उनके पास बैठता था तो वे मुझसे बातें करने लगते थे। साथ-साथ वे अपना काम भी करते रहते थे। तब तो मैं भला क्या समझता, पर अब मेरी समझमें आ रहा है कि उनका वह काम था 'कल्याण' पत्रिकाका सम्पादन। सम्पादन करते हुए भी वे मुझ अल्प-समझ बालकसे कैसे बात करते रहते थे, इसे सोचकर अब आश्चर्य होता रहा है। न जाने वे दोनों काम एक साथ कैसे कर पाते थे। सम्पादनका कार्य करते हुए भी वे न कभी झुँझलाये और उन्होंने न कभी अनादर किया। सम्पादनके कामकी अधिकताको देखकर कभी मेरी उपेक्षा भी उन्होंने नहीं की, बल्कि हमेशा सुन्दर-सुन्दर बातें मुझे सिखलाते रहते थे। उन्होंने मुझे एक पुस्तक 'भक्त बालक' पढ़नेके लिये दी थी। उनके बात करनेका और प्यार देनेका ढंग कुछ ऐसा था कि अपने आप उनके प्रति एक आकर्षण हो गया। वे चाहे जितने महान हों, पर मुझे बड़े अच्छे लगते थे। यह थी मुझ अल्पज्ञ बालकपर उनके व्यक्तित्वकी प्रथम मधुर छाप।

[२] मेरे तीन प्रश्न

एक बार मैं गर्मीके दिनोंमें मँसूरी घूमनेके लिये गया हुआ था। ऊँचा पर्वतीय शिखर होनेके कारण गर्मीमें भी मँसूरीकी ठण्ड सुहावनी लगती है। मँसूरीसे वापस कलकत्ता जाने लगा तो बाबाजीके दर्शनार्थ चला गया स्वर्गाश्रम, जो मार्गमें ही पड़ता है और उस समय बाबाजी सत्संगके लिये स्वर्गाश्रममें विराज रहे थे। जब मैं उनके दर्शनार्थ गया तो मार्गमें एक बात मनमें बार-बार उठने लगी। युवक तो था ही और कभी-कभी उचित न कहलाने लायक बात भी युवक-मनपर छा जाया करती है। ऐसा ही मेरे साथ हो गया। बाबाजी मेरे लिये श्रद्धेय थे, केवल मेरे लिये ही नहीं, मेरे सारे परिवारके लिये श्रद्धेय थे। सम्पूर्ण संत समुदाय उन्हें महान मानता है, यह सब होते हुए भी मैं मन-ही-मन ऐसा कहने लगा कि यदि बाबाजी मेरे बिना पूछे ही मेरे मनके तीन प्रश्नोंका उत्तर दे दें तो मैं उन्हें सिद्ध संत मान लूँगा। ऐसा चिन्तन सर्वथा उचित नहीं था, पर युवक-मनपर कोई अंकुश तो था नहीं। मैंने मनमें तीन प्रश्न निश्चित कर लिये।

गीताभवनमें जाकर मैंने बाबाजीको प्रणाम किया। मुझे देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए। मेरे तथा परिवारके कुशल समाचार उन्होंने पूछे और इसी बातचीतके क्रममें उन्होंने बड़े सहज ढंगसे मेरे

तीनों प्रश्नोंके उत्तर दे दिये।

मैंने प्रश्न पूछा नहीं था, पर ज्यों ही मेरे प्रश्नोंका उत्तर मुझे मिला, मेरे मनमें विस्मय उमड़ने लगा और उससे भी अधिक उमड़ने लगी उनके प्रति श्रद्धा। इस समय मुझे वे तीनों प्रश्न याद नहीं हैं, पर वह मुख-छवि और वह दृश्य भली भाँति याद आ रहा है, जब वे मेरे सोचे हुए तीनों प्रश्नोंका उत्तर दे रहे थे।

इस प्रसंगको न जाने कितने वर्ष बीत गये, पर अभीतक मेरे मनमें इसके लिये महत्त्व बना हुआ है और जब यह प्रसंग घटित हुआ था, तब तो मैं इसे सीमातीत रूपसे महत्त्व प्रदान कर रहा था। मनमें भाव इतने अधिक उमड़ रहे थे कि मैंने उसी समय बाबाजीको बतला भी दिया कि यहाँ आनेके पूर्व मैं क्या सोचता आ रहा था और यहाँ आनेपर क्या आपने उत्तर दिया।

मेरी उस सारी बातको उन्होंने देखा एक नासमझ मनकी नितान्त उपेक्षणीय भाव-तरंगके रूपमें। जिसे मैं अत्यधिक महत्त्व दे रहा था, उसे वे सर्वथा तुच्छ वस्तु मान रहे थे और इसे प्रमाणित कर रहा था उनके सहज वात्सल्यका प्रबल प्रवाह।

[३] पुत्रका जन्म

सन् १९६७ में पूज्य बाबाजी कलकत्ते आये थे। जिस दिन वे कलकत्तेसे वापस गोरखपुर गये, उसी रातको उन्होंने मुझे स्वप्नमें दर्शन दिया। स्वप्नमें ऐसा दिखलायी दिया कि बाबाजी ट्रेनमें बैठे हैं, मैं बाहर खड़ा हूँ और वे मुझसे बात कर रहे हैं। बात करते-करते उन्होंने मुझसे कहा— मधु! तुम्हारे दोनों दुःख दूर हो जायेंगे।

पुत्रके अभाव और कर्जके दबाव, इन दो बातोंको लेकर मैं सदा चिन्तित रहा करता था। मैंने बाबाजीसे कहा— पुत्रकी बात तो आप जाने, पर कर्जका भार बहुत ज्यादा है। आप कहते तो हैं, पर बात कैसे बन पायेगी?

बाबाजीने कहा— मैं कहता हूँ न कि ये दोनों दुःख दूर हो जायेंगे।

सुबह उठनेके बाद मैंने स्वप्नकी चर्चा परिवारमें की। सबने इस स्वप्नको शुभका सूचक बतलाया। वस्तुतः बाबाजीका शुभाशीर्वाद सही उतरा। जब पत्नी आसन्न-प्रसवा हुई तो उसे नरसिंग होममें भर्ती करवाया गया और कलकत्तेकी सर्वश्रेष्ठ प्रसव-विशेषज्ञा लेडी डाक्टरको दिखलाया गया। मेरी पत्नीको देखकर उन्होंने बड़ी निराशाजनक बात कही— यह बतलाते हुए मुझे बड़ा दुःख हो रहा है कि गर्भके शिशुमें प्राण नहीं हैं।

यह बात सबेरेके दस बजेकी है। मुझे लेडी डाक्टरकी बातपर विश्वास नहीं हो रहा था, तनिक भी विश्वास नहीं था। मेरी आँखें भर-भर आ रही थीं। परिस्थितियोंसे जूझते-जूझते शामके पाँच बज गये। मेरे स्वजन मुझे सान्त्वना देने लगे— शोक करना उचित नहीं। भगवानकी कृपासे भविष्यमें सन्तान हो सकती है।

जैसे मेरी आँखें भीगी हुई थी, उसी प्रकार भीगे-भीगे स्वरमें मैंने अपने निकटस्थ स्वजनोंसे कहने लगा— मैं उस मृत बालकके लिये नहीं रो रहा हूँ, बल्कि रो रहा हूँ लेडी डाक्टरके निदानपर। मेरी अडिग आस्था है कि इस बच्चेको यमराज भी नहीं मार सकते। यह बच्चा एक संतका वरदान है और उन संतके वचन कभी मिथ्या हो ही नहीं सकते।

इस प्रकार हमलोग बात कर रहे थे, तभी वहीं लेडी डाक्टर आ गयीं और कहने लगी– जब एक प्रतिशत आशा होती है तो हमलोग पचास प्रतिशत बतलाया करते हैं, पर आपकी पत्नीके केसमें तो रंचमात्र आशाके संकेत नहीं हैं।

मैंने लेडी डाक्टरसे कहा– मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि आपको कैसे विश्वास करा दूँ। आपको तो जानकारी नहीं है, पर सच्ची बात यह है कि यह बच्चा किसी संतका आशीर्वाद है। मैं उसी आशीर्वादके बलपर कह रहा हूँ कि मेरी पत्नी मृत-वत्सा हो नहीं सकती।

लेडी डाक्टरने कहा– यदि जीवित बच्चेका प्रसव होता है तो एक चमत्कार ही होगा।

लेडी डाक्टरको मेरी बातपर विश्वास नहीं हो रहा था। मैंने उनसे कहा– यदि आपको अपने निदान और निर्णयपर इतना भरोसा है तो आप आपरेशन करके मृत बच्चेको पेटके बाहर क्यों नहीं निकाल लेतीं, जिससे पत्नीके जीवनकी रक्षा हो सके।

लेडी डाक्टरने कहा– हम इस प्रयासमें हैं कि वह मृत शिशु बिना ऑपरेशनके बाहर आ जाय तो और भी अच्छी बात होगी।

लेडी डाक्टरका प्रयास चलता रहा और क्या ही आश्चर्यकी बात थी कि जीवित शिशुका जन्म स्वाभाविक रूपसे हो गया। प्रसवके समय जच्चा और बच्चा दोनों एक दम ठीक थे। पुत्रके जन्मसे हमलोगोंके हृदयमें आनन्द भर गया, पर लेडी डाक्टरको जीवित पुत्रके जन्मपर आश्चर्य ही हो रहा था। पुत्रके जन्मपर हमलोगोंको बधाई देते हुए लेडी डाक्टरने स्वीकार किया– हमें खेद है कि हमारा निर्णय गलत था।

पूज्य बाबाजीके शुभाशीर्वादसे जिस प्रकार पुत्र-रत्नकी प्राप्ति हुई, उसी प्रकार क्रमशः वैसी परिस्थितिका भी निर्माण हो रहा है, जिससे मैं कर्जसे शीघ्र मुक्त हो जाऊँ और मुझे पूर्ण विश्वास है कि भविष्यमें मुझपर कर्जका भार नहीं रहेगा।

[४] विवाहकी सम्पन्नता

एक बार अचानक विपत्ति आ गयी। वसंत पंचमीके दिन मेरी लड़कीकी शादी थी। विवाहका पंडाल बड़ी सज-धजके साथ बनवाया गया था। बरातके स्वागतकी सुन्दर-से-सुन्दर तैयारी की गयी थी। शादीके एक दिन पहले चतुर्थी तिथिको घनघोर वर्षा होने लगी। मूसलाधार पानी आकाशसे गिरने लगा और उसके साथ गिरनेकी हालतमें हो गये पंडालके खम्भे भी।

किसीके बसकी बात नहीं थी कि बचावका कोई उपाय सोचा जा सके। मैं बड़ी जोर-जोरसे चिल्लाने लगा– बाबाजी ! सँभालिये, बाबाजी ! बचाइये।

बस, उनको याद करने भरकी देर थी। ज्यों ही उनको याद किया, वह गिरता हुआ पंडाल जड़वत् स्थिर हो गया। पंडालके खम्भे टेढ़े हो गये, पर गिरे नहीं। मैं अपने कमरेमें आया तथा बाबाजीसे कातर प्रार्थना, हृदयसे प्रार्थना करने लगा– बाबाजी ! कल पंचमीके दिन आपकी बेटीका विवाह है। दस बजेके बादसे पानी नहीं बरसना चाहिये। आपको ही सारा सँभालना और पूरा करना है।

मुझे भीतर-ही-भीतर ऐसा अनुभव होने लगा कि मेरी प्रार्थनाकी सुनवाई हुई है। मैंने घरवालोंसे कह दिया– अब किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। अवश्य ही विवाहका

सारा काम सुन्दर रीतिसे पूरा होगा।

पंचमीके सबेरे नौ बजेतक तो पानी बरसा, उसके बाद बरसात बन्द हो गयी। पंडालको ठीक कर दिया गया। सारी सजावट फिरसे सुधार दी गयी। पंडालके जमीनपरकी बिछावन बदल दी गयीं। समयपर बरात आयी और सुन्दर स्वागत हुआ। विवाहकी सारी रस्में भली प्रकारसे पूर्ण हो गयी। उसके बाद वर्षा आयी, पर आयी लड़कीकी विदाई हो जानेके बाद। प्रातःकाल दस बजेसे लेकर विदाईके क्षणतक एक बूँद पानी नहीं बरसा। बिगड़े काम वे ही तो सँवारते हैं।■

डा. श्रीरामकुमारजी वर्मा

श्रीरामकथाका नाटकीय रूप

श्रद्धेय श्रीभाईजीका पुण्य स्मरण करते ही हृदय पवित्र हो जाता है। सन् १९६८ में मैं उनकी सेवामें गोरखपुर गया हुआ था। उस समय वे अस्वस्थ थे। चिकित्सकोंने आदेश दे दिया था कि उनसे किसीको भेंट करनेकी अनुमति न दी जाय। मैं इलाहाबादसे उनके पुण्य दर्शनके लिये गया था। वहाँके कुछ लोग मुझे जानते भी थे। उन्होंने श्रीभाईजीके पास मेरे आनेकी सूचना पहुँचायी। यद्यपि वे किसीसे भी भेंट नहीं कर रहे थे, किन्तु उन्होंने चिकित्सकोंकी हिदायतोंके बावजूद मुझे अपने पास बुला लिया।

मैंने देखा कि वे बहुत कृशकाय हो गये हैं, किन्तु उनके मुखके तेज और आँखोंकी चमकमें किसी प्रकारकी कमी नहीं आयी है। मेरी कल्पनामें आया कि मानसरोवरमें भले ही हिमपात हो गया हो, तथापि उनका मुख एक खिले हुए कमलकी भाँति कान्तियुक्त है। वे एक ऊनी टोपी लगाये हुए एक कम्बल ओढ़े हुए और कुछ झुके हुए बैठे थे। मैंने श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। वे मुस्कुराकर बोले— बहुत दिनों बाद मिले।

मैंने कहा— भाईजी! जब आपके दर्शनका पुण्य-अवसर भाग्यकी रेखाओंमें होता है, तभी ऐसा संयोग होता है।

वे कुछ अधिक मुस्कुराये और उन्होंने मुझे बैठनेका संकेत किया। मैं उनके समीप ही बैठ गया। उन्होंने मुझसे पूछा— क्या लिख रहे हो?

मैं अपनी एक अभिलाषा व्यक्त की। उसी वर्ष प्रयागके संगीत-समिति-भवनमें मैंने श्रीरामचरितमानस तथा संत तुलसीदासके अन्य ग्रन्थोंका आधार लेकर रामलीलाका भव्य समारोह आयोजित किया था। प्रयागकी लगभग पच्चीस हजार जनताने चार घंटोंतक उस रामलीलाका आनन्द लिया था। यह रामलीला तुलसीकृत मानसके प्रथम सोपानकी थी। श्रीरामजन्मसे लेकर राम-विवाह तककी कथाका नाटकीय रूप मानस, कवितावली, गीतावली, रामलला नहछू, जानकीमंगल और बरवै रामायणके आधारपर सुथरे अभिनय और संगीतके साथ उपस्थित किया गया था। इसके लिये मैंने स्थानीय महिला विद्यालयोंसे लगभग एक सौ छात्राएँ चुनी थीं और उन्हें विविध पात्रोंके रूपमें अत्यन्त उपयुक्त वेश-भूषामें उपस्थित किया था। चार घंटोंतक मानसकी कथा जनताके हृदयपर मन्दाकिनीकी भाँति तरंगित होती रही। यह

राम-कथाका बालकाण्ड, जो रंगमंचपर सफलताके साथ प्रस्तुत किया था, इसके प्रकाशनकी लालसा मेरे हृदयमें थी। वही मैंने भाईजीके समक्ष प्रस्तुत की।

सब बातें सुनकर भाईजी गद्गद हो उठे। उन्होंने कहा— जैसी आपने बालकाण्डकी कथा संयोजित की है, उसी भाँति समस्त रामचरितकी कथा संयोजित कर दीजिये। गीताप्रेस उसे अवश्य प्रकाशित करेगा। आपके इस कार्यके लिये कितना पारिश्रमिक देना होगा?

मैंने निवेदन किया— भाईजी! आपने अपूर्व त्यागसे मानस और गीताकी लाखों प्रतियाँ समस्त देशमें अमृतकी भाँति सिञ्चित कर दी हैं। मैं अपना पारिश्रमिक इतना ही समझूँगा कि आपकी शरणमें मेरी यह कृति प्रस्तुत हो।

वे प्रसन्न हुए और उन्होंने दृढ़ताके साथ कहा— आपकी यह कृति अवश्य प्रकाशित होगी। मैं इसे लाखोंकी संख्यामें छापकर देश और विदेशमें प्रचारित करूँगा, जिससे रामलीलाका अभिनय संत तुलसीके स्वरोंमें एक आधिकारिक और संतुलित ढंगसे हो। आजकल रामलीलामें ऐसे हास्यात्मक तत्त्व जुड़ गये हैं, जिनसे हमारे धर्मका उपहास होता है। विदेशी लोग भी हमारे धर्मको सही ढंगसे नहीं समझते। दक्षिण-पूर्व एशियाके देशोंमें राम-कथा भिन्न-भिन्न ढंगसे अभिनीत होती है। उस कृतिसे राम-लीलाका एक मानक स्तर निर्मित होगा और देश-विदेशमें रामलीला अत्यन्त पवित्र ढंगसे मनायी जा सकेगी। मानसकी कथा ऐसी है, जिसमें किसी धर्म और सम्प्रदायका विरोध नहीं है।

मैंने निवेदन किया— प्रयागकी संगीत-समितिके खुले रंगमंचपर अपनी जो रामलीला हुई थी, उसमें परशुरामके सर्वोत्कृष्ट अभिनयके लिये हमीदिया कालेजकी एक मुस्लिम छात्राको प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था। उसे पाँच सौ रुपयोंका एक रेडियो सेट भार्गव इंजीनियरिंग कम्पनीने भेंट किया था।

यह सुनकर श्रीभाईजीका मुख और भी खिल गया। उन्होंने कहा— तुलसीका रामचरित-मानस विश्व-साहित्यका ग्रन्थ है। उसमें मानव-मात्रके मनोविज्ञानका चित्रण है। आप मानसके आधारपर पूरी रामलीला लिख दीजिये।

मैंने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। जब मैंने अयोध्याकाण्ड समाप्त किया, तब सुना कि श्रीभाईजी संसार त्यागकर चले गये। अकेले श्रीभाईजीने भारतीय संस्कृति और धर्मका जो जागरण जन-जनके हृदयमें किया, वह अनेक संस्थाएँ मिलकर भी नहीं कर सकीं। यह दिव्य ज्योति भारतके सौभाग्यसे ही प्रकट हुई थी। ■

पं. श्रीगणपतरायजी पारीक

साजिश और 'सजा'

उस दिनकी वह सन्ध्या बेला आजकी घटनाके समान ही अन्तःस्थलपर छायी हुई है। वह अपनी एक अमिट आनन्दमयी छाप मनपर छोड़ गई है, जैसे कि यह सब आजकी ही बात हो। रात-दिनकी असंख्य आवृत्तियाँ भी उस स्मृतिको धूमिल नहीं कर सकी हैं। वह एक सन्ध्या थी ग्रीष्मान्तकी। अब तो मैं वृद्ध हो चला हूँ, पर उस समय मेरी उमर रही होगी नौ या दस वर्षकी।

बालोचित चपलता और अल्हड़पन ही उस समय एक मात्र जीवनका जीने योग्य उद्देश्य समझमें आ रहा था। वह भी एक समय था, जब दूसरोंको छकानेमें ही जीवनका सबसे बड़ा आनन्द मान रखा था।

मेरे दो साथी उस दिन और थे, जो मेरे ही समवयस्क रहे होंगे। रतनगढ़में श्रद्धेय श्रीभाईजीका मकान हम लोगोंके मकानसे एक फर्लांगसे अधिक दूर न होगा। उस दिन हम लोगोंने भाईजीका भेद लेने तथा हो सके तो उन्हें छकानेकी साजिश की। बड़े बूढ़ोंके मुखसे कहीं सुन लिया था कि श्रीभाईजी अपने मकानकी छतपर संध्याके समय बैठकर भगवानको बुलाते हैं और कुछ टोटका भी जानते हैं। उसी दिनसे हम लोगोंने कुछ चुहुलबाजी और शैतानी करनेकी सोची और एक दिन इसके लिये दिनमें ही योजना बना ली गयी।

उस दिन सन्ध्या बेलामें हम तीनों एक साथ हो लिये और श्रीभाईजीके मकानके दरवाजेसे पार होकर पोलीमें प्रविष्ट हो गये। संयोगसे उस समय मकानमें नीचे कोई दिखायी नहीं दिया। अतः हम लोगोंका उत्साह अपनी कार्य-सिद्धिके लिये बढ़ गया और दबे पाँव जीनेमें चढ़ गये। जीनेमें कुछ अँधेरा था। हम लोग धीरे-धीरे जीनेपर चढ़ रहे थे। आगे मैं था और पीछे मेरे दोनों साथी थे। हम तीनों अब ऊपरकी सीढ़ियोंपर पहुँच चुके थे। कुछ क्षण इधर-उधर झाँका-झाँकी करके और अब आगे क्या करना चाहिये, इस उधेड़-बुनमें बीत गये।

हम तीनोंकी नजर कुछ दूर पलंगपर बैठे हुए श्रीभाईजीपर पड़ी। उनपर नजर पड़ते ही दोनों साथी ठिठक गये और मुझे जीनेकी सीढ़ीसे आगे ढकेलते हुये स्वयं नीचे भाग चले। वे भाग गये और मुझे मेरे भाग्यके सहारे अकेले वहीं छोड़ गये। ढकेलनेसे मैं छतपर आ चुका था और श्रीभाईजीके कानोंमें मेरे पैरोंकी आहट तथा भागते हुये साथियोंकी हँसीकी फुदेरियाँ पहुँच चुकी थीं। श्रीभाईजीने मुझे देख लिया था। यद्यपि रोशनी ज्यादा नहीं थी, फिर भी धुँधली रोशनीमें दिखलायी पड़ता था। मैं सकपका गया था और अपनी करनीपर मन-ही-मन पश्चात्ताप कर रहा था। इतनेमें पलंगपरसे श्रीभाईजीकी आवाज आई— कुण है भाया (कौन है भाई) ?

मैंने सुना, किन्तु जैसे मैंने सुना नहीं हो, इस प्रकार खड़ा ही रहा और कोई उत्तर नहीं दिया। वही आवाज और वे ही शब्द तीन बार कानोंमे गूँजे, किन्तु मैं सहमा हुआ निस्तब्ध खड़ा ही रहा। न आगे जाना बना और न पीछे हटना बना। 'भई गति साँप छछुंदर केरी।'

श्रीभाईजी फिर बोले— अच्छा, अठे आ (अच्छा, यहाँ आओ)।

मैंने सोचा— मैं अब भाग तो सकता ही नहीं। भागोगे तो पकड़ लिये जाओगे। लोग छोड़ेंगे नहीं और मार मुफ्तमें पड़ेगी। अब तो वे बुला रहे हैं। यदि इसपर भी नहीं जाओंगे तो वे पकड़ ले जावेंगे और खूब मार लगेगी। यहाँ कोई छुड़ाने वाला भी दिखता है नहीं। अब तो उनके पास जानेमें ही कल्याण है।

रंगे हाथ पकड़े गये चोरकी भाँति एक-एक कदम धीरे-धीरे रखता हुआ जाकर श्रीभाईजीके सामने कुछ दूरपर खड़ा हो गया और चुपचाप उनकी ओर देखता रहा तथा उनकी गतिविधि निरखता रहा।

श्रीभाईजीसे मेरा पहले कोई परिचय नहीं था, क्यों कि वे प्रायः बाहर ही रहते थे और इधर

कुछ दिनोंसे ही रतनगढ़ किसी कार्यवश पधारे थे। सबसे पहले श्रीभाईजीने मुझसे कहा— डरै मत ! कोई कामस आयो ह के भाया (डरो मत ! कोई कामसे आये हो क्या भैया) ?

मैंने इसका कोई जबाब नहीं दिया और शान्त खड़ा ही रहा। जब उन्होंने दुबारा फिर यही पूछा तो मैंने धीमी आवाजमें जबाब दिया— मेरे सागै दो और था। मनै धक्को देकर भाग गया। (मेरे साथ दो और थे। मुझे धक्का देकर भाग गये।)

यह सुनकर श्रीभाईजी कुछ हँसे और बोले— कोई बात नहीं।

वे फिर प्रेमसे बोले— डरनेकी कोई बात नहीं। यहाँ आओ, पलंगपर बैठ जाओ।

किन्तु मैं संकोचवश खड़ा ही रहा, किन्तु वे कब मानने वाले थे ! मेरा हाथ पकड़कर उठा लिया और पलंगपर बैठा ही लिया। मुझे बहुत संकोच हुआ, किन्तु श्रीभाईजी इससे बहुत प्रसन्न प्रतीत हुए। उन्होंने मुझसे शिक्षा सम्बन्धी कुछ बातें पूछी, जिनका मैंने जबाब दिया। तदुपरान्त उन्होंने पूछा— भगवान न याद करेगो (भगवानको स्मरण करोगे) ?

मैंने उनको कोई जबाब नहीं दिया। मुझे उनका यह प्रश्न बहुत अच्छा लगा था, इतना ही मुझे याद है। फिर उन्होंने पीठ थपथपा कर कहा— जा ! भगवान न सदा याद राखिये (भगवानको सदा याद रखना) राखगो ना ? भूलिये मत (रखोगे न ? भूलना नहीं)।

मैंने गर्दन हिलाकर अपनी सहमति प्रकट की। श्रीभाईजी बहुत प्रसन्न हुए।

वह सन्ध्याकी बेला मुझे आज भी उनके सार्वभौम स्नेहकी याद दिला रही है। उनके स्नेहमें कुछ विलक्षणता थी। घरेलू सम्बन्धमें जो स्वार्थमयी ममता रहती है, उनमें उसका अभाव था। उनका स्नेह निरा निस्स्वार्थ था। निस्स्वार्थ प्रेमकी झलकमें इतनी शक्ति और आकर्षण है कि उस दिनकी वह सन्ध्या भुलाये भी नहीं भूलती।

वे अँधेरी रात्रिके प्रांगणमें ऊषाकालकी आभा लेकर आये। वही आभा सिमटकर कुछ ही क्षणोंमें अध्यात्म रश्मियोंके साथ सूर्यके समान प्रस्फुटित हो चली। अध्यात्म जगतके लिये वे सूर्यका प्रकाश, शशिकी शीतलता, रजनीकी-सी सुखद शान्ति लेकर आये। ब्रह्माण्डके आवरणको चीरकर वे अचानक-से आये और प्रेरक कथानक बनकर जगतपर छा गये। ■

श्रीअरुणकुमारजी भारद्वाज

रामायण और महाभारत सीरियल

मैं सन् १९८८ और १९८९, इन दो वर्षोंकी बात कर रहा हूँ। इन दिनों अपने देशके कोने-कोनेमें दूर-दर्शनपर दिखलाये जाने वाले रामायण सीरियल और महाभारत सीरियलकी चर्चा परिव्याप्त है। स्थान-स्थानपर इन दोनों सीरियलोंको देखनेका अत्यधिक चाव दिखलायी देता है। सीरियलके प्रसारणके समय यदि बिजली चली जाय तो विद्युत्-विभागके अधिकारियोंको कोसा जाता है। इस सीरियलोंके जन-प्रिय होनेका सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है कि इनके कारण दूर-दर्शन विभागको विज्ञापनके द्वारा बहुत अधिक आय हो रही है, देशकी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओंमे इन सीरियलोंके बारेमें कुछ-न-कुछ सदा छपता ही रहता है और

बाजारमें टी. वी. सेटकी विक्री बहुत होने लग गयी है।

रामायण सीरियलके निर्माता और निर्देशक हैं सम्मान्य श्रीरामानन्दजी सागर और महाभारत सीरियलके सम्मान्य श्री. बी. आर. चोपड़ा। श्रीसागरजी तथा श्रीचोपड़ाजी, दोनोंको ही अपने-अपने सीरियलके निर्माणके लिये कथा-वस्तुकी तथा विविध प्रकारकी अन्य अनेक जानकारियोंकी आवश्यकता थी। मुझे यह देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि ये दोनों महान निर्माता आवश्यक जानकारी प्राप्त करेनेके लिये तथा सामग्रीके संकलनके लिये पर्याप्त सीमातक गीताप्रेसपर निर्भर रहे और उनके व्यक्ति तथ्योंके संकलनार्थ बम्बईसे गोरखपुर आये। मैं गीताप्रेसमें काम करता हूँ और उन निर्माताओंके प्रतिनिधियोंको जब गीताप्रेसमें देखता हूँ तो मुझे सचमुच आश्चर्य होता है और इस आश्चर्यसे भी बढ़कर महाचर्य होता है पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) पर और उनके द्वारा कृत कार्योंपर, जो आज अन्यों द्वारा होनेवाले कार्योंका आधार बना हुआ है।

निर्माताओंको आवश्यकता थी कि अरण्यनिवासी ऋषियों-साधुओंके आश्रमोंका वातावरण कैसा हो, विभिन्न प्रसंगोंके पार्श्वभूमिपरक दृश्य कैसे हों, समाजके विभिन्न स्तरके पात्रोंकी वेश-भूषा कैसी हो, देवी-देवताओंकी आकृति और उनका अलंकरण कैसा हो, इस प्रकारकी बहुत-सी बातोंकी जानकारीकी जरूरत थी और इन बातोंसे सम्बन्धित विविध जानकारी प्राप्त करनेके लिये वे असंख्य रंगीन चित्र सहायक बने, जिनको पूज्य बाबूजीने अपने कुशल चित्रकारोंको बता-बताकर, बार-बार समझा-समझाकर बनवाया था। बाबूजीने चित्र न केवल बनवाये, अपितु जगह-जगहसे पुराने चित्रकारोंकी पुरातन कलाकृतियोंका भी संग्रह किया। बनवाये हुए तथा संग्रह किये हुए चित्रोंको सुन्दर रीतिसे सजाकर गीताप्रेसमें रखा गया है। यही गीताप्रेसका 'लीला चित्र मन्दिर' है। अपने सीरियलमें पौराणिक कालकी वास्तविकता प्रदर्शित करनेके लिये उनके प्रतिनिधि लीला चित्र मन्दिरके चित्रोंकी फोटो उतारकर ले गये।

इसी प्रकार बहुत सीमातक सहायक सिद्ध हुआ बाबूजी द्वारा प्रकाशित पौराणिक साहित्य। बाबूजीने 'कल्याण' पत्रिकाके विशेषांकके रूपमें तथा स्वतंत्र ग्रन्थके रूपमें विपुल पौराणिक साहित्यका प्रकाशन किया, जिसके वर्ण्य विषय रहे हैं श्रीराम-कथा और श्रीकृष्ण-कथा। मानव जीवनका ऐसा कोई पक्ष नहीं, जो श्रीराम-कथा और श्रीकृष्ण-कथासे प्रभावित न हो रहा हो। ये दोनों कथाएँ मानव-मात्रके लिये प्रेरणा-स्रोत रही हैं। सीरियल निर्माणके समय भगवान श्रीराम एवं भगवान श्रीकृष्णके कथानक, उनके संवाद, उनका चरित्र-चित्रण, इस प्रकारके और भी कई पक्ष हैं, इन सबकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये गीताप्रेससे प्रकाशित साहित्य उन्हें बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ।

मेरे पिताजीके एक आदरणीय मित्र १९८९ के जनवरी मासमें कुम्भ पर्वके अवसरपर प्रयाग गये थे। वहाँ परमपूज्य श्रीदेवरहवा बाबाके निकट सम्मान्य श्रीरामानन्दजी सागरसे उनकी भेंट हो गयी और रामायण सीरियलके बारेमें चर्चा चल पड़ी। उस बातचीतके बीच श्रीसागर साहबने कहा था— हम तो भक्त-श्रेष्ठ श्रीपोद्दारजीके चरणचिह्नोंपर चलनेका प्रयास कर रहे हैं। *'महाजनो येन गतः स पन्थाः'*। उन्हींकी प्रेरणासे श्रीराम-कथाके चित्रीकरणमें हमें सफलता मिल रही है।

अपने बचपनमें मुझे पूज्य बाबूजीके दर्शनका सौभाग्य मिला है। मैं अपने माता-पिताजीके

साथ कभी-कभी गीतावाटिका जाया करता था। उस समय मुझ अल्प वयस्क बालकको भला क्या अनुमान हो सकता था कि मैं उन महामानवका दर्शन कर रहा हूँ, जो भावी भारतके आध्यात्मिक जीवनकी आधार-शिला हैं। पूज्य बाबूजी जो विपुल आधारभूत सामग्री अपने पीछे छोड़ गये हैं, वह आज कितनी अधिक उपयोगी सिद्ध हो रही है। उसका उपयोग इन रामायण-महाभारत-सीरियलके निर्माताओंने भी किया और आज भारतीय जनमानसपर सुन्दर संस्कार डालनेकी दृष्टिसे इन सीरियलोंको अपूर्व सफलता मिल रही है। मैं टी. वी. पर दोनों सीरियलोंको देखा करता हूँ और फिर इनके प्रतिनिधियोंको गीताप्रेसमें सोद्देश्य आते हुए देखता हूँ तो महामहिमामय पूज्य बाबूजीके ऋषि जीवनकी, उनकी ऋषि-दृष्टिकी और उनके ऋषि कार्यकी गरिमाकी कल्पना करके मस्तक नत हो जाता है। ■

श्रीरामकृष्णजी वैद्य

[१] एक शीशी चूर्ण

सम्भवतः सन् १९४२ की बात है। पूज्य श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) के निर्देशानुसार चुरू स्थित धर्मार्थ औषधालयमें मैं सेवा कार्य करने लगा। चुरूके पास ही रतनगढ़ है और यहीं रतनगढ़ पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) की पूर्वज भूमि है। इन दिनों पूज्य बाबूजी रतनगढ़में विराज रहे थे और उन्हींकी प्रेरणासे रतनगढ़में अखण्ड हरिनाम संकीर्तन चल रहा था। मैं पूज्य बाबूजीके दर्शनार्थ चुरूसे रतनगढ़ गया। हवेलीमें प्रवेश करते ही भेंट हो गई सम्मान्य श्रीशान्तनुविहारीजी द्विवेदीसे, जो आगे चलकर स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वतीके नामसे विख्यात हुए। वे मुझे पूज्य बाबूजीके पास ले गये।

मैंने जाकर बाबूजीको प्रणाम किया और बातचीतके मध्य मैंने उनको अपना संक्षिप्त परिचय दिया। जब उन्हें यह पता चला कि मैं औषधालयमें सेवा-कार्य कर रहा हूँ तो बाबूजीने मुझसे पूछा— आप अपने साथ कुछ औषधि भी लाये हैं क्या ?

मैंने तुरन्त उन्हें चूर्णकी एक शीशी आदर पूर्वक समर्पित की। वह शीशी मैंने बड़े संकोचके साथ दी थी। मैं मन-ही-मन सोच रहा था कि मुझ साधारण व्यक्तिकी यह छोटी-सी भेंट बाबूजी स्वीकार करेंगे अथवा नहीं। मेरा पूरा-पूरा विश्वास है कि उन्होंने मेरे भावोंकी सच्चाईको जान लिया। मेरी प्रसन्नताकी तब सीमा नहीं रही, जब उन्होंने मेरे भावोंकी निर्मलता-कोमलताको सम्मान देनेके लिये यह चूर्ण स्वीकार कर लिया। मैं अपनेको बड़ा भाग्यशाली समझने लगा। यही मेरी उनसे प्रथम भेंट थी और आज मैं यह अनुभव करता हूँ कि चूर्णको स्वीकार करनेके साथ-साथ उन्होंने मुझ अति साधारण व्यक्तिको सदैवके लिये अपने श्रीचरणोंमें स्वीकार कर लिया। जिस रूपमें मुझे चरणाश्रय मिला, उसे देखकर ऐसा लगता है कि पूर्व जन्ममें उनके श्रीचरणोंसे मेरा कोई घनिष्ठ सम्बन्ध अवश्य ही रहा होगा और उस सम्बन्धको जाग्रत करनेके लिये वह चूर्णकी शीशी इस जन्ममें एक माध्यम बन गयी थी। इस जन्ममें उनका कृपापूर्ण आश्रय पाकर मुझे मेरे जीवनमें क्या-क्या मिला और कितना-कितना मिला, इसका वर्णन

सर्वथा-सर्वथा असम्भव है।

[२] उनकी अदालतमें

सन् १९६८ की बात है। मेरे तीनों बालक एक साथ ही काली खाँसीसे आक्रान्त हो गये, मानो दुर्दैवकी दृष्टि एक साथ ही मेरे परिवारपर पड़ गयी। सबसे छोटा बालक पाँच-छः मासका था। उसको जब खाँसीका दौरा पड़ता, तब उसे देख सकना भी कठिन था। बड़ा हृदय-विदारक दृश्य होता। दिन-रातमें शिशुको बीसों बार वमन और दस्त होते। खाँसीके दौरसे उसका श्वास रुक जाता था और वह बड़ा घबरा उठता था। इसके साथ ही निमोनिया, तीव्र ज्वर, अतिसार आदि भी रोगके साथी बन गये। मैं उसकी स्थितिकी गम्भीरताको अनुभव तो कर ही रहा था। प्रारम्भसे ही अच्छे-से-अच्छा उपचार लगातार चल रहा था, किन्तु वमनके द्वारा सभी औषधियाँ व्यर्थ हो जाती थीं।

तीन दिनोंतक वह शिशु रोगके भीषण आक्रमणको झेलता रहा। तीसरे दिन लगभग सायंकालका समय था। वह नन्हा-सा शिशु बीमारीके वेगको सहन न कर सका। वह चेतना शून्य हो गया। शरीर अकड़ चुका था और नेत्र ऊपर चढ़ गये। भावी 'परिणाम' सम्भावित था। यह देखकर पत्नीने रोना शुरू कर दिया। शिशुका अन्तिम समय जानकर मैं स्वयं अकुला उठा। पूजाघरमें प्रभुके समीप ही सिंहासनपर पूज्य बाबूजीका चित्रात्मक श्रीविग्रह विराजमान था। हम दोनोंने वहाँ जाकर पूज्य बाबूजीके सामने बालकको रख दिया तथा जोर-जोरसे भगवन्नामका कीर्तन करने लगे। पाँच मिनट भी नहीं बीते होंगे कि बालककी चेतना पुनः वापस आ गयी और उसने नेत्र खोल दिये। उस समय हम सबकी जो एक विचित्र भावमयी आनन्दपूर्ण कृतज्ञताभरी स्थिति हो रही थी, वह अकथनीय है। इसके बाद शिशुने आश्चर्यजनक रूपसे आरोग्य-लाभ प्राप्त कर लिया। पूज्य बाबूजीकी कृपासे शिशुका जीवन बच गया।

[३] बेटीकी जीवन रक्षा

घटना सन् १९६९ की है। मेरी एक मात्र बेटी स्नेहलता मूत्र रोगसे ग्रस्त हो गयी थी। उसके मूत्राशयकी थैलीमें मूत्र रोक सकनेकी क्षमताका अभाव हो गया। डाक्टरोंने बतलाया कि इसका एक मात्र उपचार ऑपरेशन ही है और यह ऑपरेशन बम्बईमें हो सकता है। बम्बई जैसे शहरमें जाकर ऑपरेशन कराना मेरी सीमाके बाहरकी चीज थी। मैं साधारण स्तरका व्यक्ति उसके व्यय-भारको झेल सकनेमें सर्वथा असमर्थ था, पर मेरी सारी आर्थिक कठिनाई पूज्य बाबूजीके अनुग्रहसे पूर्णतः दूर हो गयी थी। उन्होंने बम्बईमें हमारे ठहरने और ऑपरेशनकी सारी व्यवस्था करवा दी।

गाँवसे बम्बईके लिये प्रस्थान करते समय घरपर अनेक अपशकुन हुए और रात्रिको दुस्स्वप्न दिखायी दिये, फिर भी हमलोग पूज्य बाबूजीका स्मरण करते हुए बम्बई गये। बच्चीका वहाँ ऑपरेशन हुआ। ऑपरेशनके पश्चात् चिन्ताजनक स्थिति सामने आ गयी। घावमें इन्फेक्सन होनेसे बच्चीके बचनेकी संभावना समाप्त होने लगी। हमलोगोंके मनपर बड़ी निराशा छा गयी। इस निराशाको मेरे एक मित्रके दुस्स्वप्नने और भी घनीभूत बना दिया। बच्चीकी हालत देखकर हमलोग बड़े विकल हो रहे थे। हमलोगोंको बाबूजीकी कृपाका ही एक मात्र अवलम्बन था। बम्बईसे श्रीभगवानदासजी सिंघानिया गोरखपुर जा रहे थे। मैंने उनके द्वारा बच्चीकी नाजुक

हालतका समाचार बाबूजीके पास भिजवाया। समाचार सुनते ही पूज्य बाबूजीने सान्त्वनाका पत्र लिखा। हमें पत्र मिला उस समय, जब बच्ची जन्म और मृत्युके बीचमें झूल रही थी। पत्रको पढ़कर और पत्रके रूपमें उनका अनुग्रह प्राप्त करके हमलोगोंके मनमें आशाका संचार हुआ। वस्तुतः आशा पूर्ण हुई और बच्चीके जीवनकी रक्षा हो गयीं। बम्बई अस्पतालमें बैठे हुए हमलोग मन-ही-मन बाबूजीके चरणोंमें बारम्बार प्रणाम कर रहे थे। ■

डा. श्रीनीरजाकान्तजी चौधुरी देवशर्मा

मेरा समुग्ध हृदय

मैं 'कल्याण'का एक मुग्ध पाठक और सामान्य लेखक हूँ। 'गो-अंक' में मेरा 'गो-ब्राह्मण और जगच्चक्र' शीर्षक लेख सबसे पहले निकला था। मेरा ज्ञान और मेरी बुद्धि सीमित है, परंतु न जाने भाईजीने मेरे भीतर क्या देखा था, उन्होंने मेरा कोई लेख कभी वापस नहीं किया।

सन् १९५६ की बात है। उस समय मैं इन्दौरमें नियुक्त था। सहसा एक दिन दोपहरको भाईजीका मेरे घर शुभ पदार्पण हुआ। वे तीर्थ-यात्रा-गाड़ीसे भारतके तीर्थोंका भ्रमण करनेके लिये निकले थे। इन्दौर पोस्ट आफिससे मेरा पता-ठिकाना पूछकर मिलने आये थे। यह कितने प्रेमकी बात है— मैं क्या बतलाऊँ? घरका तैयार किया 'संदेश' (मिठाई-विशेष) उनको जलपानके लिये दिया था और दिया था अपने गुरुदेवका संवाद। अनन्तश्री श्रीसीतारामदास ओंकारनाथ महाराज उस समय खण्डवा जिलेमें ओंकारेश्वर तीर्थके आश्रममें मौन रहकर गम्भीर योग और तपमें निरत थे। मेरे साथ पोद्दारजी और उनके दलके कुछ लोग आश्रममें गये थे। श्रीश्रीगुरुदेव मौनावस्थामें दर्शन नहीं देते, परंतु श्रीपोद्दारजीके पहुँचते ही वे तत्काल बाहर आये और तुलसीदल और पुष्पमाला देकर वहीं समाधिमग्न हो गये। इस अपूर्व संधि-क्षणके दृश्यका आलोक-चित्र लिया गया था।

श्रीश्रीगुरुदेव इसके पश्चात् दो बार गोरखपुर गये। उन्होंने 'कल्याण'-कार्यालयके प्रांगणमें, जहाँ उस समय वृष्टिके कारण कीचड़ हो गयी थी, लोट-पोट की तथा कहा था कि यह धूलि अति पवित्र है। उनके साथ भाईजीका अनेक बार साक्षात्कार हुआ था। ऋषिकेशमें भाईजी उनके आश्रममें गये थे। श्रीश्रीगुरुदेवने भागीरथीके उस पार स्वर्गाश्रममें भाईजीको दर्शन दिये थे। श्रीगुरुदेवकी रचनाएँ, विशेषतः 'पागलकी झोली' 'कल्याण'में प्रायः प्रकाशित होती रही हैं। श्रीगुरुदेव अनेक बार कहते रहे— भाईजी 'कल्याण'के द्वारा जो कर रहे हैं, उसकी तुलना नहीं है।

एक बार श्रद्धेय श्रीयुत वसन्तकुमार चट्टोपाध्याय महाशयके द्वारा ज्ञात हुआ कि 'आर्यलोग बाहरसे नहीं आये' नामक मेरी एक पुस्तिका गीताप्रेससे प्रकाशित हुई है। यह सुनकर मैं विस्मित हुआ, क्योंकि 'कल्याण'में यह लेख भूमिकाके रूपमें छपा था। इस विषयमें और भी बहुत कुछ लिखना था और भाईजीने मुझसे बिना पूछे उसे पुस्तक रूपमें छाप डाला। यह कितनी आत्मीयता— एकात्मभावनाका परिचायक है, इसे वाणीमें व्यक्त नहीं किया जा

सकता। मैं उनका कनिष्ठ भाई हूँ, इसी कारण उन्होंने मुझसे पूछा भी नहीं था।

१९६५ ई. के वर्षाकालमें मैं पहले-पहल गोरखपुर गया। भाईजीके साथ साक्षात्कार किया। उनका स्वास्थ्य शिथिल था, तथापि उन्होंने मुझे कई बार दर्शन दिये। मेरे 'Image Worship in Ancient India' नामक ग्रन्थकी भूमिका, जो लगभग ३० पृष्ठोंकी थी, उन्होंने मन लगाकर सुनी। इस पुस्तकके लिये उनकी अनुकूल सम्मति प्राप्त हुई थी। मुझको उन्होंने 'Glories of Varnashrams' पर लेख लिखनेके लिये कहा था। 'वर्णाश्रमकी महत्ता' शीर्षकसे वह 'कल्याण'में छप गया है।

बहुत दूर रहता हूँ। देखनेकी इच्छा होनेपर भी वह पूरी नहीं होती। जुलाई १९७० ई. में श्रीश्रीगुरुदेवके दर्शनके लिये मैं ऋषिकेश गया था। मनमें आशा थी कि स्वर्गाश्रममें भाईजीसे भेंट होगी, किन्तु दुर्भाग्यकी बात कि अस्वस्थताके कारण वे वहाँ जा न सके थे। इसके पश्चात् जाड़ेमें गोरखपुर जाकर कुछ दिन रहा। अष्टप्रहर नामकीर्तन चल रहा था, उसे देखा। जब भाईजीसे भेंट करने गया, तब देखा कि मेरा ही लेख 'अग्निपुराणकी प्राचीनता' उनके हाथमें था और उसे वे पढ़ रहे थे।

शरीर बड़ा शिथिल था। अतएव वे चारपाईपर लेटे थे। मुझे पासमें कुर्सीपर बैठाया। आश्चर्यकी बात है कि जब-जब मैं उनसे मिलने गया, प्रत्येक बार मेरे बैठते और उठते समय वे पैर छूकर प्रणाम करते थे। मैं उनमें श्रद्धा रखता था, उन्हें बड़े भाईके समान समझता था, किन्तु विवश था, ब्राह्मणका शरीर था और वे वर्णाश्रमकी मर्यादाका पालन करनेवाले थे। अतएव उसमें बाधा डालना मेरे लिये सम्भव नहीं था।

मैं गोरखपुर केवल दो बार जा सका हूँ, परंतु इस स्वल्प समयमें ही उन्होंने 'भाईजी' के रूपमें मेरे हृदयपर अधिकार कर लिया।

श्रीमनोहरलालजी चौधरी

पूज्य श्रीब्रह्मचारीजीका आमरण अनशन

सन् १९६६ में गोरक्षा आन्दोलनके सरगर्मीवाले दिन थे। सर्वत्र वातावरण बड़ा अशांत था। मुझको श्रीभाईजीने दिल्ली भेज दिया और मुझे कई दिनोंतक वहीं रखा गोरक्षा आन्दोलन सम्बन्धी विभिन्न समाचार गोरखपुर भेजते रहनेके लिये। सन् १९६६ के नवम्बर मासमें यह आन्दोलन आरम्भ हुआ था और श्रीभाईजी हृदयसे चाहते थे कि यह आन्दोलन सफल हो तथा सरकार कानूनद्वारा सारे देशमें गो-हत्याबन्दी कर दे। दिल्लीमें ७ नवम्बरको विशाल जुलूसके बाद जो विराट सभा हुई थी, उसको सरकारने अराजक तत्त्वोंके सहयोगसे विध्वंस कर दिया था और सरकार चाहती थी तथा भरपूर प्रयास कर रही थी कि गोरक्षाके लिये चल रहे सत्याग्रह आन्दोलनको भी असफल बना दिया जाय। सत्याग्रह करनेके कारण पूज्य श्रीकरपात्रीजी महाराज गिरफ्तार हो चुके थे और सत्याग्रहियोंके जत्थे अपनी गिरफ्तारी करवा रहे थे। सत्याग्रह तो चल ही रहा था, इसीके साथ बीस नवम्बरसे श्रीजगन्नाथपुरीके शंकराचार्य पूज्य श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराज तथा प्रयागके पूज्य श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज, दोनों

विभूतियोंने आमरण अनशन आरम्भ कर दिया, पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजने दिल्लीमें और पूज्य श्रीब्रह्मचारीजीने वृन्दावनमें। सम्पूर्ण देशमें बड़ी उत्तेजना फैली हुई थी। दैनिक समाचार-पत्रोंके पृष्ठ आन्दोलनके समाचारोंसे भरे रहते थे।

जिस तरह श्रीभाईजीने मुझको दिल्लीमें रख रखा था, उसी प्रकार उन्होंने अपने निजी व्यक्तियोंको स्थान-स्थानपर नियुक्त कर रखा था, जिससे आन्दोलनकी सही स्थितिका ताजा समाचार नित्य-निरन्तर मिलता रहे। श्रीभाईजीका शरीर रुग्ण चलता था और उनका यत्र-तत्र आना-जाना सम्भव नहीं था, अतः जगह-जगह अपने निजी संदेशको पहुँचानेका कार्य वे भाई श्रीराधेश्यामजी बंकासे ले रहे थे। उन दिनों भाई श्रीबंकाजीका एक पैर गोरखपुर और एक पैर बाहर रहा करता था। श्रीभाईजीके संदेशको पहुँचानेके लिये दिल्ली, कलकत्ता, कानपुर, श्रीजगन्नाथपुरी, वृन्दावन आदि-आदि स्थानोंपर उनको सदा दौड़ते रहना पड़ता था। ३१ दिसम्बर १९६६ को अचानक गोरखपुरसे टेलीफोनद्वारा मेरे पास समाचार आया कि श्रीबंकाजी वायुयानद्वारा शामको दिल्ली पहुँच रहे हैं। तुम श्रीडालमियाजीसे कार लेकर हवाई अड्डे चले जावो और वहींसे बाहर-बाहर वृन्दावन उनके साथ चले जाना।

समाचारके अनुसार मुझे कार्य करना ही था। स्वयं परमादरणीय श्रीजयदयालजी डालमियाको यह समाचार पाकर आश्चर्य हो रहा था कि ऐसी क्या आकस्मिक और गम्भीर बात हो गयी, जिसके कारण हवाई अड्डेसे बाहर-ही-बाहर वृन्दावन जाना पड़ रहा है। भाई श्रीबंकाजी लगभग चार बजे वायुयानसे आये और हम दोनों कारसे वृन्दावनके लिये चल दिये। मैंने उनसे पूछा— ऐसी क्या गम्भीर बात हो गयी, जिसके कारण आपको श्रीभाईजीने ट्रेनसे नहीं, प्लेनसे भेजा और बाहर-ही-बाहर तुरन्त वृन्दावन जानेके लिये कहा।

भाई श्रीबंकाजीने बतलाया— कहा नहीं जा सकता कि कहाँ तक सत्य है, पर पूज्य बाबूजी (अर्थात् श्रीभाईजी) के पास यह समाचार पहुँचा है कि पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी चुपचाप छिपे-छिपे कुछ-कुछ रसाहार ले रहे हैं। ज्यों ही यह समाचार गोरखपुर पूज्य बाबूजीके पास पहुँचा, वे तो बड़े अस्त-व्यस्त हो गये। उनके चिन्तनमें बड़ी उथल-पुथल मच गयी कि आमरण अनशनकी सार्वजनिक घोषणा करनेके बाद श्रीब्रह्मचारीजी यह क्या कर बैठे?

भाई श्रीबंकाजीके मुखसे यह बात सुनकर स्वयं मेरा मन बड़ा विचलित हो उठा। विचारोंमें झंझावात उठ खड़ा हुआ। आगेकी बात जाननेके लिये अत्यधिक उत्सुकता जाग उठी। वे बता रहे थे और मैं ध्यानपूर्वक सुन रहा था। भाई श्रीबंकाजीने कहा— मैं आजसे एक मास पहलेकी एक बात बता रहा हूँ। जब पूज्य श्रीब्रह्मचारीजीने अपनी घोषणाके अनुसार २० नवम्बरको आमरण अनशन आरम्भ किया, तब अनशनके आरम्भ करते ही सरकारने उनको गिरफ्तार करके मथुरा जेलमें बन्द कर दिया। बाबूजीके पास मथुरासे समाचार पहुँचा कि सरकारी अधिकारी फोर्स्ड फीडिंग (अर्थात् जबरदस्ती खिलाने) वाली बात सोच रहे हैं। उसी समय बाबूजीने २८ नवम्बर १९६६ को एक पत्र डाकद्वारा मथुराके श्रीकृष्णजन्मस्थान के प्रधान प्रबन्धक पं. श्रीदेवधरजी शर्माके पास लिखा। उस पत्रमें बाबूजीने श्रीदेवधरजीको लिखा था—

मेरा एक काम आप अवश्य कर दीजियेगा। किसी प्रकारसे जेलमें पूज्य श्रीब्रह्मचारीजीसे मिलकर मेरा यह संदेश कह दीजियेगा कि राष्ट्रपतिके द्वारा गोहत्यापर पूर्ण प्रतिबन्ध सम्बन्धी

अध्यादेश जारी होनेतक अथवा सरकारकी ओरसे इस प्रकार पूर्ण घोषणा होनेतक आपको अपने व्रतपर सर्वथा निश्चित रूपसे अटल रहना चाहिये। न बैठते तो बात दूसरी थी, पर अब किसी भी हेतुसे इसे छोड़ देना उचित नहीं। आशा है, आप मेरा संदेश अवश्य और तुरन्त पहुँचा देंगे।

पूज्य बाबूजीका यह पत्र श्रीदेवधरजीको मथुरामें मिला। वे संदेश देनेके लिये तुरन्त सक्रिय हो उठे। पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी तो जेलमें थे और किसी भी प्रकारसे भेंट हो सकना सम्भव नहीं था, फिर भी अपने प्रभाव और सम्पर्कका उपयोग करके श्रीदेवधरजी जेलमें पूज्य श्रीब्रह्मचारीजीसे मिले। उनके पास श्रीदेवधरजी लगभग एक घंटा रहे तथा बाबूजीका संदेश उन्हें सुनाया। पूज्य श्रीब्रह्मचारीजीने श्रीदेवधरजीसे कहा– आप श्रीभाईजीके पास मेरा संदेश भिजवा दीजियेगा कि आमरण अनशनका मेरा व्रत सर्वथा अडिग और अटूट है।

जेलसे आकर श्रीदेवधरजीने वह संदेश गोरखपुर पूज्य बाबूजीके पास भेज दिया। इससे बाबूजीको बड़ी सान्त्वना मिली। जिन्होंने एक मास पहले यह कहा था कि आमरण-अनशनका मेरा व्रत अडिग-अटूट है, वे श्रीब्रह्मचारीजी अब न जाने कैसे और किस बातके प्रभावमें आकर डिग गये हैं और प्राप्त समाचारोंके अनुसार उनका व्रत टूट चुका है। वे छिपे-छिपे रसाहार ले रहे हैं। मैं जब गोरखपुरसे वृन्दावनके लिये चलने लगा तो पूज्य बाबूजीने मुझे बड़ा सावधान किया और समझाया– देखो, बड़ी होशियारी, चतुराई और साहसका काम है। पूज्य श्रीब्रह्मचारीजीकी सेवामें कई लोग रहते हैं। सरकारी गुप्तचर भी वहाँपर है। इन सबकी आँख बचाकर मेरा पत्र उनको पढ़नेके लिये देना है और जब वे पत्र पढ़ लें तो पत्रको तुरन्त और पूर्णतः नष्ट भी कर देना है।

मैंने पूज्य बाबूजीसे कहा– आपकी कृपासे ऐसा ही होना चाहिये।

भाई श्रीबंकाजीके मुखसे इन बातोंको सुनकर मेरे मनमें बड़ी बेचैनी उत्पन्न हो गयी कि यह क्या हो गया? क्या इतना बड़ा आन्दोलन इस छोटी सी कमजोरीके कारण असफल हो जायेगा? आज सारे गो-भक्तोंकी नजर पूज्य श्रीशंकराचार्यजीकी और श्रीब्रह्मचारीजीके उत्सर्गपर टिकी हुई है।

जाड़ेके दिन थे। सूर्य जल्दी ही ढल गया। कारके भीतर मैं अपने विचारोंमें डूबा हुआ था। जब कार वृन्दावनके संकीर्तन भवनके द्वारपर रुकी, तब सब ओर काफी अन्धकार फैल चुका था। इस समय पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी जेलमें नहीं, अपने आश्रम संकीर्तन भवनमें थे। सरकारने उन्हें जेलसे मुक्त कर दिया था और यहीं संकीर्तन भवनमें उनका आमरण-अनशन-व्रत चल रहा था।

भाई श्रीबंकाजीने जाकर पूज्य श्रीब्रह्मचारीजीको प्रणाम किया। उन्होंने अपना आशीर्वाद दिया तथा श्रीभाईजीका कुशल समाचार पूछा। आपसमें औपचारिक बात दो-तीन मिनट होती रही। भाई श्रीबंकाजी वहीं बैठ गये। पूज्य श्रीभाईजीने ठीक ही कहा था कि उनकी सेवामें कुछ लोग सदा पास रहते हैं। एकान्तकी प्रतीक्षामें भाई श्रीबंकाजी चुपचाप बैठे रहे। संयोगसे थोड़ी देर बाद ही एकान्त मिल गया और भाई श्रीबंकाजीने उनको पूज्य श्रीभाईजीका पत्र दिया। वह पत्र इस प्रकार है–

गीतावाटिका, गोरखपुर
३१-१२-१९६६

पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी महाराज,

श्रीचरणोंमें अनन्त प्रणाम।

बड़ा कठिन कर्तव्य है। इसीसे यह पत्र लिख रहा हूँ– हृदयपर पत्थर रखकर। मुझे आपके शरीरसे बड़ा मोह है– इसलिये बड़ा ही चिन्तित रहता हूँ। क्षण-क्षण यही चाहता हूँ आपके शरीरकी रक्षा हो। पूज्यपाद श्रीशंकराचार्यजीमें इतना मोह नहीं है, पर उनके शरीरकी भी बड़ी चिन्ता है, किन्तु उससे भी अधिक बड़ी चिन्ता है– आपके स्वरूप-रक्षण की। शरीर अनित्य है। अनशन न करनेवाले खाते-पीते आदमी भी मरते हैं, और मरते हैं सभी कर्मके फलस्वरूप पूर्व निर्मित प्रारब्धके अनुसार ही। आत्मा कभी मरती नहीं। ये बातें मैं आपको क्या लिखूँ? आप ही लोगोंसे सीखी हुई है। आपका और जगद्गुरुजीका अनशन एक परम आदर्श दिव्य तप है। महाव्रत है। आपने तथा श्रीजगद्गुरुजीने बार-बार घोषणा की है व्रतपर अचल अटल रहकर प्राण त्याग कर देनेकी। अभी-अभी आपने स्वयं लिखा था– ''अनशन छोड़नेपर कुछ रहता नहीं। उठी पैंठ आठवें दिन लगती है। जितने मर जायँ, उन्हें मरने दीजिये।'' मेरा विश्वास था और है कि आप अपने निश्चयपर अटल हैं– अचल हैं। श्रीजगद्गुरुजीने मुझको लिखा है कि वे हिमालयकी तरह अटल हैं।

इधर मैं सुन रहा हूँ– कुछ सज्जन आप लोगोंका अनशन व्रत त्याग कराना चाहते हैं। इसका प्रयत्न भी चल रहा है। आप त्याग कर देंगे– मैं तो यह सोच ही नहीं सकता। आप मर कर भी अमर हो जायेंगे और भगवच्चिन्तन आप कर ही रहे हैं। इससे भगवानकी प्राप्ति हो जायेगी। पर कहीं भी कुछ भी शिथिलता आ गयी तो वह आपकी आध्यात्मिक मृत्यु होगी। हिन्दू जातिका सिर सदाके लिये झुक जायेगा। अनशन न करते तो कोई बात नहीं थी, पर अब तो ''कार्यं वा साधयामि, शरीरं वा पातयामि''।

कहीं ऐसा न हो कि हमारा तमाम आदर्श ही नष्ट हो जाय। यह पैंठ फिर आठवें दिन भी नहीं लगेगी। नष्ट ही हो जायेगी। मैं यह बड़ा कठिन कार्य कर रहा हूँ, पर न करता तो आपके साथ अन्याय करता, धर्मच्युत हो जाता। पत्र सुनकर आप उचित विचार कीजियेगा, यही विनीत प्रार्थना है।

आपका दास
हनुमान

यह पत्र क्या था, एक महान परमाणु बम था। पत्रकी घोर प्रतिक्रिया हुई, घोर विस्फोट हुआ। पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी अकस्मात् बहुत कुछ जोर-जोरसे बड़बड़ाने लगे। वे शायद यही सोच रहे होंगे कि मेरे द्वारा क्या अनचाहा कर दिया गया, कैसे क्या अशोभनीय हो गया? भाई श्रीबंकाजी तो एक आज्ञाकारी संदेशवाहक थे। जब श्रीब्रह्मचारीजी जोर-जोरसे बोलने लगे तो भाई श्रीबंकाजीने उनके हाथसे पत्र ले लिया और पास सुलग रही अँगीठीमें डाल दिया। वह पत्र उस अँगीठीमें जलकर राख हो गया। पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी द्वारा लिये जाने वाले रसाहारकी

घटना कितनी सत्य है, यह तो वे ही जाने, पर मेरे मनमें बार-बार यह बात आती है कि ऐसा उद्‌बोधनात्मक, ऐसा प्रेरणादायक पत्र एक मात्र श्रीभाईजी ही लिख सकते हैं। ■

भक्त श्रीरामशरणदासजी

वे गो-भक्त थे

मेरे ऊपर श्रीभाईजीकी बड़ी कृपादृष्टि थी। उनको मैं अपने पूज्य पिताके तुल्य मानता था और वे भी मुझे वैसा ही स्नेह देते थे। बहुत पहले प्रयागराजमें कुम्भके शुभ अवसरपर उनके दर्शन हुए थे। इस प्रथम मिलनमें जो अद्‌भुत आनन्द प्राप्त हुआ था, वह वर्णनातीत है।

वे गो-ब्राह्मणोंके भक्त थे। गोरक्षा-आन्दोलनमें उन्होंने जिस तत्परताके साथ तन-मन-धनसे सहयोग दिया, वह सर्वविदित है। गोरक्षा-आन्दोलनमें भाग लेनेके कारण मुझे भी जत्थेके साथ एक महीनेके कारावासका दण्ड मिला था। हमें तिहाड़ जेलमें भेजा गया था और उसी जेलमें थे पूज्य श्रीकरपात्रीजी महाराज। हजारों बड़े-बड़े संत, महात्मा, मण्डलेश्वर, विद्वान, गोभक्त और धार्मिक व्यक्तियोंसे समूची जेल भरी हुई थी। श्रीभाईजी इस आन्दोलनकी सर्वोच्च समितिमें थे। श्रीभाईजी तिहाड़ जेलमें बन्दी बनाये गये संत-महात्माओं और नेताओंसे भेंट करने तथा उनसे आन्दोलनके सम्बन्धमें परामर्श लेनेके लिये पधारे। श्रीभाईजीको अपने बीच देखकर सभीको बड़ी प्रसन्नता हुई। विचार-विमर्श करनेके उपरान्त श्रीभाईजीने भाषण दिया।

श्रीभाईजीने अपने भाषणमें कहा— यदि हमने जेलके इन तुच्छ कष्टोंको कष्ट माना तो हम गोरक्षा कैसे कर सकेंगे? गोरक्षार्थ कष्ट सहन करना कष्ट नहीं, महान तप है। यह हमारा परम सौभाग्य है कि आज हमें अपने जीवनमें गोमाताकी रक्षाके लिये कष्ट सहन करनेका अवसर मिला है। यह हमारा तुच्छ शरीर किस काम आयेगा? यदि इससे गोरक्षार्थ कुछ हो जाय तो इसीमें हमारे जीवनकी सार्थकता है। जिस परम वन्दनीय गोमाताके हितार्थ भगवानका राम-कृष्णके रूपमें अवतार होता हैं, जिसके रक्षार्थ सम्राट दिलीप अपनेको खूँखार शेरके सामने फेंक देते हैं, यदि उन्हीं पूज्या गोमाताओंके बधकी बन्दीके लिये हमें जेलकी यातनाएँ सहनी पड़े तो उन्हें सहर्ष भोगना चाहिये और इसे महान तप मानकर प्रसन्न होना चाहिये।

भाषण इतना प्रभावशाली था कि उसको सुनकर सभीका हृदय उत्साहसे भर गया। भाषणकी समाप्तिपर आपने सबसे आशीर्वाद माँगा— जीवनके शेष श्वास भगवानकी स्मृतिमें बीतें। ■

कविराज डा. श्रीरघुवीरसिंहजी आर्य

देवता स्वरूप

२९ जून, १९६७ को तिहाड़ जेलमें गो-प्रेमियोंपर बर्बरतापूर्ण प्राणघातक जो लाठी चार्ज हुआ था, उससे दुःखित होकर परमपूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार हम घायल पीड़ित

परमभागवत श्रीपोद्दारजी

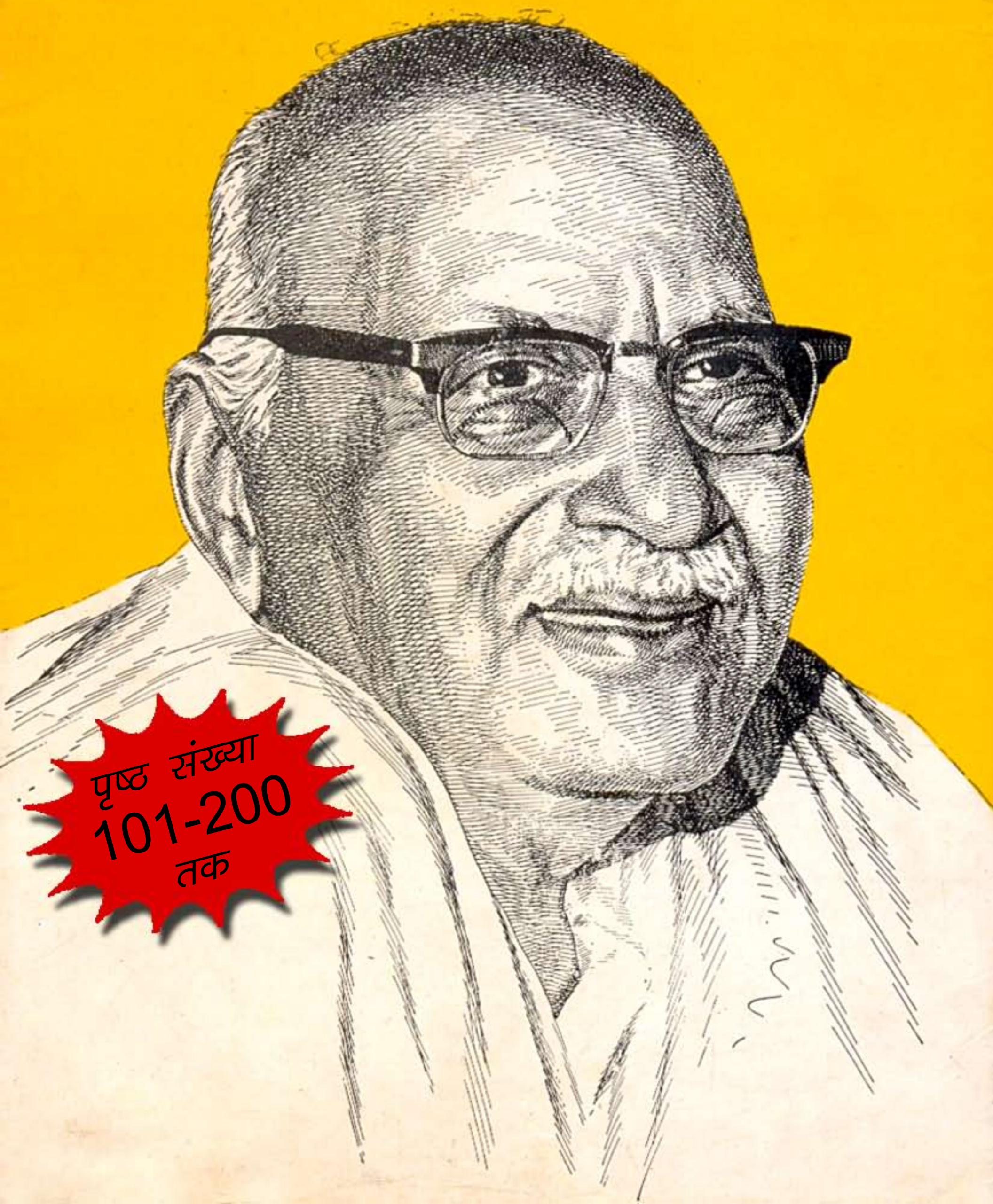

सत्याग्रहियोंको देखनेके लिये चौधरी श्रीसुखदेव सिंहके साथ इरविन अस्पताल पधारे। घायल सत्याग्रहियोंको देखते हुए वे जब मेरे सामने पहुँचे तो चौधरी साहबने मुझपर किये गये अत्याचारको विस्तारपूर्वक बतलाया कि किस तरह इनको गुण्डे कैदियोंने बुरी तरह मारा तथा मरा हुआ समझकर छोड़ गये थे, परंतु गोमाताकी कृपासे आपके सम्मुख बिस्तरपर पड़े हैं। श्रीपोद्दारजीने जब यह सुना तो उनके नेत्रोंमें आँसू छलक आये। वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने मेरे मुखसे कुछ घरेलू जानकारी प्राप्त करनी चाही। मैंने श्रीपोद्दारजीको बताया— मै ५ नवम्बर १९६६ से घर नहीं गया क्यों कि मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जबतक गोरक्षा आन्दोलन चलेगा, मैं घर नहीं जाऊँगा। सो अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार मैंने बारह बार बराबर जेल यात्रा की। बारहवीं बार हमपर यह अत्याचार सरकारने षडयन्त्र करके करवाया। मुझे दुःख इसी बातका है कि आज भी हमारी गोमाता उसी प्रकार निर्दयता पूर्वक काटी जा रही है। मेरी दो सयानी लड़कियाँ हैं, जिनका विवाह सन् १९६६ में ही कर देना था, परंतु मेरी लगन उस कर्तव्यको छोड़कर इस कर्तव्यपर लगी हुई है। मेरी धर्मपत्नी बीमार रहती हैं। कुल पाँच बच्चे हैं, दो लड़के और तीन लड़कियाँ। मेरा आयुर्वेदिक औषधालय उसी दिनसे बन्द पड़ा है और अब मेरे दोनों हाथ तोड़ दिये गये हैं, जो बेकार हो गये हैं। इनके ठीक होनेतक न जाने कितना समय लगेगा और तबतक मेरा दवाखाना बन्द पड़ा रहेगा।

श्रीपोद्दारजी यह सब सुनकर सिर झुकाकर चले ही गये। मैं इस महान विभूतिके सम्बन्धमें कुछ अधिक नहीं जानता था। श्रीपोद्दारजीने मेरी आर्थिक दशाको जान करके तथा चौधरी साहबसे उसकी जानकारी प्राप्त करके श्रीकृष्ण-सुदामा वाला उदाहरण पेश कर दिया। मेरी जानकारी बिना और कोई इच्छा किये बिना इन्होंने दो सौ रुपयोंका मनीआर्डर मेरे लड़केके नाम भेजा तथा एक हजार रुपया गोप्रेमी श्रीजयदयालजी डालमियाजीसे दिलवाकर अपनी दयालुताका ऐसा परिचय दिया, जो भुलाया नहीं जा सकता। मेरा हृदय कह उठा कि इस अर्थप्रधान युगमें ऐसी महान आत्माएँ भी मौजूद हैं, जो कुछ माँगे और कहे बिना ही अपनी सहज दयालुतासे अनुमान लगाकर दुःखी प्राणियोंकी सहायता करती हैं। यह तो एक उदाहरण हुआ। संकटके समय ऐसे न जाने कितने हजारों व्यक्तियोंकी आर्थिक सहायता वे करते थे। यह कोई साधारण बात नहीं है। श्रीपोद्दारजी देवता स्वरूप थे। देवता देने वालेको कहते हैं, लेने वालेको नहीं। ■

श्रीरामरक्खाजी

स्नेह तथा नम्रताकी मूर्ति

बहुत पुरानी बात कह रहा हूँ। मुझे अपने दो महानुभावोंके साथ स्वर्गाश्रम जानेका सुअवसर प्राप्त हुआ। उन दिनों वट-वृक्षके नीचे सत्संग हुआ करता था और सत्संगी नर-नारी स्वर्गाश्रमके ही मकानोंमें रहा करते थे। उस समय गीताभवन नहीं बना था। तीन-चार दिनतक हमलोग वहाँ ठहरे और प्रातःसे सायंकालतक सत्संगके सभी कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होते रहे।

कहनेकी बात नहीं है कि वह सत्संग एक अद्‌भुत प्रसंग था और उसकी अमिट छाप मेरे हृदयपर पड़ी। ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका इस सत्संगके अधिष्ठाता देवता थे और श्रीभाईजी उसमें स्नेह-दीपकी ज्योति जलाते थे। भाईजी अपने स्नेह और सरलताके जादूसे उस पहली भेंटमें ही मुझे बहुत समीप ले आये और वह समीपता बढ़ती ही गयी। यह उनके हृदयकी कोमलता और सबको अपनालेनेवाली सहृदयताका नमूना है। मुझे स्मरण नहीं कि कैसे उनका इतना सामीप्य मैं प्राप्त कर पाया। संत-हृदयका यह स्वभाव ही है कि एक बार जिसे वे अपना लेते हैं, फिर उसके दुर्गुणों और त्रुटियोंकी ओर न देखकर उसे स्नेह ही प्रदान करते हैं, उनके पास इसके सिवा और होता भी कुछ नहीं। गंगाकी रेणुकामें उस स्थूलकाय महापुरुषको 'भज मन नारायण-नारायण' की धुनिके साथ भाव-विभोर नाचते एवं बच्चेकी सरलता-सम उछलते हुए देखकर मुझे विस्मयमिश्रित बहुत आनन्द हुआ। यह घटना मेरे लिये तो आह्लादिनी और अनोखी थी।

श्रीभाईजी कितना व्यस्त जीवन बिताते थे? जो व्यक्ति उन्हें जानते हैं, उन्हें यह भली प्रकार ज्ञात है। 'कल्याण'के सम्पादनका बोझ ही पर्याप्त था। इसके अतिरिक्त साधक-जिज्ञासु उनसे परामर्श लेते रहते थे। अनेक पत्र आते थे, जिनके उत्तर उन्हें देना होता था। अन्तिम रुग्णावस्थामें भी जब-जब मैंने उन्हें पत्र लिखा, उन्होंने अपने हाथसे उसका उत्तर दिया। उनके पास पत्रोंका उत्तर देनेवाले साथी थे, टाइप यन्त्र थे, परंतु मेरे सभी पत्रोंका उत्तर वे अपने हाथसे ही लिखकर देते रहे। संत बड़ी-बड़ी बातोंसे ही महान नहीं होते, अपितु उनके चरित्रकी छोटी-छोटी बातें भी उनके स्वच्छ हृदयको दर्शाती हैं। मेरा हृदय हमेशा यह देखकर कृतज्ञताके भावोंसे भर जाता था। इसे मैं अपना सौभाग्य और उनकी सहृदयता ही मानता रहा।

मैंने अपनी कठिनाइयों आदिके विषयमें जब भी उनसे परामर्श माँगा, किसी सहायताकी याचना की, उन्होंने तत्काल उत्तर दिया और सत्परामर्श प्रदान किया। उनकी अत्युच्च स्थितिके सम्बन्धमें कुछ कहनेकी अपेक्षा ही कहाँ है? मुझे एक बार उन्होंने बहुत एकान्तमें स्पष्ट शब्दोंमें कहा, शब्द तो मुझे स्मरण नहीं हैं, परंतु भाव यह था कि भगवान निश्चित हैं और उनके सगुणरूपका साक्षात्कार उन्हें हुआ है तथा सांनिध्य प्राप्त है। दूसरे समय यह कहा कि साधना तो मूक होकर उनके साथ एक हो जाना है। वे भगवानके सगुण तथा निर्गुण दोनों रूपोंके अनुभवी थे और यह स्थिति कितनी महान तथा दुर्लभ है, इसकी कल्पना करना भी हमारे लिये सम्भव नहीं है। वे जब-जब गुरुकुल पधारे, उन्होंने मुझे स्मरण किया और दर्शन देकर ही गये। सन् १९५५ में जब वे वृन्दावन पधारे, उन दिनों मैं वृन्दावनमें था। अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी वे मुझसे मिलना नहीं भूले।

आज भी वह दृश्य मेरे सामने है, जब सन् १९६९ की गर्मियोंमें अन्तिम बार उनके दर्शन स्वर्गाश्रममें मुझे हुए थे। तब वे मेरा हाथ अपने हाथोंमें लेकर बैठे थे, सारे हृदयका स्नेह उड़ेल रहे थे। रोगी होते हुए भी अपने कमरेसे बाहर आ गये और साधना-सम्बन्धी प्रश्नोंका उत्तर दे रहे थे। उनके स्पर्शसे एक सरल, पवित्र, पावन धारा सतत निर्झरित होती रहती थी। ■

श्रीहरिनारायणजी जालान

विनम्रताकी मूर्ति

श्रीभाईजीका चरित्र इतना अभिमान-शून्य था कि उनके सम्पर्कमें आने वाला व्यक्ति स्वयं ही संकोचमें पड़ जाता था। यह विनम्रता उनके व्यक्तित्वका स्वरूप-भूत अंग थी। उनके अस्वस्थ होनेपर हमलोग बराबर उनके पास जाते थे। वहाँपर यह देखा जाता था कि शरीरकी चिन्ताजनक स्थितिमें भी वे चिकित्सकोंको हाथ जोड़कर वन्दन करना नहीं भूलते थे और वे स्वयं ही पूछ बैठते थे कि आप मजेमें हैं न ? चिकित्सक महोदय यह देखकर आश्चर्य करते थे कि रोगी स्वयं उन्हींसे उनकी प्रसन्नताका समाचार पूछ रहा है।

इसी अवसरकी एक घटना है। उनके कमरेके बाहर हम कुछ लोग उनकी कष्ट-विमुक्ति एवं स्वास्थ्य-लाभके लिये 'रामरक्षास्तोत्र' का पाठ कर रहे थे। तभी डा. चक्रवर्ती साहबने आकर हमलोगोंसे कहा— आपलोग नीचे पंडालमें जाकर पाठ करें, जिससे कि भाईजीके आराम करनेमें बाधा न पहुँचे। उनकी स्थिति सुधारपर है। घबड़ानेकी कोई बात नहीं है।

हमलोग तुरन्त नीचे पंडालमें चले गये। हमलोग पंडालमें पहुँचे ही थे कि श्रीभाईजीने एक सज्जनसे अपना संदेश कहलवाया। वह संदेश था— श्रीभाईजीने कहा है कि सबको श्रीराधामाधवका स्वरूप जानकर मेरा प्रणाम है। आपलोग यह न सोचें कि जो हमलोग नीचे पंडालमें भेज दिये गये हैं, वे पराये हैं और जो लोग ऊपर हैं, वे अधिक प्रेमी हैं।

यह संदेश सुनते ही मन भर आया, भावनाएँ बहने लगीं। उनको सबका कितना ध्यान रहता था ? यद्यपि वे स्पष्ट शब्दोंमें बोल नहीं पा रहे थे। शब्द रुक-रुककर अधरोंसे निकल रहे थे, फिर भी उन्होंने अपना संदेश कहलवाया। लोगोंकी भावनाओंको ठेस न लगे, इसके लिये वे पदे-पदे प्रयत्नशील रहते थे। ऐसे थे विनम्रताकी मूर्ति हमारे श्रीभाईजी ! ■

श्रीगिरिजाशंकरजी त्रिवेदी

हिन्दू संस्कृतिके जीवन्त स्वरूप

सन् १९४४ की बात है। मैं मिडिल स्कूलका विद्यार्थी था। पिताजी आजीविकाके सिलसिलेमें बम्बई रहा करते थे। वे 'कल्याण'के ग्राहक थे। गाँव आते समय 'कल्याण'के कुछ अंक वे साथ ले आते। इस तरह मुझे 'कल्याण' पढ़नेका अवसर मिला। उसमें छपी बातें मेरे किशोर मनपर गहरा असर करतीं। एक बार पिताजीके बम्बई लौट जानेके बाद मैंने निश्चय किया कि मैं भी 'कल्याण'का ग्राहक बनूँगा। पैसा जुटाना टेढ़ी खीर थी, पर एक उपाय सूझा। मैं तीन पैसेका पोस्टकार्ड खरीद लाया और उसपर मैंने लिखा—

श्रीमान सम्पादकजी,

सादर प्रणाम। मैं गाँवके मिडिल स्कूलका विद्यार्थी हूँ। आपका 'कल्याण' मुझे बहुत अच्छा लगता है, पर चंदेके लिये मेरे पास पैसे नहीं हैं। दो-तीन महीनेमें पैसे इकट्ठे करके आधे सालका चंदा भेज दूँगा।

आपका
गिरिजाशंकर

कार्ड लेटर बाक्समें छोड़कर दो-चार दिनतक मैं अपनी इस नासमझीपर पछताता रहा। सोचता रहा कि भला बिना जानपहचानके इतने बड़े पत्रके सम्पादक मुझ जैसे 'गवँई' (गाँवके) लड़केको क्या उत्तर देंगे? उलटे कहीं डाँट ही न पिलायें।

ठीक आठवें दिन एक हस्तलिखित कार्ड मेरे नाम आया। उसमें लिखा था—

प्रिय गिरिजाशंकर,

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। 'कल्याण' पढ़नेमें तुम्हारी रुचि जानकर प्रसन्नता हुई। भारतीय सभ्यता और संस्कृतिके संस्कार बचपनसे ही हमारे बच्चोंमें पनपें, यही मेरी कामना है। एक सालतक तुम्हारे लिये मुफ्त 'कल्याण' भेजनेके लिये व्यवस्था-विभागको कह दिया है। खूब पढ़ो। इच्छा-शक्तिमें धनाभाव कभी बाधक नहीं बन सकता।

शेष भगवत्कृपा।

तुम्हारा भाई,
हनुमानप्रसाद पोद्दार

पत्र पढ़कर लगा कि किसीने वात्सल्य भरे हाथोंसे मुझे ऊपर उठा लिया है। आज भी पत्रकी स्मृतिसे मन कृतज्ञतासे भर उठता है।

सोचता हूँ, श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने न जाने कितने तरुणोंको अपने सहज सौजन्य और औदार्यसे हिन्दू संस्कृतिके जीवन्त स्वरूपका दर्शन कराया होगा। ■

डा. प्रेमस्वरूप गुप्त

मेरी मनस्थिति बदली

अब एक अनुभवकी बात कहता हूँ। मेरे हिन्दी विभागमें कुछ उत्पाती तत्त्व उभर उठे। उन्होंने कुछ ऐसी स्थितियाँ खड़ी करनी चाही थी, जो शिक्षाजगतके लिये अच्छी नहीं कही जा सकतीं। मैं उन स्थितियोंसे समझौता नहीं कर पा रहा था। मनको लगा कि क्यों इस अध्यक्ष-पदके मोहमें पड़ा जाय। मैंने अध्यक्ष-पदसे त्यागपत्र दे दिया। अधिकारी और मित्रोंका आग्रह हो रहा था कि मैं त्याग-पत्र न दूँ, पर मेरा मन तैयार नहीं हो पा रहा था। मन सोचता था, क्यों संघर्ष मोल लूँ। इधर श्रीपोद्दारजीके पदोंका संग्रह 'पद रत्नाकर' उलट-पलट रहा था और १२४३ वाँ पद पढ़ने लगा—

मानव-जीवनमें कटुता-कठिनाई विविध भाँति आतीं।
कभी-कभी वे अति भीषण बन, तन-मनपर हैं छा जातीं॥
जो निराश हो रोने लगता, उस पर वे बढ़तीं भारी।
विविध प्रकारोंसे बहुसंख्यक बन, अति दुख देतीं सारी॥
हो भयभीत, छोड़कर साहस, जो कापुरुष भाग जाता।
भाग न पाता, गिर पड़ता वह, बुरी तरह कुचला जाता॥
पर जो कर विश्वास ईश्वरी बलपर, सम्मुख डट जाता।
उससे डर वे भाग छूटतीं, नहीं दुखी वह हो पाता॥

सच मानिये, इस पदने मेरी मनस्थिति ही बदल दी। ईश्वर-विश्वास और आत्म-विश्वासकी नयी ज्योति फूट पड़ी और मैंने पाया कि बहुत ही जल्दी वे उत्पाती स्थितियाँ धराशायी हो गयीं। अगर मैं इस मार्गका अवलम्बन न करता तो सम्भव है, मैं भाग न पाता, गिर पड़ता और बुरी तरह कुचला जाता। वस्तुतः यही होता। ■

श्रीगोविन्दजी शास्त्री

नवयुवकोंको सन्मार्ग दिखानेवाले

सन् १९५० के आस-पासकी बात है। मनमें बड़ी अशान्ति थी। युवावस्था होनेके कारण समवयस्कोंमें ही बैठना होता था, किंतु पारिवारिक परम्परा और घरमें सुलभ पुस्तकोंके पढ़नेसे वह युवकोंका संग मुझे अरुचिकर था। अवस्थाके प्रभाव और यौवनके उष्णतापूर्ण उन्मादसे भरे विचारों और वार्तालापोंसे मन कुंद हो जाता था। मेरी स्वयंकी ऐसी विवशता थी कि अकेला रह नहीं पाता था और साथियोंके नामपर वे ही परिचित व्यक्ति, उनके वे ही अमर्यादित और वासनाभरे वार्तालाप। बड़ी दुविधामें जीवन था। जाने किन क्षणोंमें यह निश्चय कर बैठा कि इस दुनियासे दूर कहीं एकान्तमें गिरि-कन्दरामें जाकर उपासना की जाय, किन्तु साहस नहीं हो रहा था। सोचा, ऐसा करनेसे पहले किसीसे पूछ क्यों न लूँ। घरमें पितामह थे- पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी शर्मा। सामने जबान खोलनेका मुझे साहस ही नहीं हो सका। फिर यह भी मनमें आया कि एकमात्र पौत्र होनेके कारण वे मुझे जाने नहीं देंगे।

हमारे यहाँ 'कल्याण' आता था और उसके अध्ययनमें मुझे बड़ी रुचि थी, अतएव 'कल्याण' सम्पादकको ही पत्र लिखकर राय पूछनेका विचार हुआ। मैंने उन्हें एक पत्र लिखा। एक अपरिचित व्यक्तिको लिखा गया मेरा यह पहला पत्र था। मनमें संकोच था कि न जाने वे मेरे पत्रका उत्तर भी देंगे या नहीं, पर इतना सत्य था कि अपनी मनोभूमि और परिस्थिति मैंने पत्रमें निस्संकोच लिख दी थी। एक सप्ताहके भीतर ही मुझे उत्तर मिल गया और मुझे स्पष्ट कहा गया— ऐसा न किया जाय। घरसे दूर जाकर भी आदमी दूर नहीं जा सकता और चाहे तो घरमें रहकर भी दूर रह सकता है।

यह था पुण्यश्लोक श्रीपोद्दारजीसे मेरा पहला परिचय। उनका वह पत्र मेरे लिये आज भी अमूल्य निधि है। उस पत्रसे मुझे सही दिशा मिली। आज भी जब सप्तशतीका पाठ करता हूँ तो

समाधि-सुरथके रूपमें मैं अपने आपको पाता हूँ और श्रीपोद्दारजीका वह पत्र मुझे सप्तशतीके रहस्यके रूपमें स्मरण हो आता है। न जाने मुझ जैसे कितने अल्पज्ञोंको उन्होंने उबारा होगा।

इसके पश्चात् लिखनेकी प्रेरणा हुई। बहुत कुछ लिखा, पर प्रकाशित करनेके लिये भेजनेका साहस ही नहीं हो सका। जाने वह कौन-सी अज्ञात प्रेरणा थी, जिसने मुझे विवश कर दिया और मैंने कुछ पंक्तियाँ श्रीभाईजीके पास भेज दी। श्रीभाईजीने कृपा करके वे पंक्तियाँ 'कल्याण'में प्रकाशित कर दी। इसे देखकर कितने दिनोंतक मैं हर्ष विभोर होता रहा। आज सभी पत्रोंकी परिक्रमा करके आया हूँ पर इसका सारा श्रेय पूज्य श्रीपोद्दारजीको ही है। इस जीवनको जो भी कुछ मिला है, वह महामना श्रीपोद्दारजीके ही कारण, यह कहनेमें मुझे गौरवका अनुभव हो रहा है। मेरी भाँति न जाने कितने नवोदित साहित्यकारोंको प्रोत्साहन देकर श्रीभाईजी प्रकाशमें लाये हैं। ■

पं॰ श्रीलक्ष्मणनारायणजी गर्दे

मेरी परोक्ष सँभाल

(पण्डित श्रीलक्ष्मणनारायणजी गर्देकी गणना हिन्दीपत्रकारिताक्षेत्रके प्रमुख व्यक्तियोंके रूपमें की जाती है। प्रारब्धवश वे मानव-जीवनकी स्वाभाविक कमजोरियोंके वशीभूत हो गये थे। एक ओर अगाध पाण्डित्य और दूसरी ओर मानवीय दुर्बलताओंका प्राबल्य, यह उनके जीवनकी एक विडम्बना थी। उन्होंने 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादकीय विभागके सदस्यके रूपमें बहुत दिनोंतक कार्य किया था। श्रीपोद्दारजीका उनपर अगाध स्नेह था, अतः वे श्रीगर्देजीकी बराबर सँभाल करते रहे।

'कल्याण' पत्रिकासे अलग होनेपर श्रीगर्देजी वाराणसी चले गये। वहाँ उक्त दुर्बलताओंको नियन्त्रित करना उनके लिये सम्भव नहीं रहा। आश्चर्यकी बात यह थी कि जब-जब उन्होंने गलत मार्गपर पैर बढ़ाया, उन्हें लगा कि श्रीपोद्दारजी प्रकट होकर उस ओर बढ़नेसे उन्हें रोक रहे हैं। इसकी अनुभूति श्रीगर्देजीको अपने जीवनमें हुई। श्रीपोद्दारजीके अपूर्व वात्सल्यका अनुभव करके वे मुग्ध हो गये। उन्होंने अपनी एतद्विषयक अनुभूतिकी चर्चा करते हुए श्रीपोद्दारजीको पत्र लिखा, जिसे उसी रूपमें यहाँ उद्धृत किया जा रहा है। इससे श्रीपोद्दारजीकी स्नेहशीलता तथा अलौकिक क्षमताका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। - सम्पादक)

(क) प्रथम पत्र : —

॥ श्रीहरिः ॥

पत्थर गली, रतन फाटक,
बनारस सिटी
२५-८-३७

भाईजी,

'फारमैलेटी' जिसे कहते हैं, उसका सर्वथा परित्याग करनेके लिये आज मैं आपको संबोधन

करते हुए आपके नामके पूर्व कोई विशेषण नहीं लगा रहा हूँ, क्यों कि कोई भी विशेषण लगानेमें सत्यका कुछ-न-कुछ अपलाप ही होता है, यद्यपि जो कोई विशेषण मैं आपके नामके साथ लगाता हूँ, वह हृदयान्तरमें सदा सत्य स्वरूप होता है। यदि मैं आपको 'परम प्रिय' कहूँ तो यह देखता हूँ कि मुझे पाप जितना प्रिय है, उतने तो आप प्रिय नहीं हैं, पर यह बात भी झूठ है, क्यों कि पाप यदि मुझे प्रिय होता तो मैं उसकी शिकायत आपसे क्यों करता ? पाप है तो मेरा शत्रु ही, पर उसके जालमें फँसकर मैं पापी हो गया हूँ। मैं पापात्मा हूँ, मेरा अधिकांश जीवन पापमय रहा है, इस समय भी पापमय हो रहा है। गत छः वर्षोंकी डायरियाँ मेरे पास हैं। उन्हें देखता हूँ तो यही सिद्धान्त निकलता है कि जो समय आपके सत्संगमें बीता या जो दो-चार-दस दिन पांडिचेरीमें बीते या जो बीमारीमें बीते, उसीमें मैं कम-से-कम शरीरतः पापवर्जित रहा, अन्यथा पापका ही चिन्तन, पापकर्ममें ही निमज्जन, पापका ही अनुताप, पापसे ही युद्ध, पापसे ही हार-जीत, पापका ही छिपाव, पापका ही विस्तार करता रहा हूँ और जो कुछ मैंने इस पापसे मुक्त होकर सुख-स्वरूप होनेका साधन अपने मनमें सोचा, वह सब व्यर्थ हुआ। यही प्रतीति हुई कि महापुरुष-सेवन ही पापकर्दमसे निस्तार पानेका एकमात्र उपाय है, पर इस उपायको छोड़कर मैं यहाँ आया हूँ, इस भरोसे कि सतत भगवन्नामस्मरणसे यहाँ भी वह कार्य सध जायेगा, जो आपके संगमें अथवा पांडिचेरीमें रहकर सध सकता है। भगवन्नाम-स्मरणसे पापसे निस्तारण होता है, यह बात विश्वासमें कुछ आ गयी है, पर भगवन्नाम-स्मरणने मुझे अभी अपने अधीन नहीं किया है। विकारका हेतु सामने आते ही भगवन्नाम-स्मरण छूट जाता है अथवा जबतक मैं भगवन्नामका सहारा लेता हूँ, तबतक तो सहारा मिलता है, पर छोड़ते ही छूट जाता है।

भगवान सर्वत्र हैं, सर्वत्र उनका प्रभाव है, यह बात भी कभी किसी समय ही याद आती है। व्यवहारतः तो यही आवश्यक जान पड़ता है कि मुझे किसी ऐसे सत्पुरुषके अधीन रहना चाहिये, जो मुझे जानता है कि मैं पापात्मा हूँ और जिसे मेरे उद्धारकी मुझसे भी अधिक चिन्ता है, जैसे अपने नालायक पुत्रके लिये उसकी माताको होती है। पांडिचेरीमें श्रीअरविन्ददेव और मदर, दोनों यह जानते हैं, उन्हें मेरे उद्धारकी चिन्ता भी अवश्य होगी, पर वहाँ जाकर रहना इस गृहस्थीको लेकर नहीं बनता। गृहस्थीको चलाने वाले हैं तो भगवान ही। तो क्या इन सबको छोड़कर पांडिचेरी चला जाऊँ ? यह एक प्रश्न है। दूसरी बात यह है कि मैं काशीमें बिना किसी ऐसे पुरुषके संगके नहीं रहना चाहता, जो मुझे उस तरहसे न जानता हो, जिस तरहसे आप जानते हैं। आप कृपाकर यह बताइये कि मैं काशीमें रहूँ तो किसकी शरणमें रहूँ. . . . . किसको आपके स्थानमें मानकर रहूँ, जिसका अंकुश मुझपर रहे ? मैं वहीं रहना चाहता हूँ, जहाँ आप हों या श्रीअरविन्द हों या जिन्हें आप कह दें, वे हों।

ता. १४ अगस्तको मैं आपसे विदा हुआ। उसी रातसे पूर्वाभ्यस्त पाप-वृत्तिको निरंकुश खुला मैदान-सा मिल रहा है, मुझे बड़ा कठिन युद्ध करना पड़ रहा है। सत्संगकी बातें याद कर-करके अपने आपको सँभालनेका प्रयत्न करता हूँ, पर सँभालना कठिन होता है। सँभलकर भी फिर-फिर पापपथपर अग्रसर होता हूँ। इससे महापुरुषसे दयाकी भिक्षा चाहता हूँ। सत्संगके द्वारा आपने सब कुछ बता दिया है, पर वह सार्वत्रिक है। इस पत्रके उत्तरमें विशिष्ट रूपसे ऐसी आज्ञा कीजिये की मेरा जीवन इहैव ऐसा बन जाय, जैसा आप चाहते हैं।

कल सन्ध्या समय पापमें प्रवृत होनेके अवसरपर ऐसा प्रतीत हुआ कि बीकानेरी पगड़ी बाँधे आप मेरे पास आकर खड़े हो गये। आपका मुखमण्डल उदास था। आपने कहा— कहाँ जाते हो? घर चलो।

(आपको मेरे लिये नरकमें उतरना पड़ा।)

मैंने कहा— यह भ्रम है। तुम यहाँ हो, इसका क्या प्रमाण है? और स्पष्ट करके बतलाओ।

मेरे ललाटमें तिलक लगा था, वैसा ही तिलक आपके ललाटमें आभासित हुआ। आप मौन रहे, पर मन ही मन कहने लगा. . . . . . अपने भरसक इस बातको स्पष्ट कर लो। मैंने सिनेमा-हाउसके अंधगृहकी ओर पीठ फेरी। मैं स्थिर हो गया, मेरे पैर धरतीमें जम गये। मैंने कहा— भाईजी! जहाँ आप कहिये, वहीं चलता हूँ, बताइये तो सही।

आपने कहा— घर चलो।

मैं आपके पीछे-पीछे चला। थोड़ी दूर चलकर मैं एक स्थानमें रुक गया और मैंने आपसे कहा— आज भर मुझे हो आने दीजिये, कल मैं नहीं जाऊँगा। कहिये, हो आऊँ?

आपने कहा— अच्छा, तो मैं अब जाता हूँ।

यह कहकर आप बहुत दूर निकल गये। मैंने कहा— भाईजी! मत जाइये, मैं आपके साथ चलता हूँ।

इसी मनःस्थितिमें लौट रहा था। रास्तेमें एक योगी मिले। ये योगी कई बार मिले हैं, पर कल इनके दर्शन हुए, वैसे इससे पहले कभी नहीं हुए थे। इनसे कुछ इधर-उधरकी बातचीत चल रही थी, तब अकस्मात् यह स्मरण हुआ कि एक सज्जन मुझसे मिलनेके लिये आज मेरे घर आने वाले हैं, शायद आये हों, जल्दी घर चलें। मैं घर चला आया। बीचकी एक बात कहना भूल गया। मैंने जब आपको पुकारा— भाईजी! आप मत जाइये, मैं आपके साथ चलता हूँ।

तो आपने पास आकर कहा— तो चलो, घर चलो।

मैंने पूछा— घर चलकर क्या करूँ?

आपने कहा— 'ॐ नमः शिवाय' का जप करो।

मैंने पूछा— कितना जप करूँ?

आपने कहा— पाँच माला। गोरखपुरसे चलनेके बाद जितने दिन तुम इस दोषमें प्रवृत्त हुए, उतनी पाँच माला जपो, जन्माष्टमीतक, नित्य सायंकाल।

इससे मुझे बड़ा सन्तोष हुआ और मैं उस योगीके दर्शनकर घर लौट आया तथा 'ॐ नमः शिवाय' की पाँच मालाका जप कर लिया। प्रायश्चितस्वरूप चीनी-फल आदि लेकर जन्माष्टमीतकका उपवास-व्रत आरम्भ किया है। विगत रविवारसे और १२ पंचमाला 'ॐ नमः शिवाय' की कल मंगलवारकी संध्यासे आरम्भ की है। यह सब इसलिये निवेदन किया है कि आप यथोचित संशोधन बताकर मेरे जीवनको ऐसे रास्तेपर लगा दें कि यह जीवन व्यर्थ न जाय, भगवानसे कभी विमुख न हो।

भवदीय

लक्ष्मण

(ख) द्वितीय पत्र : —

।। श्रीहरिः ।।

पत्थरगली, रतन फाटक,
बनारस सिटी
२६-१०-३७

परम प्रिय श्रीभाईजी, परमश्रद्धास्पद,

सादर सप्रेम प्रणत शुभस्मरण।

आपके ता. १३-९-३७ के परम शुभ पत्रके विषयमें मैंने परसो आपको जो कुछ लिखा, उसमें पूरी बात नहीं लिख सका। इसलिये आज यह पत्र पुनः लिखता हूँ। इसमें उस पत्रके सम्बन्धमें अपना भाव यथा-शक्य प्रकट करूँगा और जो कुछ जिज्ञासा है, वह भी पूछूँगा।

''आपने अपना समझकर मेरे सामने हृदय खोलकर रखा है, यह कोई भगवानका ही विधान है''— यह पढ़कर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई और हृदय आपके वचनसे और भी अधिक, कम-से-कम हृदयसे तो खुल ही गया। अब तक जो हृदय खुला था, वह था तो खुला ही, पर कुछ संकोच भी रहा होगा, सो उसको आपका यह परम पवित्र अनावृत वचन पूर्ण रूपसे खोल रहा है, पर यह निश्चय है कि इसमें आपकी अहैतुकी कृपा ही कारण है, जिसका मैं चिर ऋणी हूँ। मेरा किंचित् और त्रुटिपूर्ण विश्वास और नाममात्र-सा स्नेह आपको मुझपर पूर्ण कृपा करनेका संकल्प करनेके लिये और अपने आपको 'चिर ऋणी' मान लेनेके लिये झुकता है, यह सचमुच ही मेरे मसानमय विश्वास और स्नेहकी जरा-सी लहरकी सामर्थ्य नहीं, आपके भागवत हृदयके करुण स्नेहकी अथाह गम्भीरता है, जिसे मैं क्या और कैसे समझ सकता हूँ। आपकी एक-एक बात सोचकर हृदय आपके चरणोंपर लोटता है, यह कहनेमें जरा-सी भी अत्युक्ति नहीं। हाँ, कोई है, जो मुझे इन सब भागवत प्रभावोंसे दूर घसीटता रहा है। मैं अब उसे सदाके लिये दूर ढकेल देना चाहता हूँ और आप भी यही चाहते हैं, मुझसे भी अधिक और मेरे इस किंचित् जागरणके बहुत पहलेसे ही। सच तो यह है कि मैं आपका अपराधी हूँ। आपने मेरे लिये क्या नहीं किया ? मैं, मैं यदि जागता होता तो आपकी प्रसन्नताका पारावार न रहता और मैं भी परम सुखी होता।

'ॐ नमः शिवाय' का मैं जप करने लगा हूँ, पर सायंकाल केवल पाँच माला जपता हूँ। मेरी कुलदेवता श्रीआर्यादुर्गा हैं और कुलपूज्य आराध्य श्रीकृष्ण हैं। मेरे हृदयमें स्वभावतः ये ही प्रिय हैं। श्रीअरविन्द भी इन्हींकी ही उपासना बतलाते हैं। इनका कोई मन्त्र मैं नहीं जानता, पर इनके नामकी दोनोंके नामकी एक साथ पाँच मालाएँ जपता हूँ। गोरखपुरमें 'हरे राम मन्त्र' सीखा। समर्थगुरु रामदास स्वामीने सबके लिये यह मन्त्र घोषित किया है। इस मन्त्रके उच्चारणका मुझे कुछ ऐसा अभ्यास हो गया है कि कोई दूसरा मन्त्र जपते-जपते बीचमें ही इसका उच्चारण होने लगता है। 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्रके उच्चारणसे बड़ी पवित्रता और शान्ति प्राप्त होती है। जिज्ञासा यह है कि इन तीनोंका जप करता रहूँ या और सब छोड़कर केवल 'ॐ नमः शिवाय' का जप करूँ ? अभी ये सब नाम और मन्त्र और नाममात्रको गायत्री मन्त्रका भी जप करता हूँ।

परसो जिस दिन आपको पत्र लिखा, उस दिन सायंकाल जो घटना हुई, वह लिखना आवश्यक है। सायं सन्ध्या, रामरक्षापाठ और 'ॐ नमः शिवाय' का जप करके मैं 'प्रारब्ध' वश बाहर चला। बाहर चलनेमें ऐसी पापप्रवृत्ति भी थी, जो भगवन्नामसे अपना उद्धार चाहती थी। इस तरह चला। एक मंजिलसे नीचे उतरा। दूसरी सीढ़ीकी पहली ही पैड़ीपर श्रीभाईजी मानो रास्ता छेककर खड़े थे। इस तरह एक बार पहले भी भास हुआ था। मैंने उनको पहचाना, प्रणाम किया, पर चलनेका वेग रुका नहीं और मैं आगे बढ़ा। एक स्थानमें अपनी इस दशाको सोचता बैठा था, तब श्रीअरविन्द पीठ पीछेसे मस्तकमें घुस बैठे। उन्होंने पूछा— यहाँ क्या करते हो ?

मैंने कहा— आप बतलाइये क्या करूँ ?

उन्होंने कहा— जाओ, वहाँ सीढ़ीपर भाईजी खड़े हैं, उनके चरणोंपर अपना मस्तक रखो, उनसे क्षमा माँगो और उन्हें अपने साथ ऊपर ले जाओ।

भाईजी, जहाँ आप खड़े थे, वहाँ बदबू आ रही थी। मेरे लिये आपको नरकमें उतरना पड़ता है, यही बात समझमें आयी। हे हृद्देशवासी ईश्वर ! तुम सदा जागते रहो, जिससे फिर भाईजीको नरकमें मेरे उद्धारके लिये बार-बार न आना पड़े, ऐसा पाप मुझसे न हो। भाईजी, मेरे लिये आप नरकमें उतरते हैं। मैं कितना अधम हूँ !!!

मैं लौटा, आपके चरणोंपर मस्तक रखा, आपसे क्षमा माँगी और आपसे प्रार्थना करके आपको ऊपर अपने बैठनेके स्थानमें ले गया, जहाँ देवता विराजते हैं, जहाँ पवित्रता रहती है। उसके बाद अब आपसे पूछता हूँ— आप मेरे साथ हैं न ? मुझे आप क्षमा करके मुझे दैवी प्रकृति दिलावेंगे न ? अब ऐसा तो नहीं होगा कि पापके पथ चलता रहूँ और आपको कष्ट देता रहूँ ? नहीं, आपका संकल्प मुझे निश्चय ही बचायेगा।

भवदीय
लक्ष्मण

■

श्रीवेणीशंकरजी शर्मा

कृतज्ञ अन्तर

श्रीभाईजी कितने बड़े विद्वान, कितने बड़े भक्त एवं कितने बड़े आस्तिक थे, यह उनके विश्व विख्यात 'कल्याण' पत्रिकाके माध्यमसे सभी लोगोंको विदित है। 'कल्याण' पत्रिकाके साधारण अंकों एवं विशेषांकोंके जरिये एवं विपुल बोधगम्य पुस्तकोंके रूपमें आपने त्रि-तापसे संतप्त एवं संत्रस्त मानव-जातिको उपनिषदों एवं पुराणोंका जो साहित्य और आध्यात्मिकता एवं आस्तिकताका जो प्रसाद दिया है, उसके लिये धार्मिक जगत उनका चिर-कृतज्ञ रहेगा, किन्तु श्रीभाईजीके द्वारा जो कार्य हुआ, उसके लिये क्या कभी किसीसे उन्होंने कृतज्ञताकी आशा की ? मेरा दृढ़ विश्वास है कि निःस्वार्थ एवं निष्काम सेवा-परायण श्रीभाईजी, जो प्रसिद्धि एवं विज्ञापनसे कोसों दूर रहते थे, कभी भी किसीसे अपनी सेवाओंके लिये कृतज्ञताकी अपेक्षा नहीं करते थे। यह उनके व्यक्तित्वका एक अनुकरणीय पक्ष है। उनके व्यक्तित्वका एक अन्य पक्ष

और भी अधिक मधुर एवं आदर्श है। यदि किसीके द्वारा श्रीभाईजीके प्रति कभी भूले-भटके अकस्मात् कोई सेवा बन गयी हो तो उसके लिये वे कोसों चलकर अपनी कृतज्ञता-ज्ञापन करना नहीं भूलते थे। ऐसी ही एक छोटी-सी घटना आज मुझे स्मरण हो रही है।

पूज्य गाँधीजीके निधनके बादकी बात है। उन दिनों उनकी हत्याके पीछे बड़े-बड़े षड्यन्त्रोंके होनेकी चर्चा यत्र-तत्र-सर्वत्र होती रहती थी। इन षड्यन्त्रोंमें बहुतसे निरीह एवं निरपराधी लोगोंके नाम भी घसीटे जा रहे थे। उस काली 'नामावली' में 'हितैषी' कहलाने वाले कुछ मित्रोंने श्रीभाईजीका नाम भी जोड़ दिया था। ऐसा सुननेमें आया कि तत्कालीन पुलिस और सरकारने भी जी-तोड़कर परिश्रम किया, किन्तु वे किसी भी प्रकार श्रीभाईजीको गाँधीजीकी हत्याके दुष्कर्मसे संश्लिष्ट नहीं कर सके। इसके बाद भी श्रीभाईजीके सम्बन्धमें कुछ उलटी-सीधी बातें कहनेसे लोगोंको कौन रोक सकता था? ऐसे छिद्रान्वेषी लोग श्रीभाईजीको दोष-मुक्त नहीं मान रहे थे। जब सरकारी और गैरसरकारी प्रयत्नोंके द्वारा श्रीभाईजीको दोषी सिद्ध नहीं किया जा सका तो भाईजीके साथ-साथ गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित धार्मिक साहित्य और उनके द्वारा प्रचारित धर्म-भावनाको ही दोषी करार दिये जानेका प्रयास होने लगा। ऐसे प्रयास-परायण लोगोंने श्रीभाईजीको दण्डित करनेके लिये उनके हाथसे गीताप्रेसको छीन लेने, अर्थात् गीताप्रेसको हस्तान्तरित करनेकी एक योजना बनायी।

योजना क्या थी और उसके पीछे कौन-कौन लोग थे, न उन बातोंको मैं यहाँ लिखना चाहता हूँ और न वे सारी बातें स्मरण ही हैं। इस समय केवल इतना-सा ही स्मरण है कि एक योजना थी, जिसमें गीताप्रेस एवं 'कल्याण' का संचालन श्रीभाईजीके हाथोंसे निकालकर किसी दूसरे व्यक्तिके हाथमें सुपुर्द करनेकी बात थी। आठ-दस मित्रोंकी एक प्रारम्भिक गोष्ठी बुलायी गयी। उस मीटिंगमें इससे सम्बन्धित चर्चा करनेके बाद कोई ठोस कदम उठानेकी योजना थी। उस प्रारम्भिक गोष्ठीमें मैं भी निमन्त्रित किया गया था। आशा तो यह थी कि एकमतसे वह योजना वहाँ स्वीकृत कर ली जाती, किन्तु सारी बातें सुनकर मेरी आत्मा विद्रोह कर उठी। जहाँ तक मुझे स्मरण है, गोष्ठीके आयोजनकर्ताओंके तर्क देशके तत्कालीन क्षुब्ध वातावरण एवं समाजकी अशान्त स्थितिको ध्यान रखते हुए अकाट्य थे, किन्तु मैंने सारी स्कीमका भयंकर विरोध किया। दैववशात् दूसरे एक मित्रने मेरा साथ दिया और वह स्कीम खटाईमें पड़ गयी। बात गयी-आयी हो गयी और मैं भी एक प्रकारसे उसे भूल गया।

उसके चार-पाँच महीनेके बादकी बात है। मैं आफिसमें सबेरे-सबेरे बैठा हुआ अपने दैनिक कार्यमें व्यस्त था कि श्रीभाईजी मेरे एक मित्र मुवक्किलके साथ पधारे। मैं अपने काममें लगा हुआ था, अतः वे एक ओर बैठ गये। तबतक श्रीभाईजीसे मेरा कोई परिचय नहीं था। उनको किनारे बैठे देखकर मैंने सोचा कि यह कार्यकर्ताका कोई साथी होगा। मैं श्रीभाईजीको श्रीभाईजी समझता भी तो कैसे? न कोई ऊपरी लक्षण, न कोई दिखावटी चाक्चक्य था, शरीरपर थी एक मोटी-सी धोती और एक मोटा-सा कुरता।

जब अपने हाथके कामसे निपटकर मैं उनकी ओर मुखातिब हुआ, तब मेरे कार्यकर्ता मित्रने उनका परिचय दिया। अब तो मुझे उनको उतनी देरतक बैठाये रखनेके कारण कुछ आत्मग्लानि भी हुई, क्यों कि उनके नाम और कार्योंसे परिचित तो मैं था ही। मैंने उनसे

क्षमायाचना की, किन्तु उन्होंने स्मित हास्यके साथ उस ओर बिना ध्यान दिये ही अपनी बात कहनी शुरू कर दी— मैं तो आपके प्रति कृतज्ञता अर्पण करनेके उद्देश्यसे उपस्थित हुआ हूँ। आपने मेरी प्राण-रक्षा की, इसके लिये मैं हृदयसे आभारी हूँ। मुझे दुःख है कि मैं इसके पहले आपके पास न आ सका।

सुनते ही मैं तो हक्का-बक्का-सा उनके मुँहकी ओर देखने लगा। कैसी प्राणरक्षा, किसकी प्राण रक्षा, किस समय प्राणरक्षा, कुछ समझमें नहीं आ रहा था। तभी उन्होंने उस मीटिंग वाली घटनाका स्मरण दिलाते हुए कहा— शर्माजी, आप नहीं जानते कि उस मीटिंगमें आपने जो कुछ किया, वह मेरी प्राणरक्षासे कहीं अधिक था। यह सच्ची बात है कि कहानीके तोतेकी तरह मेरी आत्मा गीताप्रेसमें बसती है। गीताप्रेसको यदि मुझसे अलग किया जाता तो यह हनुमानप्रसाद पोद्दार नामका व्यक्ति आपके सामने उपस्थित नहीं होता। मैं बहुत दिनोंसे आपसे स्वयं मिलकर अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना चाहता था, इसीलिये पत्र भी नहीं दिया। सोचा कि स्वयं उपस्थित होऊँगा, किन्तु प्रेसके झंझटोंके कारण इतने दिनों बाद अवसर निकाल पाया हूँ। विश्वास कीजिये, केवल इसी कामके लिये मैं आज कलकत्ता आया हूँ।

मैं उनकी बातें सुनता जा रहा था और उनके मुखकी ओर एकटक देखता जा रहा था। मैंने ऐसा किया ही क्या था? आत्माकी पुकारके कारण हो गयी थी एक छोटी-सी अभिव्यक्ति, वह भी अकस्मात् बिना किसी पूर्व योजनाके और बिना किसी परिणामकी आशाके, किन्तु परमात्माकी दयासे उसका फल अच्छा हुआ। उसमें मेरा अपना ऐसा क्या योगदान था, जिसके लिये यह महानात्मा इतनी कृतज्ञता व्यक्त कर रहा है।

इस कार्यके पीछे उनकी महान आत्माके दर्शन हुए। उस समय मैंने उनसे क्या कहा, अब याद नहीं। केवल इतना याद है कि मैंने भाव-विभोर होकर उनके हाथ पकड़ लिये थे और वे मेरे छातीसे चिपके हुए थे। ■

श्रीकृष्णगोपालजी माथुर

तीर्थयात्रा ट्रेन उज्जैनमें

प्रातःकालका समय। स्टेशनपर कड़कड़ाती शीतमें लोगोंकी भीड़ बड़ी उत्सुकताके साथ प्रतीक्षा कर रही थी। 'कल्याण' एवं गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तकोंके कारण जिनके प्रति हृदय अपार श्रद्धासे भरा था, उन महामानवका स्वागत करनेके लिये सबके हृदय प्रफुल्लित हो रहे थे। अचानक गाड़ीकी सीटी सुनायी पड़ी और ढोलक-मजीरे खड़क उठे। हरिकीर्तनकी ऊँची ध्वनिसे स्टेशन और दूर-दूरका वातावरण गूँज उठा।

गाड़ी रुकते ही भीड़ पुष्पमालाएँ लेकर भाईजीके डिब्बेकी ओर दौड़ पड़ीं। पूज्य भाईजीने उतरते ही हाथ जोड़कर सबका स्वागत किया। उपस्थित जन-समुदायने देखा— भाईजी साक्षात् प्रेमावतार ही हैं। चारों ओरसे पुष्प वर्षा होने लगी तथा लोग माला पहनानेके लिये आगे-आगे

आने लगे। श्रीभाईजी सबको मना कर रहे थे, पर श्रद्धाके प्रवाहको रोक सकना सम्भव नहीं था। ऐसा लगता था कि श्रीभाईजी पुष्पमालाओंमें आवृत्त हो गये हों।

वहीं प्लेटफार्मपर माइकपर परम आदरणीय श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीद्वारा प्रातःकालीन ईश-प्रार्थना एवं कुछ सुन्दर पदोंका गान हुआ। चारों ओर भक्तिका प्रवाह फैल गया। लोगोंको इस भगवद्भाव-वर्षाके साथ ही ज्ञान मिला कि प्रातःकाल भगवानकी प्रार्थना करना मनुष्यका पहला मुख्य कर्तव्य है।

आदरणीय भाईजीसे मैंने पूछा— भाईजी, अब क्या प्रोग्राम है ?

भाईजीने गम्भीर भावसे उत्तर दिया— पहले तो मुझे अपने 'आफिस'का काम निपटाना है।

इस उत्तरसे ध्वनित होता था कि इस बोझको हलका करनेके बाद ही यहाँके कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होना है। 'कल्याण' जो देश-विदेशकी जनतामें इतना प्रिय एवं प्रसिद्ध हो गया है, उसके पीछे भाईजीकी यही साधना, लगन, रुचि, कर्तव्य-भावना, त्याग और उसे प्राथमिकता देनेकी वृत्ति थी। अवन्तिका जैसे पुरातन पुण्यक्षेत्रमें आकर यहाँके प्रसिद्ध देवविग्रहोंका दर्शन, क्षिप्रास्नान एवं प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थलोंको देखकर कृतार्थ होना है, परंतु ये सब बादमें, पहले 'कल्याण'के कामकी चिन्ता!

जब भाईजी उत्सवमें पधारे, तब दोनों ओर लोगोंकी कतारोंके बीच चलते हुए उनके सिरका टोपा खिसकते-खिसकते नीचे गिर गया। भाईजी स्मितपूर्वक सबको हाथ जोड़ प्रणाम करते हुए चल रहे थे, उन्हें टोपेकी सुधि ही नहीं रही। टोपेको नीचे गिरा देख एक सज्जनने उसको उठा लिया और धूल झाड़कर भाईजीके हाथमें उसे थमा दिया, पर भाईजीको न आश्चर्य था, न ज्ञान था अपनी असावधानीका। इस सहज सरलताको देखकर सब लोगोंके मुखपर हँसी फूट पड़ी।

कुछ सज्जनोंने भाईजीसे निवेदन किया कि सबके लिये दूधका प्रबन्ध है, स्वीकार करें। भाईजीने पीयूष-सनी वाणीमें उस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया, किंतु लोग बार-बार आग्रह करते हुए बोले— हमलोग तथा दुग्धादि सभी भगवानके हैं, फिर अंगीकार करनेमें क्या बाधा है ?

भाईजी मुस्कुराये और बोले— आपका कहना सत्य है, किंतु लौकिक व्यवहारमें ऐसा उचित नहीं। हमारे पास सभी साधन मौजूद हैं।

सर्वप्रिय भाईजीने यह अस्वीकार कुछ ऐसी नम्रता भरी मुद्रामें किया कि सभी गद्गद हो गये और सबने उनकी बात मान ली।

श्रीभाईजीके आदेशानुसार किरायेकी बसोंका प्रबन्ध किया गया और उनसे सभी यात्री क्षिप्रास्नान तथा देवदर्शनको गये। वापस आ जानेपर सब बसोंका किराया चुका दिया गया, किंतु थोड़ी देर बाद एक सज्जनने आकर दुबारा किराया माँगा— भूलसे नहीं, जान-बूझकर और भाईजीके कहनेसे उन्हें दूसरी बार किराया दे दिया गया। यह बात कुछ यात्री जान गये, वे आपसमें कानाफूसी करने लगे। उज्जैनके लोगोंने बताया कि ये महाशय तो इसी प्रकारके कर्म किया करते हैं। यह चर्चा मानव-मित्र भाईजीके कानोंतक पहुँची। उन्होंने तत्काल सबको चुप कर दिया और सबको समझाया कि इस विषयकी जरा भी चर्चा न की जाय। भाईजीकी

अनुमतिसे यह बात वहीं ठंडी पड़ गयी, भुला दी गयी। जानकार जान गये कि भाईजी कितने उदार हैं, अपनी हानि सहकर और दूसरेकी बेइमानी देखकर भी वे उसकी इज्जत-आबरूपर जरा भी आँच आने नहीं देना चाहते थे। श्रीभाईजीकी ऐसी शालीनता देखकर जन-समुदाय दंग रह गया और भाईजीके इस व्यवहारकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा।

पीछे महाकाल प्रांगण, पटनीबाजार, माधवनगर, धर्मशाला, महिला-समाज, गोशाला-गोष्ठीमें श्रीभाईजीके जो प्रवचन-भाषण हुए, उनसे उन्होंने हजारों लोगोंके दिलोंमें ऐसा प्रभाव जमाया कि आज भी उनकी चर्चा होती रहती है। वे प्रवचन-भाषण इतिहासकी एक नवीन उज्ज्वल कड़ी बन गये हैं। ■

श्रीअम्बिकानाथ सिंह राय

अद्‌भुत अतिथि-सेवी

बहुत दिनोंसे पूज्य भाईजीके साक्षात्कारकी अभिलाषा थी, किन्तु गृहस्थीके झंझटोंसे समय नहीं निकल पाता था। 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागके भाई श्रीरामलालजीसे मेरा घनिष्ठ परिचय था। उनके अनुरोध और आन्तरिक प्रेरणासे १९४५ में मैं पूज्य भाईजीके दर्शनार्थ गोरखपुर जा पहुँचा। श्रीरामलालजीके निवासस्थान 'आनन्द-सदन'में ठहरा। दूसरे दिन श्रीरामलालजीके साथ ही पूज्य भाईजीके दर्शनार्थ गीतावाटिका गया। वहाँ मुझे श्रीभाईजीके दर्शन हुए। बड़ी देरतक आध्यात्मिक चर्चा होती रही। जब मैंने विदा माँगी, तब बोले— यहाँ अभी आपको दो दिन रहना है। यहीं गीतावाटिकामें रहिये।

इसके बाद तुरन्त ही श्रीरामलालजीसे मेरा सामान वहाँ मँगा लेनेको कहा। मैं इस प्रकार गीतावाटिकामें ही टिक गया। उसी सायंकाल मैंने श्रीरामलालजीके साथ गोरखनाथ-मन्दिरके दर्शन तथा महन्त श्रीदिग्विजयनाथजीसे मिलने जानेकी अनुमति पूज्य भाईजीसे माँगी। श्रीभाईजीने तुरन्त अपनी गाड़ी मँगाकर मुझे दी और कहा— इससे ही जहाँ जाना हो, जाइये।

मैं भाई श्रीरामलालजीके साथ गोरखनाथ-मठ गया। वहाँ कुछ देर महन्त श्रीदिग्विजयनाथजीसे बातें की। लौटते समय मोटरका पिछला दरवाजा, जो कि गलतीसे खुला रह गया था, गोरखनाथ-मन्दिरके निर्माणाधीन प्रवेश-द्वारसे टकरा गया। इससे गाड़ी बुरी तरहसे क्षतिग्रस्त हो गयी। मुझे इसका बड़ा दुःख हुआ। मैंने उस गाड़ीको सीधे लखनऊ ले जाने और ठीक करा लेनेके बाद ही श्रीभाईजीके पास ले जानेका निश्चय किया, परंतु श्रीरामलालजीने मना किया और श्रीभाईजीके अप्रसन्न हो जानेका भय दिखाया। इसलिये गीतावाटिका गया और श्रीभाईजीको बतलाकर लखनऊ गाड़ी साथ ले जानेकी अनुमति माँगी। श्रीभाईजी विनीत स्वरमें बोले— भगवानकी बड़ी दया है, जो आपमेंसे किसीको किसी प्रकारकी चोट नहीं आयी। मुझे इसका हार्दिक दुःख है कि मेरी एक छोटी-सी वस्तुसे आपको इतना मानसिक कष्ट हो गया। इससे अतिथिरूपमें आपकी सेवामें मेरी तरफसे त्रुटि हो गयी। मैं स्वयं इसका

प्रायश्चित करूँगा।

जब भी श्रीभाईजीकी उस मुखमुद्राका स्मरण करता हूँ तो हृदय भर आता है। ■

वैद्य पं. श्रीभैरवानन्दजी 'व्यापक' रामायणी

सरल सुभाव छुआ छल नाहीं

श्रीपोद्दारजीके प्रथम साक्षात्कारका सौभाग्य मुझे प्रयागके कुम्भ मेलेमें प्राप्त हुआ था। वे भगवन्नामस्मरणके अनन्य प्रेमी थे। इस बातके पूर्ण साक्षी तो वे ही सुकृतीजन हैं, जो दिन-रात उनके सम्पर्कमें रहे हैं, किन्तु मुझे लिखे गये उनके एक पत्रकी प्रतिलिपि यहाँ दे रहा हूँ। उसे पढ़कर पाठक महानुभाओंको उनकी ब्रह्मण्यता, सत्यता, निरभिमानता, सरलता तथा भगवन्नामानुरागका एक साथ ही परिचय प्राप्त हो जायेगा।

सम्मान्य श्रीशर्माजी,

सादर प्रणाम। शरीर शिथिल रहता है। कामकाजमें मन ही नहीं लगता। नदी-तटके सूखे पेड़की तरह स्थिति है। जरा-सा पानीका बहाव आया कि समाप्त। आप मानसके भक्त, अनन्य रामभक्त हैं। आपके चरणोंमें विनीत करबद्ध प्रार्थना है कि ऐसा आशीर्वाद दें, जिससे जीवनके शेष समयका प्रत्येक क्षण केवल भगवन्नाम-स्मरणमें ही बीते। रामसे भी यही विनय है—

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँति। सब तजि भजन करौं दिन राती।।

दीन-हीन
हनुमान

मेरी जानकारीमें तो श्रीपोद्दारजीने अपने करकमलोंसे ऊपर लिखी पंक्तियोंमें सम्पूर्ण शास्त्रोंका सारभूत सिद्धान्त, मानव-जीवनका एकमात्र कर्तव्य व्यक्त कर दिया। इस कलिकालमें इस प्रकार प्रत्येक क्षणको भगवन्नामस्मरणमें ही व्यतीत करनेवाले कितने सुकृति हैं?

इसके पश्चात् एक पत्रमें उन्होंने एक स्थानपर लिखा था— मेरा स्वास्थ्य साधारण चल रहा है, पर अब तो क्षयकी ओर ही जा रहा है। नदी-किनारेका खोखला पेड़ कभी भी एक झोंकेमें गिर जा सकता है। इधर सारे सार्वजनिक कार्योंसे पृथक् होकर जीवनके शेष क्षण एकान्तमें बितानेका मन हो रहा है। कई संस्थाओंसे सम्बन्ध-त्याग भी कर दिया है। गीताप्रेससे तो एक प्रकारका अभिन्न सम्बन्ध-सा है, तथापि इससे भी पृथक् होनेकी चेष्टा कर रहा हूँ।

हृदयकी ऐसी सच्ची भावनाको यथार्थ रूपसे वही प्रकट कर सकता है, जिसका हृदय सरल हो—

राम कहा सब कौसिक पाहीं। सरल सुभाव छुअत छल नाहीं।। ■

श्रीशिवशंकरजी आप्टे

अनुपम पथ-प्रदर्शक

श्रीभाईजीके साथ मेरा परिचय और सम्बन्ध 'विश्व हिन्दू परिषद्'की स्थापनाके निमित्त हुआ। परिषद्के ध्येय एवं कार्यके विषयमें श्रीभाईजीका मार्ग-दर्शन एवं समर्थन प्राप्त करनेके लिये २८ दिसम्बर सन् १९६५ को गीतावाटिकामें मैंने उनका प्रथम दर्शन किया। विशाल प्रतिष्ठानके एक छोटे-से कमरेमें चारपाईके संन्निकट प्रकाशित ग्रन्थ-पुस्तिकाएँ, पत्र-पत्रिकाएँ और प्रकाशनार्थ हस्तलिखित एवं टंकित कागजोंके जंगलमें– नहीं, 'वाङ्मय उद्यान'में उद्दीप्त-सा एक योगी ही प्रसाद देनेके लिये बैठा हो, ऐसा मुझे साक्षात्कार हुआ।

श्रीभाईजीने मेरा निवेदन साद्यन्त सुना, कुछ प्रश्न पूछे, कुछ सूचनाएँ दीं, कुछ अन्य विषय-विचार सुझाये, अन्तमें बहुत ही प्रसन्नतासे उन्होंने कहा– परिषद्का निर्माण अत्यन्त सामायिक है। इतने लम्बे कालतक हमलोगोंने अपने तत्त्व-विचारोंके बीज बोये, वे निष्फल नहीं गये, उनका ही यह पौधा है। यह विशाल वृक्ष बने, इसकी शाखाएँ अपने सनातन हिन्दू समाजके लिये सघन छाया प्रस्तुत करें, हमारे समाज, धर्म, संस्कृतियोंकी सदियोंसे कुण्ठित प्रगतिको विश्वमें पुनः एक बार प्रभावी बनानेमें यह परिषद साधन-सम्पन्न समर्थ माध्यम बने।

ऐसा आशीर्वाद देकर श्रीभाईजी परिषदके आजीवन सदस्य एवं संस्थापक- न्यासी बने। परिषदने श्रीभाईजीको उपाध्यक्ष चुना, तबसे अन्तकाल परिषदके कार्यका निरीक्षण और यथावश्यक मार्ग-दर्शन करते रहे।

एक दिन भाव-समाधि-स्थितिकी अवस्थामें श्रीभाईजी थे और मैं वहाँ पहुँचा। उनकी समाधि भंग करना मुझे उचित नहीं लगा। परंतु दरस-परस करके ही मैं जाऊँगा, ऐसा निश्चय करके मैं रुका रहा। दो दिनके पश्चात् श्रीभाईजीने मुझे बुलाया और उनकी जिस प्रसन्न मुद्राका दर्शन हुआ, उसका वर्णन शब्दोंमें करना कठिन है। ■

श्रीलखपतरायजी

विलक्षण सतर्कता

पूज्य भाईजीके दर्शनका दुर्लभ सौभाग्य मुझे पहली बार सन् १९५६ के ग्रीष्ममें प्राप्त हुआ। सचमुच मेरे जीवनका यह एक महिमामय दिन था, जब मैंने अपनी श्रद्धाका निवेदन उन महात्माके श्रीचरणोंमें किया। मैं उसी रातको लौट गया। सन् १९६० के प्रारम्भमें मैं फिर गोरखपुर आया। इस बार बिल्कुल अकेले, क्यों कि पत्नीने अपनी इहलीला संवरण कर ली थी। उस समय श्रीभाईजीके परामर्शसे मैंने यह निर्णय लिया कि मुझे गारेखपुरमें ही स्थायी रूपसे रहना है और कुछ समय पश्चात् मैं यहाँ आकर रहने लगा।

सेवा-निवृत्तिसे पूर्व ही मेरे मनमें यह बात थी कि मैं किसी परोपकारके कार्यमें कुछ दान करूँ

किन्तु उस समय यह विचार कार्यान्वित न हो सका। सन् १९६० में जब भाईजीके सत्संगका लाभ उठानेके लिये ऋषिकेशमें उनके साथ ही रहा, तब श्रीभाईजीसे समय लेकर अपने मनकी बात निष्कपट रूपसे मैंने उनको निवेदित कर दी। मेरी बात सुनकर उन्होंने मेरे प्रस्तावको स्वीकार करनेमें अपनी असमर्थता प्रकट की। साथ ही मेरी भावनाओंको ठेस न लगे, इसलिये एक अनिश्चयात्मक उत्तर देकर बात समाप्त कर दी। मैं निराश लौटा और मुझे लगा कि मेरे पैरोंके नीचेकी धरती खिसक गयी। मुझे अन्यत्र जाना था। अतः कुछ दिनों बाद मैं स्वर्गाश्रमसे बिदा हुआ। बादमें श्रीराधाष्टमीके उत्सवपर मैं पुनः गोरखपुर आया। मैंने श्रीभाईजीका दर्शन किया और अपनी प्रार्थना पुनः दोहरायी। इस बार भी वे अपनी ही बात दोहराते रहे, किन्तु मैं निराश नहीं हुआ। पुनः अपनी प्रार्थनाका स्वर तीव्र किया। इस बार वे कुछ अनुकूल लगे और अन्ततः सन् १९६१ के प्रारम्भमें उन्होंने मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस प्रकार परीक्षाकी कसौटीपर पूरी तरह कसनेके लिये उन्होंने लगभग एक वर्षका समय लिया। संतोंके सहज स्वभावको; उनकी कोमल चित्तवृत्तिको जानते हुए मुझे विश्वास था कि मेरी प्रार्थना व्यर्थ नहीं जायगी, किन्तु इस व्यवहारसे उन्होंने न केवल मेरी परीक्षा ली, बल्कि इस कथनकी सत्यता भी सिद्ध कर दी कि संतोंका चित्त *'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि'* होता है। इस घटनासे मुझे यह स्पष्ट अनुभव हुआ कि श्रीभाईजी परोपकारके लिये भी किसीके धनको स्वीकार करनेमें कितने सतर्क थे। वे धन देनेवाले व्यक्तिकी पूरी परीक्षा कर लेनेके बाद ही उसके धनका परोपकारमें उपयोग करते थे। ■

डा. श्रीगोपालकृष्णजी सराफ, (नेत्र-विशेषज्ञ)

पितृतुल्य स्नेह

श्रीभाईजीका सरल स्वभाव, उनकी निश्छल मुसकान, उनका स्नेहभरा मन कभी भुलाये नहीं भूलता। मेरे ऊपर उनकी जितनी कृपा रही है, उसका उल्लेख सम्भव नहीं है। यह मेरा परम सौभाग्य था कि मुझे सदा उनका वात्सल्य मिलता रहा, यद्यपि मैं कभी भी उनकी कोई सेवा नहीं कर सका।

जबतक मैं गोरखपुर रहा, उनसे सामाजिक सेवाकी प्रेरणा मिलती रही। गोरखपुरके 'कुष्ठ-सेवाश्रम'में अवैतनिक डाक्टर होकर मैंने देखा कि कुष्ठ-रोगी कम्बलोंके अभावमें जाड़ेकी रातमें ठिठुरते हैं। वहाँके व्यवस्थापक श्रीत्रिपाठीजीने पूज्य भाईजीको इसकी सूचना दी। हम चाहते थे कि कहींसे चन्दा इकट्ठा करके कुछ कम्बल खरीदे जायँ। आश्चर्य कि उसी रात सब रोगियोंके लिये पर्याप्त कम्बल पहुँच गये। कम्बल देनेवालेने अपना नाम नहीं बताया। उस आश्रमके प्रति भाईजीकी सेवाएँ अप्रतिम हैं। भाईजीके दान सदा निःस्वार्थ और गुप्त ही होते थे।

एक दिन भाईजीने अपने किसी मित्रको मेरे पास नेत्र-परीक्षाके लिये भेजा। जब मैंने फीस लेनेसे मना किया, तब उन्होंने कहा— भैया गोपाल, तुम इनकी फीस ले लो और इसके बदलेमें एक गरीब व्यक्तिकी आँख मुफ्त देख लेना।

उन्होंने ही मुझे गरीबोंकी सेवा करना सिखाया।

सन् १९५५ में गोरखपुरमें मेरे चेम्बरका उद्घाटन करते समय भाईजीने यही आदेश दिया— इस चेम्बरमें गरीबोंका भला करो।

मुझे खुशी है कि मैंने उनकी बात मानी और उससे मुझे कभी कोई क्षति नहीं हुई।

उनकी आँखमें बहुत वर्षोंसे मोतियाबिन्द था। मैंने कई बार उनसे प्रार्थना की कि वे ऑपरेशन करवा लें। उन्हें इसके लिये कभी अवकाश नहीं मिला। बादमें उनका स्वास्थ्य गिरता गया। मेरे बहुत हठ करनेपर आखिर उन्होंने यह निश्चय किया कि गोरखपुरमें 'नेत्र-दान-यज्ञ' किया जाय और उस समय मैं उनकी आँखका ऑपरेशन भी कर दूँ। इसके लिये ६ फरवरी १९७१ का दिन निश्चित हुआ। अचानक पूज्य भाईजीके हाथका लिखा १० जनवरीका पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि कैम्प होगा, किंतु वे अपनी आँखका ऑपरेशन नहीं करा सकेंगे, उनके पेटमें जो दर्द रहता है, वह इन दिनों बढ़ गया है।

मैंने कैम्पकी तारीख बदलकर २१ मार्च कर दी। उनके पेटका दर्द ठीक न होनेके कारण मैंने यह तारीख और भी आगे बढ़ायी। अकस्मात् २२ मार्चको पूज्य भाईजी उस महान प्रकाशपुञ्जमें लीन हो गये, जहाँ चर्म-चक्षुओंकी आवश्यकता ही नहीं रहती। ■

श्रीरियाज अहमद अन्सारी

आदमी नहीं, फरिश्ता

कुछ बयान करनेसे पहले यह बतलाना जरूरी है कि मेरा पूज्य श्रीभाईजीसे परिचय कैसे हुआ। बादशाह बाबरने अयोध्याके 'श्रीराम-जन्मभूमि-मन्दिर'को तोड़कर मस्जिद बनवा दी और उसका नाम 'बाबरी मस्जिद' रख दिया था। तबसे उस स्थानके लिये बराबर हिन्दुओं और मुसल्मानोंमें झगड़े व खून-खराबे होते रहे। सन् १९४९ में भी इस स्थानको वापस लेनेके लिये हिन्दुओंमें तहरीक शुरू हुई, जिसकी वजहसे न केवल अयोध्या, बल्कि पूरे मुल्ककी फिजा खराब होने लगी। ऐसा देखकर मैंने एक ईमानदार मुसल्मानकी हैसियतसे एक बयान अखबारोंमें दिया— इस्लाम किसी गैर-मुस्लिम धर्मके स्थानको तोड़कर मस्जिद बनानेकी इजाजत नहीं देता और बादशाह बाबरने अपने दौरे हुकूमतमें 'श्रीराम-जन्मभूमि-मन्दिर'को तोड़कर तथा मस्जिद बनवाकर कोई इस्लामी काम नहीं किया है, बल्कि बाबरकी इस हरकतने हिन्दुस्तानके हिन्दुओंके दिलोंमें इस्लाम और मुसल्मानोंसे नफरत पैदा कर दी है। इसलिये आजके हम मुसल्मानोंको चाहिये कि 'श्रीराम-जन्मभूमि-मन्दिर' श्रीरामको माननेवाले हिन्दुओंको वापस कर दें, ताकि यह नफरत हमेशाके लिये खत्म हो जाय।

इस सिलसिलेमें मैंने सरकारसे भी माँग की थी कि वे इस मन्दिरको हिन्दुओंको वापस दिलानेके लिये कोई ठोस कदम उठायें। मेरे इस बयानको अखबारोंमें पढ़कर श्रीभाईजीने मुझे बुलाया और मैं उनके निवास-स्थानपर जाकर उनसे मिला। कहनेको तो हमारी यह पहली मुलाकात थी, लेकिन श्रीभाईजीने मुझसे इस तरहकी बातें की, जैसे हम बहुत दिनोंसे एक-दूसरेको जानते रहे हों। उन्होंने बहुत सीधे-सादे प्यारभरे लफ्जोंमें मुझसे देरतक बातें कीं।

जब मैं वापस जानेको तैयार हुआ, तब श्रीभाईजी ही न केवल खड़े हो गये, बल्कि मुझे अपने आफिसके दरवाजेतक छोड़ने आये। जब मैं रिक्शेपर बैठ गया, तब श्रीभाईजीने अपने दोनों हाथोंको जोड़कर मुझे सलाम किया और मैंने भी अपने दोनों हाथोंको जोड़कर उनके सलामका जवाब दिया। अपनी जिंदगीमें पहली बार मैंने दोनों हाथोंको जोड़कर सलामका जवाब दिया था, इसलिये कि हम मुसल्मान लोग एक ही हाथ उठाकर सलामका जवाब देते हैं। भाईजीके इस मुलाकातका मुझपर बहुत असर पड़ा और मैंने सोचा कि इतना बड़ा इन्सान मुझ-जैसे नाचीज आदमीसे इस तरह पेश आया कि इनमें अपने बड़े होनेका कोई गुमानतक नहीं है। पूज्य श्रीभाईजीके बारेमें मेरे मनमें यह पहली राय कायम हुई।

श्रीराम-जन्मभूमि-मंदिरकी तहरीक जोर पकड़ती गयी, उसकी वजहसे श्रीभाईजीसे मेरी मुलाकात सलाह व मश्वराहके सिलसिलेमें बराबर होती रही। अयोध्याके रहनेवाले एक हिन्दू ब्रह्मचारी मुसल्मानोंके साथ हो गये और वे उत्तर प्रदेशके बड़े-बड़े शहरोंमें जाकर मुसल्मानोंके आम जलसेमें 'मस्जिद बाबरी' की हिमायत करते और मुसल्मानोंको तरह-तरहसे बहकाते और मेरे खिलाफ भी बहुत बोलते रहे। वे गोरखपुर भी आये और यहाँ उन्होंने मेरे खिलाफ और जोरदार शब्दोंमें मुसल्मानोंको बरगलाया। मुस्लिम अखबारात तो मेरे खिलाफ लिखते ही रहते थे। नतीजा यह हुआ कि पूरे उत्तर प्रदेश और खासकर गोरखपुरके मुसल्मान मेरे मुखालिफ हो गये। मेरे रिश्तेदार व खानदानके लोग भी मुझसे दूर रहने लगे और मुझे तरह-तरहकी तकलीफें मिलने लगीं। मेरे वालिद साहबने मौलवियोंके दबावमें आकर मुझे खुदसे अलग कर दिया। अब मेरे पास कारोबार करनेके लिये भी पूँजी नहीं थी। नौकरी आसानीसे नहीं मिलती, मैं बिल्कुल बेकार हो गया। हालाँ कि श्रीभाईजी बराबर मुझसे मुलाकातके दौरान कहते रहे— भाई साहब, मेरे लायक कोई सेवा हो तो बिना संकोच कहियेगा। मुझे अपना ही समझिये, मैं कोई गैर नहीं हूँ।

अफसोस, मैं बदनसीब श्रीभाईजीकी इन फैयाजाना बातोंका मतलब नहीं समझ सका और मेरे घर फाके होने लगे। मेरा शरीर कमजोर होने लगा और मेरी हालत बीमारकी-सी हो गयी। इस कारण मैं कई दिन श्रीभाईजीसे मिलने नहीं जा सका। इस दौरान मेरे यहाँ लगातार तीन दिनोंतक खाना नहीं बना। मेरी लड़की शहेदा, उन दिनों चार सालकी थी और मेरे दो बच्चोंसे छोटी थी, वह भूखसे रोने लगी। मेरे पास खानेके लिये कुछ नहीं था और न कोई पडोसी देने वाला था, इसी लिये कि मैं मौलवियोंके कहनेके अनुसार काफिर था, एक मस्जिदको मन्दिर कह रहा था। हालाँ कि मेरा कहना हिन्दुओंकी तरफदारी करना नहीं था, बल्कि इस्लामके कानूनके मुताबिक था, लेकिन आज सच्चा मुसल्मान वह माना जाता है, जो गायकी कुर्बानी करे, गैर-मुस्लिमोंको बुरा कहे, उन्हें गालियाँ दे तथा उनकी इबादतगाहोंको नुकसान पहुँचाये। मैं इस किस्सेको यहीं छोड देना चाहता हूँ, इसलिये कि एक-न-एक दिन हम सबको उस खुदाकी अदालतमें हाजिर होना ही है, जो सबको पैदा करता है, पोसता है और अपनी अदालतमें बुलाकर सबके कर्मोंके अनुसार फैसला करता है। मैं मुतमईन हूँ कि मेरा और मौलवियोंका मामला भी खुदाकी अदालतमें जरूर पेश होगा।

खैर मैं यह कह रहा था कि अपनी लड़की शहेदाकी हालत मुझसे देखी नहीं गयी और मेरी बरदास्तकी ताकत बिल्कुल खत्म हो गयी। मैने सारी मुसीबतोंसे नजात पानेके लिये

आत्महत्याका फैसला कर लिया। आनेवाली रातका वक्त इसके मुनासिब समझा। इस फैसलेसे मुझे एक सकून मिल गया और मैं इत्मीनानसे अपने बिस्तर पर लेट गया। दिनके लगभग दस बजे थे। किसीने दरवाजा खटखटाया। मैं उठकर बाहर आया तो देखा, सड़कपर रुकी हुई मोटरके नजदीक श्रीभाईजी खड़े हैं। मैंने उनसे अन्दर आनेकी गुजारिश की और वे अन्दर आकर कुर्सीपर बैठ गये। मैं उनके पास चारपाईपर बैठ गया, जिसपर थोड़ी देर पहले मैं लेटा हुआ था। भाईजीने मुस्कराते हुए मेरी मिजाजपुर्सी की और कहा— भाई साहब, आप तो बिमार-से लगते हैं।

जवाबमें मेरे मुँहसे सिर्फ 'जी' निकला, इसपर दूसरा सवाल भाईजीने किया— क्या तकलीफ है आपको? कौन-सी बीमारी है?

भला, मैं उनसे कैसे कहता कि भाईजी, भूखा रहते-रहते कमजोर हो गया हूँ। इधर तीन दिनोंसे पानीके सिवा मुझे कुछ खानेको नहीं मिला, इसलिये मेरी हालत ऐसी हो गयी है। मुझसे कुछ कहा नहीं गया, मैं खामोश रहा। मुझे चुप पाकर भाईजीने फिर बड़े तसल्ली-आमेज लफ्जोंमें कहना शुरू किया— भाई साहब, यह दुनिया दुःखकी जगह है। यहाँ सबको तकलीफ उठानी पड़ती है और सच्चे लोगोंपर तो और भी मुसीबत आती है, इसलिये कि भगवान उनकी परीक्षा लेते हैं।

भाईजीकी ये बातें मुझपर कोई खास असर नहीं कर रही थीं, क्यों कि आज रातको अपने प्रोग्रामपर अमल कर लेनेके बाद मुझे दुनियाकी सारी मुसीबतोंसे छुटकारा मिल जानेवाला था। तो फिर मुझे उनकी बातोंमें क्या लुफ्त मिलता? सिर्फ भाईजीके अदबमें मैंने एक फिकी-सी मुस्कुराहटके साथ गर्दन हिलाकर उनके ख्यालातकी ताईद की। बातें करते हुए एक बड़ा-सा लिफाफा मेरी तरफ बढ़ाते हुए उन्होंने फरमाया— भाई साहब! आपको इसकी जरूरत है, इसे रख लीजिये। इन्कार न कीजियेगा, नहीं तो मुझे बड़ा दुःख होगा।

मैंने लिफाफा अपने हाथमें लेते हुए पूछा— इसमें क्या है, भाईजी?

मैं समझ रहा था कि रुपयेके सिवा इस समय इसमें और क्या हो सकता है। भाईजीने फरमाया— थोड़े रुपये हैं, इस वक्त काम चलाइये। जल्दी ही मैं कारोबार करनेके लिये और पैसोंका भी इन्तजाम करनेकी चेष्टा करूँगा।

इतना सुनते ही मुझे ऐसा लगा, जैसे मेरी सारी कमजोरियाँ एकदम दूर हो गयीं। मैंने कहा— भाईजी, मैं आपके इन एहसानोंका बदला कैसे चुका सकूँगा?

भाईजीने कहा— भाई साहब! यह कैसा एहसान और कैसा बदला! आपको आराम मिल जाय, यही मैं चाहता हूँ।

भाईजी बोलते रहे और मैं सोच रहा था कि इनको कैसे मालूम हो गया कि मुझे रुपयोंकी जरूरत है। किसने जाकर कह दिया? मैं इसी विचारमें था कि भाईजीने फरमाया— भाई साहब, मेरी आपसे प्रार्थना है। अगर आप इजाजत दें तो मैं अर्ज करूँ।

मैंने कहा— हुक्म कीजिये। भाईजी, आपका हर हुक्म मेरे सर-आँखोंपर होगा।

पूज्य भाईजीने फरमाया— आपने आज रात अपनी जिंदगीके साथ जो करनेका निश्चय किया है, वह ठीक नहीं। जिंदगी खुदाकी दी हुई चीज है। इसे खत्म करनेका अधिकार भी उसीको है, आदमीको नहीं। आप इस इरादेको छोड़ दीजिये।

भाईजीके मुँहसे इतनी बातें सुनकर मेरी हैरतकी इन्तहा न रही। उस लमहा ऐसा लगा, जैसे मुझपर बिजली गिर पड़ी हो। मेरे बदनके सारे रोंगटे खड़े हो गये। मैं सोचने लगा कि अपने सिवा मैंने इस इरादेको किसीको भी बाखबर नहीं किया, फिर इन्हें कैसे मालूम हुआ ? जरूर इनमें कोई गैबी ताकत है। ऐसा खयाल आते ही मैं चारपाईसे उठकर खड़ा हो गया और बोला— भाईजी, आप इन्सान नहीं है, फरिश्ता हैं।

उन्होंने मुस्कुराते हुए फरमाया— मैं फरिश्ता नहीं हूँ।

मैंने कहा— तो फिर मेरे इस इरादेका आपको कैसे पता चला ?

उहोंने फरमाया— भाई साहब, दिलको दिलसे राहत होती है। आपके दिलमें जो बात आयी, वह मेरे दिलको ज्ञात हो गयी।

भाईजी इतना कहकर खुलकर हँस दिये। यह सब कुछ देखनेके बाद मुझमें भाईजीसे सजीद जवाब-सवाल करनेकी ताकत खत्म हो चुकी थी। मैं खामोश हो गया। अब भाईजीने उठते हुए कहा— मुझे आज्ञा दीजिये, फिर मुलाकात होगी।

जैसी आपकी मर्जी— कहते हुए मैं उनके साथ मोटरतक गया और उनको हाथ जोड़कर नमस्ते कहते हुए रुखसत किया और अन्दर आकर लिफाफा खोलकर देखा और गिनती की तो सौ-सौके बीस नोट, यानी दो हजार रुपये थे। इससे कुछ ही देर पहले मेरे पास दो रुपये नहीं थे और अब दो हजार रुपये थे। उस समय वे दो हजार मेरे लिये दो लाख नहीं, दो करोड़के बराबर थे। लगभग बीस दिनों बाद भाइजीने मुझे आठ हजार रुपये और दिये, तब मैंने उनसे अर्ज किया— भाईजी ! मैं ये रुपये आपको कैसे वापस करूँगा ?

उन्होंने फरमाया— भाई साहब, इन्हें वापस करनेकी जरूरत नहीं है। मैं कोई कर्ज नहीं दे रहा हूँ, आपकी सेवा कर रहा हूँ। इन रुपयोंसे आप कारोबार करके अपने बाल-बच्चोंकी परिवरिश कीजिये।

मेरा खानदानी पेशा हैंडलूमसे कपड़े बनवाना है। भाईजीके दिये हुए पैसोंका मैंने एक छोटा-सा मकान बनवाया और हैंडलूम लगाकर कारोबार शुरु कर दिया। मेरे परिवारकी जिंदगी आरामसे बसर होने लगी।

इस वाकियातसे मेरे मनमें भाईजीके लिये जो राय कायम हुई, वह यह थी कि वे आदमी नहीं, फरिश्ता हैं और सच भी है, सारी उम्र भाईजीने मुझ-जैसे नाचीजके साथ जिस प्यार और हमदर्दीका ही नहीं, सगे भाईका-सा सलूक किया, वह इस जमीनपर नहीं दीखता। जब भी मुझे तकलीफ होती, मैं उनके पास चला जाता और मेरी मदद किये बिना नहीं रहते। सिफ्त यह थी कि वे मुझे हमेशा देकर भी मुझे और मेरी इज्जतको ऊँचा रखते। 'फरिश्ता' भी ऐसा सलूक करता होगा, मुझे शक है। ■

श्रीओंकारमलजी पोद्दार

नवजीवनकी प्राप्ति

परमपूज्य श्रीभाईजीसे मेरा सम्पर्क संवत् १९८९ में हुआ और यह सम्पर्क उत्तरोत्तर दृढ़ होता रहा। उनका मुझपर बड़ा ही स्नेह था। उनके साक्षात्कार एवं पत्र-व्यवहार आदिसे जीवनमें सतत प्रेरणा मिलती रही।

संवत् २०११ वि. आषाढ़ शुक्ल, १३ सोमवारकी एक घटना बरबस आँखोंके सामने आ जाती है। हमलोग स्वर्गाश्रमसे ऋषिकेश जा रहे थे। गंगा पार करनेके लिये प्रातः दस बजे मोटर-बोटमें बैठे। स्त्री-बच्चों सहित हमलोग लगभग इक्कीस व्यक्ति थे। बोटके रवाना होते ही मेरे मनमें एक शंका उठी— कहीं मोटर-बोट बन्द हो जाय तो ?

भगवत्प्रेरणा, सचमुच गंगाकी बीच धारामें बोटका इंजिन बन्द हो गया। बोट-ड्राइवरने ब्रेक लगाया, पर ब्रेक भी निष्फल। बोट धारामें पड़कर भँवरकी तरफ चल पड़ा। अब डूबा, तब डूबा। सभी यात्री भगवानको, श्रीसेठजीको, श्रीभाईजीको– 'बचाओ-बचाओ' के आर्तनादसे पुकारने लगे। उसी समय परमपूज्य श्रीभाईजी गीताभवन संख्या दो से निकलकर बाहर आये और बोटकी यह दशा देखकर तीन बार जोर-जोरसे 'नारायण-नारायण-नारायण' पुकारा। अप्रत्याशित रूपसे बोटका बहना बंद होकर वहीं रुक गया। बोटको स्टार्ट करनेकी चेष्टा की गयी, पर वह स्टार्ट नहीं हुआ।

श्रीसेठजी एवं गीताभवनके सभी सत्संगी भाई-बहिन बोटके यात्रियोंके सुरक्षार्थ घाटपर उच्च स्वरसे भगवन्नाम संकीर्तन करने लगे। तेज धाराके कारण नाव भेजनेके सभी प्रयास निष्फल हो गये। अन्तमें ऋषिकेशसे एक खूब मोटा रस्सा लाकर एक विशाल पेड़में बाँधा गया। दूसरे सिरेपर एक नौका बाँधकर बोटकी तरफ छोड़ी गयी। नाव बोटपर कुछ दूरीपर लगी। सभी यात्रियोंको येन-केन-प्रकारेण नावपर सवार कराया गया।

भगवानकी मर्जी, यात्रियोंके सवार होते ही नावमें बँधा हुआ मोटा रस्सा भी पत्थरकी रगड़ खाकर कट गया और नाव गंगामें बह चली। अगाध जलराशि, तेज बहाव। कहीं कोई सहारा नहीं। दोनों किनारोंपर एकत्रित संत-महात्मा, सत्संगी एवं बन्धुगण तथा नावमें बैठे सभी यात्री उस करुणामयको आर्तस्वरसे पुकार रहे थे। बड़ा ही करुण दृश्य था। अन्ततोगत्वा जैसे-तैसे नाव किनारेपर लगी। जबतक नाव किनारे न लगी, सभीके प्राण कण्ठमें अटके रहे। हमलोग ढ़ाई बजे वापस गीताभवन पहुँचे। जब हमलोग श्रीभाईजीको प्रणाम करने गये, तब वे बड़ी ही आत्मीयतासे मिले और मुस्कुराते हुए बोले– आप लोगोंको बड़ा कष्ट उठाना पड़ा, पर भगवानने आपकी रक्षा की।

इस प्रकार श्रीभाईजीकी करुण पुकारसे भगवान नारायणने भँवरमें पड़े हुए बोटको बचाकर यात्रियोंकी प्राण रक्षा की। सचमुच श्रीभाईजीकी कृपासे ही हमलोगोंको नव-जीवनकी प्राप्ति हुई। ■

श्रीशिवशंकरजी रावल, (उज्जैन)

बापूसे वार्तालाप

बहुत पुरानी घटना है। जहाँतक मुझे स्मरण होता है, बात उस समयकी है, जब श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार महात्मा गाँधीजीसे मिलनेके लिये सत्याग्रह आश्रम, साबरमती गये थे। वहाँ उनका गाँधीजीसे हरिजनोद्धार विषयपर वार्तालाप हुआ था। लेखक भी उस प्रसंगपर वहाँ उपस्थित था। जितना स्मरण है, उसे संक्षेपमें लिख रहा हूँ। दोनों विभूतियोंके मध्य नीचे लिखे अनुसार विचारोंका आदान-प्रदान हुआ।

श्रीपोद्दारजी— बापू! हरिजनोंके प्रति किसी भी कालमें घृणा और अत्याचार नहीं हुए। हिन्दू समाज उनको सदा परिवारका अंग मानता आया है। आज भी परस्पर सम्बोधनतकमें आदर-भाव व्यक्त करते हैं। हिन्दू समाज वर्ण-व्यवस्था पर टिका है, अतः इसका विघटन हिन्दू समाजके लिये नाशकारी सिद्ध होगा।

बापू— मैं वर्ण-व्यवस्थाको मानता हूँ। आजतक मैंने हिन्दू धर्मके मूल सिद्धान्तोंका कभी उल्लंघन नहीं किया। प्रश्न छुआछूत और ऊँचनीचकी भावनाको मिटानेका है।

इस प्रश्नपर विचारोंका आदान-प्रदान होता रहा। अन्तमें बापूने कहा— आप ऐसा विचार कर लीजिये कि हिन्दुस्तानको स्वतन्त्र कराना है। इसमें सभीका सहयोग लेना है। जब मकानमें आग लगती है तो यह नहीं देखा जाता है कि इसे कौन बुझाता है। आप केवल फिलहाल यही मानकर चलिये, यद्यपि मैं तो सदाके लिये छुआछूतको हिन्दू जातिके लिये कलंक मानता हूँ।

श्रीपोद्दारजी उपरोक्त दलील सुनकर मुस्कुरा दिये और फिर खादीपर चर्चा आरंभ हो गयी। श्रीपोद्दारजीने चर्खा और खादीका हार्दिक समर्थन करते हुए उसके प्रचारमें पूर्ण सहयोग देनेका आश्वासन दिया। ■

डा. श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू, (एम.ए., डी. लिट्.)

दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ

यदि इस करोड़ोंकी जनसंख्यावाले भारत देशमें श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार एक सामान्य व्यक्ति होते तो उनको एक दिन भुला दिया जाना सम्भव होता, परंतु वे एक सामान्य व्यक्ति तो थे नहीं। उनके पाञ्चभौतिक कलेवरका आश्रय लेकर प्राचीन भारतकी आत्मा अवतरित हुई थी। इस बीसवीं शताब्दीमें भारत भूमि और भारतीय जीवनकी रक्षाके लिये दो ही महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुई— पहली, चरखे द्वारा ग्रामोन्नतिका महात्मा गाँधीका सुझाव और दूसरी, श्रीपोद्दारजीका गीताप्रेस द्वारा प्राचीन जीवन निर्माण साहित्यके सस्ते भाषान्तरका प्रचार। ■

श्रीकेशवराम एन. अयंगर

हिन्दूधर्मके प्रमुख आधार-स्तम्भ

मुझे कभी श्रीपोद्दारजीसे व्यक्तिगतरूपसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। सन् १९५७ में केवल कुछ पत्र-व्यवहार ही हुआ था और 'कल्याण कल्पतरु'के द्वारा उनसे हमारा सम्पर्क बना रहा, परंतु हम दक्षिणवालोंको निरन्तर यह आश्वासन मिलता रहता था कि हमारे देशके उत्तर भागमें भगवान श्रीरामचन्द्रजीका एक अंश विद्यमान है। जब कभी श्रीकाञ्चीकामकोटि-पीठके हमारे पूज्य आचार्यश्री उनके कार्यकी चर्चा करते, तब हमें उनकी मुखाकृतिपर संतोष एवं प्रसन्नताकी आभा दिखलायी पड़ती और हमलोग भी आनन्दित हो जाते।

न जाने किस विशेष हेतुसे सन् १९७१ में मेरे परमपूज्य गुरुदेव जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी महाराजने आदेश दिया कि अपने हिन्दूधर्मके लघुविश्वकोषकी रूपरेखाके सम्बन्धमें उनकी सम्मति एवं निर्देश प्राप्त करने हेतु श्रीपोद्दारजीकी सेवामें उसे प्रस्तुत करूँ। यह संग्रह मैंने श्रीपोद्दारजीकी सेवामें २० फरवरी १९७१ को भेज दिया था। मेरा विश्वास है कि वह सामग्री श्रीपोद्दारजीके हाथमें पहुँच गयी थी और उसको उनका आशीर्वाद प्राप्त हो गया था, परंतु अपने कार्यमें हम उनका बहुमूल्य मार्गदर्शन प्राप्त नहीं कर सके, मात्र इसी कारण कि वे अपने जीवनके अन्तिम दिवसोंमें अत्यन्त रुग्ण थे। अब तो इसी बातसे संतोष करना पड़ रहा है कि इस कार्यकी जानकारी उन्हें हो गयी थी और उनका मूक आशीर्वाद प्राप्त हो गया था। ■

श्रीपुरुषोत्तमदासजी मोदी

वह वात्सल्य, वह शब्दावली

उस दिन मैं भाईजीके पावन दर्शन तथा चरणस्पर्शके लिये अपने सहपाठी बन्धु श्रीकृष्णचन्द्रको ढूँढ रहा था कि वे मुझे पूज्य भाईजीके दर्शन करा दें, विशेषकर ऐसे समयमें, जब कि अस्वस्थताके कारण डाक्टरोंके आदेशसे भाईजीको किसीसे मिलने नहीं दिया जाता था। मेरे आत्मीय बन्धु श्रीकृष्णचन्द्र मेरे लिये दर्शनकी व्यवस्था कर ही देते थे।

'भाया, तूँ राजी ह ना, तेरो काम कइयाँ चाल र्‌यो ह।'

यह थी श्रीभाईजीकी वात्सल्य-सनी जिज्ञासा मुझ अति साधारण व्यक्तिसे। अनेक व्यक्तियोंके समूहमें भी वे मेरे संकोचशील स्वभावको स्पर्श करते हुए स्वयं आगे बढ़कर पूछ लेते थे और अपने अनन्त आशीर्वादकी चादरसे मुझे आवृत कर लेते थे।

भाईजी कल्पवृक्ष थे। कितने ही ऐसे अवसर आये, जब मुझे साथ लेकर लोग भाईजीसे संस्था अथवा समारोहके लिये सहायता माँगने गये। माँगनेवाले बड़े संकोचसे कुछ कह पाते थे। वे यदि

पचास माँगते थे तो श्रीभाईजी सौ सुनते थे और सौ देते थे। कितनी बार ऐसा भी हुआ है कि यदि श्रीभाईजी आवश्यकताका अनुमान नहीं लगा पाते थे तो मुझसे कह देते थे– भाया, जो तू ठीक समझै, सो दे दिये, ओर मेर सैं मँगा लिये।

सदैव श्रीभाईजी विनयावनत रहते थे मानव मात्रके लिये। ■

श्रीभगवतीप्रसादजी खेतान

सिद्धान्तप्रियता

पूज्य श्रीभाईजीके व्यक्तित्वकी यह उल्लेखनीय विशेषता थी कि जो भी उनके सम्पर्कमें आता, वह उनका अपना बन जाता। वे इतने प्यारसे बात करते तथा इतना अधिक सम्मान देते कि उनके समीप आनेवाला उन्हें अपना परम निजजन मानने लगता। यही बात मेरे साथ थी। उनके प्यार भरे व्यवहारका प्रभाव मेरे मनपर छाया हुआ था। यह प्रभाव और भी गहरा हो गया यह देखकर कि श्रीभाईजीके प्रति मेरे बड़े भाई श्रीमन्नालालजीकी और इसीके साथ सम्माननीया भाभीजीकी प्रबल श्रद्धा है। इतना ही नहीं, मेरे ममेरे भाई श्रीराधेश्यामजी बंका श्रीभाईजीकी निकट सेवामें रहते थे। ये सब कुछ ऐसे तथ्य हैं, जिनके फलस्वरूप श्रीभाईजीके प्रति मेरे मनमें अत्यधिक निजत्वका भाव था।

इसी निजत्वके भावसे आलोड़ित होकर मैं उनसे सन् १९६१ ई. में एक निवेदन कर बैठा। मैं उत्तर प्रदेशीय विधान परिषदके स्नातकक्षेत्रसे निर्वाचनके लिये खड़ा था। बात-बातमें मैंने श्रीभाईजीसे अनुरोध किया– आपका परिचय और प्रभाव इतना विस्तृत है कि यदि आप मेरे पक्षमें एक अपील निकाल देंगे तो मुझे चुनावमें सफलता मिल सकती है।

मेरी बात सुनकर बड़े प्यार भरे शब्दोंमें श्रीभाईजीने कहा– आप मेरे हैं, अपने-से-अपने हैं और आपके लिये मेरे हृदयमें अत्यधिक हित-कामना है, पर जहाँतक इस प्रकारकी प्रशस्ति लिखनेकी बात है, वह मैं उचित नहीं समझता। ऐसा न कभी किया और न करनेका विचार है। बरहजके पूज्य बाबा श्रीराघवदासजी चुनावके लिये खड़े हुए। उनसे बड़ी आत्मीयता है। उनके पक्षमें भाषण देनेके लिये मुझपर दबाव डाला गया, पर उसके लिये मन तैयार ही नहीं हुआ। मेरे विचारसे गुण-गायन नरका नहीं, नारायणका करना चाहिये। यदि कभी किसी व्यक्तिकी सराहना करनी पड़े तो कम-से-कम वह स्वार्थ-सिद्धिके भावसे प्रेरित नहीं होनी चाहिये। आप मेरी विवशतापर थोड़ा विचार करें और आशा है, आप कुछ अन्यथा नहीं सोचेंगे।

इस उत्तरसे एक बार मेरा मन प्रसन्न नहीं हुआ, क्यों कि उस समय निर्वाचित हो जानेका चाव चितपर चढ़ा हुआ था, पर निर्वाचनका भूत उतर जानेके बाद जब कुछ समय बीता तो मैं उनके उत्तरकी सच्चाई और गहराईको सचमुच समझने और सराहने लगा। ऐसा खरा व्यक्ति ही देश, समाज और धर्मकी सच्ची सेवा कर सकता है। यही कारण है कि वे गीताप्रेस जैसी धार्मिक संस्थाके सफल कर्णधार बन सके और हिन्दू धर्मकी महान सेवा कर पाये। ■

श्रीपुरुषोत्तमदासजी चूड़ीवाला

[१] नानाजीकी सुगति

श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको मैं मौसाजी कहा करता था, इसीलिये कि पूज्या मौसीजीकी मेरी माताजी सहोदरा बहिन थी। मौसीजी और मौसाजीका मुझपर बड़ा वात्सल्य था। मेरी माताजीका देहान्त तभी हो गया था, जब मेरी आयु लगभग तीन वर्षके आस-पास थी। इस कारण मेरे ऊपर उनका वात्सल्य और अधिक उमड़ता रहता था। विनोदी स्वभावका होनेके कारण मुझमें बालोचित चाञ्चल्य अवश्य था, पर इसके बाद भी मैं उनका एक आज्ञाकारी पुत्र था।

रतनगढ़में सम्भवतः सन् १९४४-४५ की बात है। पूज्या नानीजी और नानाजी आसामसे आकर रतनगढ़में ही रह रहे थे। मौसाजी सपरिवार रतनगढ़में ही थे। उनका सम्पादकीय विभाग भी वहींपर था। पूज्य नानाजी (पूज्य श्रीसीतारामजी साँगानेरिया) प्रायः अस्वस्थ रहा करते थे। वृद्धावस्थामें ऐसा होता ही है। अब नानाजीकी तबीयत ज्यादा खराब रहने लगी। मुझे यह देखकर आश्चर्य होता था कि अत्यधिक व्यस्त होनेके बाद भी मौसाजी सदैव नानाजीके पास आया करते थे और प्रतिदिन एक-दो घंटेके आस-पास रहा करते थे अपने पूज्य श्वसुरको सत्संगकी बातें सुनानेके लिये। मौसाजीने नानाजीकी सेवा मुझे सौंप रखी थी। पूज्य नानीजीको लकवा हो गया था, अतः वे तो कुछ कर नहीं पाती थी। इस परिस्थितिमें दवा-पानी देना, मल-मूत्र स्वच्छ करना, यह सारा कार्य मुझे करना पड़ता था और इसमें मैं अपना सौभाग्य समझता था। रातको उनके पास ही मैं सोया करता था।

धीरे-धीरे नानाजीकी बीमारी बहुत अधिक बढ़ गयी। ऐसा लगने लगा कि अब जीवनका पटाक्षेप होने वाला है। मौसाजीने नानाजीके पास समय-समयपर श्रीहरिनाम संकीर्तनकी व्यवस्था कर दी, जिससे उन्हें भगवत्स्मृति होती रहे। बारह दिनकी कठिन बीमारीके बाद नानाजीकी बोली बन्द हो गयी। सुनायी देना भी बन्द हो गया। वे बड़े कष्टमें थे। फिर उन्हें बेहोशी हो गयी। सारा दिन बेहोशीमें बीता तो लोगोंने अनुमान लगा लिया कि ये जीवनके अन्तिम क्षण निकल रहे हैं और अब नानाजीका शरीर रहेगा नहीं। तीसरे दिन शामको मौसाजीने मुझसे कहा— जावो, अपनी नानीजीको और मौसीजीको कह दो कि वे सब लोग आकर दर्शन कर लें। फिर पुनः मिलने और दर्शनका अवसर नहीं मिल पायेगा। उनसे यह भी कह देना कि रोना भी नहीं है।

मौसाजीका संदेश मैंने जाकर नानीजी और मौसीजीसे कहा। मेरा संदेश सुनते ही सबके मनमें उदासी छा गयी, पर मनमें संतोष था कि जब वे उनकी अन्तिम गति सुधार रहे हैं, तब क्यों बाधा डाली जाय और वे जैसा कह रहे हैं, वैसा ही करना चाहिये। सबने आकर दर्शन किया और प्रणाम किया। जब वे लोग चले गये तो भूमिको स्वच्छ करके तथा धो करके उसपर गंगाजीकी रेणुका डाल दी गयी। उसपर बेहोश नानाजीको लिटा दिया गया तथा कपड़ेका एक पर्दा लगा दिया गया, जिससे कोई देख न सके। इतना सब करके मौसाजीने मुझसे कहा— देख,

तू पहरेपर बैठ जा। न तो पर्देके भीतर झाँक करके देखना और न किसीको झाँकने देना। कोई भी पर्देके भीतर न कभी आने पाये और न कुछ देखने पाये।

मैंने मौसाजीसे कहा— ऐसा ही होगा।

मैं पहरेपर बैठ गया। पर्देके भीतर पूज्य मौसाजी और पूज्य बाबा बैठे गये और रात भर बैठ रहे। मौसाजी और बाबा पर्देके भीतर लगातार सात-आठ घंटे रहे और इस अवधिमें उन्होंने क्या किया, यह तो वे ही जाने। किसीको भी आहट नहीं मिल पायी कि वे क्या कर रहे हैं। सबेरे मुझसे कहा— जावो, गिरिधारी बाबाको बुला लाओ।

मैं गिरिधारी बाबाको बुला लाया। जब गिरिधारी बाबा आये तो और भी व्यक्ति वहाँ चले आये। गिरिधारी बाबाका शरीर बड़ा स्वस्थ और आवाज बड़ी बुलन्द थी। मौसाजीने गिरिधारी बाबासे कहा— इन्हें राम नाम जोर-जोरसे सुनाइये तथा बोलनेके लिये कहिये।

मैं मन-ही-मन कहने लगा कि तीन दिनसे नानाजी बेहोश पड़े हैं। कान और जबान काम नहीं करती। ये भला क्या सुनेंगें और क्या बोलेंगे ? मौसाजीके कथनानुसार गिरिधारी बाबाने उच्च स्वरसे 'राम-राम' नानाजीके कानके पास कहा। उन्होंने 'राम-राम' को भली प्रकार सुना तथा अपने अधरोंको हिलाकर और बोलकर 'राम-राम' कहा।

मौसाजीने पूछा— भगवानके दर्शन हो रहे हैं क्या ?

नानाजीने गर्दन हिलाकर कहा— दर्शन हो रहे हैं।

गिरिधारी बाबाने कहा— हाथ जोड़कर भगवानको प्रणाम कीजिये।

नानाजीने हाथ तो उठाया, पर पूरा नहीं उठा सके। थोड़ा उठाकर हाथ जोड़ा तथा आँखकी पलकोंको गिराकर सामने उपस्थित भगवानको प्रणाम किया। गिरिधारी बाबाने फिर जोर-जोरसे जल्दी-जल्दी राम-राम कहा और नानाजीने भी उनके उत्तरमें राम-राम कहा। उपस्थित सभी लोगोंने देखा कि जो नानाजी तीन दिनसे बेहोश थे, वे हाथ जोड़कर प्रणाम कर रहे हैं तथा 'राम-राम' कह रहे है। गिरिधारी बाबाके कहनेपर जब नानाजीने तीसरी बार राम-राम कहा, तभी उनके प्राण पखेरू उड़कर अपने भगवानके श्रीचरणोंमें चले गये।

यह सत्य है कि *'जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।।'* पर उससे अधिक प्रत्यक्ष सत्य आज देखनेको मिला कि जन्म-जन्म तप-परायण मुनिकी तो बात अलग रही, एक साधारण सांसारिक प्राणी, जो चेतना शून्य है, वह जीवनके अन्तिम क्षणोंमें संतानुग्रहके फलस्वरूप सचेतन होकर भगवानके नामका उच्चारण भी कर लेता है और भगवानका दिव्य दर्शन भी प्राप्त कर लेता है।

[२] गोपाल नौकर

बात सन् १९४२ के आस-पासकी है। उस समय पूज्य मौसाजी रतनगढ़में निवास कर रहे थे। वहींपर 'कल्याण' पत्रिकाका सम्पादकीय विभाग था। विभिन्न प्रकारकी व्यवस्थाको सँभालनेका दायित्व वहाँके प्रबन्धक श्रीमुरलीधरजीपर था। मौसाजीके घरपर एक नौकर था, उसका नाम था गोपाल। भले वह नौकर था, पर मौसाजी उसे भी सम्मान दिया करते थे।

एक बार वह कई दिनोंकी छुट्टीके बाद कामपर आया। काम पर आये हुए उसे एक-दो

मास हुए होंगे कि घरसे पोस्टकार्ड आ गया कि माँ बीमार है और तुरन्त घर आना चाहिये। गोपालने वह पोस्टकार्ड श्रीमुरलीधरजीको दिखलाया और घर जानेके लिये छुट्टी माँगने लगा। श्रीमुरलीधरजीने यही समझा कि माँकी बीमारी तो एक बहाना मात्र है। मुरलीधरजीने उससे कहा— अभी-अभी तो घरसे आये हो। क्या सचमुच तुम्हारी माँ बीमार है? यह तो घर जानेका बहाना है। तुमने घरसे पोस्टकार्ड मँगवा लिया है और माँकी बीमारीके नामपर घर जाना चाहते हो।

जैसा कि प्रायः मैनेजर लोग अपने मातहतोंसे कहा-सुना करते हैं, उसी प्रकार श्रीमुरलीधरजी गोपाल नौकरको डपट रहे थे। गोपालका मन छोटा हो गया। चेहरेपर घनी उदासी छा गयी। उसी समय मौसाजी उधरसे निकले। कुछ तो मुरलीधरजीकी बात मौसाजीके कानमें पड़ गयी और कुछ उन्होंने गोपालके चेहरेकी खिन्नता देख ली थी। मौसाजीने श्रीमुरलीधरजीसे पूछा— क्या बात है?

श्रीमुरलीधरजीने कहा— यह गोपाल अभी-अभी लम्बी छुट्टीके बाद कामपर आया है और आज फिर माँकी बीमारीका यह पोस्टकार्ड दिखलाकर घर जानेके लिये छुट्टी माँग रहा है।

मौसाजीने कहा— उसे छुट्टी दे दो। यदि मेरी माँजी बीमार हों तो सारा काम छोड़कर क्या मैं उनकी सेवा नहीं करूँगा? जैसे मेरी माँ, वैसे इसकी माँ। गोपालको छुट्टी दे दो और साथ ले जानेके लिये कुछ रुपया भी दे दो।

श्रीमुरलीधरजीने कहा— इसने पहले ही बहुत अधिक उधार ले रखा है।

मौसाजीने समझाते हुए कहा— अभी तो उसे माँकी दवा आदिके लिये खर्चकी जरूरत होगी। अभी तो दे दो, बादमें उसका हिसाब होता रहेगा।

जब मौसाजी ही ऐसा कह रहे हैं, फिर गोपालको कौन रोक सकता था? श्रीमुरलीधरजीने उसे खर्चके लिये रुपया दिया और वह घर चला गया। सचमुच माँ बीमार पड़ गयी थी। जब वह कुछ ठीक हो गयी तो गोपाल अपने कामपर रतनगढ़ आ गया। क्या संयोगकी बात, फिर दो-तीन महीनेके बाद घरसे एक पोस्टकार्ड आया कि तुम्हारा विवाह तय कर दिया गया है, अतः शीघ्र घर आ जाओ। ज्यों ही इस पोस्टकार्डको गोपालने श्रीमुरलीधरजीको दिखलाया, तो वे गोपालपर झल्लाये, पर मैंने तो उससे मीठी चुटकी ली। गोपालका भाग्य अच्छा था कि संयोगसे मौसाजी किसी कामसे श्रीमुरलीधरजीके पास आये। उनकी गोपालसे तकरार चल रही थी। मौसाजीने पूछा— क्या बात है?

श्रीमुरलीधरजीने सारी बात बतला दी। उसी समय मौसाजीने कहा— इसे रोकना नहीं चाहिये। इसे छुट्टी दे दो। विवाहमें खर्च होता ही है, अतः इसे दो-तीन सौ रुपये भी दे देना।

श्रीमुरलीधरजी तो मौसाजीकी इस उदारताको देखकर चकित थे। उधर तो श्रीमुरलीधरजी गोपालको रुपया दे रहे थे, इधर घरके भीतर आकर मौसीजीसे उन्होंने कहा— अपने गोपालका विवाह होने वाला है। उसे अच्छी एक साड़ी दे देना, जो विवाहके अवसरपर काम आवे।

मौसीजीने वैसा ही किया। केवल उतना ही नहीं, बल्कि एकके स्थानपर तीन-चार साड़ियाँ तथा अन्य वस्त्र दिये।

मौसाजीका घरके नौकरोंके साथ बहुत अपनेपनका व्यवहार होता था। वे गोपालको 'अपना

गोपाल' कहा करते थे। मौसाजीकी मान्यता थी कि किसी लाचारीमें पड़कर ही तो कोई कहीं नौकरी करता है। कभी भी उसकी लाचारीका अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहिये।

[३] माफी मत माँगना

सन् १९४८ में महात्मा गाँधीजीकी हत्या हो जानेके बाद सारे देशका वातावरण बड़ा क्षुब्ध हो गया था। इस षड्यन्त्रमें जो शामिल थे, उनको तो सरकार गिरफ्तार कर ही रही थी, पर जिनपर किसी प्रकारसे भी संदेह करनेके लिये स्थान नहीं था, उनपर भी अकारण संदेह किया जा रहा था और सरकार उन्हें भी गिरफ्तार कर रही थी। गीतावाटिकामें ऐसी सूचना आयी कि पूज्य मौसाजीके नाम भी गिरफ्तारीका वारंट जारी किया गया है। मौसाजी वस्तुस्थिति जाननेके लिये कलक्टर साहबसे मिलना चाहते थे कि वारंट हो तो वे गिरफ्तार होनेके लिये तैयार हैं। मौसाजीने मुझसे कहा— पुरुषोत्तम ! कलक्टर साहबके बँगलेपर चलना है। जीप निकाल लो।

मैं जीप चलाना जानता था और जीप मेरी ही देख-रेखमें रहा करती थी। ज्यों ही मौसाजीने ऐसा कहा, मैं जीप लानेके लिये चल दिया। साथ ही मैंने थोड़ी चतुराई भी की। मैं सिद्धान्ततः हिन्दुत्वका नख-शिख पोषक हूँ। 'हिन्दू क्या करें,' इस प्रकारके कुछ पोस्टर मेरे पास थे। उसके कुछ पर्चे मैंने जीपमें रख लिये। मौसाजीको लेकर मैं कलक्टर साहबके बँगलेपर गया। मौसाजी कलक्टर साहबसे मिले और उनसे पूछा— ऐसा सुननेमें आया है कि मेरे नाम वारंट है। यदि हो तो गिरफ्तारीके लिये उपस्थित हूँ।

कलक्टर साहबने कहा— अभी ऐसी कोई बात नहीं है, पर भविष्यकी बात कौन कह सकता है ? मैं आपको अच्छी तरह जानता हूँ और पहचानता हूँ तथा आपके महान कार्योंसे परिचित हूँ। आपके बारेमें किसी प्रकारके संदेहकी कल्पना करना भी अपराध है, पर आजकल परिस्थितियाँ बड़ी अस्थिर हैं, अतः मैं आपको यह राय देना चाहूँगा कि आप कुछ दिनोंके लिये कहीं चले जायें। इस बातका तनिक भी भरोसा नहीं है कि देशका क्षुब्ध वातावरण कब आपको अपनी लपेटमें ले ले।

मौसाजीने कलक्टर साहबको नेक परामर्शके लिये साधुवाद दिया। मौसाजी गीतावाटिका वापस आनेके लिये ज्यों ही जीपमें चढ़ने लगे, उन कुछ सेकेंडोंमें मैंने यह काम किया कि वे एक-दो पोस्टर बँगलेकी दिवालपर चिपका दिये। मौसाजीने वे पोस्टर देख लिये। जीपमें चलते समय मौसाजीने पूछा— वे पोस्टर तुमने चिपकाये क्या ?

मैंने स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार करते हुए कहा— हाँ, मैंने चिपकाये।

मैं कभी भी मौसाजीसे झूठ नहीं बोलता था।

मौसाजीने पुनः पूछा— क्या तुम आर.एस.एस. की शाखामें जाया करते हो ?

इसके लिये भी मैंने सत्य-सत्य कहा— हाँ, मैं जाया करता हूँ।

तब मौसाजीने कहा— जो किया और करते हो, वह करो। हिन्दू धर्म, हिन्दू भूमि और हिन्दू समाजके लिये जो करते हो, उसके लिये मेरा पूर्ण समर्थन है, पर एक बात याद रखना। यदि गिरफ्तार हो जावो तो क्षमा मत माँगना। जब शिमलापालमें मुझे सरकारने नजरबन्द कर दिया था तो मुझसे माँफी माँगनेके लिये कहा गया था, पर मैंने माफी नहीं माँगी। वही बात तुम्हारे

लिये मैं कहता हूँ। जेलमें जाना पड़ सकता है, वहाँ यातना दी जा सकती है और भी बहुत कुछ हो सकता है, पर तुम कभी भी माफी मत माँगना। यदि मनमें कमजोरी है तो यह सब काम मत करो।

मौसाजीके इन प्रेरणाप्रद शब्दोंको सुन-सुन करके मेरा उत्साह बहुत उमड़ रहा था। मैंने पूर्ण आश्वासन देते हुए उनसे यही कहा— आप विश्वास रखें, आपका यह पुरुषोत्तम कभी माफीनामाका कलंक लगवाकर आपके सामने नहीं आयेगा।

मेरी दृढ़तासे मौसाजीको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्हें बड़ा सन्तोष मिला।

[४] आत्म-भावका सीमातीत विस्तार

एक बार पूज्य मौसाजीके दामाद श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगला कलकत्तेसे गोरखपुर आने वाले थे। अचानक कलकत्तेसे टेलीफोन द्वारा समाचार आया कि किसी कारण विशेषसे उनको यात्राका विचार छोड़ देना पड़ा। जिस समय यह समाचार गोरखपुर आया, उसी समय यह भी समाचार मिला कि जिस ट्रेनसे वे आने वाले थे, वह ट्रेन मुगलसराय स्टेशनके पास दुर्घटनाग्रस्त हो गयी है और कई यात्रियोंकी मृत्यु हो गयी।

पासमें बैठे हुए थे ठाकुर श्रीगंगासिंहजी। उन्होंने बड़े संतोषकी साँस लेते हुए कहा— यह अच्छा ही हुआ कि श्रीफोगलाजीने आनेका विचार स्थगित कर दिया।

श्रीगंगा सिंहजीके कथनपर झुँझला करके टिप्पणी करते हुए मौसाजीने कहा— क्या अच्छा हुआ? खाली आप लोगोंको अपना-अपना ही दिखलायी देता है। इस दुर्घटनामें न जाने कितनोंके जँवाई और भाई, न जाने कितने बालक और वृद्ध अकाल ही कालके गालमें चले गये। जो चले गये, उनके परिवार वालोंपर क्या बीत रही होगी? उस करुण स्थितिकी कल्पना करके मेरा मन तो बड़ा ही शोकाकुल हो रहा है।

मौसाजीकी बात सुनकर श्रीगंगासिंहजी स्तब्ध हो गये। अवश्य ही उनको अपनी संकीर्ण दृष्टिपर ग्लानि हो रही होगी। श्रीगंगासिंहजीका चिन्तन जो भी रहा हो, पर मेरे मनमें यही भाव उभरा कि मौसाजीके 'आत्म-भाव'के सीमातीत विस्तारका अनुमान हम ससीम दृष्टि वाले नहीं कर सकते। ■

श्रीमती अरुणा सिंहजी

विद्यालयको आशीर्वाद

शिशुकी मौलिक शक्तियोंका सर्वतोमुखी विकास ही शिक्षाका उद्देश है, इस दृष्टिकोणको ध्यानमें रखकर मैंने एक विद्यालयका शुभारम्भ जुलाई १९६५ में किया। जब विद्यालयकी नियमावली एवं समितिका गठन हो गया तो एक प्रश्न सामने आया कि अध्यक्ष किसको बनाया जाय। मेरी प्रारम्भसे ही बलवती इच्छा थी कि इस विद्यालयके अध्यक्ष-पदपर कोई आध्यात्मिक व्यक्ति विराजित हो। मैं ऐसे ही महान व्यक्तिकी खोजमें थी। बहुतसे नाम लोगोंने मेरे सामने

रखे, कई सम्पत्तिशाली सज्जनोंके भी नाम मुझे बताये गये, पर मैं कुछ निर्णय न ले सकी। मैं इसी उधेड़-बुनमें पड़ी थी कि अध्यक्ष किसको बनाया जाय।

किसी सज्जनने मुझे सलाह दी कि आपकी यदि इच्छा यह है कि इस पदके लिये किसी आध्यात्मिक महापुरुषको लिया जाय तो श्रीभाईजीको क्यों नहीं अध्यक्ष बना देतीं। मैंने प्रथम बार श्रीभाईजीका नाम सुना। मैंने उनका पूरा नाम पूछा। पता चला कि उनका नाम श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार है और वे गीतावाटिकामें रहते हैं। गीताप्रेस तो मैं कई बार जा चुकी थी, पर गीतावाटिका जानेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। एक अन्य सज्जन कहने लगे— आप इस कार्यको सरल न समझें। अध्यक्ष-पदके लिये उनकी स्वीकृति लेना बड़ा ही कठिन कार्य है।

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये सितम्बर १९६६ में मैं प्रथम बार गीतावाटिका गयी। एक अनजानकी तरह, कहीं किसीसे कोई परिचय नहीं। एक सज्जनने मेरे आनेका हेतु पूछा। मैंने कहा कि मुझे श्रीभाईजीसे मिलना है। उन्होंने मेरा परिचय पूछा। वह मैंने संक्षेपमें बता दिया। वे सज्जन ऊपर चले गये। मैं खड़ी-खड़ी वहाँकी चहल-पहल देख रही थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो कोई बहुत बड़ा उत्सव सम्पन्न हुआ है। मैंने उत्सुकतावश एक सज्जनसे पूछा— क्या कोई उत्सव था ?

उन्होंने बताया— हाँ, राधाष्टमीका उत्सव था।

मैं राधाष्टमीके विषयमें सोच ही रही थी, तब तक ऊपरसे बुलावा आ गया। मैं ऊपर गयी। इसके पूर्व मैंने कभी श्रीभाईजीको देखा न था। मनमें कुछ संकोच एवं कुछ भय था। कक्षमें प्रवेश करते ही मेरी दृष्टि एक वृद्ध महापुरुषपर पड़ी, जिनके सामने कई अन्य व्यक्ति एवं दो-एक महिलायें बैठी थीं। मुझे समझनेमें देर नहीं लगी कि ये ही श्रीभाईजी हैं। मेरा मस्तक उनके चरणोंमें झुक गया। मेरे प्रणामका उत्तर बड़े ही स्नेहिल शब्दोंमें मिला। उन्होंने मेरे आनेका कारण पूछा। शीघ्र ही मैंने संक्षेपमें सब सुना दिया। कुछ देर वे चुप रहे। इस बीच मेरी क्या मनस्थिति थी, मैं व्यक्त नहीं कर सकती। आशा-निराशाका द्वन्द्व मेरे भीतर चल रहा था। कुछ क्षणोंके बाद श्रीभाईजीने अपनी विवशता प्रकट करते हुए कहा— इस रुग्ण एवं असमर्थ शरीरसे कुछ न हो सकेगा।

मैंने हाथ जोड़ लिये और विनती की— आपका आशीर्वाद एवं आश्रय चाहिये। परिश्रम मैं स्वंय कर लूँगी।

मेरी बात सुनकर वे फिर चुप हो गये। बादमें दूसरे दिन आनेको कहा। मैं दूसरे दिन पुनः अपने निश्चित समयपर पहुँच गयी। मुझे तो ऐसा लगने लगा कि उनका आकर्षण ही मुझे खींच रहा है। दूसरे दिन भी वही उत्तर सुननेको मिला— मुझसे कुछ न हो सकेगा।

पुनः मैंने भी वही शब्द दुहराये— आपकी छत्रछायामें ही मैं कार्य करना चाहती हूँ।

फिर वे कुछ क्षण चुप रहे और थोड़ी देर बाद दूसरे दिन आनेको कहा। तीसरे दिन पुनः निश्चित समयपर मैं पहुँच गयी। मनमें कुछ विश्वास जम चुका था कि आश्रय यहाँ मिलेगा ही। तीसरे दिन मुझे अधिक कुछ नहीं कहना पड़ा। स्वयं कह दिया— आप मेरा नाम दे सकती हैं।

इतना सुनकर मैं आनन्द विभोर हो उठी। नेत्र अश्रुपूरित हो गये। मुझे ऐसा लगने लगा, जैसे मुझे सब कुछ मिल गया। मेरी तपस्या सफल हो गयी। मैं उन्हें प्रणाम करके वापस चली

आयी। मैंने जब सब लोगोंको बताया तो सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछ लोगोने उस समय तक विश्वास नहीं किया, जबतक उनके हस्ताक्षर नहीं देख लिये। अब समिति पंजीकृत करा दी गई।

सन् ६७ में अभिभावकोंके आग्रहसे मुझे इस विद्यालयमें मान्टेसरी कक्षासे अतिरिक्त जूनियर हाईस्कूलकी कक्षायें भी आरम्भ करनी पड़ी। इस विद्यालयका नाम मैं श्रीभाईजीके नामपर रखना चाहती थी, लेकिन उन्होंने अपना नाम हटाकर 'सर्व-हित-कारी बालिका विद्यालय' नाम कर दिया। उनका आदेश मुझे मानना पड़ा।

हिन्दू समाजमें कोई महिला सार्वजनिक कार्य करके सफलता प्राप्त कर ले, यह असम्भव-सा लगता है। मेरे सम्मुख भी अनगिनत बाधाएँ आयीं। जब मेरे सामने प्रतिकूलताका पहाड़ खड़ा हो जाता और जब यह सब मेरे सहन शक्तिके बाहर हो जाता तो मैं भागकर श्रीभाईजीके शरणमें चली जाती। वे सब बातें बड़े ही धैर्यसे सुनकर कहते– देखो, तुम करती रहो। घबड़ाना नहीं चाहिये। लोग कहते हैं केवल तुम्हें तुम्हारे पथसे डिगानेके लिये। यदि तुम इतनी जल्दी घबड़ा जावोगी तो कार्य कैसे करोगी ? कान बन्द रखो, कार्य करती रहो।

उनके ये स्नेह पूर्ण शब्द सदा ही मेरा उत्साह-वर्द्धन करते थे। ऐसा लगता जैसे किसीने स्नेह रूपी रस-सरितामें डुबो दिया हो। सिर झुकाकर मैं वापस आती। मैं बता नहीं सकती, श्रीभाईजी मेरे अन्दर कितनी प्रेरणा, कितनी शक्ति भर देते ? मैं चौगुने उत्साहसे कार्यमें जुट जाती। थकानका पता ही नहीं चलता। जब-जब विद्यालय किसी सकंटमें पड़ा, चाहे वह आर्थिक हो या राजनैतिक, या अन्य प्रकारका, श्रीभाईजीका वरद हस्त उसे उबारता रहा। भविष्यमें कई बार परेशानियोंसे तंग आकर मैंने निश्चित किया कि अब कुछ नहीं करना है, लेकिन मैं कैसे बताऊँ कि मेरी अन्दर भरी हुई उनकी प्रेरणा मुझे बैठने नहीं देती। मुझे आभास होता कि वे मुझसे अवश्य ही कार्य करवा लेना चाहते हैं। उसी प्रेरणाके वशीभूत हो मैं कार्य करती चली गयी। कभी पलटकर मैंने नहीं देखा कि परिणाम क्या होगा। मैं अपने श्रद्धेय श्रीभाईजीके विषयमें क्या कहूँ। विद्यालयकी प्रत्येक वस्तु एवं प्रत्येक कार्यपर उनका आशिर्वाद है– उनकी छाप है। यह विद्यालय उनके आशीर्वादका मूर्तिमान स्वरूप है। ■

श्रीरामकिशुनजी अग्रवाल

स्वजनका संकट

बात उस समयकी है, जब पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) बम्बईमें रहते थे। वहाँ उनके परम आत्मीय स्वजन थे भारतके प्रसिद्ध संगीतज्ञ पं. श्रीविष्णुदिगंम्बरजी। उन्होंने बम्बईमें 'गान्धर्व विद्यालय' नामक संगीत-महाविद्यालयकी स्थापना कर रखी थी। विद्यालयमें काफी व्यय हुआ। उदार प्रकृतिके होनेके कारण पण्डितजीने रूपया पानीकी तरह बहाया। परिणामतः विद्यालयपर ऋणका बोझ लद गया। अन्तमें विद्यालयके नीलामकी नौबत आ गयी। पण्डितजी रुपयोंके लिये सब ओरसे निराश हो चुके थे। बाबूजीको इस बातका पता चला तो उन्हें बहुत दुःख हुआ क्यों कि वे भी पैसोंका इन्तजाम नहीं कर सकते थे। अगर

हजार-दो-हजारकी समस्या होती तो कोई बात नहीं थी, पर वहाँ तो पौन लाख रुपयोंका प्रश्न था। बाबूजीने सोच-विचार कर मित्रोंसे रुपया उधार माँगा और अपने मित्रकी सहायता कर दी। पण्डित श्रीविष्णुदिगम्बरजीका मन बाबूजीके प्रति कृतज्ञतासे भर उठा।

इससे बाबूजीको बड़ी कठिनाई उठानी पड़ी। इस ऋणका परिशोध बाबूजी बारह साल बाद कर पाये। इन्हीं सब गुणोंने बाबूजीको महापुरुषोंकी पंक्तिमें ला दिया था। ■

श्रीरामनिवासजी सर्राफ

सहायता और सम्मान

पूज्य श्रीभाईजीसे मेरा घरका-सा सम्बन्ध था तथा उनका सदैव ही मेरे ऊपर अपार स्नेह रहा है। भाईजीकी उदारताके सम्बन्धमें एक साधारण घटना है। आन्ध्रप्रदेशके विजयनगरम् शहरसे मेरे एक निकटतम सम्बन्धी अपनी धर्मपत्नीके साथ राधाष्टमीके अवसरपर आये थे। उनके पास एक बक्सा था, जिसमें एक हजार नकद एवं सामान था। गोरखपुरसे वे लोग अयोध्याके लिये रवाना हुए, किन्तु दुर्भाग्यवश गाड़ीमें नींद आ गयी तथा चोर बक्सा उठाकर चलता बना। नींद टूटनेपर बक्सा न पाकर वे लोग सन्न रह गये। बक्सा गायब होनेसे तथा यात्राके लिये पासमें खर्च न होनेसे दुखित होकर वे लोग गोरखपुर वापस आ गये।

स्थिति शोचनीय थी। रंगमें भंग हो गया था। हम सभी उदास थे तथा इस बारेमें बैठे-बैठे विचार कर रहे थे। विचारोंमें निमग्न हमलोग घरसे निकले तथा गीतावाटिकाकी ओर चल पड़े। गीतावाटिकामें पहुँचकर श्रीभाईजीका दर्शन सुलभ हुआ और बातचीतके मध्य बक्सके चोरी हो जानेकी बात सामने आ गयी। श्रीभाईजीकी आन्तरिक इच्छा थी कि उन्हें आर्थिक सहायता देकर इस क्षतिकी पूर्ति कर दी जाय, लेकिन संभ्रान्त परिवारके एक व्यक्तिको ऐसे सीधा कहना भी उन्होंने उचित नहीं समझा। कैसा आदर्श विचार था उनका ? श्रीभाईजी उठकर मुझे एकान्त स्थानमें ले गये तथा उन्होंने संकोच पूर्वक सहायता देने वाली बात कही। मेरा विचार था कि श्रीभाईजी स्वयं रुपया न देकर, जहाँ वे काम करते हैं, उस फर्मसे यह रुपया दिलवा दें तो उनका आदर भी बना रहता तथा वे स्वीकार भी कर लेते। श्रीभाईजीने इस सुझावको स्वीकार किया तथा जहाँ वे काम करते थे, उस फर्मके मालिकको पत्र लिखकर इस क्षतिकी पूर्ति करवा दी। जिसकी सहायता की जा रही है, उसके सम्मान और उसकी भावनाओंको श्रीभाईजीने जो आदर दिया, उसे देखकर मुझे आश्चर्य हुआ और इससे मुझे सुन्दर सीख मिली। ■

श्रीमोहनलालजी सारस्वत

अप्रतिम सेवा-भावना

''जिसके पास जो कुछ है, वह सब-का-सब परार्थ है, सबका मिला हुआ— सम्मिलित धन है, उसमें सबका भाग है, वह सबका है, उसका नहीं है। जहाँ-जहाँ उसकी आवश्यकता हो, वहाँ-वहाँ सम्मान, श्रद्धा, सद्भाव, उदारता, सदाशयता एवं समादरके साथ उसका उपयोग

करना कर्तव्य है।''

अपनी लेखनीसे ये शब्द लिखनेवाले श्रीभाईजी (परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) जीवनभर सचेष्ट रहे कि उनका सर्वस्व विश्वरूप प्रभुकी सेवामें लगता रहे। श्रीभाईजीकी सेवा-भावना इतनी प्रबल थी कि वे दूसरेके दुःखको, कष्टको, अभावको देखकर रोनेतक लग जाते थे। गोरखपुर आनेके पश्चात् सन् १९२७ से अर्थकी दृष्टिसे वे सर्वथा निःस्व रहे। गीताप्रेस, 'कल्याण' या अन्य किसी भी संस्थासे उनका कोई आर्थिक सम्बन्ध न था और न उन्होंने भेंट-पूजा-उपहारके रूपमें किसीसे भी एक पैसा कभी स्वीकार किया। ऐसी स्थितिमें सेवाकार्य स्वजनों, मित्रों और श्रद्धालुओंके भगवत्प्रेरित या स्वेच्छाप्रेरित दानसे चलते थे और चलते थे प्रचुर परिमाणमें, परंतु कभी-कभी ऐसे अवसर भी आ जाते थे, जब सेवा-कार्यके लिये प्राप्त राशि समाप्त हो गयी है और सामने उपस्थित भाईके कष्टनिवारणके लिये उतने रुपयोंकी व्यवस्था करना अनिवार्य होता। ऐसी विवशताकी स्थितिमें श्रीभाईजीका हृदय द्रवित हो जाता था और वे किसीसे ऋण लेकर सहायता करते थे। इतना ही नहीं, वे अपनी धर्मांगिनीके गहने बेचकर भी उस आर्त भाईके आँसू पोंछते थे। विस्तारभयसे नीचे श्रीभाईजीके केवल एक पत्रका कुछ अंश उद्धृत किया जा रहा है। पाठक स्वयं अनुभव करें कि उनका हृदय कितना संवेदनशील था।

॥ श्रीहरिः ॥

गोरखपुर
ज्येष्ठ बदी २, संवत् २०१०

प्रिय मोहनजी,

सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका २७-५-५३ का पत्र मिला। एक कार्ड जयपुरसे मिला था। ...... की पत्नीको ...... रुपये मासिक देकर रसीद लेते रहियेगा।

* * * * *

श्रीशास्त्रीजी बाबत लिखा, सो ठीक है। मुझे स्वयं उनकी बड़ी चिन्ता है कि उनकी बीमारीकी स्थिति सुनकर मैं कुछ भी कर नहीं सकता। जो कुछ व्यवस्था हो सकी, उनको दे दिया तथा भविष्यमें (छः महीनेके लिये सोचकर) सौ रुपया महीना भेजनेकी बात भी उनसे कह दी है। पर आप जानते हैं, मैं तो सर्वथा अकिञ्चन हूँ। मेरे पास पैसा नहीं। दुनियाकी आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर हो गयी है कि पहले लोग अपनी इच्छासे अच्छे काममें पैसा लगानेको कहते थे, अब वह तो सर्वथा बन्द हो गया। कहनेपर भी नहीं होता।

* * * * *

श्रीशास्त्रीजीको कह तो दिया, पर मेरे पास एक पैसा भी नहीं। गीताप्रेसकी रोकड़से उचंतमें (अर्थात् उधार) लेकर उनको दे दिये, पर अभीतक वे वापस नहीं किये जा सके। पिछले दिनों एक सज्जनको........ रुपये देने थे, सहायतामें। कहीं प्रबन्ध नहीं हुआ— सावित्रीकी माँ (धर्मांगिनी) का एक गहना बेचकर दिये। यह स्थिति है। कैसे देता-लेता हूँ, इसीसे आप अनुमान कर सकते हैं। किससे कहूँ ? लाभ भी क्या है ? इसीसे श्रीशास्त्रीजी को पत्र नहीं दिया।

उनके ही पत्र आ गये— एक पहले आया था, दूसरा आज आया। आप उन्हें मेरे नाम लिखकर एक सौ रुपया दे दीजियेगा।

उन्होंने . . . . रु. अंदाज ऋणके लिखे हैं, मासिक खर्च भी १५० रु. अंदाज बतलाया है और ठण्डी जगह जानेकी बात लिखी है। बात तीनों ही ठीक हैं, पर मैं उन्हें क्या लिखूँ? मेरे पास कोई व्यवस्था नहीं है। एक सौ रुपये महीना तो मैं छः महीनेतक किसी तरह भेजता रहूँगा, पर इससे अधिक कुछ भी करनेकी मेरी परिस्थिति नहीं है। उनके ऋणके रुपये शीघ्र मैं भेज दूँ, ऐसी मेरी बड़ी इच्छा है, पर जबतक व्यवस्था न हो, तबतक मैं क्या लिखूँ?

उनके बाहर जानेके बावत भी मैं क्या लिखूँ? उनके शरीरपर बुरा असर न पड़े, इसलिये उनको न लिखकर ये समाचार मैंने आपको लिखे हैं। आप इनका सारांश स्पष्ट उन्हें बता दीजिये। मैं हृदयसे उनकी सेवा करना चाहता हूँ, पर कर सकूँगा तभी, जब भगवान चाहेंगे। उनको मैं अभी पत्र नहीं लिख रहा हूँ।

आपका भाई

हनुमान

■

श्रीशिवकुमारजी गोयल

अखण्ड भारत सम्मेलन

श्रीभाईजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का हृदय विश्वके एक मात्र हिन्दू देश भारतकी पराधीनतासे व्यथित एवं विचलित हो उठा था और वे हिन्दू राष्ट्र भारतको विदेशी-विधर्मी अँगरेजोंकी गुलामीसे मुक्त करानेकी भावनालेकर स्वाधीनता आन्दोलनमें कूद पड़े थे। यह आन्दोलन क्रमशः प्रखर और प्रभावी होता चला गया और अँगरेज भारतसे भागनेकी बात सोचने लगे। भारतकी स्वाधीनताके साथ-साथ जब श्रीभाईजीने देखा कि भारतको खण्डित करके उसका एक भाग पाकिस्तानके रूपमें खड़ा करनेका षडयन्त्र रचा जा रहा है तो उनके हृदयको भारी आघात लगा। उस समय श्रीभाईजीने कहा था— भारत माताका अंग-भंग किया जाना देशके साथ विश्वासघात सिद्ध होगा तथा यदि हमारे अदूरदर्शी नेता सत्ताकी भूखमें यह पाप कर बैठें तो इतिहास उन्हें कदापि क्षमा नहीं करेगा।

जिस समय हिन्दू महासभाके तत्त्वावधानमें सन् १९४६ में दिल्लीमें अखण्ड भारत सम्मेलनका आयोजन किया गया था तो वीर सावरकरके अनुरोधपर श्रीभाईजीने उसमें सक्रिय योगदान किया था। उन्होंने स्वयं भाग-दौड़कर देशके प्रमुख धर्माचार्योंको सम्मेलनमें उपस्थित किया था। उस समय जब श्रीभाईजी सम्मेलनमें भाषण देनेके लिये खड़े हुए तो भारत माताके अंग-भंग किये जानेकी सम्भावनापर उनकी आँखोंसे अश्रु बहने लगे थे।

सत्ता-लोलुप काँग्रेसी नेताओं व धर्मान्ध मुसलिम लीगी जिन्नाकी साँठ-गाँठके कु-परिणाम स्वरूप भारत विभाजनकी घोषणा कर दी गयी। घोषणा होते ही समस्त पंजाब, बंगाल व सिन्धमें हिन्दुओंकी नृशंस हत्या होने लग गयी। मुसलिम आतताइयोंने नौआखाली,

मुलतान, झंग आदिमें न केवल हिन्दुओंका नर-संहार किया, अपितु हिन्दु-स्त्रियोंकी छातियाँ तक काटकर उन्हें बिल्कुल नंगाकर सार्वजनिक जुलूस निकाले। इन घटनाओंसे महामना पं. श्रीमदनमोहनजी मालवीयके हृदयको भारी आघात लगा। वे इस आघातको सहन नहीं कर सके तथा इसी पीड़ामें उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये।

पंजाब-बंगालकी राक्षसी घटनाओंसे अत्यधिक संतप्त श्रीभाईजीने 'कल्याण' पत्रिकाका 'मालवीय-स्मृति-अंक' प्रकाशित किया, जिसमें नौआखालीकी घटनाओंका सच्चाईके साथ रोमांचकारी ढंगसे प्रस्तुतीकरण हुआ था। श्रीभाईजीने नौआखालीके एक आतातायी मुसलिम गुण्डेके घरमें खूनके आँसू बहाने वाली एक हिन्दू ललनाका करुणापूर्ण पत्र प्रकाशित करके वहाँकी यथार्थ स्थितिका चित्रण 'कल्याण' पत्रिकाके पृष्ठोंपर किया था। हिन्दू-मुसलिम-एकताके नामपर मुसलिम-तुष्टीकरणमें आत्म-गौरव और आत्म-प्रतिष्ठाकी सतत आहुति देने वाली कॉंग्रेसी सरकारने कल्याणके उस ऐतिहासिक अंक 'मालवीय-स्मृति-अंक' को जप्त कर लिया।

मैं श्रीभाईजीकी उस निर्भीक लेखनीको प्रणाम करता हूँ, जो सरकारी कोपके सामने झुकी नहीं और मैं श्रीभाईजीके उस महान व्यक्तित्वका अभिनन्दन करता हूँ, जो हिन्दू राष्ट्रका प्रबल समर्थक था। ■

श्रीजयन्तीलाल ना. मान्कर

सेवा-कार्यका नेतृत्व

सन् १९३९ में जिस समय हरियाणाके हिंसार इलाकेमें भीषण अकाल पड़ा था, तब उस समय महात्मा गाँधी, ठक्कर बापा और लाला हरदेवसहायकी इच्छानुसार मैंने 'बम्बई जीव दया मण्डल' के तत्त्वावधानमें राहतका कार्य आरम्भ किया था। उस समय मुझे गीताप्रेसके निष्काम स्वयंसेवकोंकी भावपूर्ण सेवाओंको देखनेका अवसर मिला था। श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके नेतृत्वमें उनकी प्रेरणा और निर्देशनके अनुसार गीताप्रेसके तत्पर स्वयंसेवक बड़े उत्साहके साथ मनुष्यों और पशुओंकी सहायताका कार्य कर रहे थे। लगभग एक हजार गौओंका एक सेवा-शिविर गंगा-तटपर उनके द्वारा चलाया जा रहा था। आगे चलकर इस सहायता और सेवाका कार्य-भार मेरे ऊपर ही आ गया, पर उस समय दैवी संकटके क्षणोंमें श्रीपोद्दारजीके नेतृत्व-कौशलका प्रत्यक्ष परिचय मिला था, जिसके फलस्वरूप वह सेवाकार्य सभीके लिये सराहनीय बन गया था। ■

श्रीसीतारामजी जालान

यात्राका मुहूर्त

घटना सम्भवतः १९६५ के आस-पासकी है। मुझे अपने किसी निजी कार्यसे उड़ीसा प्रदेशकी ओर जाना था। मैंने यात्राकी सुविधाके लिये ट्रेनमें एक बर्थका रिजर्वेशन करा लिया था।

जिस दिन यात्रा करनी थी, उसके एक दिन पहले मैं गीतावाटिका गया पूज्य ताऊजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के पास उन्हें प्रणाम करनेके लिये तथा उनका आशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये, जिससे यात्रामें सफलता मिले। श्रीताऊजीको जानकारी भी थी कि मैं किस कार्यके लिये उड़ीसा प्रदेशकी ओर जाने वाला हूँ। ज्यों ही जाकर मैंने ताऊजीको प्रणाम किया, उन्होंने मेरी यात्राके कार्यक्रमके बारेमें पूछा। मैंने बतलाया— कल सबेरेकी ट्रेनसे जाना है।

मेरी बात सुनकर ताऊजीने अपनी एक डायरी निकाली और उसमें कुछ देखकर वे मन-ही-मन गणना करने लगे। गणना करके उन्होंने मेरे प्रस्थानका मुहूर्त निकाला और मुझसे कहा— कल इतने बजे घरसे प्रस्थान करना।

ताऊजीकी बात सुनकर मैं बड़े असमंजसमें पड़ गया। बात यह थी कि उन्होंने प्रस्थानका जो समय बतलाया था, उससे एक घंटा पहले ही ट्रेनके छूट जानेका समय था। मुहूर्तके समयके अनुसार यदि मैं घरसे प्रस्थान करूँगा तो ट्रेन मिल ही नहीं सकती थी। मेरे चेहरेपर दुविधा-असमंजसके भाव स्पष्ट रूपसे उभर आये थे। मुखपर प्रसन्नताके अभावको देखकर ताऊजीने पूछा— क्या बात है ?

मैंने परिस्थितिसे अवगत कराते हुए उनसे कहा— आपने जो समय बतलाया है, उससे एक घंटा पहले ही ट्रेनके डिपार्चरका समय है।

मेरी बात सुनकर ताऊजीने पुनः डायरी देखी और दुबारा गणना करके कहा— कल घरसे उसी समय प्रस्थान करना, जो मैंने बतलाया है। अब रही बात ट्रेनकी। अपना सारा सामान किसी व्यक्तिके हाथ स्टेशनपर भेज देना। वह जाकर बर्थपर तुम्हारा सामान रख देगा। घरके द्वारपर कार तैयार रखना। कार स्टार्ट रहे। जो समय बताया है, उसी समय घरसे प्रस्थान करके कारसे स्टेशनके लिये चल पड़ना। कौन जाने, शायद ट्रेन मिल ही जाय। यदि नहीं मिले तो प्लेटफार्मपर ही रहना और अगले दिन जाना, पर यह ध्यान रहे कि जो समय बतलाया है, उससे पहले चल देनेकी जल्दबाजी मत करना। चलते समय 'नारायण' 'नारायण' अवश्य कहना।

अब मेरे लिये कोई विकल्प नहीं था। भले ट्रेन छूट जाय, पर अब तो बताये गये समयसे प्रस्थान करना था। ट्रेनके छूट जानेपर अगले दिन जानेसे भी मेरे कामके सिद्ध होनेमें संदेह था। मेरे लिये तो कल ही जाना आवश्यक था, पर जो भी हो, अब तो वैसा ही करना था, जैसा ताऊजीने कहा था और मैंने वैसे ही किया। कारसे स्टेशन पहुँचकर मैं ज्यों ही प्लेटफार्मपर गया, मैंने देखा कि ट्रेन खड़ी है। मैं जल्दी-जल्दी अपने डिब्बेमें चढ़ा और मेरे चढ़ते ही ट्रेन चल दी।

कोई भी इसे एक संयोग कह सकता है, पर मेरी भीतरी आस्था है कि ट्रेनके मिल जानेका यह संयोग भी उनके कृपा-प्रसादसे घटित हुआ। ट्रेनमें बैठा हुआ मैं बार-बार यही सोच रहा था कि ताऊजीके सतत सर्वहित चिन्तनकी बार-बार बलिहारी है, जिनके संकल्पके फलस्वरूप ट्रेन एक घंटा विलम्बसे चली और मैं अपनी यात्रापर जा सका। 'ट्रेन छूट जाय तो अगले दिन जाना,' यह वाक्य तो उन्होंने अपने संकल्पित 'कार्य' पर आवरण डालनेके लिये और स्वयंको छिपाये रखनेके लिये कह दिया। वे दूसरोंका कार्य सिद्ध तो करते हैं, पर करते हैं छिप-छिपकर।

किसीने ठीक ही कहा—

मुझे मालूम है वो नजर करते हैं।
मगर नजर बचाके, नजर करते हैं।।

श्रीभालचन्द्रजी शर्मा

[१] दर्शन एवं सन्निधि

परम भागवत बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के प्रथम दर्शन मुझे फरवरी १९५७ ई. रतनगढ़ (राजस्थान) में उनके निवासस्थानपर हुए थे। उन दिनों मैं प्रथमा परीक्षा देनेके लिये वहाँ गया था। मुझे नित्य पाठके लिये 'श्रीदुर्गा सप्तशती' पुस्तककी आवश्यकता हुई। वहाँके पुस्तक-विक्रेताने बतलाया— यहाँ गीताप्रेसके श्रीभाईजी आये हुए हैं। उनके वहाँ आपको इच्छित पुस्तक प्राप्त हो सकती है।

मैं तुरन्त युगपुरुषके दर्शनके लिये हर्ष-विभोर हो चल पड़ा। मैं बाल्यकालसे गीताप्रेससे प्रकाशित सत्साहित्यका और 'कल्याण' मासिक-पत्रिकाका अवलोकन-अध्ययन करता रहता था। भारतवर्षके महान धार्मिक दुर्लभ ग्रन्थोंके प्रचारक, प्रकाशक और अनुवादकके मुझे जीवनमें प्रथम बार सहज दर्शन सुलभ हो रहे थे, यह मेरा अहोभाग्य था। बाबूजी एक कक्षमें, जहाँ सर्वत्र सत्साहित्य भरा हुआ था, बैठे 'कल्याण' सम्पादनके काममें व्यस्त थे। मैंने सादर अभिवादन किया। बाबूजीने मधुर और विनम्रताभरे शब्दोंमें कहा— आप कहाँसे आये हैं और आपको क्या चाहिये ?

मैं स्नेहसिक्त मधुर वचन श्रवणकर आनन्दविभोर हो गया। मैंने अपनी इच्छा व्यक्त की। बाबूजीने अपने कर-कमलोंसे मुझे 'श्रीदुर्गा सप्तशती' पुस्तक प्रदान की। यह मेरा जीवनका सचमुच सुनहला अवसर था। उस समय मुझे बाबूजीके प्रथम दर्शन मात्रसे शान्तिका अनुभव हुआ। इतना ही नहीं, भविष्यमें इन महापुरुषके सम्पर्क और सान्निध्यमें रहकर काम करूँ, तत्क्षण यह लालसा जाग उठी।

मैं कुछ वर्षोंके पश्चात् मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण करके कामके लिये गीताप्रेस-गोरखपुर चला आया। सौभाग्यसे मुझे यहाँ काम मिल गया। उस वर्ष 'कल्याण'के विशेषांकके रूपमें 'संक्षिप्त देवी भागवतांक' की तैयारी हो रही थी। मुझे इस अंककी प्रतिलिपि बनानेका काम सौंपा गया। मंगलमय श्रीभगवानकी अहैतुकी कृपासे सहज ही बाबूजीकी सन्निधिमें काम करनेका सुअवसर प्राप्त हुआ। यह मेरा परम सौभाग्य था।

[२] पर-दुःख कातर

मेरे आत्मीय बन्धु श्रीशंकरलालजी पाठक गीताप्रेसमें काम करते थे। उनके एक बार आँखोंमें बड़ी पीड़ा हो गयी थी। बाबूजीके सत्परामर्श और सत्प्रयत्नसे इनकी आँखें बाल-बाल बचीं। पाठकजीकी आँखोंका बाबूजी कितना ख्याल रखते थे, यह मुझे तब अनुभव हुआ, जब बाबूजी कई बार प्रेरणाप्रद बातें कहते— पाठकजी ! आप अपनी आँखोंका पूरा ख्याल रक्खें, कोई ऐसा काम न करें, ताकि आँखोंपर उसका असर पड़े।

सन् १९६३ में मेरे पूज्य भाई श्रीचिरंजीलालजी शर्माको उपचारके लिये वृन्दावन स्थित टी.बी. सैनीटोरियममें भर्ती कराया था। भर्ती करानेके कुछ दिन पश्चात् इनकी हालत चिन्ताजनक हो गई थी। मैं अशान्त और व्यथित चित्त होकर घबराया हुआ बाबूजीके पास गया। बाबूजी बोले— असली रोग तो हमारा भवरोग है, उसकी दवा करनी है। भालचन्द्र! उसकी दवा केवल मंगलमय श्रीभगवानका पवित्र नामोच्चारण है। तुम अपने भाईके लिये अभीसे श्रद्धा-विश्वासपूर्वक *'अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः'* इस मन्त्रका जप करो। तुम्हें अवश्य-अवश्य लाभ होगा।

बाबूजीने एक पत्र भी लिख करके दिया, जिसे पढ़कर वहाँके सभी रोगी बन्धुओंने बड़ा लाभ उठाया था। मैंने बाबूजीसे सान्त्वना पाकर एक सप्ताहतक उक्त मन्त्रका जप किया। एक सप्ताह पश्चात् वृन्दावनसे संतोषप्रद पत्र मिला कि पाँच पौण्ड वजन बढ़ गया है और स्वास्थ्यमें सुधार है। तत्पश्चात् बाबूजी कई बार उनके स्वास्थ्यके बारेमें मुझसे पूछ लेते थे।

[३] बच्चोंके प्रेमी

एक बार मैं सपरिवार बाबूजीसे मिलने गीतावाटिका गया था। दो छोटे-छोटे बच्चोंको देखकर बाबूजीने लेखनी नीचे रख दी और छोटे बच्चेको आपनी गोदमें लेकर मुझसे बोले— भाया! ई बड़ मुन्नको तो दिनेश नाम है, म जाणु हूँ। पण छोट मुन्नकोके नाम है, म कोनी जाणु? (अर्थात्— इस बड़े मुन्ना का नाम दिनेश है, यह मै जानता हूँ। परन्तु छोटा मुन्नाका क्या नाम है यह नहीं जानता?)

मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि बाबूजीको मेरे एक पुत्रका नाम भली प्रकार याद है। मेरा अन्तर बड़ा विभोर हो रहा था। मैंने कहा— बाबूजी! ई न प्यारस 'गुड्डू' ही बोला हाँ और नाम कोनी निकाल्यो (अर्थात्— इसका नाम प्यारसे गुड्डू ही बोलते हैं, अभी अन्य नाम नहीं है)।

बाबूजी बोले— ई को नाम 'सुदर्शन' कढ़ाल्यो (अर्थात्— इसका नाम 'सुदर्शन' बोलिये)।

तत्पश्चात् बाबूजीने दोनों बच्चोंको फल दिये। अकलुष-अकाम प्यारमें एक जादू होता है, जो सबको मुग्ध कर लेता है। बाबूजीके इस जादूसे सभी मुग्ध रहते थे और मैं तो सदा ही विमुग्ध रहता था। ■

डा. श्रीजगदीशजी गुप्त

[१] नैमिषारण्यमें शुभागमन

मैं उनके प्रथम साक्षात्कारसे सम्बद्ध एक ऐसा संस्मरण यहाँ दे रहा हूँ, जिसे मैं अबतक कभी भूल नहीं सका।

नैमिषारण्यकी पुराण-प्रसिद्ध ऋषिभूमि। मेरे मातृगुरु स्वामी नारदानन्दजी द्वारा उसका पुनर्नवीकृत सात्त्विक आश्रम। एक कक्षमें श्रद्धेय स्वामीजीके समीप बैठा हुआ मैं। अकस्मात् सामान्य कुरता-धोती पहने एक संभ्रान्त व्यक्तिका सविनय अभिवादन करते हुए प्रवेश। स्वामीजी द्वारा समागत अतिथिका शील-सौजन्यके साथ प्रिय शब्दोंमें ऐसा स्वागत। वह ऐसा

लगे कि जैसे साधारणमें कुछ असाधारण निहित हो। परिचयकी प्रक्रिया– ये हैं 'कल्याण'के सम्पादक श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार।

मैं अप्रत्याशित सुखसे चकित, अभिभूत। समुपस्थित अन्य लोग भी आनन्दित। सत्संगकी सुपरिचित शैलीमें बातचीतका समारंभ। तप और त्यागके सन्दर्भमें पोद्दारजी द्वारा सुनायी गयी एक लघु कथा:

एक वैभवशाली नरेशने अपने पुत्रों एवं परिजनोंके स्वार्थपूर्ण कपटव्यवहारसे दुखी होकर अन्ततः अपने राज्यका त्याग कर दिया और संन्यासी वेश धारण करके भिक्षावृत्ति अपनाते हुए जीवन-यापन करने लगा। अपने इस त्यागमय जीवनमें उसे पहलेसे अधिक सुख-सन्तोष मिला और वह अपने पूर्ववर्ती ऐश्वर्य-युक्त जीवनको भुलानेमें बहुत दूरतक सफल हो गया। लोकमें एक त्यागीतपस्वीके रूपमें उसकी विशेष ख्याति होने लगी, क्यों कि वह कभी राजा रहा था और अपनी ओरसे ही उसने राज्य त्याग दिया था। अपनी प्रशंसा सुनकर उसे सुख मिलता था और वह सांसारिक प्रलोभनोंके प्रति उदासीन रहनेका सबको उपदेश भी देने लगा था।

एक दिन जब वह भिक्षा माँगकर लौट रहा था तो सामनेसे एक अन्य संन्यासी आते दिखायी दिये। उन्होंने इसे इस प्रकार धक्का दे दिया कि सारी भिक्षा धरतीपर गिर गयी। इसने निरीह भावसे उनको देखा, पर कुछ कहा नहीं। सोचा, अनजानमें वह टकरा गया होगा। कुछ कहनेसे उसके मनको ठेस लगेगी। दूसरेको दुख देनेसे स्वयं भूखा रह जाना अच्छा है। दूसरे दिन फिर ऐसा ही घटित हुआ। वही संन्यासी आये और उसी तरह भिक्षा-पात्र गिराकर चले गये। इसने फिर अपने क्षोभको दबा लिया और उनसे एक शब्द भी नहीं कहा। तीसरे दिन यथाक्रम जब यह भिक्षा माँगकर नगरसे वापस होकर उसी जगह पहुँचा तो वह संन्यासी फिर वैसे ही धक्का देकर जाने लगे। इस बार इस संन्यासीसे न रहा गया। गिरे भिक्षा-पात्रको उठाते हुए इसने उनसे विनम्र शब्दोंमें किन्तु सीधे ढंगसे पूछा– महाराज ! मुझसे आपका ऐसा क्या अपराध हुआ है कि आप तीन दिनोंसे बराबर मेरी भिक्षा धरतीपर गिरा देते हैं और मुड़कर देखते भी नहीं कि क्या हुआ ? मैंने दो दिनोंसे कुछ भी भोजन नहीं किया है, यह आप जानते हैं, फिर भी आज आपने मेरी भिक्षा गिरा दी। जब मैं इतना बड़ा राज्य त्याग सकता हूँ तो क्या यह स्वल्प भिक्षा उससे भी बड़ी है, जिसे मैं त्याग नहीं सकता। आप मुझे आघात देकर क्यों जाते हैं ?

उस संन्यासीने शान्त, गम्भीर और सुस्पष्ट स्वरमें ठीक सामने आकर दृष्टिसे दृष्टि मिलाते हुए कहा– महात्मन् ! आपने राज्य तो त्यागा, परन्तु राज्य त्यागनेका अहंकार अबतक आपके मनमें बना हुआ है। मैं आपके उसी अहंकारको छुड़ा देना चाहता हूँ क्योंकि बिना उसको छोड़े आपका त्याग पूर्ण नहीं होगा।

इतना सुनते ही राजा-संन्यासी अपना भिक्षा-पात्र धरतीपर डाल कर उसके चरणोंपर गिर गया और कहने लगा– आप मेरे सच्चे गुरु हैं। आज जो शिक्षा आपने मुझे दी है, उसके लिये मैं आपका ऋणी हूँ। सचमुच मैं अभीतक अपने राजापनके अहंकाराको नहीं छोड़ पाया था। आपने उसे अपने उपदेशसे छुड़ा दिया। मैं आपका उपकार कभी नहीं भूलूँगा।

जब उसने सिर उठाया तो पाया कि वह संन्यासी अदृश्य हो चुके थे। एक प्रकारसे उनका आना और अन्तर्धान हो जाना पहले संन्यासीको ईश्वरीय वरदान जैसा प्रतीत हुआ।

यह कहानी मैंने स्मरणसे वर्षोंबाद शब्द-बद्ध की है, अतः शब्दावलीमें अन्तर आ जाना स्वाभाविक है, किन्तु आशय और अभिप्रायमें कोई अन्तर नहीं है और न प्रसंग ही बदला है। मुझे इस संदर्भमें पोद्दारजी द्वारा लिखित 'मनको वशमें करनेके कुछ उपाय' नामक लघु पुस्तिकामें उद्‌धृत गीताके अध्याय १३ श्लोक ८ की प्रथम पंक्तिमें आये पद *'इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च'* का स्मरण आ रहा है, जिसमें वैराग्यके प्रसंगमें अहंकारका आत्यन्तिक निरसन आवश्यक माना गया है। इसीके लिये *'जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्'* का विधान किया गया है। यह तत्त्व-ज्ञान, लगता है, उक्त कथा द्वारा व्यक्त करना पोद्दारजीको अभीष्ट था।

[२] समझौता-परस्तीसे दूर

गाँधीजीने हिन्दी-उर्दूके मामलेमें कृत्रिम समझौतेका रास्ता अपनाकर हिन्दुस्तानीका पक्ष लिया, पर पोद्दारजी उनके प्रभावसे कणमात्र भी विचलित नहीं हुए। भाषाकी प्रकृति और स्वरूपको उन्होंने सदा संस्कृतिका वाहक माना, राजनैतिक उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये समझौतापरस्तीका साधन नहीं बनाया। जनतातक पहुँचनेके लिये उनके द्वारा सस्ती लोकप्रियतावाली किसी भी हीन वस्तुका ग्रहण नहीं किया गया, वरन उन्होंने नैतिक उन्नयनको प्रेरित करने वाली उच्चस्तरीय सामग्री ही प्रस्तुत की, जिसमें संकीर्णताकी प्रवृत्ति कहीं भी दिखायी नहीं देती। भौतिकवादी जीवन-दृष्टिका विरोध तो होना ही था, क्यों कि उन्होंने वेद-उपनिषद् आदिकी अध्यात्मवादी परम्पराको पोषित एवं पुष्पित करनेका प्रारम्भसे ही संकल्प किया था। देशके दुर्भाग्यपूर्ण राजनैतिक विभाजनके कारण जो अवाञ्छित मनोभाव 'हिन्द' शब्दके साथ संलग्न होता दिखायी देता है, उसकी छाया भी उनके चिन्तन एवं सम्पादनपर दिखायी नहीं दी। भगवच्चर्चा, श्रीराधामाधव चिन्तन, पद-रत्नाकर, उपनिषदोंके चौदह रत्न, प्रेम-दर्शन, मानव-धर्म, साधन-पथ, मनको वशमें करनेके उपाय आदि हिन्दी-रचनाएँ, हिन्दी पत्रिका 'कल्याण' एवं अँगरेजी पत्रिका 'कल्याण-कल्पतरु' में प्रकाशित विचार तथा अन्य स्फुट लेख आदि सब इस बातके साक्षी हैं कि पोद्दारजी न तो संकीर्ण-बुद्धिके व्यक्ति थे और न हीन-भावसे ग्रस्त थे। वे अपने देश, जाति और धर्मके गौरवके प्रति प्रगाढ़ रूपसे आस्थावान थे। साहित्यमें जब सफल सम्पादकोंकी सूची कोई इतिहासकार बनायेगा तो मैं समझता हूँ कि पोद्दारजीका नाम उसमें उपयोगी साहित्य-प्रकाशनके संदर्भमें शीर्षस्थ रहेगा। ऐसा नहीं है कि मैं गीताप्रेसके समस्त प्रकाशनोंमें व्यक्त सभी विचारोंसे पूर्णतया सहमत हूँ, परंतु इतना अवश्य है कि उनके लोकोपकारक पक्षकी सच्चाई और सामर्थ्यके विषयमें मुझे कोई सन्देह नहीं है। उन्होंने उपनिषदों, पुराणों, स्मृति आदि अन्य अनुपलब्ध अथवा अल्प-उपलब्ध ग्रन्थोंके विशाल संख्यामें प्रकाशन और प्रभावकारी वितरणकी व्यवस्था करके भारतीय संस्कृतिकी जो निस्स्वार्थ सेवा की है, वह अप्रतिम और अभिनन्दनीय है। देशको पतनके गर्तकी ओर ले जाने वाले पाखण्डी, स्वार्थी तथा प्रपंची तथाकथित 'महापुरुषों'के बीच यदि उनके नामका डंका नहीं बजा तो उसका कारण यही था कि उन्होंने मान-सम्मानके राजनैतिक प्रलोभनोंसे अपनेको दूर रक्खा और मौन भावसे अन्तस्सलिला नदीकी तरह अपनी सद्वृत्तिको लोकोन्मुखी बना कर भीतर-ही-भीतर प्रवाहित होने दिया। हिन्दीकी जितनी सेवा रामायण, गीता, महाभारत आदिके सर्वजन सुलभ, किन्तु साथ ही नितान्त शुद्ध, प्रभूत संस्करण

छाप-छापकर उन्होंने की है, उतनी किसी भी सरकारी या गैर-सरकारी संस्थानके द्वारा अभीतक नहीं की जा सकी। मैंने भारतीय प्रकाशनोंके तुलनात्मक आँकड़ोंको देखा और पाया कि यदि गीताप्रेसके प्रकाशनोंको कम कर दिया जाय तो हिन्दी भाषाका स्थान भारतकी अन्य कई भाषाओंके नीचे आ जायेगा। इससे सर्वथा स्पष्ट है कि जो गौरव, जो संस्कार हिन्दीको बहुभाषाविद् पोद्दारजीकी दूरदर्शी एवं सदाशयी नीतिसे प्राप्त हुआ, वह अमूल्य और अकल्पनीय है। ■

डा. श्रीजयशंकरजी त्रिपाठी

[१] अध्यात्मका आलोक

बहुत बड़े बगीचेके बीच छोटा-सा हरसिंगार जब शरद्-ऋतुमें अपने फूलोंसे लदकर रातको आँख उघारता है, तब उसको कोई देखता नहीं। बगीचेमें अनेक तरहके वृक्ष हैं, उधर खेतमें फसलें खड़ी हैं, वनस्पतियोंके इस सम्मर्दमें हरसिंगारका छोटा पेड़ किसीकी दृष्टिका अतिथि नहीं हो सकता। कान्तारके बीच वृक्षोंकी सघन कतार धरतीको छिपाये हैं, उधरसे होकर कोई रास्ता भी नहीं जा सकता और उसी सघनतामें कहीं निःस्पृह भावसे हरसिंगारके छोटे पेड़ रात्रिमें अपने कुसुमोंकी अंजलि बिखेर रहे हैं। गाँवका बगीचा और गहन कान्तारका प्रकीर्ण प्रदेश दोनों ही हरसिंगारके उन कुसुमोंकी भीनी महकसे महमहा रहे हैं। शरदकी रात्रि हरसिंगारके फूलोंकी सुगन्धिमें बसती है, पर हरसिंगारका पेड़ धरतीके किसी अनजान कोनेमें अपनी छोटी शाखाओं और पत्तियोंमें जागता है। लघु जीवनका समष्टिके लिये यही महत्संकल्प संतोंका स्वभाव है। इस शतीके ऐसे ही भारतीय संत श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार हैं।

उनका मासिक 'कल्याण' अत्यन्त ही निर्मल उद्देश्यसे संचालित पत्र था। उस पत्रकी सबसे बड़ी देन यह है कि इस बीसवीं शतीमें पश्चिमसे आक्रान्त भारतीय चिन्तकोंने, जो अपनी सनातन परम्पराको रूढ़िग्रस्त कहकर उपेक्षा की, उस परम्पराकी बात भी नहीं सुननी चाही, 'कल्याण'ने उस सनातन परम्पराके विचारों, तर्कों तथा उपलब्धियोंको बड़े ही सुव्यवस्थित ढंगसे भारतीय समाजके सामने मुखरित किया। 'कल्याण'में हम ऐसे विचारोंको पढ़ेंगे, सम्भवतः जो अन्यत्र न प्रकाशित होते और शिक्षित युवकोंकी चिन्तन-धारा इनके विकल्पपर कुछ न सोच सकती। जगद्गुरु शंकाराचार्यों, तान्त्रिकों, योगसाधकों एवं इस परम्पराके धुरीण मनीषियों, जैसे पण्डित मदनमोहन मालवीय, स्वामी करपात्रीजी, महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज आदिके विचारोंका जितना सहज प्रचार-प्रसार 'कल्याण'के माध्यमसे हुआ, उतना अन्य किसी माध्यमसे कम। हम अपनी परम्पराका भी कुछ दर्शन कर सकें, इसका मधुर दीपक 'कल्याण'में श्रीपोद्दारजीने प्रज्वलित किया।

हरसिंगारके कुसुमकी भीनी महककी तरह पोद्दारजीका जो कृतित्व भारतीय समाजको संजीवनी देता हुआ उसीमें ओत-प्रोत हो गया है, बाह्य दृष्टिसे उसका दर्शन हम नहीं कर सकते। हम जान ही नहीं सकते कि यह प्रभाव हमपर कहाँसे पड़ रहा है, लेकिन भावी पीढ़ी जब

आजके वर्तमानके इतिहासका आकलन करेगी और यह सोचेगी कि भौतिकताके महान अन्धड़में भी अपनी सनातन विचार-वनस्पतियोंके अंकुर किस सम्बलसे शेष रह गये, तब उसे भारतीय विचारकों एवं संतोंकी एक लम्बी कड़ीका परिचय मिलेगा, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार आदि उसी कड़ीकी सन्धि हैं।

[२] श्लोकोंकी अर्थ-प्रक्रिया

पोद्दारजी परम भागवत वैष्णव थे। सात्त्विक जीवन और अहिंसाकी पूजा उनका व्रत था। उनका वैष्णव धर्म पुराना होकर भी वर्तमान आलोककी नव चेतनाको आत्मसात् कर व्यवहृत हो रहा था। प्रकारान्तरसे वह सही मानवधर्म था और इसी मानवधर्मका सन्देश उन्होंने 'कल्याण'के माध्यमसे देश-विदेशमें सर्वत्र पहुँचाना चाहा था। सभीका कल्याण चाहनेवाली शान्ति-प्रिय जनताने उनके सन्देशको आत्मसात् किया है। उन्होंने अपने इस अहिंसा-पूर्ण मानवधर्मका ही दर्शन अपने आराध्य कृष्ण तथा राममें किया है। अहिंसाकी महिमासे वे बहुत प्रेरित थे तथा मांस-भक्षणको जीवनका हेय धर्म समझते थे, एतदर्थ अपने आराध्योंमें भी जहाँ प्राचीन साहित्यमें वैसा उल्लेख था, उसे उन्होंने स्वीकार न किया और उसपर दूसरी ही दृष्टि दी। गीताप्रेस गोरखपुरसे 'वाल्मीकि रामायण' एवं 'अध्यात्म रामायण' के जो संस्करण प्रकाशित हुए हैं, उनमें रामके लिये जहाँ आखेटके भोजनका प्रसंग आया है वहाँ टीकाकारोंने उसका अर्थ कुछ और ही किया है या किया ही नहीं है। टीकाकारोंका यह आदर्श पोद्दारजीका ही आदर्श रहा होगा। 'अध्यात्म रामायण'में रामने गिद्धराज जटायुकी मृत्युके पश्चात् भाव-विभोर होकर पिताके समान उसकी श्राद्ध-क्रिया की तथा उसके श्राद्धमें पक्षियोंके भोजनके निमित्त मारे गये हरिणका माँस घासकी धरतीपर फैला दिया और पक्षियोंको आमंत्रित कर कहा कि तुमलोग जटायुके श्राद्धका भोजन करो। गीताप्रेससे प्रकाशित 'अध्यात्म रामायण'में इसका अर्थ नहीं किया गया है और यह टिप्पणी दी गयी है कि हम अर्थ समझनेमें असमर्थ हैं। इसी प्रकार 'वाल्मीकि रामायण' अयोध्या-कांडमें वनवासके निमित्त राम, लक्ष्मण और सीता चित्रकूट पहुँचते हैं, निवासके लिये लक्ष्मणने पर्णशाला तैयार की, रामने उसकी वास्तु शान्तिके लिये व्यवस्था करनेको कहा। लक्ष्मणने वास्तु शान्तिकी पूजाके लिये कृष्ण-मृगका वध कर उसका माँस भूँजा और तब पूजा सम्पन्न हुई, इस प्रसंगके उद्धरण हैं:—

ऐणेयं श्रपयस्त्वैतच्छालां यक्ष्यामहे वयम्।
स लक्ष्मणः कृष्णमृगं हत्वा मेध्यं प्रतापवान्।
अयं सर्वः समस्तांगः शृतः कृष्णमृगो मया।

टीकाकारने इसपर टिप्पणी दी कि यहाँ ऐणेय, कृष्णमृग आदिका अर्थ हरिणका मांस, काला मृग आदि नहीं है, यह वनवासी रामकी वृत्तिके विपरीत है। यहाँ इन शब्दोंका अर्थ जंगली गजकन्द और उसके गूदेसे है। (द्रष्टव्य, गीताप्रेस वा.रामा. पृष्ठ ३४२-३४३) जो भी अर्थ हो, वैष्णव अहिंसा-धर्मका मन्तव्य यही है और इस मन्तव्यके लिये इतने महान साहसके साथ हम इस अर्थ-मीमांसामें प्रवृत्त होते हैं। हमारे इस लक्ष्यकी महिमा अभिनन्द्य है। ऐसे ही दृढ़ विचार पोद्दारजी द्वारा प्रवर्तित हुए हैं।

[३] हिन्दीके उन्नायक

राष्ट्रभाषा हिन्दीके उन्नायकोंमें भी पोद्दारजीका अपना अलग स्थान है। वे हिन्दीकी किसी संस्थासे सम्बद्ध नहीं रहे हैं। उन्होंने हिन्दीकी परीक्षाओंका संचालन अन्य संस्थाओंकी तरह नहीं किया है, लेकिन काश्मीरसे लेकर रामेश्वरमूतक उन्होंने हिन्दीके सरल सुबोध सांस्कृतिक पौराणिक ग्रन्थोंकी सस्ते मूल्यमें जो उपलब्धि करायी है, उससे भारतीय जनताके व्यवहारमें हिन्दी घर करती गयी है। वे बातें न करके क्रियातत्पर होनेके व्यसनी थे। वे एक साथ हिन्दू-धर्मके तपःकुटीर तथा अपनेमें राष्ट्रभाषा हिन्दीके कार्यकारी संस्थान थे।

गोरखपुरका नाम गुरु गोरखनाथकी स्मृति दिलाता है। आगेके इतिहासमें यह 'कल्याण' मासिक पत्रिकाके लिये स्मरण किया जायेगा। साहित्य-साधनाके लिये नगरोंकी यह ख्याति बहुत विरल होती है, पर यह साहित्य-साधना वैष्णव अहिंसा-धर्मसे अनुप्राणित रही है, इसलिये उसे इस गौरवका श्रेय मिल रहा है। हम जानते ही हैं कि धरतीके आस-पास ही कपिलवस्तुमें अहिंसाके महान अवतार गौतम बुद्ध अवतरित हुए थे, पूरब मिथिलामें अध्यात्म विद्याके गोष्ठी-गरिष्ठ महान विदेहने जन्म लिया था। गोरखपुरसे कुछ ऐसे ही आलोकको प्रकाशित करनेका लक्ष्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने सम्पादित किया है। उनके कार्य जितने महान हैं, व्यक्तिगत जीवन और व्यवहारमें भी वे उतने ही महान थे। उनके समाज-कल्याणकारी शुभकार्योंकी भीनी सौरभ अध्यात्मके आलोकके साथ सदाके लिये धरतीपर शेष है। ■

श्रीओंकार शरदजी

उनकी स्मृतिको प्रणाम

अतीत युगके ऋषियोंकी कल्पना करनेमें जो रूप-चित्र मनमें अंकित होता है, उसे ही यदि आधुनिक युगका बाना पहनाकर देखा जाय तो जो चित्र बनेगा– वही रूप था, भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका।

श्रीभाईजी इस युगके साकार तपस्वी ऋषि थे, तनसे, मनसे। अत्यधिक सरल प्रकृति और सादी वेशभूषा और मनसे तपस्वी, त्यागी, परमार्थी और साधक। जिसे भी एक बार उस पुण्य-रूपको देखनेका सौभाग्य मिला, वह उनके व्यक्तित्वकी चुम्बकीय शक्तिसे उनसे चिपक कर रह गया। फिर कभी उनके आकर्षणके प्रभावसे मुक्त न हो सका।

सम्भवतः सन् १९५० के आस-पास मुझे गीताप्रेस, गोरखपुरमें उनके दर्शनका सौभाग्य मिला था। वे तब अपनी समस्त मानसिक व शारीरिक शक्तिका उपयोग 'कल्याण'का सम्पादन करनेमें लगा रहे थे। 'कल्याण' उनके मनमें ही नहीं बसा था, वे स्वयं कल्याण-मय हो गये थे। उस बड़े कमरेमें धार्मिक विषयोंकी अनगिनत पुस्तकोंके भण्डारके बीच गद्दीपर बैठे वे जिस ध्यान-एकाग्रतासे 'कल्याण'के पृष्ठोंको सँवार रहे थे, उसे देखकर मेरे मनमें उस साधककी जो तस्वीर बनी थी, वह आजतक धुँधली नहीं हुई है। शायद मुझ जैसे नास्तिकके मनमें प्रथम बार उसी कमरेमें आस्तिकता और आस्थाका अंकुर फूटा था।

श्रीभाईजी एक योगी थे, संत थे, ऋषि थे, ज्ञानी थे, भक्त थे, रसिक थे, भावसिद्ध थे,

श्रीभाईजी निर्मल गंगाजलकी पवित्र धारा थे। लोगोंने उनसे बहुत पाया है, जिसमें जितनी सामर्थ्य थी, वह उनसे उतना ले सका।

मैं तो उनकी स्मृतियोंको प्रणाम करनेके योग्य भी नहीं। मैं अति लघु और अधम हूँ, लेकिन मैं कैसे भूलूँ कि उनके छवि-दर्शन व एकाग्र साधना-मूर्तिके दर्शनने ही मुझमें आस्थाके अंकुर उगाये थे। मैं भी उस गंगाजलसे स्नान करके पवित्र हुआ था। मैं उस गंगाको कैसे भूलूँ? ■

आ. श्रीशान्तिबाई बजाज

[१] सुहागकी रक्षा

मेरी सुपुत्री कुसुमके विवाहमें बड़ी बाधा आयी। जो भी कुसुमकी जन्मकुण्डली देखता, वह इनकार कर देता। बात यह थी कि कुसुम त्रि-मंगली थी और तीन मंगल होनेसे वैधव्यका योग होता था। मैं सर्वथा निराश हो गयी। मै पूज्य श्रीभाईजीसे कभी सांसारिक बात नहीं करती थी और न करनेकी चाह थी, पर जब सब ओरसे निराशा-ही-निराशा दिखलायी देने लगी तो विवश होकर उनके सामने अपनी समस्या और विवशता व्यक्त करनी पड़ गयी। मेरे जीवनका सम्भवतः यह एक ही प्रसंग है, जब मैंने अपनी सांसारिक उलझन उनके सामने रखी हो। जब श्रीराधाष्टमी महोत्सवपर मैं गोरखपुर आयी थी, तब मैंने उनसे सारी बात कही थी। श्रीभाईजीने बेटी कुसुमकी जन्मकुण्डली मुझसे ले ली और पूज्य पं. श्रीरामजीलालजीको देखनेके लिये दी। पं. श्रीरामजीलालजीने भी यही कहा कि त्रि-मंगली होनेसे वैधव्यका योग है। वैधव्य-योगकी बात सुनकर श्रीभाईजीने मुझसे कहा— तुम कुछ चिन्ता मत करना और एक पाठ रासपञ्चाध्यायीका कर लो।

श्रीभाईजीके शब्दोंको सुनकर मुझे थोड़ी शान्ति मिली। स्नान करके तथा शुचि वस्त्र धारण करके मैं पूजाके आसनपर बैठी और मैंने रासपञ्चाध्यायीका एक पाठ भी कर लिया। श्रीराधाष्टमी महोत्सवकी भीड़ और व्यस्तता होनेके कारण फिर श्रीभाईजीसे मेरी कोई बात नहीं हुई। मेरा अनुमान था कि महोत्सवके बाद कुछ बात होगी, पर मेरा अनुमान तो मात्र अनुमान ही निकला। जिस दिन मुझे वापस कलकत्ता जाना था, वह दिन भी आ गया और उस दिनकी प्रस्थान वाली घड़ी भी आ गयी, पर कोई बात नहीं हुई। मैं पूज्या माँजी और पूज्य श्रीभाईजीको प्रणाम करके कारमें बैठ गयी। ज्यों ही कार चलकर आठ-दस कदम बढ़ी होगी कि प्रिय चन्दूने ड्राइवरको जोरसे आवाज देकर कार रोकवा ली और मेरे पास आकर उसने कहा—आपको नानाजी बुला रहे हैं।

मैंने प्रिय चन्दूसे कहा— मैं अभी-अभी तो उनसे मिलकर आ रही हूँ।

प्रिय चन्दूने कहा— आप ठीक कह रही हैं, पर नानाजीने मुझे भेजा है आपको बुला लानेके लिये।

कारसे उतरकर मैं श्रीभाईजीके पास गयी। श्रीभाईजीने कहा— कहने वाली बात तो मैं तुमको कह ही नहीं पाया। तुम तनिक भी चिन्ता मत करना। कुसुमका विवाह होगा, अवश्य

होगा और ऐसा होगा कि वैसा विवाह तुम्हारे परिवारमें आजतक नहीं हुआ होगा। तुम सगाईके लिये लड़केकी निगह करती रहना।

श्रीभाईजीके इस अमोघ और अव्यर्थ आश्वासनको सुनकर मेरा मस्तिष्क कितना हलका हो गया और मन कितना प्रसन्न हो उठा, यह तो मात्र मैं ही जानती हूँ। मैं गोरखपुरसे कलकत्ते आयी और योग्य वरकी लगातार खोज करती रही। संयोगसे एक लड़का भी त्रि-मंगली मिल गया और उससे कुसुमका सम्बन्ध निश्चित कर दिया गया। इसके बाद मैं गोरखपुर आयी और श्रीभाईजीसे मिली। लड़केकी जन्मकुण्डली श्रीभाईजीको देखनेके लिये दी। जन्मकुण्डली देखते ही श्रीभाईजीने कहा— यह जन्मकुण्डली तो उस लड़केकी नहीं है। तुम लोगोंको नकली जन्मकुण्डली दी गयी है। झूठी जन्मकुण्डलीके आधारपर यह सम्बन्ध तो ठीक नहीं हुआ।

श्रीभाईजीके इन शब्दोंको सुनकर मैं घबरा उठी और सचिन्त स्वरमें बोल पड़ी— तो अब क्या किया जाय ? क्या यह सम्बन्ध तोड़ दिया जाय ?

मेरी बात सुनकर श्रीभाईजीने कहा— अब इस सम्बन्धको तोड़ना ठीक नहीं। पहले भी कई सम्बन्ध तोड़े जा चुके हैं। सम्बन्ध तोड़नेसे घरवाले नाराज होंगे। जो सम्बन्ध निश्चित कर दिया है, उसीपर स्थिर रहना उचित होगा। अब तो इसी लड़केसे कुसुमका विवाह होने दो। हाँ, भविष्यमें तीन तिथियाँ कष्टकारक हैं। विवाहके आठवें दिन, फिर तीसरे वर्ष और फिर आठवें वर्ष भीषण कष्ट अवश्य आयेंगे, पर घबराना मत। सर्व समर्थ और परम सुहृद भगवान सब सँभालेंगे और मंगल करेंगे।

जब श्रीभाईजीने अपना शुभाशीर्वाद प्रदान कर दिया, तब विवाहकी तैयारी होने लग गयी। लड़केका शुभ नाम था श्रीओमप्रकाशजी टिबड़ेवाल और यह विवाह सन् १९६३ में सम्पन्न हुआ। विवाहके अवसरपर पूजा-पाठके लिये श्रीभाईजीने गोरखपुरसे पूज्य पं. श्रीरामजीलालजीको भेजा। पण्डितजीको भेजनेमें भी विचित्रता थी। श्रीभाईजी जब भी पण्डितजीको कहीं भेजते थे तो पण्डितजीसे पूछ लेते थे और इसके बाद ही ट्रेनमें रिजर्वेशन कराते थे, पर इस बार श्रीभाईजीने न तो पण्डितजीसे पूछा और न उनकी सुख-सुविधाके बारेमें अधिक सोचा। जब श्रीभाईजीने रिजर्वेशनकी टिकट उनके हाथमें थमाते हुए कलकत्ते जानेके लिये कहा तो पण्डितजीको बड़ा आश्चर्य हुआ कि आज यह नयी बात कैसे हो गयी, जो बिना पूछे ही यात्राका कार्यक्रम निश्चित कर दिया है। अब, जब श्रीभाईजी जानेके लिये कह रहे हैं, तब अस्वीकृतिके लिये जगह ही नहीं थी। पण्डितजी गोरखपुरसे कलकत्ते आये और विवाह होनेके पूर्व जो कुछ विशेष देवार्चनकी बात श्रीभाईजीने पण्डितजीको बतलायी थी, वह सब उन्होंने सम्पन्न किया। विवाहमें भी पाण्डित्य-पौरोहित्यका कार्य भी पूज्य पण्डितजीने ही किया और विवाह बड़े उत्साहके वातावरणमें हुआ। सचमुच विवाह वैसा ही हुआ, जैसा श्रीभाईजीने कहा था। परिवारमें विवाहको लेकर परस्परमें कुछ मतभेद और असन्तोष था, पर वह विरोध कर्पूरकी भाँति उड़ गया। विवाहके अवसरपर सभी एक मत हो गये। सबने पूर्ण सहयोग दिया। विवाहकी व्यवस्था तथा व्ययकी बात अब याद आती है तो यही कहना पड़ रहा है मानो भगवती लक्ष्मीने श्रीगणेशजीके साथ विवाहके अवसरपर हमारे घरमें शुभ निवास कर लिया हो। ऋद्धि-सिद्धिने मानो अपना भण्डार खोल दिया हो। वस्तुतः ऐसा विवाह हमारे परिवारमें मेरे

देखनेमें कभी नहीं हुआ था। परिवारके वृद्धजन भी खुलकर सराहना और विस्मय कर रहे थे। विवाहके अवसरपर एक बात बड़ी विचित्र हुई। जब भी कोई विशेष मंगलाचार होता, तब उस अवसरपर तारघरका पोस्टमैन आकर श्रीभाईजीके शुभाशीर्वादका तार दे जाता। जब हलदात हो रहा था, ठीक उस अवसरपर श्रीभाईजीका तार मिला। फिर जब द्वारपूजाके समय तोरण मारनेका अवसर आया, तब श्रीभाईजीका तार मिला। जब रातको तीन बजे पहिरावनी हो रही थी, तब तार मिला। इस प्रकार तीन-चार तार श्रीभाईजीके मिले और मिले उसी मौके पर, जब वह मंगलाचार सम्पन्न हो रहा था। वर-पक्षके लोग आश्चर्यमें डूब कर कहने लगे— तुम्हारे श्रीभाईजीको क्या कोई दिव्य दृष्टि है, जो वे वहाँ गोरखपुरमें बैठे-बैठे यहाँ कलकत्तेकी बातें देख लेते हैं और ठीक उसी अवसरपर तार पहुँचा देते हैं?

बड़ी धूमधामके साथ सारे वैवाहिक कार्यक्रम पूर्ण हुए। दोनों पक्षके लोग विवाहके हो जानेसे बड़े प्रसन्न थे। ससुरालमें परिणीता कुसुमका बड़ा लाड-चाव हो रहा था, तभी बड़ा हृदय विदारक समाचार सुननेको मिला कि भीषण कार दुर्घटनामें कँवरजी श्रीओमप्रकाशजी बाल-बाल बचे। दुर्घटनामें कार इतनी क्षति-ग्रस्त हुई और ऐसी पिच गयी कि उसकी मरम्मत ही नहीं हो सकती। उसे तो अब कबाड़खानेमें फेंकना होगा। ड्राइवर ऐसा घायल हुआ कि अस्पताल पहुँचते-पहुँचते उसने दम तोड़ दिया। बस, दुर्घटना होते ही कारका दरवाजा अपने-आप खुल गया और कारने कँवरजीको बाहर फेंक दिया। कँवरजी फुटपाथपर आकर गिरे। छातीमें थोड़ी चोट आयी। यह दुर्घटना विवाहके ठीक आठवें दिन हुई थी। मुझे श्रीभाईजीकी बात याद आ गयी। मन-ही-मन श्रीभाईजीको बार-बार प्रणाम करने लगी, जिनके शुभाशीर्वादसे बेटी कुसुमके सुहागकी रक्षा हो गयी।

जब आठवें दिन यह घटना घटी तो मनमें सदा आशंका बनी रहती थी कि विवाहके तीसरे वर्ष न जाने कौन-सा संकट आयेगा। मनमें आशंका थी, पर यह आस्था भी थी कि श्रीभाईजीके आशीर्वादसे वह संकट भी दूर हो जायेगा।

कँवरजी श्रीओमप्रकाशजीने एक बंगाली व्यक्तिकी साझेदारीमें कोई काम किया। वह व्यक्ति पिताजीको पसन्द नहीं था। पिताजीने मना भी किया, पर बात बहुत आगे बढ़ चुकी थी। अब वापस लौटना सम्भव नहीं था। पिताजीका संदेह सही निकला। काम-काज करते-करते उस व्यक्तिसे कँवरजीकी अनबन हो गयी। अनबन इस सीमा तक हो गयी कि उसने हत्या करनेके लिये कमर कस ली। एक दिन वह सचमुच कातिलके रूपमें छुरा लेकर आफिसमें आ गया और छुरेकी नोक कँवरजीकी छातीपर लगा दी। कँवरजीके तो पसीना छूट गया। वे कुछ बोल नहीं पाये। न जाने कैसे उस व्यक्तिकी मति बदली और उसने कहा— आज नहीं, कल तुम्हारी हत्या तुम्हारे पिताके सामने ही करूँगा, जिससे उनको भी पता चल जायेगा कि मुझसे अनबन करनेका नतीजा क्या होता है?

एक बार तो जान बची। घर आकर कँवरजीने सारी बात अपने पिताजीको बतलायी। पिताजी बहुत घबराये और अपने बेटेसे रुष्ट होकर कहने लगे— मैंने कितनी बार मना किया था कि इसके साथ साझेदारीमें काम मत करो, पर तुमने मेरी बातपर ध्यान नहीं दिया। अब तो भगवान ही मालिक हैं। यह तो बहुत बड़ा संकट आ गया। तुम कल घरसे बाहर मत निकलना।

कल वाला दिन भी आया। कँवरजी, पिताजी तथा परिवारके सभी लोगोंके मनपर घोर आतंक छाया हुआ था। वह व्यक्ति भी मुहल्लेमें ही रहता था। मुहल्लेमें चर्चा चल पड़ी कि उस व्यक्तिका देहान्त हो गया। पिताजीने यही समझा और अपने लड़केस यही कहा— यह झूठी अफवाह फैलायी गयी है, जिससे तुम घरके बाहर निकल आवो और फिर तुमको घेर लिया जाय।

मुहल्लेमें उसकी मृत्युकी चर्चा जब बहुत फैलने लगी तो कँवरजीके पिताजीने अपने एक रिश्तेदारको फोनपर वस्तुस्थितिका पता लगानेके लिये कहा। उन्होंने पता लगाकर बतलाया कि वस्तुतः उसकी मृत्यु हो गयी है। इस समाचारके मिलनेपर कँवरजीके घरवालोंकी चिन्ता दूर हुई। यह कितने आश्चर्यकी बात है कि जो कल मारनेके लिये आया था, वही आज सदाके लिये 'चला' गया। श्रीभाईजीकी कृपासे तीसरे वर्ष भी आयी हुई यह विपत्ति सहज ही टल गयी।

आठवें वर्ष जो विपत्ति आयी, वह वस्तुतः बड़ी भयानक थी। कँवरजीके फेफड़ेमें मवाद पड़ गया। मुँहसे काला-काला, गाढ़ा-गाढ़ा खून निकला करता था। डाक्टर लोग ऑपरेशनके लिये साहस नहीं कर पा रहे थे। सबकी मान्यताके अनुसार मृत्यु निश्चित थी। एक कुशल डाक्टरने ऑपरेशन किया और कँवरजीके फेफड़ेसे अढाई किलो मवाद निकला। क्या कोई इसपर विश्वास करेगा? पर सचमुच इतना मवाद निकला और श्रीभाईजीकी कृपासे कँवरजी ठीक हो गये।

श्रीभाईजीने जो तीन तिथियाँ बतलायी थीं, उन-उन तिथियोंपर भीषण कष्ट आये, पर समर्थ संत *'मेटहिं कठिन कुअंक भाल के'*। श्रीभाईजीके ही अनुग्रहसे त्रि-मंगली होते हुए भी बेटी कुसुमका विवाह हुआ और उनकी असीम कृपासे उन अति भीषण और भयानक परिस्थितियोंमें कँवरजीके प्राणोंकी रक्षा हो गयी। वस्तुतः बेटी कुसुमके सुहागकी रक्षा हो सकी पूज्य श्रीभाईजीके अहैतुकी अनुग्रहके फलस्वरूप ही।

[२] भीषण बीमारीसे मुक्ति

पूज्य श्रीभाईजीने मेरी बेटी कुसुमके जीवनधन श्रीओमप्रकाशजीके प्राणोंकी तो रक्षा की ही, उन्होंने कुसुमके जीवनको भी जीवनका दान दिया। विवाहके बाद कुसुमको भी कम कष्ट नहीं झेलना पड़ा। सच्ची बात तो यह है कि उसने जाना ही नहीं कि सुखी और स्वस्थ जीवन किसे कहते हैं। विवाहके बाद कुसुम १३ वर्ष तक लगातार बीमार रही। शरीरके पृष्ठ भागमें कन्धेसे लेकर कोहनी तकके अंगमें रक्त-संचार बन्द हो गया। पीछेका सारा अंग काला पड़ गया था। १३ सालकी अवधिमें छः बार ऑपरेशन हुआ, पर वह ठीक नहीं हुई। कलकत्तेका बड़े-से-बड़ा डाक्टर भी निराश हो गया। फिर वेलोर जाकर भी वहाँके प्रधान डाक्टरको दिखला दिया। उसने भी ला-इलाज बतला दिया और कह दिया कि अब इसका शरीर नहीं बच पायेगा। परिवार वाले निराश होकर घर ले आये। जब पीड़ा अधिक होती तो उसे मार्फियाका इंजेक्शन देकर बेहोश कर दिया जाता। वह लाशकी तरह खाटपर पड़ी रहती। उसके परिवार वाले उससे तंग आ गये थे। अवश्य ही उसके पति श्रीओमप्रकाशजीका उसके प्रति सद्भाव बना रहा और वे उसकी भली प्रकार सेवा-सँभाल करते रहते थे। इस प्रकार उसके जीवनके दिन निकल रहे थे। कुसुमकी पूज्य श्रीभाईजीके प्रति बड़ी आस्था थी। एक दिन जब वह खाटपर पड़ी-पड़ी अपने जीवनकी

कष्टपूर्ण घड़ियाँ बिता रही थी, उसने श्रीभाईजीसे मन-ही-मन प्रार्थना की– क्या सारा जीवन इसी प्रकार खाटपर पड़े-पड़े कष्टमें ही बीतेगा? सहनेकी भी तो एक सीमा होती है। अब तो सहन कर सकना भी सम्भव नहीं है। मेरे कारण सब परेशान हो रहे हैं।

रातको उसे स्वप्नमें श्रीभाईजीके दर्शन हुए। उन्होंने मुस्कुराते हुए कुसुमके सिरपर अपना वरद कर-कमल रखा और सान्त्वना देते हुए कहा– तू घबरा मत। अब कष्टके दिन बीत गये।

इस स्वप्नको कुसुमने शुभका संकेत समझा। अगले दिन एक पड़ोसी व्यक्ति मुहल्लेके एक साधारण-से होमोपैथ डाक्टरको लेकर कुसुमके घर आया और कुसुमकी सासूजीको कहने लगा– माँजी! एक बार कुसुमको इन्हें दिखलाइये।

माँजीने कहा– आपको भी क्या मजाक सूझी है। बड़े-बड़े डाक्टरोंने तो निराश होकर जबाब दे दिया और आप इन्हें दिखलानेके लिये बुला लाये हैं। ऐसा लगता है कि आपकी मति मारी गयी है, पर जब आप ले ही आये हैं तो कुसुमको दिखला दीजिये। इस दिखलानेसे क्या होना-जाना है। दिखलाकर आप अपनी तसल्ली कर लीजिये। अब तो जीवनके शेष दिन ऐसे ही बीतेंगे।

होमोपैथ डाक्टरने कुसुमको देखा और कहने लगे– रोग मेरी समझमें आ गया है। मैं जो पुड़िया दूँगा, वह आप इसे खिला दीजिये।

उन्होंने अपनी डिस्पेंसरीसे दवाकी पुड़िया दी और एक पुड़िया कुसुमको खिला दी गयी। पुड़िया खानेके चार-पाँच घंटेके बाद कुसुमने कहा– मुझे भूख लग रही है।

शायद सालों बाद कुसुमने भूखकी बात कही थी। सबको बड़ा विस्मय हुआ। उसको थोड़ा-सा आहार दिया गया। होमियोपैथिक दवा दी जाती रही और उसके फलस्वरूप धीरे-धीरे कुसुम ठीक हो गयी। कुसुमके ठीक हो जानेसे उस होमोपैथ डाक्टरकी बड़ी ख्याति हो गयी। दूरदूरके रोगी उनके पास आने लग गये। डाक्टर साहब कहने लगे कि कुसुम तो मेरे लिये लक्ष्मीके समान है, जिसके कारण मेरा चिकित्सालय चमक उठा। कुसुमके शरीरमें पीड़ा तो अब भी कभी-कभी होती है और जब यह कष्ट होता है तो होमोपैथ डाक्टर साहब अपनी पुड़िया दिया करते हैं। इससे कुसुमको आराम हो जाता है।

मेरी बेटी कुसुमकी जीवन-धारा पूज्य श्रीभाईजीकी कृपाके चमत्कारकी एक अद्भुत गाथा है। श्रीभाईजीके असीम वात्सल्य और असीम अनुग्रहके फलस्वरूप महा कठिन रोगसे कुसुम मुक्त हो सकी। यह भी श्रीभाईजीकी कैसी अकल्पनीय महानता है कि भाग्यकी उन कठिन वक्र रेखाओंको उन्होंने प्रभावहीन बना दिया अपने प्रतापसे और सफलताका श्रेय दे दिया अन्य व्यक्तिको। ■

पं. श्रीगोविन्दशरणजी शास्त्री

आस्वादन और गायन

एक बार वैष्णव-साहित्यके एक बहुत बड़े विद्वान संतके पास कोई शोधार्थी (रिसर्चस्कालर) आया और उनसे निवेदन किया– महाराजजी, श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का

''पद रत्नाकर'' नामक ग्रंथ उनके द्वारा रचित पदोंका संग्रह है। वही ग्रन्थ मेरे शोधका विषय है। उसमें मुझे यह दिखलाना है कि श्रीभाईजीकी रचनाओंमें कहाँ-कहाँपर किस-किस वैष्णव भक्त कविकी रचनाओंकी छाया है। आपने वैष्णवसाहित्यका गम्भीर अध्ययन किया है। मेरी आपसे प्रार्थना है कि इस विषयमें आप मेरा अपेक्षित सहयोग करनेकी कृपा करें।

वे संतजी बोले— इस प्रसंगमें हमलोग फिर बात करेंगे। अभी तो आप दूरसे आये हैं। मार्गकी थकावटको दूर कर लें। पहले यह बताइये कि आप खायेंगे क्या?

आगन्तुक शोधार्थी कुछ कहे, इससे पहले ही वे संतजी अपने आसनसे उठकर गये और एक थालमें भोजन लगा लाये। आगन्तुक खाने लगे। भोजन कर चुकनेके उपरान्त जब वे फिर संतजीके सामने आकर बैठे तो संतजीने उनसे प्रश्न किया— भोजन कैसा था?

आगन्तुक शोधार्थीने उत्तर दिया— बहुत ही बढ़िया। पूड़ियाँ बड़ी गरम, नरम और कचौड़ियाँ भी खूब करारी और जायकेदार थीं।

इस प्रकार आगन्तुक शोधार्थीने भोजनकी एक-एक वस्तुके गुण और स्वादका खूब विस्तारसे वर्णन किया। अन्तमें संतजीने पूछा— अब आप यह बतानेकी कृपा करें कि आपके इस वर्णनपर किन-किन महानुभावोंके वर्णनकी छाया है?

आगन्तुक बोले— इसपर किसीकी छाया कैसी? यह तो मेरा अनुभव है, मैंने खाया है, स्वाद लिया है तो बता रहा हूँ।

संतजी हँसकर बोले— तो भैया, जैसे तुमने स्वाद लिया और वर्णन किया, वैसे ही वैष्णव भक्त संत कवियोंने ''भक्ति''का स्वाद लिया और गाया, भगवानका स्वाद लिया और सराहा, भगवानकी करुणा, दया, उदारताका स्वाद लिया और उसपर रीझे। जैसे वैष्णव भक्तोंने स्वाद लिया और गाया, वैसे ही श्रीभाईजीने भी स्वाद लिया और गाया। इसमें छाया कहाँसे आ गयी? छायाका मतलब तो यह हुआ कि एकने स्वाद लिया और गाया तो दूसरेने बिना स्वाद लिये ही गाना शुरू कर दिया। यह कैसा शोध है? आपने यह बात कैसे मान ली कि भाईजीने स्वाद लिया ही नहीं और उन्होंने औरोंकी रचनाको सुन-पढ़ करके अपने पद लिखे हैं। भैया, हमारी-तुम्हारी शोध-दृष्टिमें बड़ा अन्तर है। इस प्रपञ्चमें मैं आपकी कोई सहायता नहीं कर सकता। ■

श्रीलीलाधरजी पोद्दार

संरक्षणकी छाया

आदरणीया बाई (श्रीसावित्रीबाई फोगला) की नानीजी मेरी भी नानी लगती हैं। बाईकी माँ और मेरी माँ सगी बहनें हैं। नानीके जीवनके अन्तिम वर्ष हमारे घरमें ही बीते। एक बार मैं नानीके पास बैठा हुआ बात कर रहा था। बात करते-करते वे उस समयकी बहुत पुरानी बातें बतलाने लगीं, जब उन्होंने अपनी सबसे बड़ी बेटीका शुभ विवाह पूज्य मौसाजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के साथ किया था। सं. १९७३ वि. में मौसाजीका गौहाटीमें विवाहोत्सव खूब धूमधामसे सम्पन्न हुआ। सुकुलीन, सुयोग्य, स्वस्थ और सुन्दर वर (मौसाजी)

से अपनी लाड़ली बेटीका पाणिग्रहण कराकर नानाजी (श्रीसीतारामजी साँगानेरिया) सन्तोष और सुखमें निमग्न हो गये। 'फेरा' होनेके बाद ही मौसाजीने अपनी सासूजीसे मिलनेकी इच्छा व्यक्त की। मौसाजीकी सासूजी (अर्थात् नानीजी) लकवासे ग्रस्त होनेके कारण खाटपर ही प्रायः लेटी रहती थी और मौसाजीको उनकी अस्वस्थताका परिज्ञान था। नानाजीने घरके अन्दर जाकर खाटपर लेटी हुई नानीजीसे कहा– ए रामदेईकी माँ! कँवरजी तेरेसे मिलना चाहते हैं। बात करोगी क्या?

नानीजीने कहा– जरूर मिलूँगी, उन्हें बुलाकर लाइये।

अपने श्वसुर श्रीसीतारामजीके साथ मौसाजी आये और अपनी सासूजीके चरणोंमें प्रणाम करके वहीं बैठ गये। नानीजी (सासूजी) ने मौसाजीको बहुत आशीर्वाद दिया एवं सुदीर्घ आयुकी मंगल-कामना की। कुछ इधर-उधरकी बातें होनेके बाद मौसाजीने अपने मनकी मुख्य बात कही– माँजी! आपका शरीर तो अस्वस्थ है। मेरा एक अनुरोध है कि आप मेरे साथ कलकत्ते चलिये। वहाँपर अनुभवी एवं कुशल वैद्य, डाक्टर, हकीम आदि हैं। आपके रोगकी सुन्दर चिकित्सा हो जायेगी। बिना परेशानीके सारी व्यवस्था हो जायेगी। आप मेरे साथ चलिये।

मौसाजीका अनुरोध सुनकर नानीजीका जी भर आया। अन्तरका उल्लास आँखोंमें छलक आया। नानीजी भावातिरेकसे कुछ बोल नहीं पायी। नानाजी भी कुछ बोल नहीं पाये। भाव-विह्वल नानाजी वहाँसे अलग हटकर एक खम्भेके सहारे खड़े होकर प्रेमाश्रु बहाने लगे। मन-ही-मन कहने लगे– यही सुशील बालक हमलोगोंकी सँभाल करेगा और हमें तारेगा।

असलमें सन्तानके रूपमें नानाजीके केवल चार लड़कियाँ ही थी। इस कारण मौसाजीके इन शब्दोंने नानाजीको भाव विभोर बना दिया था। श्रीडूँगरमलजी लोहियाने नानाजीको आँसू बहाते देख लिया और पास आकर पूछा– क्या बात है? आप ऐसा क्यों कर रहे है?

श्रीलोहियाजी सहलाने-समझानेके लिये आये थे, परंतु उन्हें क्या ज्ञात कि ये अश्रु व्यथाके नहीं, उल्लासके हैं! नानाजी आँसू पोंछकर मौसाजीके पास आये और कहा– कँवरजी, अभी तो आप पधारिये। फिर बादमें इसे लेकर मैं आ जाऊँगा। आप घबराइयेगा मत। भगवानने चाहा तो आराम हो जायेगा, अन्यथा जैसी हरि-इच्छा।

मौसाजीने नत-मस्तक होकर उनकी बात स्वीकार कर ली।

विवाहके लगभग उन्नीस वर्ष बादका दूसरा प्रसंग है। समय बीतते क्या देर लगती है? जाते हुए समयने दूसरा चित्र सामने रखा। मौसाजी रतनगढ़में हैं। वहीं पर 'कल्याण' का सम्पादकीय विभाग है और सम्पादक मण्डल है। रतनगढ़में ही नानीजी-नानाजी हैं। नानाजी अस्वस्थ हो गये। मौसाजीने उनकी चिकित्साकी पूरी व्यवस्था की, भरपूर चेष्टा की, पर रोग घटा नहीं। हर प्रकारकी दवा करवाई गयी, पर लक्षण यही बताने लगे कि अब शरीर रहेगा नहीं। मौसाजीकी प्रेरणासे और व्यवस्थासे नानाजीके पास हरिनाम संकीर्तन आरम्भ हो गया। लगभग पन्द्रह-सोलह दिन-तक निरन्तर हरिकीर्तन श्रवण करते रहनेके बाद नानाजीने अपने पाञ्चभौतिक चोलेका परित्याग किया। प्राणान्त होनेके पूर्व मौसाजीकी कृपाके फलस्वरूप उन्हें भगवानके दर्शन भी हुए। नानाजीके क्रिया-कर्म, छमाही श्राद्धादिका प्रबन्ध स्वयं मौसाजीने किया। कृत्य कर्म आदि सम्पन्न हुए नागपुर वाले भाई श्रीपुरुषोत्तमजीके द्वारा। बाबूजी अपने निजी आदमी आदरणीय श्रीगिरिधारी बाबा तथा श्रीमोतीजी पारीकको नानीजीके पास,

उनकी सुरक्षा और सँभालके लिये सुलाने लगे।

अपनी बेटी रामदेईके पाणि-ग्रहण संस्कारके दिन नानाजीने ठीक ही कहा था कि यही हमलोगोंकी सँभाल करेगा और हमें तारेगा। इन शब्दोंको याद करके नानीजीकी आँखें बार-बार भर आती थीं। नानीजीके सजल नयनोंकी छवि आज भी प्रत्यक्ष-सी लगती है। ■

स्वामी श्रीरामेश्वरानन्दजी

मेरे बड़े भैया

बात पुरानी है। 'कल्याण' पत्रिकाका 'भगवन्नाम महिमा और प्रार्थना' विशेषांक मेरे रामके हाथ लग गया। इस दिव्य निधिको अचानक पाकर मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। इस विशेषांकके वाचनसे मेरी नाम-निष्ठा दृढ़ हुई और श्रीभाईजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के प्रति श्रद्धा-विश्वास जाग उठा। मेरे रामका भाव इतना अधिक उमड़ने लगा कि उनके दर्शनकी चाह बढ़ती ही चली गयी। यह चाह पूर्ण हुई ऋषिकेशके स्वर्गाश्रममें। वहीं सन् १९६५ में श्रीभाईजीके सर्व प्रथम दर्शन हुए और उनके मिलते ही वास्तवमें ऐसा लगने लगा कि उनसे मेरे रामका कोई पुरातन सम्बन्ध है। मेरे रामने उनके श्रीचरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया और उन्होंने तुरन्त मेरे रामको उठाकर अपनी-गोदमें ले लिया। उनका वह वात्सल्य जब याद आता है तो नेत्र झरने लगते हैं।

मेरी चाह थी कि मेरे राम श्रीभाईजीके साथ गोरखपुर रहें, पर उन्होंने मेरे रामको कुछ दिनके लिये चुरूमें रखा और फिर वृन्दावन जानेके लिये कह दिया। वृन्दावन भेज देनेके बाद भी उनको मुझ दासका ध्यान बना रहा। उनके वात्सल्यकी बार-बार बलिहारी, उन्होंने वृन्दावनमें श्रीशिवकृष्णजी डागाको मेरे रामकी सँभाल करते रहनेके लिये पत्र लिखा।

श्रीभाईजीका वात्सल्य मेरे मनपर सदा छाया रहता था। एक बार मैं वृन्दावनसे गोरखपुर आया। दर्शनके साथ-साथ साधन सम्बन्धी कुछ निर्देश प्राप्त करनेकी भावना भी मेरे रामके मनमें बसी हुई थी। एकान्तमें श्रीभाईजीसे बात करनेका अवसर मिला और इसी एकान्तमें मेरे रामको श्रीभाईजीसे प्राप्त हुई तुलसीमाला, मन्त्र, इष्ट, भक्ति-भावना-पद्धति। एकान्तमें मेरे रामको उनसे जो मिला, उससे मैं उनको गुरु समझने लगा। उन्होंने मेरी भावना भाँप ली और मेरे रामसे उन्होंने तुरन्त कहा– आप गुरु तो उन्हीं संतको मानिये, जिनसे आपने भेष लिया है। हाँ, आजसे हम आपके बड़े भइया हैं।

मैं तो श्रीभाईजीके दैन्यको देखकर आश्चर्य करने लगा। गुरुवत् सब कुछ बतलाकर गुरुपदसे सर्वथा दूर रहना तो श्रीभाईजीके व्यक्तित्वकी महानता है। मेरी सच्ची चाह है कि ऐसा दैन्य मेरे जीवनमें भी आ जाय।

नाम-निष्ठा होनेके कारण मेरे रामके मनमें ऐसी स्फुरणा बार-बार उठा करती थी कि अखण्ड हरिनाम संकीर्तनका शुभारम्भ किया जाय। मैं अपने बचपनमें भी ऐसा सोचा करता था। सन् १९६८ में मैंने अपनी बात श्रीभाईजीसे कही। श्रीभाईजीने बतलाया– यह काम तो बहुत अच्छा है, पर एक डर है। यश, मान, प्रतिष्ठाके चक्करमें फँस जानेका भय है। इस

चक्करमें फँसते ही हरिनाम छूट जायेगा। यदि यह करना ही हो तो मान-प्रतिष्ठाकी भावनासे बचकर करना चाहिये।

मेरे रामने श्रीभाईजीसे कहा— आप चाहेंगे तो अखण्ड हरिनाम संकीर्तन चल पायेगा और आप चाहेंगे तो मेरा बचाव हो पायेगा। आप ही शक्ति प्रदान करेंगे, जिससे यह उत्तम कार्य सम्पन्न हो पायेगा।

मेरे रामने यह प्रार्थना सच्चे मनसे की थी और श्रीभाईजीने इस सच्चाईका आदर किया। उन्होंने लिखित आश्वासन दिया कि अखण्ड हरिनाम संकीर्तनका शुभारम्भ करो। भगवान इसके लिये तुम्हें शक्ति प्रदान करेंगे और हर प्रकारसे तुम्हें बचायेंगे।

इस आश्वासनके मिलते ही श्रावण शुक्ल तृतीया (२७-७-१९६८) के दिन अखण्ड हरिनाम संकीर्तनकी स्थापना हुई। इसके संचालनमें संकट कम नहीं आये, पर मेरे जीवनाधार परमोदार प्रेमावतार श्रीभाईजीके अपार अनुग्रहसे स्थापित हरिनाम संकीर्तन चल रहा है और उन्हींके अपार अनुग्रहके बलपर भविष्यमें चलता रहेगा। आज श्रीभाईजी हमलोगोंके सामने उपस्थित नहीं हैं, पर इस अनुपस्थितिमें भी उनकी उपस्थितिकी अनुभूति होती रहती है। जीवनमें आये हुए संकटोंके बादल जब उनकी कृपासे उड़कर चले जाते हैं, तब उन क्षणोंमें यह अनुभूति और भी गहरी होती है। उनकी सतत वत्सलता ही तो मेरे रामका सहारा है। ■

श्रीमदनलालजी शाह

[१] कर्जसे मुक्ति

पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के श्रीचरणोंके प्रति मेरे मनमें सदैव ही सहज आकर्षण रहा है। मैं प्रतिवर्ष उनके सत्संगका लाभ उठानेके लिये स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) जाया करता था। सन् १९६९ की बात है। अभी सत्संगका सत्र स्वर्गाश्रममें चल रहा था, पर मैंने बीचमें ही कलकत्ते वापस आनेके लिये सारी तैयारी कर ली। स्वर्गाश्रमसे चलनेके पहले मैं विदाई लेने तथा प्रणाम करनेके लिये बाबूजीके पास डालमिया कोठी गया। ज्यों ही मैंने प्रणाम किया, बाबूजीने पूछा— आप अभी क्यों जा रहे हैं? मैंने तो यह सुना था कि आप यहाँ अन्ततक रहने वाले हैं।

मैंने हाथ जोड़े-जोड़े बाबूजीसे कहा— आपने जो सुना था, वह सही सुना था। मेरे मनमें यहाँ सत्संगके लिये ठहरनेकी चाह तब भी थी और अब भी है, पर मैं अपनी परिस्थितिसे लाचार हूँ। न चाहते हुए भी मुझको सत्संग छोड़कर जाना पड़ रहा है। मेरे सिरपर कर्जका बोझा है। उसकी चिन्ता बनी रहती है। जिन्होंने कर्ज दे रखा है, वे यह सोचते होंगे कि यह कैसा व्यक्ति है, जो कर्ज तो चुकाता नहीं और यहाँ-वहाँ आने-जानेमें तथा जगह-जगह सैर-सपाटेमें खर्च करता रहता है।

बाबूजीने कहा— आपकी बात तो ठीक है, पर जहाँतक बन पड़े, सत्संग तो छोड़ना ही नहीं चाहिये। हाँ, कम खर्चमें काम चलाकर कर्जको चुकाना चाहिये।

मैं बाबूजीके सामने नत-मस्तक था। मेरी आँखें भी भर आयी थी। मैंने उनको प्रणाम

किया और मैं स्वर्गाश्रमसे कलकत्तेके लिये चल पड़ा। सबसे बड़े आश्चर्यकी बात है कि कलकत्ते पहुँचनेके बाद बीस दिनके भीतर-भीतर सारा-का-सारा कर्ज चुकता हो गया। मेरे सिरपर कर्ज था और मैं चुकाना भी चाहता था, परंतु चाह करके भी न जाने कबसे मैं चुका नहीं पा रहा था, वह भारी कर्ज देखते-देखते चूक गया। इतना शीघ्र चूक जानेपर मनमें बार-बार आश्चर्य हो रहा था। मेरा विश्वास है कि मेरी चिन्ता, मेरा कष्ट, मेरे आँसू पूज्य बाबूजीको सहन नहीं हो सके और उनकी अपार कृपासे कमाईका ढंग कुछ ऐसा बैठ गया कि तीन सप्ताहके अन्दर सारा कर्ज समाप्त हो गया। कर्जके बोझसे तो मुक्ति मिल ही गयी, इसके बाद भी भविष्यमें पारिवारिक जीवन साधारण प्रकारसे सुख पूर्वक व्यतीत होने लगा।

[२] विकट संकटका निवारण

सम्भवतः सन् १९८१ के श्रावण मासकी बात है। मैं सपरिवार कलकत्तेके लार्ड सिन्हा रोडपर मोनिको भवनमें रहता था। रविवारके दिन शामको लगभग चार बज रहे थे। मुझे षोडश-गीतके पाठके कार्यक्रममें एक अन्य स्थानपर जाना था। मेरे साथ मेरी पत्नीको भी जाना था, किन्तु उस दिन अपनी अस्वस्थताके कारण वह जा नहीं पायी। मैं अकेले ही चला गया था। संयोगकी बात, उस दिन घरपर कोई नही था। अकेली मेरी पत्नी और रसोइया था। मेरी पत्नी खाटपर बैठी हुई थी और षोडश-गीतका पाठ कर रही थी।

घरमें ठाकुर-सेवा थी ही। चार बजे ठाकुरजीके उत्थापनका समय होते ही मेरी पत्नीने रसोइयासे कहा— फुलका बनाकर ठाकुरजीको भोग लगा दो।

इधर तो मेरी पत्नी भोग लगानेके लिये रसोइयाको आदेश दे रही थी और उधर रसोइयाकी नीयत खराब हो गई कि आज अच्छा एकान्त मिला है घरका माल-मत्ता लेकर चम्पत हो जानेके लिये।

उसने मेरी पत्नीके मुँहपर गमछा डाल दिया और उसकी मुँहमें कपड़ा ठूँसनेके लिये ज्यों ही तत्पर हुआ, त्यों ही मेरी पत्नीने रसोइयासे कहा— अरे! कुछ तो भगवानसे डर।

उस रसोइयेपर तो चोरीका भूत सवार था। उसके दिमागपर पागलपन छाया हुआ था। वह बावला भला क्यों मेरी पत्नीकी बातको सुनता! उसने मुँहमें कपड़ा ठूँस दिया। वह रसोइया उसे खाटपरसे खींचपर बीचवाले कमरेमें जमीनपर गिरा दिया और गर्दनमें कपड़ा डालकर ऐंठने लगा। मेरी पत्नीके मनमें भगवत्कृपासे यह बात स्फुरित हुई कि ताली फेंक दो। उसने तालीका गुच्छा फेंक दिया। गुच्छेको फेंकते ही रसोइयाकी दृष्टि गुच्छेपर चली गयी। वह चाभी ही चाह रहा था। मेरी पत्नीके मुखमें कपड़ा बुरी तरह भरा हुआ था ही और अब वह रसोइया उसके गर्दनमें कपड़ेका लपेटा देकर कई ऐंठन भी लगा चुका था। वह तो सर्वथा लाचार थी। मेरी पत्नी जमीनपरसे उठ न पाये, एतदर्थ उसने पत्थरकी बड़ी भारी शिला उसकी छातीपर रख दी। मेरी पत्नीकी ओरसे निश्चिन्त होकर रसोइयेने तालीका गुच्छा उठाया और आलमारी खोलकर माल-मत्ता समेटने लगा।

मेरी पत्नी तो मरणासन्न स्थितिमें थी। स्थिति यह थी कि यदि गर्दनमें कपड़ेकी एक-दो ऐंठन वह रसोइया और दे देता तो उसकी मृत्यु निश्चित थी। उसका दम बुरी तरह घुट रहा था। वह सर्वथा असहाय दशामें भूमिपर पड़ी हुई थी। मन-ही-मन उसने पुकार लगाना आरम्भ कर

दिया— हे बाबूजी ! हे बिहारीजी ! बचाइये।

मेरी पत्नी यह पुकार अपने मनके भीतर-ही-भीतर कर रही थी, पर बड़े आश्चर्यकी बात यह हैं कि मेरे मकानमें जितने फ्लैट हैं, उन-उन फ्लैटमें रहनेवाले सबको वह पुकार सुनायी दी। मेरा मकान दस मंजिलवाला है और इसमें कई फ्लैट हैं। फ्लैटका दरवाजा बन्द करनेके बाद एक फ्लैटकी आवाज दूसरे फ्लैटके अन्दर नहीं जाती, पर यह बहुत बड़ा आश्चर्य है कि मेरी पत्नीकी मूक पुकारको सभी फ्लैटवालोंने स्पष्ट सुना। इतना ही नहीं, पड़ोसके दूसरे मकानवालोंने भी सुना। सभी एक साथ दौड़कर सहायताके लिये आये। मेरे फ्लैटका दरवाजा तो बन्द था। लोगोंने किसी तरह धक्का देकर फ्लैटका दरवाजा खोला। उन सभी लोगोंके आ जानेसे मेरी पत्नीके प्राणोंकी रक्षा हो सकी। उसकी फिर घरपर ही चिकित्सा करानी पड़ी और क्रमशः वह ठीक हो गयी। हमलोगोंकी सुदृढ़ मान्यता है कि मेरी पत्नीके हृदयमें पूज्य बाबूजीके प्रति जो सच्ची निष्ठा थी, उसीके कारण इस विकट संकटका निवारण हो पाया। ■

श्रीश्रीरामजी पसारी

कालके गालसे वापसी

यह प्रसंग मैंने अपने पूज्य पिता श्रीशिवदत्तरायजीके मुखसे सुना था। घटना बम्बईकी है। तब मेरा जन्म भी नहीं हुआ था। हम लोगोंका परिवार और पूज्य श्रीभाईजी एक ही मकानमें एक साथ रहते थे। हमलोग मकानके एक मालेमें थे और भाईजी दूसरे या तीसरे मालेमें रहते थे।

मेरे बड़े भाईका नाम श्रीसीतारामजी पसारी है। जब ये मात्र छः मासके शिशु थे, तब ये किसी रोगसे ग्रस्त हो गये। चिकित्सा तो की गई, पर यह रोग मेरे भाई श्रीसीतारामके लिये घातक सिद्ध हुआ। उपचारसे कोई लाभ नहीं हुआ और वे कालके गालमें चले गये। हाथ-पैर ठण्डे होते ही घरमें बुरी तरह रोना-पीटना मच गया।

ऊपरके तल्लेसे श्रीभाईजी उतरकर नीचे आये। अब यह नहीं कहा जा सकता कि वे घरकी स्त्रियोंके करुण रोदनको सुनकर आये अथवा किसी कार्यसे नीचे आये। नीचे आकर मेरे पिताजीसे उन्होंने पूछा— क्या हो गया ? घरमें ऐसा रोदन क्यों हो रहा है ?

मेरे पिताजीने कहा— वह छः मासवाला शिशु चलता रहा।

भाईजीने कहा— चलो, मुझे दिखाओ।

मेरे पिताजी श्रीभाईजीको घरके भीतर ले गये। श्रीभाईजीने उस शिशुको देखकर कहा— घबड़ाओ नहीं। भगवानके नामका स्मरण करो। सब ठीक हो जायेगा।

इतना कहकर श्रीभाईजी ऊपर अपने तल्लेमें गये। उन्होंने कमरेमें रक्खी हुई होमियोपैथिक दवावाली पेटी खोली और चार-पाँच गोली ले आये। वह होमियोपैथिक गोली श्रीभाईजीने शिशुके मुखमें डाली। लगभग पन्द्रह-बीस मिनटके बाद उस मृत शिशुमें चेतनाका संचार हो गया। श्रीभाईजी तो यही कहते थे कि शिशुको जो जीवन मिला, वह दवाके प्रभावका परिणाम है, पर हमलोग यही मानते थे और हैं कि भले ही श्रीभाईजी श्रेय दवाको दे रहे हैं, पर

कृपामूर्ति श्रीभाईजीने ही मेरे भाई श्रीसीतारामजीको जीवन-दान दिया। ■

श्रीइन्द्रचन्द्रजी महर्षि

[१] समान पारिश्रमिक

सन् १९५६ ई. की शरद पूर्णिमाके दिन पूज्य श्रीबाबाने गोरखपुरमें काष्ठ मौन लिया था और इसके लगभग एक मास बाद पूज्य श्रीबाबा एवं पूज्य श्रीभाईजी गोरखपुरसे रतनगढ़ चले आये थे। इस बार श्रीभाईजी रतनगढ़ लगभग डेढ़ वर्ष रहे थे। सन् १९५७ ई. के आश्विन मासकी बात है। श्रीभाईजीके नोहरेमें शतचण्डी अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ। जितने पण्डित इस अनुष्ठानमें भाग ले रहे थे, उनके भोजनकी व्यवस्था भी नोहरेमें थी।

पण्डितोंके लिये भोजन एवं पूजाके लिये नैवेद्य बनानेके लिये एक हलवाईकी जरूरत थी। इसके लिये घरके ड्राइवरने अपने एक सम्बन्धीको बुला लिया, जिसे एक देहाती हलवाई कहना उपयुक्त रहेगा।

प्रथम दिवस दाल-चूरमेकी रसोई बनवायी गयी, पर वह हलवाई भली प्रकारसे रसोई नहीं बना सका। घरमें चर्चा चल पड़ी— यह हलवाई कुशल नहीं है। अभी तो अनुष्ठानका आरम्भ है। सारे अनुष्ठानकी अवधिमें नैवेद्य-निर्माणके दायित्वको यह कैसे निभा पायेगा? जब यह साधारण मिठाई ही नहीं बना पाया, तब बढ़िया मिठाई तो यह बना ही नहीं सकता। हिसाब करके इस हलवाईको विदा कर देना चाहिये और कोई दूसरा योग्य हलवाई बुलाना चाहिये।

जिस समय यह चर्चा घरमें चल रही थी, मैं भी वहीं खड़ा था। यह पारस्परिक बात चल ही रही थी कि तभी श्रीभाईजी भी वहाँ आ गये। उनके आते ही यह बात उन्हें सविस्तार बतलायी गयी। सारी बात सुनते ही श्रीभाईजीने कहा— अरे, तुम लोग यह क्या सोच रहे हो? ना, ना, उस हलवाईको कुछ मत कहना, न अब कहना और न बादमें। एक अन्य कुशल हलवाईकी व्यवस्था और कर लो। अनुष्ठानकी अवधिमें ये दोनों हलवाई काम करेंगे। इस हलवाईको तो पता ही नहीं चलना चाहिये कि मेरे द्वारा रसोई ठीक नहीं बनी है।

श्रीभाईजीके निर्देशके अनुसार दूसरा सुयोग्य हलवाई बुला लिया गया। बुलानेका कारण यह बतलाया गया— कार्य अधिक है। दो जने मिलकर काम ज्यादा सुचारु रूपमें कर सकते हैं। अकेले आदमीपर कार्यका भार अधिक पड़ना उचित नहीं।

अब दोनों हलवाई मिलकर काम करने लगे। श्रीभाईजीको यह तनिक भी अभीष्ट नहीं था कि उसका जी दुखाया जाय। भले रुपये-पैसे अधिक खर्च हो जायें, पर किसीका चित्त दुखाना श्रीभाईजीको सह्य नहीं था। यही कारण था कि जिस कार्यको एक हलवाई असानीसे कर सकता था, उसी कामके लिये दो हलवाई रखे गये और अनुष्ठान पूर्ण हो जानेके बाद दोनोंको एक समान पारिश्रमिक देकर विदा किया गया।

[२] अनुष्ठानकी दक्षिणा

घटना विक्रम संवत् २०१४ की है और रतनगढ़की है। इन दिनों श्रीभाईजी यहीं विराज रहे थे। किसी निमित्तसे श्रीभाईजीने श्रीगोपाल-सहस्र-नामके पाठका अनुष्ठान निश्चित किया। यह अनुष्ठान कार्तिक कृष्ण प्रतिपदासे आरम्भ होकर एक मास पर्यन्त चलने वाला था और पाठके लिये चार पण्डित वरण किये जाने वाले थे।

पाठारम्भ होनेसे दो-तीन दिन पहले श्रीभाईजीने मुझसे पूछा— आप भी अनुष्ठानमें बैठेंगे क्या ?

कुछ दिन पूर्व ही मैं रसायन-शालाके कार्यसे मुक्त हुआ था और मैं कोई कार्य नहीं कर रहा था। पारिवारिक दायित्वको निभानेके लिये कुछ तो करना आवश्यक ही था, अतः ज्यों ही श्रीभाईजीने पूछा, मैंने हाँ भर दी।

श्रीभाईजीके पूछनेके ढंगसे मुझे कुछ-कुछ ऐसा लगा कि मेरे द्वारा अनुष्ठान वृत्तिका अपनाया जाना उनकी मन-पसन्द बात नहीं थी, पर नौकरीके अभावमें मैंने अनुष्ठानके प्रस्तावको प्रभुकी ओरसे अयाचित कृपा ही समझा। अस्तु, जब मैंने अनुष्ठानके लिये स्वीकृति दे दी तो इसके बाद तीन अन्य ब्राह्मणोंसे भी बात कर ली गयी। हम चारों ब्राह्मणोंके घरपर एक मासकी भरपूर खाद्यसामग्री पहुँचा दी गयी। कार्तिक कृष्ण प्रतिपदाको हम चारों ब्राह्मणोंको अनुष्ठानके लिये सविधि वरण कर लिया गया। वरणोपरान्त अनुष्ठान आरम्भ हो गया। हम चारों प्रातःकाल सात बजे श्रीगोपाल-सहस्र-नामका पाठ करनेके लिये आसनपर बैठ जाया करते थे और प्रतिदिन २७ (सत्ताइस) पाठ करके एक दिनका क्रम पूर्ण कर दिया करते थे।

इस प्रकार प्रतिदिन करते हुए पन्द्रह दिन बीत गये। सोलहवें दिन कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाको मैं पूर्व-निश्चित समयपर अनुष्ठान-कक्षमें पहुँचा तो मैंने देखा कि हम चारोंमेंसे दो पण्डित अपना पाठ पूर्ण करने वाले थे। मुझे थोड़ा विस्मय हुआ कि आज इस शीघ्रताका हेतु क्या है। उन्होंने बतलाया— आज हम दोनों प्रातः बहुत जल्दी आ गये थे। जल्दी आ जानेका कारण यह है कि अमुकके यहाँ शतचण्डी अनुष्ठान प्रारम्भ होने वाला है। शतचण्डी अनुष्ठानमें हम दोनोंका भी नाम है, अतः समयपर पहुँचना है।

मुझे उन दोनों पण्डितोंकी यह प्रवृत्ति अच्छी नहीं लगी। विधान यह है कि एक अनुष्ठानमें वरण स्वीकार करनेके बाद दूसरे अनुष्ठानका वरण स्वीकार नहीं करना चाहिये। उन पण्डितोंकी यह प्रवृत्ति विधानके प्रतिकूल थी। यह सब भली प्रकार समझकर भी मैं चुप रहा और अपने आसनपर बैठकर मैं श्रीगोपाल-सहस्र-नामका पाठ करने लगा। मैं तो चुप था और चुप ही रहनेका निश्चय था, पर किसी अन्यके माध्यमसे यह बात श्रीभाईजी तक पहुँच ही गयी। सूचना मिलते ही श्रीभाईजीने विनम्र निवेदन करते हुए कहलवाया कि आजका पाठ पूर्ण होनेके बाद अमुक पण्डितजी घर जाने लगें तो मुझसे मिल लें।

इन दोनों पण्डितोंने सोचा यह था कि आजकल कोई विधि-विधानपर उतना ध्यान देता नहीं, अतः इस सामाजिक प्रमादका लाभ क्यों न उठा लिया जाय ? यदि दूसरा वरण स्वीकार कर लेनेसे दोहरी कमाईका ढंग बैठ रहा है तो इस अवसरको हाथसे जाने नहीं देना चाहिये। ऐसा सोचकर शतचण्डी अनुष्ठानमें सम्मिलित होनेके लिये उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी थी,

पर श्रीभाईजीके विनम्र निवेदनके रूपमें जो सूचना आयी, उसने उनके मन-मस्तिष्कको झकझोर दिया। तत्काल ही इन दोनों पण्डितोंको भी पता चल गया कि हमारी सारी बात श्रीभाईजीको ज्ञात हो गयी है और यह भी पता चल गया कि किसने जाकर बतलाया है। जिसने बतलाया, उसे इन दोनों पण्डितोंने कुछ बुरा-भला भी कहा।

पोल खुल जानेपर संकोचवशात् वे पण्डितजी, जिनको बुलाया गया था, श्रीभाईजीके पास जानेका साहस नहीं जुटा पाये, पर इसीके साथ उन्होंने तथा उनके साथी पण्डितजीने, दोनोंने शतचण्डी अनुष्ठानमें सम्मिलित होनेके विचारका भी परित्याग कर दिया। अब इन दोनों पण्डितोंके स्थानपर उस शतचण्डी अनुष्ठानमें अन्य दो ब्राह्मणोंका वरण कर लिया गया और वह शतचण्डी अनुष्ठान भली प्रकार अष्टमी-नवमी तिथिको पूर्ण हो गया। इसके बाद कार्तिक पूर्णिमाको श्रीगोपाल-सहस्र-नाम वाला हमारा अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। कार्तिकी पूर्णिमाको हमारे अनुष्ठानके पूर्ण होनेपर जब श्रीभाईजीने हम सभीको दक्षिणा दी तो हमारे आश्चर्यकी सीमा नहीं थी।

श्रीभाईजीने पता लगवा लिया कि शतचण्डी अनुष्ठानमें प्रत्येक ब्राह्मणको क्या-क्या वरण-सामग्री तथा दक्षिणा दी गयी थी। श्रीगोपाल-सहस्र-नामके अनुष्ठानकी पुष्कल दक्षिणा तो हमें मिली ही, इसीके साथ हमें वह भी मिली, जो शतचण्डी अनुष्ठानमें प्रत्येक ब्राह्मणको वरण-सामग्री और दक्षिणा मिली थी। यह केवल उन दो पण्डितोंको नहीं, अपितु हम चारों ब्राह्मणोंको मिली। उन दोनों पण्डितोंके मनकी स्थिति क्या थी, यह तो स्पष्ट रूपसे झलक रही थी उनके मुख मण्डलपर, परंतु मैं आश्चर्यमें नितान्त निमग्न होकर श्रीभाईजीकी यह विचित्र लीला देख रहा था, ऐसी लीला, जो अद्भुत ब्रह्मण्यता, परम उदारता, आदर्श व्यवहारका अनोखा उदाहरण था। ब्राह्मणोंकी प्रसन्नतामें कार्य-सिद्धिका विश्वास तथा शास्त्रीय मर्यादाके पालनमें पूर्ण संलग्नता, श्रीभाईजीकी इस मान्यता तथा इस तत्परताने मेरे मनपर एक स्थायी छाप लगा दी। इस अनुष्ठानमें श्रीभाईजीके द्वारा जो हुआ, वह बात मेरी कल्पनासे सर्वथा परे की थी। ■

श्रीछगनलालजी राँकावत

स्थित-प्रज्ञता

हमारे रतनगढ़ नगरमें भी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघकी शाखा है और नगर-शाखाका गुरुपूर्णिमा उत्सव मनाया जाने वाला था। यह बात विक्रम संवत् २०२१ की है। यह संयोगकी बात थी कि इस समय पूज्य श्रीभाईजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) रतनगढ़में विराज रहे थे। आप वाटर सप्लाई वर्क्सके न्यासी मण्डलकी विशेष बैठकमें भाग लेनेके लिये रतनगढ़ पधारे हुए थे।

हम लोगोंकी चाह थी कि गुरुपूर्णिमा उत्सवमें श्रीभाईजीका उद्बोधनपूर्ण भाषण हो तथा यह उत्सव उनके ही नोहरे (विशाल घेरा हुआ हाता) में आयोजित हो। नगरके संघ- कार्यवाहकके नाते मैं श्रीभाईजीसे मिला और अपने आनेका हेतु बतलाया। उन्होंने नगर-शाखाके कार्यकी

वर्तमान गतिविधि एवं प्रगतिके बारेमें विभिन्न जानकारी प्राप्त की और फिर उन्होंने प्रसन्न मनसे अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी, स्वीकृति स्थान तथा भाषण दोनोंके लिये।

उत्सवका कार्यक्रम शामको पाँच बजे आरम्भ होने वाला था, अतः व्यवस्था करनेकी दृष्टिसे हम कुछ कार्यकर्ता चार बजे ही नोहरेमें पहुँच गये। हम कार्यकर्ता लोग व्यवस्था-कार्यमें संलग्न थे कि आधा घंटा बाद अकस्मात् श्रीदुर्गादत्तजी थरडके निधनका बड़ा ही अशुभ समाचार सुननेको मिला। श्रीथरडजी वाटर सप्लाई वर्क्सके विशिष्ट सदस्य थे, श्रीभाईजीके परम भक्त एवं परम मित्र थे और नगरके अति सम्माननीय व्यक्ति थे। इस शोक-समाचारको सुनते ही हम सभी अवसन्न हो गये। यह शोक-संवाद बिजलीकी तरह सारे नगरमें फैल गया। श्रीभाईजीके एक निजी व्यक्तिने हमें सूचित किया— इस समय श्रीभाईजी श्रीदुर्गादत्तजीके निवास-स्थानपर ही हैं। श्रीदुर्गादत्तजी तो श्रीभाईजीके परम आत्मीयजन थे, अतः अब ऐसा नहीं लग रहा है कि श्रीभाईजी भाषण देनेके लिये आपके उत्सवमें आ सकेंगे। मैं तो यह भी परामर्श देना चाहूँगा कि आप लोगोंको अपना उत्सव भी अब श्रीभाईजीके नोहरेमें नहीं मनाना चाहिये।

शोक समाचारसे हमलोग खिन्न थे ही, इस परामर्शसे हमलोग अत्यधिक किं-कर्तव्य-विमूढ़ हो गये। पाँच बजनेमें अब विलम्ब नहीं था, अतः उत्सवके निमित्तसे सभी स्वयंसेवक तथा आमन्त्रित नागरिक वहाँ नोहरेमें पहुँच चुके थे। पाँच बजे उत्सवको होना ही था, इसलिये अब न तो स्थान-परिवर्तन सम्भव था और न परिवर्तित स्थानपर सम्यक् व्यवस्था सम्भव थी। एक ओर दिमागपर छाया था शोक संवाद और दूसरी ओर चिन्ता थी उत्सवकी सम्पन्नताकी। हमलोग कोई निर्णय ले नहीं पा रहे थे कि अब क्या करें और क्या न करें।

अचानक अन्धकारमें प्रकाशकी किरण फैल उठी। हमारा यह अन्तर्द्वन्द्व और हम सभी लोग डूब गये आश्चर्यके सागरमें यह देखकर कि श्रीभाईजी उत्सवमें भाग लेनेके लिये नोहरेके प्रवेश-द्वारसे प्रवेश कर रहे हैं। श्रीभाईजी उत्सवमें विलम्बसे नहीं, अपितु बिल्कुल ठीक समयसे पहुँचे। उत्सवका कार्यक्रम सही समयपर और ठीक प्रकारसे आरम्भ हो गया। श्रीभाईजीने जिस रीतिसे उपस्थित स्वयंसेवक बन्धुओंको एवं आमन्त्रित नागरिकोंको सम्बोधित किया, उससे स्पष्ट लग रहा था कि श्रीभाईजीको वह शोकाकुल वातावरण स्पर्श भी नहीं कर रहा है। मैं अनुमान भी नहीं कर सकता था कि श्रीभाईजीका मन इतना सुस्थिर और मति ऐसी अविचल हो सकती है। भाषणमें तथ्योंका प्रतिपादन अत्यधिक विवेकपूर्ण एवं संतुलित था। ऐसी स्थितप्रज्ञताका उदाहरण मेरे सामने पहले कभी नहीं आया था। ■

श्रीमालचन्दजी गोयन्दका

[१] बन्द आँखोंसे 'देखना'

सन् १९६३ के जनवरी मासमें मैं पहले-पहले गीतावाटिका आया था और आया था अपने सुपुत्र श्रीशिवकुमारके मंगल विवाहका निमन्त्रण श्रीभाईजीको देनेके लिये। अपराह्न कालमें मैं पहुँचा था और शामके समय श्रीभाईजीसे खूब देरतक बात होती रही। उन्होंने यह भी कहा कि यदि अनुकूलता रही तो मैं विवाहके अवसरपर कलकत्ता आऊँगा। मुझको गीतावाटिकाके

सामने वाली विशाल कोठीके एक कमरेमें ठहरा दिया गया।

रातको भोजनके बाद मैं सोनेके लिये अपने कमरेमें गया, पर वहाँ तो पलंगपर मात्र एक कम्बल था। जहाँ मैं काम करता हूँ, उस कम्पनीके कामसे मुझे देश-विदेशमें प्रायः घूमते रहना पड़ता था, प्रायः बड़े और अच्छे होटलोंमें ठहरता था, अतः अधिक सामान लेकर चलनेकी आदत नहीं थी। जहाँ भी जाता था, ओढ़ने-बिछानेके लिये पर्याप्त बिस्तर मिल जाता था, अतः मैं यात्रामें बिस्तर ले ही नहीं जाता था। यहाँ भी मैं बिस्तर लेकर नहीं आया था। जनवरीका महीना था और थी रातको कड़ाकेकी ठण्ड, पर मैं किससे कहूँ और क्या कहूँ? बड़ा संकोच लग रहा था। कोई उपाय था नहीं। उसी ठण्डमें मैं उस पलंगपर पड़ा-पड़ा ठिठुर रहा था। ठीक रातके ग्यारह बजे किसीने मेरे कमरेके दरवाजेपर थाप दी। मैंने उठकर दरवाजा खोला। मैंने देखा कि श्रीहरिकृष्णजी दुजारीके हाथमें कम्बल है। उन्होंने वे कम्बल मुझे देते हुए कहा— पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ने ये अपने कम्बल आपके पास ओढ़नेके लिये भेजे हैं।

भाई श्रीहरिजीसे मैंने कम्बल ले लिये। वे चले गये, अब मेरी आँखें रह-रह कर गीली हो रही थीं। बार-बार कपोल भीग रहे थे। मैंने तो किसीसे भी कम्बलके लिये नहीं कहा था, फिर श्रीभाईजीको कैसे पता चल गया कि ठिठुर रहा हूँ। सचमुच वे अपनी बन्द आँखोंसे बहुत कुछ 'देख' लेते हैं और फिर चुपचाप बात बना भी देते हैं। वह पुरानी घटना मुझे सदा नयी ही लगती है।

[२] संत-सांनिध्यका शुभ परिणाम

मेरे पिता पूज्य श्रीसागरमलजीको वृद्धावस्थामें लकवा मार गया। बुढ़ापा स्वयंमें कष्टदायी होता है और फिर लकवाके कारण पंगु हो जाना तो महान कष्टदायी है। लकवाग्रस्त वृद्धके कष्टकी कल्पना कोई साधारण व्यक्ति कर ही नहीं सकता। लकवाके होते ही उनकी चिकित्सा तत्परता-पूर्वक करवायी गयी। अच्छी-से-अच्छी औषधि दी गयी। सेवा-सँभालकी उत्तम-से-उत्तम व्यवस्था थी। इसका परिणाम सन्तोषजनक हुआ कि पिताजी कुछ-कुछ चलने-फिरने लायक हो गये, वह भी किसीका सहारा लेकर।

मेरे छोटे भाई श्रीवनवारीलाल गोयन्दकाकी प्रेरणासे पिताजीके मनमें श्रीभाईजीके दर्शनकी इच्छा जाग्रत हुई। वे प्रिय भाई वनवारीके साथ श्रीराधाष्टमी महोत्सवके अवसरपर गोरखपुर आये। पिताजीके मनमें बस यही चाह थी कि जैसे हो, वैसे मुझे कष्टसे मुक्ति मिले क्यों कि वृद्धावस्थामें बीमारीसे होनेवाला कष्ट अब सहनकी सीमाको पार कर रहा है।

प्रिय भाई वनवारीके हाथका सहारा लिये-लिये वे श्रीभाईजीके पास पहुँचे, उनको प्रणाम किया और कातर निवेदन करने लगे— भाईजी, मुझे मौत दीजिये। अब कष्ट सहा नहीं जाता। जीवनके एक-एक दिन बड़े भारी लग रहे हैं। बीमारीके कारण मैं जीवनसे अब ऊब चुका हूँ। बस, मौत आ जाय।

पिताजीकी बात सुनकर श्रीभाईजी मौन रहे, पर दुःखीके मनमें चैन कहाँ? वे तो चाहते थे कि किसी प्रकार परम भक्त श्रीभाईजीकी कृपासे यह कष्ट दूर हो जाय। उन्होंने फिर करुण प्रार्थना की— किसी प्रकार मौत आ जाय। मैं तो भगवानसे भी मौत माँगता हूँ, पर मेरे लिये तो वे

भी बहरे हो गये हैं।

श्रीभाईजीने प्यार भरे शब्दोंमें कहना आरम्भ किया— क्या मौतके आनेसे ये कष्ट दूर हो जायेंगे ? भगवानसे मौत नहीं, मौतकी मौत माँगनी चाहिये।

श्रीभाईजीके कथनको पिताजी समझ नहीं पाये। पिताजीने कहा— मैं समझ नहीं पाया कि आप क्या कह रहे हैं।

श्रीभाईजीने समझाया— केवल मौतसे कष्ट दूर नहीं होगा। मौत होनेके बाद पुनः जिस योनिमें जन्म होगा, फिर वहाँ कष्ट भोगना पड़ेगा। भगवानसे मृत्युकी ही मृत्यु माँगनी चाहिये, जिससे आवागमनका प्रश्न ही नहीं रहे, फिर किसी भी योनिमें जन्म ही न हो। भगवानके चरण-कमलमें सदाके लिये स्थान मिल जाय। जो आपके सोचनेका ढंग है, उससे तो आप और अधिक कष्टको बुलावा दे रहे हैं। थोड़ा धीरज रखें, भगवानसे सहनशक्तिकी याचना करें, जिससे आप इन कष्टके दिनोंको पार कर जायें और उस अहैतुकी भक्तिके लिये प्रार्थना करें, जिससे सभी प्रकारके कष्टोंका सदा-सदाके लिये अन्त हो जाय।

श्रीभाईजीने जिस प्यारके साथ बात की, प्रथम तो वह प्यार ही घावपर मरहमके समान था और दूसरे उन्होंने मेरे पिताजीके चिन्तनकी धाराको मोड़नेका जो प्रयास किया, उस प्रयासने धैर्य दिया, सहनशक्ति दी और सुखद भविष्यकी सम्भावना जगायी।

मेरे पिताजीका कष्ट कम नहीं हुआ, पर उनके चिन्तनके स्वरूपमें कुछ अन्तर आनेसे उनके मनको पर्याप्त राहत मिली। यह शान्ति संत-सांनिध्यका ही तो परिणाम था।

इस संत-सानिध्यका परम सुन्दर परिणाम देखनेको मिला पिताजीके जीवनके अन्तिम क्षणोंमें। २१ दिसम्बर १९६९ के दिन दोपहरके समय उनका प्राणान्त हुआ। ज्यों ही उनकी स्थिति कुछ नाजुक हुई, मैंने अपना निजी व्यक्ति श्रीगोविन्द भवन भेज दिया पूज्य स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजको बुला लानेके लिये। यह सुन्दर संयोग था कि गीताजयन्तीका अवसर होनेसे स्वामीजी महाराज श्रीगोविन्द भवनमें विराज रहे थे। पूज्य स्वामीजी महाराजका हमारे सम्पूर्ण परिवारपर बड़ा अनुग्रह है। विनय सुनते ही वे चल पड़े और सात तल्ले चढ़कर हमारे वास-स्थानपर आये। पूज्य पिताजीको बिस्तरपरसे नीचे उतार लिया गया था। पूज्य स्वामीजीने भी जान लिया कि पिताजी कुछ ही क्षणोंके मेहमान हैं। पिताजीके हाथको अपने हाथमें लेकर स्वामीजी महाराज पिताजीसे कहने लगे— देखिये, देखिये, आपके सामने भगवान खड़े हैं। वे परम दयालु भगवान आपको दर्शन देनेके लिये पधारे हैं।

पूज्य स्वामी महाराजके ऐसा कहते ही पिताजीने नेत्रको आकाशकी ओर उठाकर देखा। पासमें खड़े हुए हमलोगोंको ऐसा स्पष्ट लग रहा था कि उनको भगवद्दर्शन हो रहा है। आकाशकी ओर एकटक देखना तथा मुखपर प्रसन्नताका होना ही इस बातको सिद्ध कर रहा था। इसी स्थितिमें पिताजीने अपने पाञ्चभौतिक कलेवरका परित्याग कर दिया। इस क्षणकी एक बात विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। पूज्य स्वामीजीके सामने अनेक जीवात्माओंने अपने स्थूल कलेवरका परित्याग किया है, पर यह तो विशेष बात है कि स्वामीजीके हाथमें हाथ हो और उस समय प्राणान्त हो। निधनके समय पूज्य स्वामीजीके करकमलोंमें पिताजीके हाथका होना और फिर भगवद्दर्शन करते हुए महाप्रयाण करना, क्या यह कम सौभाग्यकी बात है ? मेरी

आस्था तो यही है कि पूज्य श्रीभाईजीके शुभाशीर्वादके फलस्वरूप ही पिताजीको यह महान सौभाग्य प्राप्त हो सका।

[३] आँधी आयी और गयी

शायद १९७१ के जनवरीकी आठवीं तारीख थी। मैं दिल्लीसे लखनऊ होता हुआ तीसरे पहर गोरखपुर पहुँचा। अब गीतावाटिका मेरे लिये कोई नयी जगह नहीं थी। मुझे पता था कि श्रीभाईजीके उदर शूल है और वे काफी अस्वस्थ चल रहे हैं, इसके बाद भी मैं अपनी समस्या लेकर उनसे मिलना चाहता था। रातको ही मुझे वापस लौटना था, कारसे बनारसतक और फिर प्लेनसे कलकत्ता। अतः मैं चाहता था कि भेंट जितनी शीघ्र हो सके, उतना ही अच्छा है। मैंने भाई श्रीहरिकृष्ण दुजारीसे अपनी बात कही। श्रीहरिजीके प्रयाससे मेरी बात बन गयी और सूर्यास्तके कुछ देर बाद मुझे बात करनेका अवसर मिल गया। यद्यपि श्रीभाईजी अस्वस्थ थे, फिर भी उन्होंने मेरी सारी बात ध्यानपूर्वक सुनी। मैंने बतलाया कि किस प्रकार मेरे सामने समस्याएँ खड़ी हैं और किस प्रकारसे मैं संकटोंसे घिरा हुआ हूँ।

जब मैं बतला रहा था तो बीच-बीचमें श्रीभाईजी कुछ परामर्श भी देते जाते थे कि भविष्यमें अगला कदम क्या हो। बात लगभग एक घंटा हुई होगी, तभी सूचना आयी कि पूज्य बाबाकी भिक्षा आरम्भ हो गयी है। मुझे भिक्षामें प्रसाद पाकर शीघ्र बनारस जाना था। श्रीभाईजीसे मैंने विदाई ली और मैं उनको प्रणाम करके कमरेसे बाहर आने लगा। मैं कमरेके बाहर जा ही रहा था और कमरेके दरवाजेतक पहुँचा ही था कि श्रीभाईजी अपनी जगहपरसे, जहाँ वे पलंगपर बैठे हुए थे, वहींसे उच्च स्वरमें मुझे प्यार पूर्वक सम्बोधित करके कहने लगे– माला! घबड़ाना मत। आँधी आयी थी, वह उड़ गयी।

श्रीभाईजीके इस आश्वासनको सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, बड़ा धीरज मिला, बड़ा बल मिला, बहुत साहस बँधा। ये शब्द मेरे कानोंमें गूँजते रहे। कल भी गूँज रहे थे और आज भी गूँज रहे हैं।

पूज्य बाबाकी भिक्षामें प्रसाद पाकर मैं कारसे बनारसके लिये चल पड़ा और अगले दिन प्लेनसे कलकत्ते पहुँचा। कलकत्ते आनेके बाद मैंने देखा कि वे सारी महा कठिन विकट परिस्थितियाँ देखते-देखते समाप्त हो गयीं। कलकत्ते पहुँचनेके दसवें दिन सारी प्रतिकूलताएँ ऐसी अस्तित्व-हीन हो गयीं, मानो उनकी कभी स्थिति थी ही नहीं। श्रीभाईजीके कृपा-प्रसादसे जीवनकी गाड़ी फिर ठीक प्रकारसे अपनी राहपर चलने लगी। ■

श्रीमगनलालजी गाँधी

इत्रका व्यापार

मैं जो बात कहने जा रहा हूँ, वह कहनेकी दृष्टिसे कुछ नहीं है, पर समझनेकी दृष्टिसे एक मर्मभरी बात है। मैं इत्रका व्यापारी हूँ और इत्र बनाकर बेचा करता हूँ। बीकानेर रेगिस्तान

होनेके कारण वहाँ प्रकृतिसे प्राप्त होने वाली अनेक सुविधाओंका नितान्त अभाव है। इत्रके व्यापारकी दृष्टिसे अनुकूल परिस्थितियोंका सर्वथा अभाव होते हुए भी मेरा व्यापार चमक उठे, यह सर्वथा श्रीभाईजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) की आत्मीयताका चमत्कार है।

बाजारमें मिलने वाले इत्रकी शुद्धताके बारेमें संदेह होनेके कारण श्रीभाईजी अपनी निजी उपासना-अर्चनामें इत्रके स्थानपर फूलका प्रयोग किया करते थे। एक दिन किसीने श्रीभाईजीको बतला दिया बीकानेरके गाँधीजी इत्र बनाया करते हैं और शुद्धताके लिये उनके मनमें बड़ा आग्रह रहा करता है। इतनी जानकारीका होना श्रीभाईजीके लिये पर्याप्त था। मुझे श्रीभाईजी जानते थे। मैं प्रायः सत्संगकी दृष्टिसे श्रीभाईजीके पास आया करता था। मैंने कभी नहीं चाहा कि मैं श्रीभाईजीसे कोई जागतिक लाभ उठाऊँ। श्रीभाईजीके पास आनेके पीछे विशुद्ध पारमार्थिक भाव था। यही कारण था कि मैंने कभी भी अपने इत्रके व्यापारकी बात श्रीभाईजीसे नहीं चलायी। इत्रका मेरा व्यापार ऐसा था और उससे होने वाली आय इतनी थी कि घर-गृहस्थीके दायित्वका निर्वाह साधारण रूपसे हो जाता था। जब मैं श्रीभाईजीके पास गया तो उन्होंने मुझसे कहा—भैया! थोड़ा इत्र ठाकुर-सेवाके लिये भेज देना।

श्रीभाईजीके इस आदेशको मैंने अपना सौभाग्य समझा। मैं तय नहीं कर पा रहा था कि कितना इत्र भेजूँ। मनमें अनिश्चितता तो थी, इसके बाद भी मैंने पाँच तोला इत्र रजिस्टर्ड पारसलसे गोरखपुर श्रीभाईजीके पास भेज दिया। भेजते समय मनमें यही विचार था कि इस इत्रका मूल्य श्रीभाईजीसे नहीं लेना है। श्रीभाईजीने उस इत्रको अपनी पूजाके काममें लिया। इसके बाद श्रीभाईजीका पत्र मेरे पास आया। पत्रमें इत्रकी प्राप्तिकी सूचना लिखकर उन्होंने लिखा— तुम्हारा इत्र पूजाके काम आ रहा है। तुम्हें इसका मूल्य लिखना चाहिये। यह इसलिये कि व्यावहारिक जगतमें बिना मूल्य वाली वस्तुका प्रयोग करनेमें संकोच होता है। इसे तुम अपने प्रेमका तनिक भी अपमान मत समझना। व्यवहार भी परम पवित्र रहे, इसलिये तुम इत्रका मूल्य लिखकर भेज देना। इससे मेरे मनको संतोष होगा।

श्रीभाईजीने बड़े आग्रह पूर्वक पत्र लिखा था, अतः मैंने इत्रका दाम लिखकर भेज दिया। मेरा पत्र पहुँचते ही श्रीभाईजीने इत्रका मूल्य मनीआर्डरसे मेरे पास भेज दिया। श्रीभाईजी व्यवहार क्षेत्रमें भी कितने सावधान थे, उसका यह ज्वलन्त प्रसंग है।

अब अगली बात ध्यान देने योग्य है। श्रीभाईजीने जबसे इत्रका प्रयोग आरम्भ किया, इत्रका मेरा व्यापार बहुत बढ़ गया। मैंने अपने व्यापारके सम्बन्धमें न उनसे कभी कुछ कहा था और अपनी उन्नतिके सम्बन्धमें न उनसे कभी कामना की थी, पर यह स्पष्ट दीख रहा था और है कि जिस दिनसे इत्र श्रीभाईजीके पूजन-अर्चनके प्रयोगमें आने लगा, मेरी व्यापारिक उन्नति अधिकाधिक होने लगी। अपनी उन्नतिका हेतु बतलानेके लिये प्रत्यक्ष स्तरपर मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है, पर कोई इस उन्नतिका मर्म समझना चाहे तो उसे इस प्रत्यक्ष वस्तुस्थितिके पीछे झाँककर देखना पड़ेगा और फिर यही तथ्य समझमें आयेगा कि परोक्ष स्तरपर श्रीभाईजीके अनुग्रहका ही यह सारा खेल है। श्रीभाईजीने व्यापारकी उन्नतिके लिये न आशीर्वाद दिया और न मंगल कामना की और उनसे ऐसा मैंने कभी चाहा भी नहीं था, पर सच्ची बात है, उनकी प्यार भरी निगाहोंने चुपचाप एक चमत्कार खड़ा कर दिया। ■

श्रीहरिशंकरजी गोहिल

[१] उदार भावधारा

भाईजी इतने सरल थे कि किसीका भी दुःख देखकर द्रवित हो जाते थे। निःस्वार्थ सेवा एवं सहायता करना उनका स्वभाव था। उनकी महानताकी एक घटना प्रायः स्मरण हो आती है। मैं उन दिनों श्रीमारवाड़ी इंटर कालेजका प्रधानाचार्य था। भाईजीके दर्शनके लिये गया। वे बाहर ही बैठे हुए थे। पास बैठाकर स्नेहपूर्वक हाल-चाल पूछा। विद्यालयकी चर्चा भी चल पड़ी। उन दिनों विद्यालयमें आर्थिक कठिनाई थी। विद्यालयकी प्रबन्ध-समितिके पदाधिकारी एवं सदस्य उसके लिये प्रयत्नशील थे। मेरे मुँहसे विद्यालयके आर्थिक संकटकी बात निकल गयी। भाईजीने तुरन्त कहा— आप परसो कालेजके चपरासीको भेज दीजियेगा।

कर्मचारी गया और उन्होंने विद्यालयके नाम पर्याप्त धनका चेक भेज दिया तथा साथ ही यह भी लिख भेजा— यह कदापि जाहिर न किया जाय कि यह धन मेरे पाससे आया है। इसे गुप्तदानके रूपमें विद्यालयके हिसाबमें लिखा जाय।

यह श्रीभाईजीकी प्रसिद्ध-पराङ्मुखता! दान देकर नाम लिखवाने वालोंसे कितनी भिन्न!

[२] उदार विचारधारा

पूज्य श्रीभाईजी उदार-भावनावाले महामानव थे। हिन्दूधर्मके महान उन्नायक होते हुए भी अन्य धर्मोंके प्रति उनका कितना सम्मान था, इसका मैंने स्वयं अनुभव किया है। एक बार मैं भाईजीके दर्शनके लिये गया। व्यस्त होते हुए भी मेरे आनेका समाचार मिलते ही उन्होंने मुझे बुला लिया। मैं यह देखकर स्तब्ध रह गया कि उनके कमरेमें ईसामसीहका चित्र लगा हुआ है। मेरे मनमें कौतूहल हुआ। मैंने विनम्रता पूर्वक भाईजीसे पूछा— आपने ईसामसीहके चित्रको यहाँ स्थान क्यों दे रखा है?

भाईजीने कहा— ईसामसीह महान संत थे। उन्होंने जगतको प्रेम और सेवाका पाठ पढ़ाया। उनका कहना था कि भगवानका राज्य बच्चों एवं दरिद्रोंके लिये है और हमारे धर्मशास्त्र भी भगवानको 'दरिद्रनारायण' मानते हैं।

चरणोंमें मैं नतमस्तक हो गया। मुझे अशोक महानका स्मरण हो आया। इतिहासके स्वर्णिम पृष्ठ भाईजीके चरित्रसे गौरवान्वित हो रहे हैं। कितने महान थे वे— हिमालयसे भी ऊँचा और सागरसे भी गहरा था उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व। ■

श्रीकमलनयनजी बजाज

सरल और स्वच्छ जीवन

मेरे स्वर्गीय पूज्य काकाजी श्रीजमनालालजी बजाजका श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)से पहले काफी सम्बन्ध रहा था। बहुत-से धार्मिक और सामाजिक कार्योंमें परस्पर

सहयोग और विचार-विनिमय भी होता रहता था। उस समय मैं बालक ही था। श्रीभाईजीको कई बार देखनेके प्रसंग तो आये, लेकिन तबतक उनके बारेमें– वे परिवारके एक हितैषी, काकाजीके मित्र और देश या समाजके कार्यकर्ता हैं– इनके अलावा विशेष जानकारीका ख्याल मुझे नहीं आता। काकाजी और श्रीभाईजी, दोनोंका ही पिण्ड आध्यात्मिक और धार्मिक रहा है। काकाजी समाज-सुधारक और देश-सेवक हुए, भाईजीने धर्म-प्रचार और अध्यात्म-विस्तार करनेमें अपना जीवन खपाया। काकाजी सुधारक और श्रीभाईजी सनातनी विचारोंके होनेकी वजहसे दोनोंकी वृत्तियोंमें खास फर्क न होते हुए भी प्रवृत्तियोंमें काफी अन्तर हो गया। यहाँतक कि उनके विचार और कार्य एक-दूसरेसे भिन्न हो गये, जिससे उनका सम्पर्क कम-सा हो गया। फिर भी दोनोंमें एक दूसरेके प्रति आदर और स्नेहमें कभी कमी होनेका आभासतक न हुआ, बल्कि जब-जब प्रसंग आये, दोनोंके परस्परमें एकदूसरेके प्रति होनेवाले भाव और उद्‌गारोंको देखकर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता था। ''कल्याण पत्रिका तथा गीताप्रेससे प्रकाशित ग्रन्थोंद्वारा धार्मिक भावनाओंके प्रचारका बहुत बड़ा काम हो रहा है''– ऐसा काकाजीको लोगोंसे कहते हुए कई बार मैंने सुना है।

आजादीके बाद राजनैतिक, सामाजिक तथा व्यापारिक– सभी तरहके सार्वजनिक कामोंको लेकर मेरा दिल्ली काफी आना-जाना रहा। सन् १८५७ में मैं संसद-सदस्य हो गया। श्रीभाईजी भी समय-समयपर दिल्ली आते-जाते रहते थे। अतएव उनसे अनेक बार मिलने, बातचीत करने और कुछ विषयोंको लेकर चर्चा करनेका भी सौभाग्य मुझको प्राप्त हुआ। पूज्य काकाजीके विषयमें जब श्रीभाईजी कुछ कहते या कोई संस्मरण सुनाते, तब वे भाव-विभोर हो जाते थे। इससे उनके सरल एवं स्वच्छ हृदयका परिचय मिलता है।

'सस्ता-साहित्य-मण्डल' की संस्थापनामें काकाजीका मुख्य हाथ था। वे उसके संस्थापकोंमेंसे थे। उनके प्रकाशन काकाजीकी इच्छाके अनुरूप सस्ते नहीं हो पाते थे और न उनका प्रचार-प्रसार ही। यह देखकर काकाजी 'कल्याण' और गीताप्रेसके प्रकाशनोंका उदाहरण दिया करते थे।

गीताप्रेसके प्रकाशन जिस कोटिके हैं और जिस तरीकेसे उनका प्रचार है, वह कठोर साधना, लगन, अध्यवसाय और तपके बिना सम्भव नहीं– यह स्पष्ट है। कुछ-कुछ विषयोंमें हमारा मतभेद कितना ही क्यों न हों, भारतीय संस्कृति, धर्म, विचार एवं आदर्शोंको जिस श्रद्धासे उन्होंने रखनेका प्रयास किया है, उसके लिये स्वाभाविक ही हमें नतमस्तक होना पड़ता है और उनके प्रति आदर और प्रेम उमड़ता है।

एक बार श्रीभाईजीसे बापूके सम्बन्धमें चर्चा होने लगी। चर्चामें उन्होंने बापूजीके बारेमें जो भाव रखे, वे स्पष्ट एवं निर्मल थे। बापूसे कुछ विचारोंमें उनका मतभेद था, यह बात भी उन्होंने सरल स्वाभाविक तरीकेसे मेरे सम्मुख रखी। सारी चर्चा सहज तरीकेसे हुई। उसमें कहीं लगाव-छिपावकी गन्धतक न थी। उसी चर्चाके दौरान बापूजीके प्रति उनके भावोंको देखकर मैंने उन्हें सुझाव दिया– सेवाग्रामके ऊपर 'कल्याण' का एक विशेषांक आप क्यों नहीं निकालते ?

उनको सुझाव बहुत अच्छा लगा। उन्होंने कहा– तुम्हारा तो सहयोग इस कार्यमें रहेगा ही और आश्रमके लोगोंका सहयोग तुम हमें प्राप्त करा दोगे तो यह एक बहुत ही बड़ा कार्य

हो जायगा।

शायद एकाध विशेषांककी योजना पहलेसे ही उनके सामने थी। मेरी धारणा थी कि उसके बाद इसको किस तरहसे किया जा सकता है, इसका विचार वे करेंगे। इस चर्चाके बाद कई बार उनसे मिलना हुआ, पर इस विषयको लेकर कोई चर्चा उन्होंने छेड़ी नहीं। मैंने भी यह मानकर कुछ पूछा नहीं कि या तो वे भूल गये होंगे अथवा उनके सामने कोई अड़चन आ गयी होगी। इसलिये मैं उनको किसी प्रकार संकोचमें डालना नहीं चाहता था। काफी अर्सेके बाद एक रोज बुलाकर उन्होंने ही मुझसे कहा— भैया, सेवाग्रामका विशेषांक निकालनेका काम पार पड़ता दिखता नहीं।

ये उद्‌गार उनके मुखसे कुछ वेदनासे निकले तथा इनमें उनका कुछ असंतोष भी व्यक्त था। मैंने कहा— ऐसी क्या बात है ? उसको भूल जाइये।

उनका दुःखके साथ यह जबाब मेरे हृदयको चीरकर निकल गया— हम छोटे लोग हैं।

उनकी महानताका इसमें मुझे दर्शन हुआ और उनकी कुछ लाचारी है, यह भी जाहिर थी। काफी देरतक हम दोनोंके मुखसे शब्द नहीं निकला, दोनों ही शान्त रहे।

श्रीभाईजीका जीवन सरल, स्वच्छ और स्पष्ट था। आडम्बर, बनावट, दिखावट, सूक्ष्मतम भी छल-कपट और असत्याचरण उन्हें छू तक न गया था। उनका शिष्य-समूह और भक्त-परिवार काफी बड़ा, विस्तृत और जगह-जगह बिखरा हुआ है। जिस भावना, भक्ति और श्रद्धासे बाल-बच्चे, स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े, सभी उनके पास आते थे और जिस शान्ति और संतोषको लेकर कइयोंको मैंने जाते देखा है, उससे यह समझना मुश्किल नहीं था कि श्रीभाईजीके व्यक्तित्व और विचारोंका कितना मार्मिक असर लोगोंपर होता था। ■

श्रीसत्येन्द्रनारायणजी अग्रवाल (कुलपति, भागलपुर विश्वविद्यालय)

विचारोंकी निर्भीक अभिव्यक्ति

मुझे श्रीपोद्दारजीसे मिलनेका सौभाग्य कभी प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु मैं उनकी निर्भीकताका कायल हूँ। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीके प्रति अगाध श्रद्धा और प्रीति रखते हुए भी उनके ऐसे विचारोंकी, जो भारतीय परम्पराके अनुकूल नहीं थे, उन्होंने समय-समयपर 'कल्याण'में आलोचना करनेमें संकोच नहीं किया। यह मामूली साहसका काम नहीं था। ■

श्रीहीरालालजी शास्त्री (अध्यक्ष, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान)

गो-सेवाकी लगन

हृदयसे अत्यन्त निकट होते हुए भी मैं भाई श्रीहनुमानप्रसादजीको वास्तवमें दूर-दूरसे ही देखता-जानता रहा। बहुत वर्ष बीत गये, एक बार भाई श्रीहनुमानप्रसादजीके साथ मैं गायोंके लिये प्रचुर घासकी खोजमें निकला था और हमलोग तत्कालीन ग्वालियर राज्यान्तर्गत

शिवपुरकलातक पहुँचे थे। वे दिन मुझे ज्यों-के-त्यों याद है। कितनी लगन थी भाई श्रीहनुमानप्रसादजीमें गो-संततिकी सेवा करनेकी, उस अकालके समयमें गोमाताकी प्राण-रक्षा करनेकी। ■

श्रीप्रहलाद कहार

नौकरको प्रणाम

(श्रीप्रहलाद कहार ग्रामवासी होनेके कारण शुद्ध हिन्दी नहीं बोल पाता। भोजपुरी बोलीमें उसने जो सहज रूपमें बतलाया, उसीको ज्यों-का-त्यों लिखा जा रहा है, जिससे स्वाभाविकताकी सुगन्ध सबको मिल सके।- सम्पादक)

नौकरी खोजत-खोजत हम गीताप्रेस गइलीं अउर उहाँ गंगाबाबूसे मिललीं। गंगाबाबू उहाँके मुखिया रहलें अउर उहाँके सब कामकाज सँभालत रहलें। गंगाबाबू हमके बगीचा भेज देहलें कि वहाँ जाके चउकामें काम करिह। बगीचा आके हम बड़े बाबू (पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) से मिललीं। बड़े बाबू अपने कमरामें बइठल रहलें। हाथसे जमीन छूके हम कहलीं– बाबू, पाँव लागीं।

बड़े बाबू हमरी ओर देखके कहिलें– के ह ? का नाम ह ?

'हमार नाम प्रहलाद ह।'

'कहाँसे आइल बाट ?'

'हमके गंगाबाबू इहाँ भेजले हवें। गंगाबाबू कहलें कि बगीचा चल जा। उँहा चौकामें आदमीके जरूरत बा।'

'चौकामें बरतन माँजेके काम करब का ?'

'ओही वास्ते हमके गंगाबाबू भेजले हवें।'

'ठीक ह, पर भइया एक बात के ध्यान रखिह। तू चौकामें काम करब और घरमें रहब। जिम्मेदारीसे रहिअ। कौनों चीज खराब न होवे पावे, गायब न होवे पावे।'

'बाबू! हम अपने मुँहवाँसे आपन बात का बतायीं। गरीब हई त का, पर आज ले हमरी ओर केहूके अँगुली उठावेके मौका नाहीं मिलल।'

ठीक ह। जा, घरमें काम कर। जाके बाईसे मिलि ल।'

रामसनेही बाबू ओही जगहवाँ एक किनारे बइठल रहलें। एतना हमसे कहिके फेर बड़े बाबू उनसे कहिलें– रामसनेही, जबतक मैं हूँ, तबतक इसको कामसे मत हटाना।

रामसनेही बाबूसे एतना कहिके फेर बड़े बाबू हमके माथा जमीनमें टेकके परनाम कइलें। हम घबरा गइलीं कि बड़े बाबू इ का करत हवें। इ बात त ठीक नाहीं ह कि बड़े बाबू हमके परनाम करें। बड़े बाबू का सोचके परनाम कइलें, हम भला का जानी, पर उनके परनाम कइल हमके कब्बो भुलाइल नाहीं। एकरे बाद हम घरमें काम करे लगलीं। जबले बड़े बाबू रहलें, केहू

हमके कुच्छो कहल नाहीं। बड़े बाबू के गइले के बादो जब ले जाँगर रहल, हम घरवामें काम कइलीं। ■

पं. श्रीमंगलजी उद्धवजी शास्त्री

स्नेह और सौजन्यकी मूर्ति

श्रीभाईजीसे मेरा परिचय नवीन नहीं है, है बहुत पुराना। इस लम्बी अवधिमें जब-जब उनसे भेंट हुई है, तब-तब वे मुझे बड़े भाईके समान अनुभव हुए। उन्होंने मुझे उसी रूपमें प्यार दिया।

सौराष्ट्रके एक देहातका निवासी होते हुए मैं बाल्यकालसे 'कल्याण'का ग्राहक और प्रेमी था। एक बार श्रीभाईजीने मुझे पत्रमें लिखा था— आप जूनागढ़ प्रदेशके निवासी हैं और हिन्दीमें लिख सकते हैं। आप सौराष्ट्रके भक्तप्रवर नरसी मेहताजीका एक प्रमाणिक जीवन, वार्ताके रूपमें लिख भेजिये। अगर योग्य लगा तो वह गीताप्रेस-द्वारा प्रकाशित कर दिया जायगा।

पत्रको पढ़कर मैं अधिक प्रोत्साहित हुआ। मैंने नरसी मेहतापर पुस्तक लिखना आरम्भ कर दिया। हिन्दीमें पुस्तक लिखनेका मेरा यह प्रथम प्रयास था, परंतु श्रीभाईजीके उत्साह-प्रदानसे ही मैं 'भक्त नरसिंह मेहता' पुस्तक लिखनेमें सफल हुआ। पुस्तक तैयार होनेपर मैंने उसे श्रीभाईजीके पास भेज दिया। प्रसन्नताकी बात है कि श्रीभाईजीने उसे सुधारकर गीताप्रेससे प्रकाशित कर दिया। पुस्तकके मुद्रणके पूर्व मुझसे पूछा गया— आप यह पुस्तक किस शर्तपर गीताप्रेसको देना चाहते हैं ?

मेरे मनमें गीताप्रेसके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। मैंने लिख दिया— यह पुस्तक मैं बिना किसी शर्तके दे रहा हूँ।

मेरे प्रत्युत्तरसे भाईजीको अत्यधिक प्रसन्नता हुई। उसी समयसे श्रीभाईजीको मैं अपना आध्यात्मिक प्रेरक मानता हूँ।

सन् १९४९-५० का समय था, जब श्रीभाईजीके प्रथम दर्शन हुए। गीतावाटिका मुझे तपोवन-सी प्रतीत हुई। श्रीभाईजीने स्नेहसे गले लगा लिया और मेरा हाथ पकड़कर चारपाईपर बैठा लिया। 'कल्याण'के विशेषांक 'हिन्दू-संस्कृति-अंक'की पूर्व-तैयारियाँ हो रही थीं। टाइटलके ऊपरवाले चित्रमें श्रीरामसभाका दृश्य भी अंकित करना था। सम्पादकीय विभागके सदस्य उस चित्रके सम्बन्धमें विचार-विमर्श कर रहे थे। एक सदस्यने आकर श्रीभाईजीसे कहा— वाल्मीकि-रामायणमें कुत्तेके न्याय माँगनेका प्रसंग नहीं मिल रहा है। अब तो उसे किसी अन्य रामायणमें देखना होगा. . . . . . . ।

मैं बीचमें ही बोल पड़ा— वह प्रसंग मैंने देखा है। मुझे रामायण दीजिये। मैं अभी निकाल देता हूँ।

उन महाशयने मुझे रामायणकी पुस्तक लाकर दे दी। ध्यानसे देखनेपर भी उक्त प्रसंग उस प्रतिमें नहीं मिला। वे महाशय बोले— हमलोग दो-तीन बार देख चुके, वह प्रंसग है तो जाना-माना, पर वाल्मीकि-रामायणमें उसका उल्लेख नहीं है।

भाईजी बोले— तो फिर जबतक प्रमाण न मिले, हम इस प्रसंग वाले चित्रको टाईटलके ऊपर कैसे दे सकते हैं ?

श्रीभाईजीके ये शब्द सुनकर मुझे ज्ञात हुआ कि किस प्रकार 'कल्याण'में प्रकाशित होनेवाली चीजोंके लिये शास्त्रका आधार लिया जाता है। 'कल्याण'की प्रतिष्ठाका यही तो प्रधान हेतु है। मैंने कहा— मैंने तो उसे वाल्मीकि-रामायणमें ही देखा है, किन्तु मेरे पास निर्णयसागर प्रेसकी प्रति है।

निर्णयसागर प्रेसवाली प्रति देखी गयी और वह प्रसंग मिल गया। सभी प्रसन्न हुए। श्रीभाईजीने प्रसन्नतामें भरकर मुझे गलेसे लगा लिया।

उसके बाद दो-एक बार झूसीके महोत्सवमें ही हमलोग मिले। उनका सदाप्रसन्न स्वभाव सभीको आकर्षित कर लेता था। झूसीमें एक दिन एकादशीके फलाहारमें कोई अच्छी नमकीन वस्तु बनी हुई थी, परंतु वह कुछ कड़ी हो गयी थी। उसे चबानेमें थोड़ा कष्ट मालूम होता था। श्रीभाईजीने पूज्य ब्रह्मचारीजीसे कहा— आपकी यह वस्तु देखनेके लिये तो अच्छी है, मगर चखनेके लिये नहीं है।

यह सुनकर सभीलोग हँस पड़े। हमारा अन्तिम और अविस्मरणीय मिलन २७ अप्रैल १९६८ को प्रातः दस बजे हुआ। मैं हरिद्वारकी यात्रा करके गीताभवन पहुँचा। वहाँके व्यवस्थापकसे मैंने कहा— हम श्रीभाईजीके दर्शनके लिये आये हैं और कल हरिद्वार वापस लौट जायेंगे, अतः आज ही श्रीभाईजीसे मिलना है।

व्यवस्थापक महोदयने कहा— वे किसीसे नहीं मिलते। उनकी तबीयत अच्छी नहीं है।

मैंने कहा— यह तो मुझे भी मालूम है, मगर यहाँतक आनेके बाद एक छोटा भाई बड़े भाईसे बिना मिले कैसे जा सकता है ? आप कृपया उन्हें मेरा स्मरण दिला दीजिये। वे चाहेंगे तो मैं उनसे मिलूँगा, अन्यथा मैं मिलनेका आग्रह छोड़ दूँगा।

श्रीभाईजीको मेरे आनेकी सूचना दी गयी और स्वास्थ्य अच्छा न होनेपर भी वे मिले, गले लगाकर मिले। आश्चर्य तो तब हुआ, जब वे हमलोगोंके साथ शुद्ध गुजराती भाषामें वार्तालाप करने लगे। मेरी धर्मपत्नी और बालक भी वार्तालापको समझ सकें, इस आशयसे श्रीभाईजी गुजराती बोले। मुझे इसके पहले मालूम ही नहीं था कि भाईजी इतनी शुद्ध गुजराती बोल सकते हैं। प्रायः आधे घंटेतक बैठकर बात होती रही। इसके बाद उठते हुए आशीर्वादके शब्दोंमें मैंने कहा— आप शीघ्र ही स्वस्थ हो जाइये।

वे बोल उठे— अब तो शेष जीवन श्रीभगवानके चरणोंमें बीते, यही आशीर्वाद दीजिये। अब स्वास्थ्यका क्या करना है ?

मैंने *'स्वे आत्मनि स्थितः'* का अर्थ घटाकर कहा— वही तो स्वस्थताका लक्षण है।

भाईजीका प्रत्युत्तर नहीं मिला, मगर उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहती हुई मैंने स्पष्ट देखी। मेरे बिदा होनेके समय भी वे उठ खड़े होनेकी चेष्टा कर रहे थे, मगर मैंने उन्हें रोक दिया और कहा— बस, आप खड़े होनेकी तकलीफ न कीजिये।

वे हाथमें रखी हुई मालाके सहित हाथजोड़कर बोले— आवजो (पधारियेगा)।

उनका एक वाक्य सदा याद आता है— अगर हमारे हृदयमें धर्म रहेगा तो सब कुछ रहेगा, अगर हमारे हृदयसे धर्म उठ गया तो सब कुछ उठ जायगा। ■

श्रीओमप्रकाश पण्डित 'पत्रकार'

पत्रकारों एवं सम्पादकोंके प्रेरणा-स्रोत

आधुनिक भारतके हिन्दी-साहित्यकी सेवाके लिये जीवन समर्पित करनेवालोंमें श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका नाम अविस्मरणीय रहेगा। एक बार सन् १९६४ के आस-पास उनके दिल्ली आगमनपर मुझे उनके दर्शन करनेका अवसर एक पत्रकार-सम्मेलनमें प्राप्त हुआ था। जब मैं वहाँ पहुँचा, तब मैं उन्हें पहचान न सका, क्यों कि मेरी धारणा थी कि 'कल्याण' जैसे बड़े पत्रका सम्पादक अच्छे तड़क-भड़कवाले कपड़ोमें बैठा होगा। मैं अन्य पत्रकारोंसे कुछ पहले पहुँच गया था। वहींपर मेरे परिचित एक हिंदू महासभाई नेता मिल गये। मुझे देखते ही उन्होंने मेरा परिचय श्रीपोद्दारजीसे करवाया।

उन्होंने पूछा— अच्छा तो आप हिन्दुस्तान समाचार-समितिके प्रतिनिधि हैं। समितिका कार्य तो सुचारु रूपसे चल रहा है ?

उनके इस प्रश्नका उत्तर यद्यपि मैंने दे दिया, फिर भी मनमें सोच रहा था कि मेरे मित्रने मेरा परिचय तो करवा दिया, किन्तु प्रश्नकर्ताका नहीं। मैं चुप रहा। स्वयं श्रीपोद्दारजी मेरी भावनाको जान गये और बोल उठे— मैं हनुमानप्रसाद पोद्दार हूँ।

आश्चर्यचकित मैं देखता रह गया। जिस मधुर वाणीमें उन्होंने आत्मीयताके साथ अपना परिचय दिया, उससे मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ और मेरी आँखें सीधे उनके चरणोंमें चली गयीं। खादीकी धोती और कुर्ता, यह उनका पहनावा था। मैं उनकी सादी वेषभूषाको देखकर आश्चर्यचकित रह गया।

मैंने कहा— बाल्यावस्थासे ही मुझे 'कल्याण'को देखनेका अवसर मिला है। आपने 'कल्याण'के द्वारा हिन्दू समाज, हिन्दू धर्म, हिन्दू-संस्कृतिकी बड़ी सेवा की है।

मेरे शब्द सुनकर श्रीपोद्दारजी संकुचित-से हो गये और बोले— मैंने तो धूलिके एक कणमात्रके बराबर हिन्दुत्वकी सेवा की है। इच्छा तो बहुत कुछ है, परंतु स्वास्थ्य साथ नहीं देता।

मैंने कहा— स्वास्थ्य इत्यादिकी चिन्ता परमेश्वरपर ही क्यों नहीं छोड़ देते ? क्यों कि आप तो उन्हींका कार्य कर रहे हैं।

इतना कहना ही था कि वे काफी भावुक हो उठे। तुरन्त बोले— 'कल्याण'का सम्पादन मैं थोड़े ही करता हूँ। मेरी केवल अँगुली चलती है, परंतु मुझे स्वयं पता नहीं चलता कि वह कौन-सी छिपी शक्ति है, जो मेरी अँगुलियोंको कलमपर ढकेल देती है और उसके पश्चात् धारा-प्रवाह चलती रहती है। कभी-कभी तो मैं इस कार्यमें इतना लीन हो जाता हूँ कि मेरे सामने अगर कोई व्यक्ति खड़ा हो जाय तो मुझे उसका ध्यान ही नहीं रहता।

श्रीपोद्दारजीने आगे कहा— दुःखका विषय है कि हिन्दीका इतना विशाल साहित्य देशमें विद्यमान है, किन्तु देशके लोगोंकी रुचि इसके प्रति कम होती जा रही है। धार्मिक ग्रन्थोंको तो पढ़े-लिखे लोग स्थान ही नहीं देना चाहते। हम अपने सामर्थ्य एवं शक्तिके अनुसार इसको आगे बढ़ानेका प्रयत्न कर रहे हैं।

मुझे अनुभव हुआ कि श्रीपोद्दारजीके हृदयमें हिन्दी भाषा तथा धर्म-शास्त्रोंके प्रति युवा पीढ़ीकी उपेक्षावृत्तिसे एक गहरी कसक है। वास्तवमें श्रीपोद्दारजी हिन्दी पत्रकारों एवं सम्पादकोंके लिये एक आदर्श प्रेरक थे। उन्होंने अपना सर्वस्व हिन्दी और हिन्दू धर्मकी सेवाके लिये समर्पित कर दिया था। ■

श्रीजयगोपालजी मिश्र 'फतेपुरी'

महामनीषी

मैं सन् १९६२ में श्रीभाईजीके सम्पर्कमें आया। उनका सांनिध्य मेरे लिये गौरवका विषय बना। हमारी 'रेल-हिन्दी-समिति'के तत्त्वावधानमें आयोजित कवि सम्मेलनोंमें पधारे हुए कवियों और विद्वानोंका वे बराबर अपने निवासस्थानपर भरपूर स्वागत-सत्कार और विदाई करते थे। एक बार श्रीबलबीरसिंहजी 'रंग' विचरते हुए आ गये। हमारे सामने उनके स्वागतकी समस्या आ गयी। मैंने श्रीभाईजीको फोन किया— आपकी गीतावाटिकामें रंगजीकी काव्य-गोष्ठी बुलायी जायगी।

श्रीभाईजी फोनपर ही अपनी स्वीकृति देते हुए पूछते हैं— उनके साथ कितने साहित्यकार होंगे?

हमने उत्तर दिया— केवल पचास या पचपन व्यक्ति पहुँचेंगे।

श्रीभाईजी अस्वस्थ थे। वे छतके ऊपरके कमरेमें रहते थे और नीचे उतरना मना था, पर हम देखते क्या हैं कि श्रीभाईजी नीचे वाटिकामें कुर्सी-मेज लगवाकर विधिवत् जलपानका प्रबन्ध करा रहे हैं। श्रीभाईजीको बीच-बीचमें मैं कहता कि आप अब न बैठें, कमरेमें जाकर विश्राम करें, परंतु वे अन्ततक बैठे रहे। बादमें उन्होंने पूछा— क्या बिदाई दी जाय?

मैंने कहा— रामचरितमानसकी एक पोथी आपके हस्ताक्षरसहित और दो सौ रुपये।

कहनेकी देर थी। श्रीभाईजीने मेरी इच्छाका पालन आदेशकी भाँति किया। ऐसा कौन करता होगा? वे बिना प्रचार ऐसे अनुदान चुपचाप दे दिया करते थे। घटनाएँ एक नहीं, अनेक हैं।

श्रीभाईजी बड़े ही सरल एवं मानवमात्रका सम्मान करनेकी क्रियामें अग्रणी थे। क्या मजाल कि कोई उन्हें पहले प्रणाम कर ले! ज्यों ही व्यक्ति सामने आया कि उनके दोनों हाथ जुड़ जाते थे और वे अपना प्रणाम निवेदित कर देते थे। उनके इस विचित्र स्वभावसे परिचित होनेके कारण मैं श्रीभाईजीको प्रणाम करनेमें जल्दी करता, क्यों कि सदा मैं श्रीभाईजीको नत होकर प्रणाम निवेदन करनेका आदी था, किन्तु श्रीभाईजी जैसे महामनीषीका अवतार सहस्रों वर्षों बाद होता है। हम धन्य हैं कि हमने उनका दर्शन प्राप्त किया। ■

डा. श्रीतपेश्वरनाथजी

उनका शील

विक्रमीय संवत् २०२६ के फाल्गुन मासमें मैं उनके दर्शनार्थ पहुँचा। जाते ही मैंने झुककर श्रीभाईजीका चरण-स्पर्श करना चाहा, पर उन्होंने प्रसन्नताभरी मुस्कानके साथ मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये और 'हरिस्मरण' कहते हुए मुझे अपने पास बिस्तरपर बैठा लिया। श्रीभाईजीकी विनम्रताने मेरी लघुताको जैसे अंगीकार कर लिया हो। श्रीभाईजीके इस शील-सौजन्यसे मैं मन्त्रबद्ध-सा हो गया। उनका व्यक्तित्व अतीव आकर्षक था। उज्ज्वल आनन, ममताभरी दृष्टि, ओठोंपर सहज मुस्कान, तेजपूर्ण उन्नत ललाट और ललाटपर पीत गोपीचन्दन वैष्णव-हृदय श्रीपोद्दारजीकी श्रीराधा-उपासनाका प्रतीक था। ■

श्रीराधाकृष्णजी

लगनवाले व्यक्ति थे

सन् १९४० में मैं कलकत्ता चला गया। वहाँ मुझे 'मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी' की स्वर्णजयन्तीके उपलक्ष्यमें प्रकाशित होनेवाली स्मारिकामें सहयोग करनेका कार्य प्राप्त हुआ। संस्थाके इतिहास-लेखनकी सामग्री जुटानेके संदर्भमें मैं मारवाड़ी समाजके कुछ पुराने कार्यकर्ताओंसे मिला, जिनका सोसाइटीकी स्थापनामें हाथ था। सोसाइटीके प्रथम मन्त्री थे— श्रीओंकारमलजी सराफ। मैं उनसे मिलने गया। प्रथम भेंटमें ही मैं उनके आकर्षक व्यक्तित्व और असाधारण स्मरणशक्तिसे प्रभावित हो गया। संयोगवश श्रीओंकारमलजी श्रीपोद्दारजीके बचपनके साथी तथा अभिन्न मित्र थे। प्रसंगवश उनसे मुझे श्रीपोद्दारजीकी जीवन-कथाकी कुछ महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई। श्रीसराफजीने बताया— जब श्रीपोद्दारजी कलकत्ते आये थे, तब उनकी अवस्था बहुत छोटी थी, पर वे अपने बारेमें भी जितना नहीं सोचते थे, उससे अधिक वे देशके बारेमें सोचा करते थे। बंग-भंगके फलस्वरूप प्रारम्भ हुआ स्वदेशी-आन्दोलन, वह उन्हें प्रेरणा और बल देता था। उन दिनों बाबूराव विष्णु पराड़करजी कलकत्तेमें ही रहते थे, जिन्होंने आगे चलकर काशीके 'आज' और 'संसार' के सम्पादनद्वारा हिन्दी-पत्रकारिताका कीर्तिमान स्थापित किया था। उन दिनों बंगाली क्रान्तिकारी गीतासे प्रेरणा लेते थे और मातृभूमिके लिये अपना जीवन होम करनेके लिये तैयार रहते थे। बंगाली क्रान्तिकारियोंके पास श्रीश्यामाचरण लाहिड़ीकी टीकावाली गीता रहती थी। क्रान्तिकारियोंके लिये श्रीपराड़करजीने गीताकी टीका हिन्दी भाषामें की थी, जो प्रकाशित होकर सुलभ हुई। उसके मुखपृष्ठपर सिंहवाहिनी भारतमाताकी छवि अंकित थी। कहा जाता है कि उस गीताको छपवानेमें श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका प्रमुख हाथ था। उसी गीताको हाथमें लेकर कलकत्तेके कतिपय नवयुवक क्रान्तिके कार्यमें प्रवृत्त हुए।

स्वदेशीका आन्दोलन भी तीव्र गतिसे चल रहा था। इसमें सहयोग देनेकी भावनासे

श्रीपोद्दारजीने 'स्वदेशी वस्तु भंडार' भी खोल रखा था, जिसका काम श्रीनागरमल मोदी देखते थे। श्रीनागरमल मोदीसे मिलनेपर उन्होंने बतलाया था– 'स्वदेशी वस्तु भंडार' का काम हमलोग बड़ी श्रद्धा और परिश्रमके साथ करते थे। वहाँ बिकनेवाली प्रत्येक चीज स्वदेशी ही नहीं, शुद्ध भी रहती थी। शुद्ध घीसे लेकर शुद्ध शहद और शुद्ध खादीके वस्त्र वहाँ मिलते थे। यज्ञ और हवनकी सामग्री भी वहाँ शुद्ध मिलती और उचित मूल्यपर प्राप्त होती थी। श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार लगनवाले और श्रद्धालु व्यक्ति थे। उनके भीतर देशप्रेमकी आग धधकती रहती थी। देशको स्वतन्त्र बनानेकी तड़प जैसी उनमें थी, वैसी आग बहुत कम लोगोंमें देखी गयी। श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी तरहका लगनवाला व्यक्ति मैंने दूसरा नहीं पाया।

इधर क्रान्तिकार्य जोर पकड़ रहा था। सरकार इसे सहन न कर सकी। उसने दमनचक्र चलाया। लोग पकड़े गये, जिनमें श्रीपोद्दारजी भी थे। कुछ कार्यकर्ता पलायन कर गये, कुछके घरवालोंने अपने परिवारके व्यक्तियोंके विरुद्ध समस्त प्रमाण पुलिसके रेकार्डसे निश्चिह्न करा दिये। उस समयकी गिरफ्तारियोंका आधार भी बड़ा विचित्र था। जिनके पास भी पराड़करजीकी टीकावाली गीता मिलती, उसे बेखटके गिरफ्तार कर लिया जाता, मानो गीता रखनेवाला प्रत्येक व्यक्ति सशस्त्र क्रान्तिकारी हो। फल यह हुआ कि लोग भयभीत हो गये और उन्होंने गीताकी पोथियोंको जलाकर ही निष्कृति पायी। गीता जलाये जानेके समाचारने श्रीपोद्दारजीको जेलमें क्षुब्ध कर दिया कि यह क्या बात है, लोग गीता-जैसी पोथीको भी जला बैठे।

उसी समय उनके मनमें आया कि यदि समय और सुयोग मिला तो किसी समय गीताकी पोथी घर-घर उपलब्ध करा दूँगा। समय आया और सुयोग मिला। उन्होंने अपना सपना पूरा होते हुए देखा और भारतमें उन्होंने सर्वत्र घर-घरमें गीताकी पोथी उपलब्ध करा दी।

कुछ लोग कहते हैं कि श्रीपोद्दारजीने शास्त्रोंकी बातें ही तो कही हैं, उन्होंने मौलिक क्या दिया ? वे लोग भूल जाते हैं कि हमारे वेदके मन्त्र प्रकट करनेवाले ऋषि भी उन मन्त्रोंके स्रष्टा नहीं, द्रष्टा कहे जाते हैं। श्रीपोद्दारजीने धर्म, निष्ठा, भाव, भक्ति, ज्ञान, अध्यात्मको सर्वसुलभ कर दिया, यह क्या कम है ? भारतमें जबतक भाव और भक्ति, भजन और पूजन, ज्ञान और वैराग्यकी धाराएँ बहती रहेंगी, तबतक श्रीपोद्दारजी श्रद्धा और आदरके साथ स्मरण किये जायँगे। ■

श्री र. शौरिराजन्

उन्होंने अभिरुचि जगायी

मेरा उनके साथ परोक्षतः परिचय सन् १९४८ से है। मैं तत्काल तंजौर जिलेके तिरुवैयारुमें स्थित 'महाराजा संस्कृत कालेज'में 'तर्कशिरोमणि' की उच्च कक्षामें पढ़ रहा था। स्वाध्यायसे थोड़ी हिन्दी सीख गया था। हिन्दी सीखनेकी अभिरुचि मुझ-जैसे शत-शत छात्रोंके मनमें जगायी गीताप्रेसकी छोटी-छोटी ज्ञानवर्धक पुस्तिकाओंने। 'हिन्दू-संस्कृतिका स्वरूप',

'उपनिषदोंके चौदह रत्न', 'सचित्र संक्षिप्त भक्त-चरित्र-माला'के दशाधिक प्रकाशन, 'कल्याण'के वार्षिक विशेषांक आदि उपादेय प्रकाशन हमें नूतन दिशा-दर्शन देते रहे।

श्रीपोद्दारजीकी उत्तम पुस्तक 'हिन्दू-संस्कृतिका स्वरूप' का तमिलमें अनुवाद करनेका परम सौभाग्य मुझे १९५६ में मिला, साथ ही, कुछ अन्य पुस्तकोंका भी, जो श्रीपोद्दारजीकी लिखी थीं। ये तमिल अनुवाद 'दक्षिणभारत हिन्दी-प्रचारसभा'के प्रेसमें छपे थे। जब श्रीपोद्दारजी दक्षिणभारतके तीर्थोंकी यात्राके लिये पधारे, तब ये पुस्तकें लोगोंको निःशुल्क वितरित की गयीं। मैंने कई विद्वानों एवं सामान्य व्यक्तियोंके मुँहसे सुना— ऐसी पुस्तकोंके द्वारा ही हमारी गरिमापूर्ण हिन्दू-संस्कृतिका युगानुकूल प्रचार-प्रसार हो सकता है। यदि श्रीपोद्दारजी-जैसे एक भी विद्वान् तथा त्यागमूर्ति प्रत्येक भारतीय भाषामें रहते तो भारतका उत्थान सुसाध्य हो जाता। ■

श्रीयुत शा. रा. शारंगपाणि

दक्षिणभारतकी तीर्थयात्रामें

सन् १९५६ में मैं 'दक्षिणभारत हिन्दी-प्रचारसभा'के मुखपत्र 'हिन्दी-प्रचार-समाचार' का सह-सम्पादक था। उस वर्ष श्रीपोद्दारजी छः सौ स्त्री-पुरुषोंके साथ सम्पूर्ण भारतके तीर्थोंकी यात्रापर निकले थे। जब वे दक्षिण भारत पहुँचे, तब मुझे उनके साथ दुभाषिया बनकर रहनेके लिये कहा गया। मैंने इसे अपना सौभाग्य माना। मैं गीताप्रेस और 'कल्याण' पत्रिकाका बड़ा प्रेमी था। मैंने सोचा, इसी निमित्तसे कुछ अच्छे साहित्यिक एवं धार्मिक पत्रकारोंके साथ मैं भी कुछ तीर्थोंकी यात्रा तथा दिव्य देवालयोंके दर्शन कर सकूँगा, परंतु जब मैं तिरुपति जाकर उस यात्री-दलके नेता श्रीपोद्दारजीसे मिला, तब देखा— वे साहित्यिक एवं धार्मिक पत्रकार मात्र नहीं थे, वे तो स्वयं साधु, संत, तपस्वी तथा मनस्वी थे। उनके प्रति मेरे मनमें प्रेम, आदर एवं श्रद्धाके भाव सहज ही उत्पन्न होने लगे और शीघ्र ही बढ़ने लगे। उनके साथ चलनेमें, उनकी वार्ता सुननेमें और उनकी सेवा करनेमें मुझे परम आनन्दका अनुभव होने लगा। हाँ, उन यशस्वी 'कल्याण'के तपस्वी सम्पादक एवं स्थित-प्रज्ञ संत श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके पवित्र स्मरणसे मुझे आज भी आनन्द ही नहीं, कुछ अभिमान भी अवश्य होता है।

श्रद्धेय श्रीभाईजीके नेतृत्वमें मुझे तीर्थयात्रियोंके साथ तिरुपति, कालहस्ती, काञ्चीपुरम्, तिरुवण्णामलै, श्रीरंगम्, तिरुचिरापल्ली, मदुरै, रामेश्वरम्, श्रीविल्लिपुत्तूर, तेन्काशी, तिरुनेल्वेलि, आळवार-तिरुनगरी, तिरुवनंतपुरम् आदि अनेक दिव्य-क्षेत्रोंमें सेवार्थी एवं दुभाषिया बनकर जानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसे मैं अपने जीवनका दुर्लभ तथा महत्त्वपूर्ण अवसर मानता हूँ। उन दिनों श्रीभाईजीके निकटस्थ सेवकके नाते साथ रहकर उनके पवित्र आचार-विचारसे, स्तुत्य स्नेह-सौलभ्यसे, विस्मयकारी व्याख्यान-प्रवचनोंसे मैं अत्यन्त प्रभावित तथा लाभान्वित हुआ।

छोटी-छोटी घटनाओंका वर्णन और प्रसंगोंका विश्लेषण करनेका श्रीभाईजीका ढंग अनोखा होता था। एक उदाहरण लीजिये— तिरुपतिसे श्रीभाईजी हमें तिरुमलै ले जा रहे थे। समय और

शारीरिक शक्तिका ख्याल करके हम पैदल नहीं, बस या कारसे ही जा रहे थे। यात्री-दलके सब सदस्योंको पहले बसोंमें आरामसे बैठानेके बाद ही श्रीभाईजी अपनी गाड़ीमें बैठे। बसें एक-एक करके चलने लगीं। कार आगे-आगे जा रही थी और बसें पीछे-पीछे। थोड़ी दूर बढ़नेपर हम उस चौकपर पहुँचे, जहाँसे पहाड़पर पदयात्रियोंके चढ़नेके लिये सीढ़ियोंका रास्ता निकलता है। श्रीभाईजीने वहाँ जाते ही गाड़ियाँ जरा रोकीं। सब तीर्थयात्री उतर गये। भक्तिमय भावुकताके साथ श्रीभाईजीने यात्रियोंको समझाया— यहाँकी कुछ विशेषता है। यहाँ भगवानके अर्चावतारके समान ही उनका विभवावतार भी महत्त्वपूर्ण एवं पूज्य माना जाता है। यह 'शेषशैल', जो वास्तवमें सात पहाड़ियोंका एक समूह है, आदिशेषका स्वरूप माना जाता है। यहाँ भगवानको 'शेषशैल शिखामणि' कहते हैं। श्रीरामानुजाचार्य स्वामीने इस पवित्र पर्वतपर पैर रखकर चढ़ना अनुचित समझा और इसलिये अपने घुटनों और हथेलियोंपर कपड़े लपेटकर उन्हींके बल चढ़कर मन्दिर पहुँचे। लेकिन हाय! आज हम अशक्त हैं, विवश हैं।

इतना कहकर थोड़ी देरके लिये वे आँख मूँदकर ध्यानस्थ हो गये। फिर उन्होंने शेषाद्रिकी ओर दण्डवत् प्रणाम किया और वहाँकी धूलि सिरपर लगा ली। उनकी देखा-देखी दूसरोंने भी भाव-विभोर होकर शेषाद्रिको प्रणाम किया।

प्रतिदिन सुबह-शाम भजन-कीर्तनका क्रम नियमित रूपसे चलता था। पहले श्रीगोस्वामीजी अपने सुरीले कण्ठसे सूरदास या तुलसीदासका कोई पद गाते और बादमें दूसरे लोग करतालके साथ उनका अनुसरण करते थे। सब लोग आँखें मूँदकर एक स्वरसे और तालबद्ध रीतिसे जब भजन-कीर्तन करते, तब आस-पासके दर्शक और श्रोता भी भक्ति-भावसे झूम जाते थे। कीर्तनके बाद श्रीभाईजीका प्रवचन अक्सर प्रसंगोचित तथा तीर्थोचित रीतिसे परिचयात्मक तथा उद्‌बोधक होता था। कहीं-कहीं स्थानीय भक्त-प्रेमियोंद्वारा स्वागतार्थ आयोजित सभा-समारोहोंमें ही भजन-कीर्तन और प्रवचनका कार्यक्रम भी शामिल हो जाता था।

इस प्रकार भक्ति और सदाचार-विषयक प्रवचनोंके अलावा तिरुवण्णामलै, श्रीरंगम्, मदुरै, रामेश्वरम्, श्रीविल्लिपुत्तूर आदि तीर्थोंमें उनके जो प्रवचन हुए थे, वे साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे। तिरुवण्णामलैमें उन्होंने रमणाश्रम और श्रीरमण महर्षिका उल्लेख करते हुए समझाया कि मानव वैराग्य तथा सतत साधनाद्वारा किस प्रकार अतिमानव बन जाता है। श्रीरंगम्‌में प्रवचन करते समय वैष्णव भक्ति-आन्दोलन और उसके आलवारों एवं आचार्योंका सुन्दर संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया। रामेश्वरम्‌के प्रवचनमें भारतके सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय एकात्म-भावके संवर्द्धनमें रामेश्वरम्-जैसे तीर्थस्थानोंका महत्त्व बतलाया। आण्डालके दिव्यक्षेत्र श्रीविल्लिपुत्तूरके भाषणमें आण्डाल और मीराँकी माधुर्य-भक्तिका परिचय देते हुए भक्तिमें निष्काम-प्रेमकी विशिष्टता बतलायी।

मदुरै श्रीमीनाक्षी-मन्दिरमें आयोजित स्वागत-सभाका कार्यक्रम बहुत रोचक रहा। स्थानीय भक्त-प्रेमियोंने तमिल, संस्कृत और सौराष्ट्र भाषाके भजन सुनाये और श्रीभाईजीकी धार्मिक सेवाओंकी प्रशंसा करते हुए उनको बहुत बड़ी माला पहनायी और सम्मानपत्र पढ़कर समर्पित किया। स्थानीय भक्त-प्रेमी उस समय प्रसन्न दीखते थे, परंतु श्रीभाईजी बहुत गम्भीर और चिन्तित रहे। अपने भाषणमें उन्होंने नाजुक ढंगसे समझाया— व्यक्तियोंके नाम-रूपकी प्रशंसा

करना और माला पहनाकर उनका गुणगान करना ठीक नहीं है, उससे किसीकी भलाई नहीं होती। भजन-कीर्तन, पूजन एवं भोग आदि सब उपचार भगवानके दिव्य नाम-रूपको लेकर होने चाहिये।

श्रीभाईजीकी उस असाधारण सरलता एवं दीनताको देखकर सब लोग चकित रह गये। तभी मैं भी समझ सका कि श्रीभाईजी क्यों सब जगह भक्त-प्रेमियोंके आग्रहके बावजूद फोटोके कार्यक्रमोंसे बचते ही रहे।

'दक्षिणभारत हिन्दी-प्रचार सभा'के भवनमें आयोजित स्वागत-समारोहमें सभाके तत्कालीन प्रधान मंत्री श्रीसत्यनारायणजीने श्रद्धेय श्रीभाईजी और अन्य तीर्थयात्रियोंका सादर स्वागत करते हुए हर्ष प्रकट किया— यात्रीदलके आगमनसे दक्षिणभारतमें भक्ति-आन्दोलनको ही नहीं, अपितु हिन्दीप्रचार-आन्दोलनको भी बहुत बल मिला है।

श्रीभाईजीने अपने भाषणमें सभाके कार्यपर संतोष प्रकट करते हुए सभा और सभाके प्रचारकोंकी सेवा-सहायताके लिये अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

स्वयं उच्चकोटिके विद्वान् तथा प्रभावकारी वक्ता होते हुए भी श्रीभाईजी उनके स्वागतके लिये आये हुए स्थानीय वेदपाठी पण्डितों, शास्त्रज्ञों और भागवतोंके सामने सविनय नत-मस्तक होकर उनको प्रणाम करते, उनका शुद्ध-सस्वर वेदपाठ सुनकर अत्यन्त हर्षित होते और फल-फूल-दक्षिणा देकर उनका खूब सम्मान करते थे। विभिन्न केन्द्रोमें स्थित 'दक्षिणभारत हिन्दी-प्रचार सभा' के प्रचारक अपने-अपने छात्रोंसहित तीर्थयात्रीदलके स्वागतार्थ आते थे। श्रीभाईजी उन सभीसे बड़े प्रेमसे बातें करते और गीताप्रेसके कई उत्तम ग्रन्थ भेंट देकर भेजते थे। प्रचारकगण श्रीभाईजीकी दानशीलता, हिन्दी-प्रेम, धार्मिकता और सरलतासे बहुत प्रभावित होकर उनकी सेवा-शुश्रूषा करनेमें एक-दूसरेसे होड़ लगाते थे।

मैं तो चुपचाप यह देखकर दंग रह जाता और ऐसे संत-महात्माओंकी सेवा-सहायता करनेके अपने सौभाग्यपर खुश रहता था। मद्राससे विजयवाड़ाके लिये उनको बिदा करने जब मैं मद्रास सेंट्रल स्टेशन गया, तब श्रीभाईजीने बड़ी कृतज्ञता प्रकट की। ■

श्री. आर. आर. दिवाकर (भूतपूर्व राज्यपाल)

उदार दृष्टि विशाल प्रयत्न

'कल्याण'के नाना वार्षिक विशेषांकोंके प्रकाशनकी परम्पराका प्रवर्तन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार द्वारा हुआ। बहुत दिनों पूर्व जब 'गीतांक' प्रकाशित हुआ था, तब सम्भवतः यह सबसे पहला सुविशाल अंक था, जिसमें, मुझे स्मरण है कि उन्होंने मुझे केवल एक लेख भेजनेके लिये ही नहीं लिखा, अपितु 'गीता' जैसे महान विषयपर पर्याप्त क्षमतापूर्वक लिख सकनेवाले कर्नाटक-क्षेत्रके कुछ व्यक्तियोंके नाम भी माँगे थे। मैंने उन्हें तीन या चार नाम तथा एक या दो लेख भेजे थे।

श्रीपोद्दारजीके इस प्रयाससे दो बातें स्पष्ट हुईं— एक तो यह कि वे गीताको एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं सार्वभौम ग्रन्थ मानते थे, जिसकी ओर सभी भारतवासियोंका आकर्षण सम्भव है

और दूसरी बात यह कि उन्होंने इसके द्वारा गीतापर अपने विचार प्रकट करनेके लिये भारतके विभिन्न क्षेत्रोंके विद्वानोंको आमन्त्रित किया। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि 'गीतांक' को भव्य सफलता मिली।

दूसरा महत्त्वपूर्ण अवसर, जो मुझे स्मरण है, वह है गीताके विभिन्न भाषाओंमें प्रकाशित संस्करणों एवं टीकाओंकी प्रदर्शनी। मुझे याद है कि मेरी गणनाके अनुसार उनकी कुल संख्या ५५० या उसके लगभग थी। श्रीपोद्दारजीकी यह दूसरी नयी सूझ थी।

श्रीमान् पोद्दारजीका सर्वाधिक विशिष्ट एवं स्मरणीय कार्य एक महान संगठनका विस्तार एवं सुदृढ़ीकरण है। ■

श्रीयुगलसिंहजी खीची

आलोचनाके क्षणोंमें

'कल्याण'के 'परलोक और पुनर्जन्मांक'में पृष्ठ ५२५ पर यह वाक्य प्रकाशित हुआ है– एक मृत पारसी आत्माने एक सज्जनसे कहकर अपने लिये गयामें पिण्डदान करवाकर सद्गति प्राप्त की थी।

एक अवसरपर जब श्रीभाईजी बीकानेर पधारे, तब उन्होंने तत्कालीन महाराजा श्रीसार्दूलसिंहजीको इस घटनाका पूरा विवरण सुनाया था। जब श्रीभाईजी बम्बईमें चौपाटीपर एक बेंचपर विराजमान थे, तब एक पारसी प्रेतने प्रकट होकर उन्हें अपने घरका पता बतलाया और प्रार्थना की कि उसकी सद्गतिके लिये गयामें उसके निमित्त पिण्डदान करवाया जाय। तदनुसार व्यवस्था हो जानेपर वह पुनः प्रसन्न मुद्रामें श्रीभाईजीके समक्ष कृतज्ञता प्रकट करनेके लिये उपस्थित हुआ।

एक बार कुछ लोगोंके सामने श्रीभाईजीने एक-दो स्वजनोंके आग्रहसे इस घटनाको सुनाया। संयोगसे उस समय एक तार्किक सज्जन थे, जिनकी शास्त्रोंपर श्रद्धा नहीं थी। वे इस घटनाको सुनते ही बड़े क्षुभित हो गये और आवेशमें भरकर श्रीभाईजीको खरी-खोटी सुनाते हुए कहने लगे– आपका 'कल्याण' और आप ऐसी दकियानूसी बातोंका प्रचार करके समाजकी अधोगति कर रहे हैं।

उपस्थित सभी सज्जनोंको उनके इस प्रकार बोलनेसे बड़ी पीड़ा हुई। सबने उन सज्जनसे प्रार्थना की– इस प्रकार आपको बिना अनुभवके किसी संतका अपमान नहीं करना चाहिये।

मैंने देखा कि इस प्रलापके प्रहारने श्रीभाईजीकी शान्त और गम्भीर मुद्रापर तनिक भी विकार उत्पन्न नहीं किया। मुस्कुराते हुए श्रीभाईजीने इतना ही कहा– जो कुछ मेरा अनुभव था, मैंने सुना दिया। उसे मानना या न मानना आपकी इच्छापर निर्भर है। इसके लिये किसी तरहकी मजबूरी तो है नहीं।

श्रीभाईजीके इस मनोनिग्रहको देखकर सहृदय जनोंको परम प्रसन्नता हुई। श्रीभाईजीसे ज्यों-ज्यों मेरी घनिष्ठता बढ़ती गयी, त्यों-त्यों मेरा यह विश्वास दृढ़ होता गया कि त्याग और

तपस्याके कारण श्रीभाईजीने निर्विकार वृत्तिमें स्थित रहनेकी सिद्धि प्राप्त कर ली थी। ■

श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा

'स्वयं चिद्रूपलक्षणः'

कई वर्ष पूर्वकी बात है— मैंने हिन्दीमें लिखना शुरू किया था। एक दिन मनमें आया कि 'कल्याण'में लेख भेजें, पर साहस नहीं हो रहा था। इतनी बड़ी पत्रिका और मैं नौसिखुआ लेखक! पर लिखकर भेज ही दिया। तुरन्त उत्तर मिला, जिसमें सम्बोधन था— 'मान्य महोदय!' और हस्ताक्षर था— 'हनुमानप्रसाद पोद्दार।' मुझे अभीतक स्मरण है मेरा उत्साह तथा आनन्द। एक छोकरेके प्रति एक सम्पादकका इतना विनम्र व्यवहार! आजतक मुझे इतना शिष्ट तथा विनम्र सम्पादक हिन्दीमें नहीं मिला।

श्रीपोद्दारजीने भारतके धार्मिक साहित्यको जो परिष्कृत मोड़ दिया, 'कल्याण'के माध्यमसे आर्यधर्मकी जो सेवा की, उसकी अमर कहानीपर मैं क्या लिखूँ? मैं हिन्दी-अँग्रेजीका एक लेखक होनेके नाते यह कह सकता हूँ कि श्रीपोद्दारजीने हिन्दी-साहित्यकी जो सेवा की है तथा जिस प्रकार हिन्दीमें धार्मिक विषयोंपर लिखनेवाले नये लेखक तैयार किये हैं, उसकी महिमा ही अपार है।

कभी-कभी श्रीपोद्दारजी कुछ महीनों ऋषिकेशमें प्रवास करते थे। एक बार मैं एक दिन वहाँ पहुँचा। मेरे साथ भूतपूर्व इंस्पेक्टर-जनरल पुलिस, श्रीमहेशेन्द्रशंकर माथुर, उनकी पत्नी तथा कई अन्य मित्र थे। मध्याह्नोत्तर एक बजा था। श्रीपोद्दारजी कागजोंसे लदे-घिरे काम कर रहे थे। माथुरको संकोच हो रहा था कि एक अपरिचितके पास कैसे जायें। हमको तेज भूख भी लगी थी, पर मैं न माना। कहा— चलो, पाँच मिनटमें नमस्कार करके चल देंगे।

श्रीपोद्दारजी अतिथि-सत्कारमें कितने कुशल थे, कितने विनम्र थे अपने अतिथियोंके प्रति— इसका तभी अनुभव हुआ। कुछ ही देरमें हमारे अपरिचित मित्रोंसे उनकी ऐसी आत्मीयता हो गयी, जैसे बहुत पुरानी हो। हमें तो भूख लगी थी। भागना चाहते थे हम। श्रीपोद्दारजी बोले— बाबूजी (डा. सम्पूर्णानन्द) जब गोरखपुर आते थे, मेरे साथ भोजन अवश्य करते थे। आप बिना भोजन किये नहीं जा सकते।

मुझे संकोच हुआ। मैंने कहा— हमलोग कई व्यक्ति हैं।

उन्होंने कहा— तब तो और आनन्द आयेगा।

हमारे साथ दरोगाजी थे। उन्होंने स्नान नहीं किया था। वर्दीमें थे। ब्राह्मण थे, बिना स्नान कैसे भोजन करते। चट धोतीका प्रबन्ध हो गया। सबको भूख लगी ही थी। बढ़िया भोजन मिला और श्रीपोद्दारजी हमें खिलाकर ऐसे संतुष्ट हो रहे थे, मानो हमने उन्हें कोई वरदान दे दिया हो। लौटते समय माथुर साहबने मुझसे कहा— भाई! इतना भला आदमी बिरले ही मिलता है।

मैं मानव-जीवनकी परख साधारण बातोंसे करता हूँ। विद्वान्, गुणी तथा योगी तो मनुष्य स्वयं होता है, पर दूसरेको उसके सम्पर्कमें आकर उसके साथ व्यवहारमें जो अनुभूति होती है,

उसीसे उसकी मर्यादा पहचानी जाती है। श्रीपोद्दारजीसे मेरा पुराना सम्पर्क एवं सम्बन्ध रहा है। वे जानते थे कि मैं लेख लिखता हूँ तो पैसा लेता हूँ। उधर मुझे संकोच बना हुआ था कि 'कल्याण'के सुन्दर अंक तथा गीताप्रेसके प्रकाशन मुझे वे मुफ्तमें भेजते हैं। दोनों अपने संकोचमें थे। एक दिन वे मुझसे हँसकर बोले— आप मुझे लिखते हैं कि अमुक पुराणकी पुस्तक आपने मुझे मुफ्त भेज दी, इससे मुझे संकोच है, पर मैं तो आपको लेखके लिये कुछ नहीं देता।

ऐसा था उनका स्नेहभरा व्यवहार। मैंने उन्हें निजी व्यवहारमें मर्यादापुरुष, आदर्श नागरिक तथा सच्चा मित्र पाया ! आजकल ऐसे महापुरुष कम मिलते हैं— बिरले ही मिलते हैं। मैं उन्हें हर दृष्टिसे— *'स्वयं चिद्रूपलक्षणः'* पाता हूँ। ■

ठाकुर श्रीश्रीनाथजी सिंह

उच्चादर्शोंके प्रतीक

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके व्यक्तिगत परिचयका सौभाग्य मुझे लगभग उस समयसे प्राप्त है, जब उन्होंने गोरखपुरसे 'कल्याण'का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। उन दिनों मैं प्रयाग स्थित 'इंडियन प्रेस'से प्रकाशित होनेवाली मासिक पत्रिका 'सरस्वती'के सम्पादकीय विभागमें काम करता था। श्रीपोद्दारजीने अपने तत्कालीन सहयोगी, गीताप्रेसके तत्कालीन व्यवस्थापक श्रीबाजोरियाजीको प्रयाग इसलिये भेजा था कि वे 'सरस्वती'के वितरणकी व्यवस्थाको देखें और समझें, ताकि कुछ उसी ढंगपर वे 'कल्याण' का ग्राहक-रजिस्टर रखें। हमलोगोंने 'सरस्वती'के बारेमें कुछ गर्वका अनुभव किया और बाजोरियाजीको सरस्वतीका ग्राहक-रजिस्टर आदि दिखलाया, परन्तु सब कुछ देखकर उन्होंने हमारे गर्वपर पानी फेरते हुए कहा— ऐसी व्यवस्थासे 'कल्याण'का काम नहीं चल सकता। थोड़े-से ग्राहक हों तो यह तरीका काम दे सकता है, परन्तु श्रीभाईजी 'कल्याण'की ग्राहक-संख्याको लाखोंतक ले जाना चाहते हैं, और चाहते हैं कि कोई ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या न लिखे, तो भी उसके नाम अथवा स्थानसे ग्राहक-रजिस्टरमें उसे जल्द-से-जल्द खोजा जा सके।

इससे यह स्पष्ट है कि 'कल्याण'के जन्मके समयमें ही श्रीपोद्दारजीके मनमें उसके कितने व्यापक प्रचारकी भावना थी और उन्हें इसमें सफलता भी मिली।

एक बार 'कल्याण'में भगवान श्रीकृष्ण और गोपियोंका एक बहुत ही सुन्दर तिरंगा चित्र प्रकाशित हुआ। मेरी इच्छा हुई कि उसे मैं अपनी पारिवारिक पत्रिका 'दीदी'में उद्धृत करूँ। मैंने श्रीभाईजीको पत्र लिखा— आप कृपापूर्वक उस चित्रका ब्लाक मुझे दे दें, जिसे मैं छापकर वापस कर दूँगा।

श्रीभाईजीने उत्तर दिया— गीताप्रेसके ब्लाकको उधार देनेका नियम नहीं है, परन्तु उस ब्लाकसे, जितने आप चाहें, चित्र छापकर हम भिजवा सकते हैं।

मैंने अपनी आवश्यकता उन्हें बतायी। शीघ्र ही मेरे पास चित्रोंकी आवश्यक संख्या बढ़िया आर्ट पेपरपर छपी हुई आ गयी। छपाईका बिल देखकर मैं दंग रह गया। उस मूल्यमें वैसा कागज भी नहीं खरीदा जा सकता था। भेंट होनेपर इस बारेंमें मैंने उनसे पूछा तो वे बोले—

गीताप्रेस व्यापारिक संस्था नहीं है। इसका मुख्य उद्देश्य सेवा है।

मैंने उनसे दूसरे प्रेसोंमें तिरंगी छपाईकी लागत बतायी और कहा— इस लागतसे भी कम मूल्यमें चित्र आदि बेचकर गीताप्रेस अपना काम कैसे चला सकता है? कर्मचारियोंको वेतन भी तो देना पड़ता है।

गीताप्रेसके कर्मचारियोंके प्रति सहजभावसे आर्द्र होते हुए श्रीभाईजीने कहा— हमारे कार्यकर्ता अन्य संस्थाओंके कार्यकर्ताओंसे भिन्न है। उनका समर्पित जीवन है। वे जानते हैं कि गीताप्रेस, जो मुनाफेके लिये काम नहीं करता, भारी वेतन भी नहीं दे सकता। उन्हें इसमें आनन्द है।

फिर वे मुस्कुराकर बोले— कौन नहीं जानता कि 'कल्याण'का वार्षिक मूल्य उसके विशेषांकोंमें ही वसूल हो जाता है। वर्षके बाकी ११ अंक ग्राहकको मुफ्त पड़ते है।

उनकी उस समयकी सेवा-भावनासे ओत-प्रोत, सादगी, संतोष और आनन्दसे युक्त मुखमुद्रा आज भी मेरे स्मृति-पटपर वैसे ही खचित है।

एक बार जब प्रादेशिक हिन्दू-महासभा महन्त श्रीदिग्विजयनाथजीके नेतृत्वमें प्रदेशव्यापी आन्दोलन करनेके लिये उतावली हो रही थी, मेरी श्रीभाईजीसे नैनीतालमें भेंट हुई। महन्तजी उन्हें अपने साथ पंत-सरकारपर जोर डलवानेके लिये ले गये थे। उन्होंने सरकारके समक्ष नौ या दस माँग रखी थीं और इस सम्बन्धमें एक पत्रकार-सम्मेलन बुलाया था। संयोगसे मैं भी उस पत्रकार-सम्मेलनमें उपस्थित था। महन्तजीने पत्रकारोंके समक्ष अपनी सरकारके सामने रखी जानेवाली माँगें रखी और शिकायतके स्वरमें कहा— आपलोग कांग्रेसकी छोटी-मोटी बातोंका भी ढिंढोरा पीटते रहते हैं, परन्तु हमारे आवश्यक समाचार भी नहीं छापते।

इसपर कोई पत्रकार बोल उठा— आपलोग समाचार पैदा कहाँ करते हैं।

श्रीभाईजी, जो अबतक मौन थे, बोले— समाचार पैदा करना हम जानते हैं, परन्तु हम सरकारको परेशान नहीं करना चाहते। खैर, आप यही चाहते हैं तो समाचार पैदा होगा और आप हमारे पास स्वयं आयेंगे।

उसी समय श्रीभाईजीने महन्तजीकी दस माँगोंमें एक माँग और जुड़वा दी— तीर्थस्थानोंमें गोवध तुरन्त बंद किया जाय।

महन्तजीने सरकारके सामने जो माँग रखी थी, उनमें यह माँग नहीं थी। अतएव सरकारकी ओरसे कहा गया कि यह ग्यारहवीं माँग बादमें सरकारको परेशान करनेके इरादेसे रखी गयी है, परन्तु हिन्दू-महासभा इसपर अटल रही और सरकारको झुकना पड़ा। तीर्थस्थानोंमें गोवध बंद हुआ।

नैनीतालसे वापसीमें बरेली जंक्शनपर मेरी श्रीभाईजीसे पुनः भेंट हो गयी। जिस डिब्बेमें मैं सवार था, वह किसी कारणसे खाली करा लिया गया था और यात्रियोंको अन्यत्र स्थान खोजनेको कह दिया गया था। जब मैं इस प्रयत्नमें भटक रहा था, श्रीभाईजीकी मुझपर नजर पड़ी और उन्होंने मुझे अपने डिब्बेमें बुला लिया। उस डिब्बेमें श्रीभाईजी और महन्त दिग्विजयनाथजीके अतिरिक्त एक अँग्रेज सज्जन भी थे। उनकी अनुमति आवश्यक थी, जो श्रीभाईजीने तुरन्त प्राप्त कर ली थी। उन अग्रेज सज्जनसे वार्तालाप होने लगा, अन्तमें

हिन्दू-धर्म और ईसाई-धर्ममें ईश्वरका क्या स्वरूप है, इसपर सौहार्दपूर्ण विवाद छिड़ गया। उस समय शायद रात्रिके लगभग ग्यारह बजे थे। परन्तु विषय ऐसा था कि किसीको नींद नहीं आ रही थी। उन अंग्रेज सज्जनने कहा– ईश्वरको हम पिता मानते हैं, जो स्वर्गमें है।

उनके इस कथनको आदरके साथ स्वीकार करते हुए श्रीभाईजीने कहा– हम ईश्वरको पिता ही नहीं, परमपिता कहते हैं। उपासनाके प्रारम्भमें हमारा उसके प्रति सेवकका भाव रहता है, क्रमशः हम उसे सखा मानने लगते है और अन्तमें हम उसे शिशुरूपमें देखने लगते हैं।

इस वार्तालापके अन्तर्गत श्रीभाईजीने वैष्णवधर्मकी ऐसी मीमांसा की कि यहाँ मैं उसे दोहरानेमें अपनेको अक्षम पाता हूँ। अँग्रेज महोदयपर श्रीभाईजीके विचारोंका बड़ा प्रभाव पड़ा।

'कल्याण'के विशेषांकोंके रूपमें श्रीभाईजीने पुराणोंके सस्ते और प्रमाणित हिन्दी-अनुवाद जनसाधारणके लिये सुलभ कर दिये हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराणकी महत्ताको ध्यानमें रखते हुए श्रद्धेय बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडनने इसे हिन्दीमें अनुवादित करवाकर 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन'से प्रकाशित कराना चाहा। हजारोंके व्ययके बाद यह पुराण हिन्दीमें अनूदित तो हुआ, परन्तु उसके प्रकाशनकी नौबत नहीं आयी। इसी बीचमें टंडनजीने देखा कि यह पुराण 'कल्याण'के एक विशेषांकके रूपमें प्रकाशित हो गया है। इसपर टंडनजीने श्रीभाईजीको बधाईका एक पत्र भेजा, जिसमें लिखा– जो काम हम 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' जैसी संस्थाके माध्यमसे करनेमें असमर्थ रहे, वह आपने सहज ही कर दिया। अब हम इस ओरसे निश्चिन्त हैं।

पुराणोंके अतिरिक्त श्रीभाईजी 'कल्याण'के और भी ऐसे विशेषांक प्रकाशित करते रहते थे, जिनमें एक ही विषयपर अनेक दृष्टिकोणोंसे लिखे गये लेख होते थे। 'कल्याण'के 'नारी-अंक', 'बालक-अंक' ऐसे ही थे। श्रीभाईजीकी धारणा थी कि नारियाँ भक्ति और वैराग्यकी मूर्ति होती हैं। वे ज्ञान और सदाचारसे युक्त हों तो राष्ट्रका बहुत लाभ हो। ऐसी ही नारियाँ अपने बालकोंको सदाचारी और श्रेष्ठ नागरिक बना सकती हैं।

देशके बालकों और युवकोंको आदर्श-चरित बनानेके लिये वे कितने चिन्तित थे– यह उनके उस पत्रसे स्पष्ट है, जो उन्होंने इस सम्बन्धमें मुझे लिखा था। मैं उस पत्रका कुछ अंश यहाँ दे रहा हूँ–

'कल्याण', गोरखपुर
आषाढ़ कृ. १०, २००८

सम्मान्य श्रीठाकुर साहब,

सादर प्रणाम। 'कल्याण'का विशेषांक 'बालक-अंक' प्रकाशित करनेका निश्चय हुआ हैं। बालक और युवकोंमें अनुशासनहीनता, उच्छृंखलता, संस्कृति और धर्मके प्रति अनास्था, कर्तव्यविमुखता, विलासिता आदि दोष बढ़ रहे हैं– यह आप मुझसे अधिक जानते हैं। हमारे बालक, सदाचारी, स्वस्थ, भगवद्भक्त, देशभक्त, सेवापरायण, कर्तव्यशील, उदार और महान-हृदय हों, इसी उद्देश्यसे 'बालक-अंक' प्रकाशित करनेका विचार किया गया है। आप हिन्दीके स्तम्भ हैं, बाल-मनोविज्ञानके पण्डित हैं, बाल-साहित्यके प्रख्यात निर्माता हैं, संस्कृति और धर्मके प्रेमी हैं एवं 'कल्याण'को हृदयसे अपना माननेवाले हैं। इसलिये आपकी सेवामें

विशेष रूपसे प्रार्थना है कि आप 'बालक-अंक'के लिये स्वयं कुछ लिखकर भेजें और अन्यान्य अधिकारी महानुभावोंसे उपयोगी लेख और निबन्ध लिखवाकर देनेकी कृपा करें। इस अंकमें भारतीय तथा विदेशी बालकों और तरुणोंके आदर्श संक्षिप्त चरित्र रहेंगे और बालकोंके जीवनका उत्थान करनेमें सहायक कुछ लेख भी रहेंगे। आशा है, आप कृपा पूर्वक इस कार्यमें सहायक होंगे।

कृपा तो आपकी है ही।

भवदीय

हनुमानप्रसाद पोद्दार

यह पत्र मैंने उद्‌धृत किया है इसलिये नहीं कि इसमें श्रीभाईजीने मेरी बड़ी प्रशंसा कर दी है, अपितु उनके अनुपम स्वभावकी एक झाँकी प्रस्तुत करनेके लिये। उनका यह स्वभाव ही था कि अपनेको अत्यन्त लघु और दूसरोंको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करते थे। उनके जैसा विनयावनत व्यक्ति मैंने दूसरा नहीं देखा। अपनेसे बड़ोंका आदर तो वे करते ही थे, परन्तु अपनेसे छोटेका और भी अधिक आदर करते थे। मिलनेवाले उनकी विनम्रता देखकर दंग रह जाते थे। सहज स्नेहसे सिक्त सौम्य मुखाकृति, ऊँचा और चौड़ा मस्तक, उसपर चन्दनका टीका और सादी वेष-भूषावाले वे सेवामें उपस्थित होनेवाले व्यक्तिके मनपर यही छाप डालते थे कि वह एक महान् भारतीय पुरुषके सामने उपस्थित हैं। ■

श्रीबनारसीदासजी चतुर्वेदी

देखा एक बार, परखा बार-बार

यद्यपि मुझे उनके दर्शनका सौभाग्य केवल एक बार ही प्राप्त हुआ, तथापि उनसे पत्र-व्यवहार बहुत वर्षोंसे चलता रहा और कई बार उन्होंने मुझपर कृपा भी की। गोरखपुरके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अवसरपर साहित्य-सेवियोंका एक दल उनका अतिथि हुआ था, जिसमें आचार्य पं.पद्‌मसिंह शर्मा, श्रद्धेय जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, श्रीगांगेय नरोत्तम शास्त्री तथा श्रीलक्ष्मण नारायण गर्दे मुख्य थे। मैं भी उन्हीं लोगोंके साथ था। उस समयकी कई मधुर स्मृतियाँ अब भी मेरे दिमागमें चक्कर काट रही हैं।

एक घटना खास तौरपर याद आ रही है। हमारे शौच आदिसे निवृत्त होनेपर जो सज्जन हमारे हाथ धुलाते थे, वे अधेड़ उम्रके और स्वच्छ कपड़े पहने थे। हम लोगोंने सोचा, वे श्रीपोद्दारजीके कोई नौकर होंगे, फिर भी मनमें आशंका अवश्य थी। पं. पद्‌मसिंहजीने उनके विषयमें श्रीपोद्दारजीसे पूछा तो उन्होंने कहा— जो सज्जन आपके हाथ धुलाते हैं, वे तो भागलपुरके एक लखपती सेठ हैं। उन्होंने सम्मेलनको आर्थिक सहायता तो दी ही, फिर उनका आग्रह था कि वे साहित्यिक अतिथियोंकी कुछ शारीरिक सेवा भी करें। अतः मैंने उन्हें भागलपुरसे बुलाकर यह काम सौंप दिया है और इससे वे अत्यन्त प्रसन्न हैं।

यह जानकर हम सबको बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ ही खेद भी कि ऐसे प्रतिष्ठित

सज्जनसे हम यह काम लेते रहे। स्वर्गीय पं. पद्मसिंह इस घटनाको नहीं भूले और उन्होंने एक पत्रमें मुझे लिखा था— *यदि हिन्दी-जगतमें कोई सांस्कृतिक विद्यालय खोला जाय तो उसका आचार्य भागलपुरके सेठजीको बनाना चाहिये।*

यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि श्रीपोद्दारजीकी सूझ-बूझका यह उत्कृष्ट उदाहरण था।

हमलोग जो श्रीपोद्दारजीके अतिथि थे, स्वभावतः विभिन्न विचारोंके थे। आपसमें किसी विषयपर काफी गरमागरम बहस हो गयी, पर श्रीपोद्दारजी सर्वथा मौन ही रहे। जब उनसे उस विषयपर बोलनेके लिये कहा गया, तब भी उन्होंने केवल इतना ही निवेदन किया— मैंने यह नियम बना लिया है कि वाद-विवादमें कदापि नहीं पड़ूँगा।

यदि श्रीपोद्दारजी वाद-विवादमें पड़ते तो जो महान सांस्कृतिक तथा साहित्यिक कार्य उन्होंने किये, वे उनसे कभी न बन पाते।

श्रीपोद्दारजीकी दानशीलताके तीन उदाहरण मुझे इस समय याद आ रहे हैं। संस्कृतके एक पंडितजी मेरे पास आये और उन्होंने अपनी आर्थिक कठिनाईकी बात मुझसे कही। मैं उन दिनों 'विशाल भारत' का सम्पादन करता था। मैंने अपनी असमर्थता प्रकट की, तो उन्होंने कहा— किसी साधन-सम्पन्न व्यक्तिको पत्र ही लिख दीजिये।

मुझे उस समय भाई श्रीपोद्दारजीका शुभ नाम याद आ गया और इस आशासे कि वे दस-बीस रुपये उन पण्डितजीको भेज देंगे, उन्हें पत्र लिख गया। मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब उन पण्डितीजीने यह समाचार मुझे सुनाया कि श्रीपोद्दारजीने पचहत्तर रुपये भेज दिये हैं। श्रीपोद्दारजीका बड़ा विनम्रतापूर्ण पत्र भी मुझे मिला, जिसका आशय यह था— संस्कृतके पण्डित प्रायः निर्धन होते हैं, उनका काम दस-बीस रुपयेसे नहीं चल सकता।

हमारे एक पत्रकार-बन्धुके अनुज क्षयरोगसे पीड़ित हो गये। मैंने फिर श्रीपोद्दारजीसे सहायता माँगी। उन्होंने फिर पचहत्तर रुपये उन्हें भेज दिये, जब कि दूसरोंने दस-दस, पाँच-पाँच ही भेजे थे।

दिल्लीमें जब मैंने 'हिन्दी-भवन' खोला, तब पुनः श्रीपोद्दारजीकी सेवामें निवेदन किया। उन्होंने तुरन्त डेढ़ सौ रुपये भेज दिये। साथमें उन्होंने एक पत्र भी लिखा, जिसका आशय यह था— *मैं स्वयं पैसेवाला आदमी नहीं हूँ। ऐसे अवसरोंपर अपने उदार मित्रोंके कुछ रुपये उपयोगमें ले लिया करता हूँ।*

एक बार शायद गीताप्रेसके कम्पोजीटरोंमें कुछ असंतोष फैल गया था और उसकी खबर गोरखपुरसे किसीने मुझे भेज दी थी। मुझे याद पड़ता है कि मैंने 'विशाल भारत' में प्रेसके मालिकोंके विरुद्ध एक व्यंग्यात्मक नोट लिख दिया था, पर श्रीपोद्दारजीने उसके लिये बिल्कुल बुरा नहीं माना। यह उनकी उदारता थी।

एक बार सेवाग्राममें मैंने बाबा श्रीराघवदासजीके सामने एक धृष्टतापूर्ण मजाक कर दिया। किसी विषयपर वाद-विवाद चल रहा था, शायद सत्साहित्यके प्रचार और अश्लील साहित्यकी रोक-थामपर।

बाबा राघवदासजीने मुझसे पूछा- यदि आपके हाथमें सत्ता हो तो आप क्या करेंगे ?

मैने उत्तर दिया— पहला काम तो मैं यह करूँगा कि गीताप्रेसको जप्त कर लूँगा और उसके द्वारा अपने सत्साहित्य-सम्बन्धी विचारोंका प्रचार करूँगा।

बाबाजीने हँसकर कहा— गीताप्रेस तो प्रारम्भसे ही सत्साहित्यका प्रचार कर रहा है। आप जानते ही होंगे कि मेरा श्रीपोद्दारजीसे घनिष्ठ सम्बन्ध है।

मैंने कहा— यह तो मैं भलीभाँति जानता हूँ, पर ऐसा बढ़िया संगठित प्रेस हमें कहाँ मिल सकता है।

बाबाजी खूब हँसने लगे और बोले— आपकी क्रान्तिकारी आयोजनकी बात मैं श्रीपोद्दारजीको सुनाऊँगा।

मालूम नहीं कि उन्होंने मेरा वह मजाक उनतक पहुँचाया या नहीं, पर मैं श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीके उत्तरकी कल्पना कर सकता हूँ। वे यही कहते— चीज तो दूसरोंकी जप्त की जाती है। अपनी चीजको जप्त करनेका कुछ अर्थ ही नहीं। सत्साहित्यके प्रचारके लिये 'कल्याण' एवं गीताप्रेसके सब साधन सहर्ष प्रस्तुत हैं। कोई भी भलामानस उसका उपयोग कर सकता है।

मेरा वह मजाक निस्संदेह धृष्टतापूर्ण था, पर श्रीपोद्दारजीकी उदारतापर मुझे विश्वास था।

एक बार मेरे एक मित्रने, जो अस्वस्थ थे, कहा कि मैं श्रीपोद्दारजीको यदि पत्र लिख दूँ तो वे हरिद्वारमें उनके ठहरनेका प्रबन्ध कर सकते हैं। मैंने पत्र भेज दिया और श्रीपोद्दारजीने सहर्ष वह प्रबन्ध कर दिया।

स्वयं मेरी भी यह अभिलाषा थी कि कभी गर्मियोंमें ऋषिकेशमें उनके सत्संगका लाभ प्राप्त करूँ, पर यह सौभाग्य मुझे नहीं मिल सका। मैं उसे टालता ही रहा। सन् १९७० की श्रीकृष्ण जन्माष्टमीपर मैं मथुरा इसी उद्देश्यसे गया था कि वहाँ भाई श्रीपोद्दारजीके दर्शन अवश्य होंगे, पर अस्वस्थताके कारण वे नहीं पहुँच सके। इस प्रकार गोरखपुरके प्रथम दर्शन ही अन्तिम दर्शन सिद्ध हुए।

जो महत्त्वपूर्ण कार्य अकेले भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने कर दिखाया, वह बड़ी-बड़ी संस्थाओंसे भी नहीं बन पड़ा। वस्तुतः वे स्वयं एक महान् संस्था थे। धार्मिक जगत तथा हिन्दी-साहित्यके लिये उनकी देन अद्वितीय है। ■

आचार्य प्रभुपाद श्रीप्राणकिशोरजी गोस्वामी

वे कितने उत्साही थे

'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु' लोकपावनचरित्र श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी अक्षय कीर्ति है। इन पत्रिकाओंके माध्यमसे भारतीय जन-मानसके साथ उनके जीवनकी जो एक गाँठ बँधी है, वह चिरन्तन हो गयी है। हरिनामके प्रचारके लिये वे 'कल्याण'के द्वारा प्रतिवर्ष लोगोंको प्रेरित करते रहे और उनकी इस प्रेरणासे लाखों-लाखों व्यक्ति हरिनामपरायण हुए।

हमारे परमाराध्य श्रीगुरुदेव विष्णुपाद श्रीअतुलकृष्णजी गोस्वामीके साथ पोद्दारजीकी परम प्रीति थी। उसी सूत्रसे पोद्दारजीके साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ। विभिन्न विशेषांकोंमें

मेरे लेख प्रकाशित कर 'कल्याण'-सम्पादकने मुझको 'कल्याण'-परिवारके एक सदस्यके रूपमें ग्रहण किया, यह मेरे लिये परम सौभाग्यकी बात है।

एक बार श्रीवृन्दावनमें जाकर मैंने देखा कि श्रीगोविन्दजीके मन्दिरके पास नगरपालिकाकी ओरसे पानीकी एक टंकी खड़ा करनेका प्रयत्न हो रहा है। यह कार्य सम्पन्न होनेपर प्राचीन श्रीगोविन्दजीका मन्दिर बिल्कुल आड़में पड़ता था और स्थानकी गरिमाको धक्का लगता था। इस भावनासे व्यथित होकर उस कार्यको बंद करानेके लिये आन्दोलन करनेकी चेष्टा की गयी। श्रीपोद्दारजीको भी इसकी सूचना दी गयी। उन्होंने म्यूनिसिपैलिटीके कर्णधारोंपर प्रभाव डालकर उस कार्यको बंद करा दिया। मुझे याद है कि पत्र पानेके साथ ही प्रयत्न करके उन्होंने उसके बंद करानेकी व्यवस्था करा दी और टंकी अन्यत्र स्थापित की गयी।

संन्यास-व्रत ग्रहण किये बिना भी गम्भीरतम ज्ञानका अधिकार प्राप्त किया जा सकता है, संसारमें रहकर भी त्यागमय जीवनके आदर्शमें जीवनको प्रतिष्ठित किया जा सकता है, योग-यज्ञका अनुष्ठान न करके भी भक्ति-सुधा-आस्वादनसे, नाम-गान-कीर्तनसे इस जीवनमें ही अनन्त जीवनकी अभिलाषा पूर्ण की जा सकती है— इसके ही एक पूर्ण निदर्शन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार थे। श्रीकृष्ण-जन्मभूमि मथुरामें श्रीकृष्ण-मन्दिरके उद्घाटनके प्रसंगमें उन्होंने कहा था—

श्रीकृष्णके अनन्त गुणोंका कोई वर्णन नहीं कर सकता। हमारा बड़ा सौभाग्य है कि जिस भारत-भूमिमें भगवान श्रीकृष्ण प्रकट हुए, उसीमें आज हम भी जीवन-धारण कर रहे हैं और तुच्छ मच्छरके अनन्त आकाशमें उड़नेके सदृश उनके गुणगानका प्रयास कर रहे हैं। आपलोगोंने मुझको कृपापूर्वक यह सौभाग्य प्रदान किया, इसके लिये मैं आपके प्रति हृदयसे कृतज्ञता प्रकट करता हूँ और आज्ञानुसार श्रीकृष्ण-मन्दिरका उद्घाटन करता हूँ।

उपर्युक्त वाक्योंसे स्पष्ट है कि श्रीपोद्दारजीको भारत-भूमिसे कैसी प्रीति थी। धर्म-स्थानोंका पुनः संस्कार करनेके लिये वे कितने उत्साही थे। भगवानकी महिमाके कीर्तनमें उनका कैसा उत्साह था और वे किस प्रकार विनय-गुणसे अलंकृत थे। ■

श्रीज्योतिषचन्द्रजी घोष

स्मरणीय सुयोग और स्नेह

श्रीहनुमानप्रसादजी जब कलकत्तामें थे, तभीसे मैं उनसे परिचित हूँ। कलकत्ता विश्वविद्यालयमें 'बंगीय-साहित्य-परिषद्' में एवं अन्य प्रतिष्ठानोंमें उनसे मिलनेका सुयोग हुआ था। वे बंगला-साहित्यके, विशेषतः वैष्णव-पदावलीके परम अनुरागी और उसके भावोंतक पहुँचनेवाले पुरुष थे। सन् १९०५ में 'बंग-भंग-आन्दोलन' के समय उनके साथ आन्दोलनमें योग देनेका मुझे सुयोग हुआ था। उस समयकी 'अनुशीलन समिति', युवक तथा विद्यार्थियोंकी देश-प्रीति तथा 'वन्दे मातरम्' और गीताके मन्त्रोंसे अनुप्राणित वीर बंगसंतानोंके मृत्यु-वरणसे उनका चित्त देश-प्रेमकी निष्ठा और गीता-अनुरागसे भर उठता था। ऐसा लगता है कि वही भाव उनके गीताप्रचारका उत्स रहा है।

कुछ वर्ष पूर्व गोरखपुरमें 'निखिल भारत बंग साहित्य सम्मेलन' हुआ था। मैं उस सम्मेलनमें सम्मिलित हुआ था। मैं श्रीभाईजीसे मिला। उन्होंने मुझे प्रतिनिधि-आवासपर ठहरने नहीं दिया और बलपूर्वक अपने घर ले गये एवं स्वयं अपने हाथोंसे परम आदरके साथ खिलाना-पिलाना आदि किया। यह घटना मेरे जीवनमें चिर-स्मरणीय एवं संग्रहणीय रहेगी। ■

श्री एस. रंगनाथन् (आडीटर जनरल, भारत सरकार, नयी दिल्ली)

मित्रसे आदरणीय बने

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे मेरी प्रथम भेंट १९३२-३३ में गोरखपुरमें हुई, जब भारतीय प्रशासनिक सेवामें आनेके बाद अपने सेवाकालके प्रथम वर्षमें मैं गोरखपुरमें नियुक्त हुआ। दैवी प्रकोपसे उस वर्ष गोरखपुर जनपदमें भीषण बाढ़ आ गयी। गोरखपुर शहरको भी उससे खतरा होने लगा। श्रीहनुमानप्रसादजीके नेतृत्वमें गीताप्रेसने गृहविहीन हजारों-हजारों लोगोंकी बड़े प्रभावशाली ढंगसे सेवा की। उसकी सेवा करनेकी पद्धति सर्वथा आडम्बररहित थी।

जिस ढंगसे यह जन-सेवाका भाव काम कर रहा था, उसके कारण सरकारकी ओरसे चालू की गयी सेवा-संस्थाओं (—जो मेरे अधिकारमें थीं) और गीताप्रेस-सेवादलके बीच पूर्ण सहयोगके साथ सेवा-कार्य हुआ, इसके फलस्वरूप उस समय श्रीपोद्दारजीसे मेरा जो सम्पर्क हुआ, वह बढ़कर व्यक्तिगत, घनिष्ठ मित्रता तथा आदरकी भावनामें परिणत हो गया। बादमें मेरे विवाहोपरान्त जब मेरी पत्नी मेरे पास गोरखपुर आ गयी, तब वह भी श्रीपोद्दारजीकी निःस्वार्थ भावना तथा मानव मात्रके प्रति दयाभावसे आकर्षित हुई। यद्यपि तीन-चार वर्षोंमें मैंने गोरखपुर छोड़ दिया, तथापि मैंने उनसे सम्पर्क बनाये रखा और जब कभी वे दिल्ली आते, मैं उनके दर्शन अवश्य करता। मेरा उनके अन्तरंग मित्रों तथा सहयोगियोंसे भी परिचय है। मैं तथा वे सभी लोग यह अनुभव करते हैं कि उनका दृढ़ धार्मिक विश्वास ही निःस्वार्थ सेवाके लिये प्रेरित करता था। ■

श्रीगंगारामजी तिवारी

प्रत्यक्ष दर्शन, फिर मार्गदर्शन

'कल्याण'के 'वेदान्तांक'से मैं उसका ग्राहक हूँ। सन् १९४२ में मैं श्रीभाईजीके पैतृक-स्थान रतनगढ़ भी गया था। वहाँ मैंने श्रीभाईजीकी सतत साधनाका प्रत्यक्ष दर्शन किया। उस अवधिमें मैंने देखा कि श्रीभाईजीके निवास-स्थानपर अखण्ड श्रीहरिनाम-संकीर्तन चल रहा है और श्रीभाईजी उसकी सँभाल करते रहते हैं। सायंकाल प्रवचन करते हैं तथा दिनभर 'कल्याण'का सम्पादन, लेखन और जिज्ञासुओंका मार्गदर्शन करते रहते हैं। इसके साथ ही संकटग्रस्त प्राणियोंके सहायतार्थ अनेक प्रकारके राहत कार्योंको गति देनेमें भी श्रीभाईजी दत्तचित्त रहते थे। द्वितीय महायुद्धके भयसे त्रस्त होकर कलकत्ता आदि स्थानोंसे आये हुए लोगोंको भी उनसे

सान्त्वना एवं सहयोग प्राप्त होता रहता था।

श्रीभाईजीने मुझे जीवनमें पालनीय नियम बतलाते हुए कहा था— प्रभुका भजन जीवनभर चलते रहना चाहिये। यह कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसे एक बार करके रख दिया जाय। भजन करनेवाले व्यक्तियोंको अपनी आजीविकाके सम्बन्धमें दूसरोंकी दया एवं दानपर निर्भर न रहकर स्वयं परिश्रम करना चाहिये। उसका व्यवहार ऐसा होना चाहिये, जिससे दूसरे प्रेरणा ले सकें।

श्रीभाईजीका वह मार्गदर्शन आजतक मेरे निजी एवं सार्वजनिक जीवनके लिये प्रेरक रहा है। ■

पद्मभूषण श्रीगूजरमलजी मोदी

अनोखे दयालु

एक बार श्रीभाईजीके नामका एक झूठा पत्र दिखाकर एक आदमीने मुझसे कुछ सहायता ले ली। जब पता लग गया कि वह गलत आदमी है, तब उसपर कोर्ट केस किया गया। श्रीभाईजीको यह बात ज्ञात हो गयी। उन्होंने मुझे कोर्टसे उस केसको वापस लेनेके लिये कहा। उन्होंने लिखा— भाई, इससे गलती हो गयी है, इसे माफ कर दिया जाय।

ऐसी थी उनमें दयालुता। समय-समयपर अनुभव किये गये उनके गुणों एवं व्यवहारके संस्मरण मेरे मानस-पटलपर अंकित हैं। ■

वैद्यसम्राट श्रीमणिरामजी महाराज

झगड़ा सलटा दिया

परमश्रद्धेय श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)के साथ मेरा परिचय एवं सम्पर्क करीब ४० वर्षसे था। वे बड़े मृदुभाषी एवं मिलनसार व्यक्ति थे। उनके द्वारा लाखों-लाखों रुपयोंका दान हुआ है। वे सबका उपकार करते थे। किसीका मन नहीं दुखाते थे। बहुत वर्षों पहलेकी बात है। रतनगढ़ शहरमें किसी एक व्यक्तिकी जमीनका नगर-पालिकाध्यक्षने पट्टा नहीं बनाया। वे जमीनके पट्टेपर हस्ताक्षर नहीं कर रहे थे। उस व्यक्तिने कई आदमियोंको साथ लेकर, जिनके हाथोंमें काले झंडे थे, रातके समय श्रीभाईजीके निवासस्थानके सामने आकर नारे लगाना आरम्भ किया। श्रीभाईजीका न तो जमीनसे सम्बन्ध था और न नगरपालिकासे। नगरपालिकाके अध्यक्ष महोदय श्रीभाईजीके यहाँ आते-जाते थे। लोगोंने सोचा— श्रीभाईजीके सामने नारे लगानेसे श्रीभाईजी अध्यक्षको यह कार्य करनेके लिये कह देंगे।

करीब एक घंटा नारे लगाकर वे लोग चले गये। श्रीभाईजीने यह सब दृश्य देखा, परंतु उन्हें तनिक भी क्षोभ नहीं हुआ। यदि कोई दूसरा व्यक्ति होता तो वह क्षुब्ध होकर नारे लगानेवालोंको भला-बुरा कहता, परंतु श्रीभाईजी अपने कार्यमें लगे रहे। दूसरे दिन श्रीभाईजीने

नगरपालिकाके अध्यक्षको बुलाकर कहा– या तो नगरपालिकाके अध्यक्षपदसे त्यागपत्र दे दो या जिसका पट्टा नहीं बना है, उसका पट्टा बना दो।

श्रीभाईजीने यह कहकर उनसे उस पट्टेपर हस्ताक्षर करवा लिये और पट्टा सम्बन्धित व्यक्तिको दिलवा दिया। इस संसारमें ऐसा व्यक्ति कौन होगा, जो बिना कुछ सम्बन्ध हुए असद्व्यवहार करनेवालोंके प्रति सद्व्यवहार करे। श्रीभाईजी देवपुरुष थे, संसारी व्यक्ति होते तो 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' के अनुसार व्यवहार करते, किन्तु उन्होंने बुरा करनेवालोंके साथ अच्छा व्यवहार करनेके अपने प्राकृतिक सिद्धान्तको नहीं भुलाया। ■

श्रीशान्तिप्रसादजी जैन

मेरे विश्वासको दृढ़ बनाया

मेरा श्रीपोद्दारजीसे सर्वप्रथम परिचय दानापुरमें सन् १९३१ में हुआ था और अन्तिम दर्शन हुए गोरखपुरमें १५ मार्च, सन् १९७१ को। उन्होंने मुझे सदा प्यार किया और मेरी आस्था उनके साधुत्वके प्रति हमेशा ही बढ़ती रही।

वे कर्मकाण्डी पण्डितोंको उत्साहित करते और जो उनके निकटवर्ती थे तथा जिसपर उनकी ममता थी, उनके अपने शुभके लिये उनको वे कर्मकाण्डी पण्डितोंद्वारा पूजा-पाठ करवानेमें उत्साहित करते थे। इसी प्रकार मान्त्रिक और तान्त्रिक विद्वानोंको भी उनकी प्रशंसा और सहयोग प्राप्त था। मैंने मन्त्र-तन्त्रके प्रति अपनी शंका उनके समक्ष रखी। मेरी इस उत्कण्ठाको उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे केवल शान्त ही नहीं किया, अपितु जो कुछ मुझे समझाया, उससे मुझे विश्वास हो गया है कि ये दोनों ही सत्य हैं, किन्तु इनका उपयोग मनुष्यकी अपनी आस्था और जीवनस्तरपर निर्भर करता है। उन्होंने कहा– देवी-देवता उसी प्रकार सत्य हैं, जिस प्रकार इस जगतमें मनुष्य सत्य है। मन्त्र-तन्त्र उसी प्रकार लाभदायक हैं, जिस प्रकार हम इस लोकमें किसी राज्यश्रीसम्पन्न या लक्ष्मीअधिपतिकी स्तुति आदि करनेके फलस्वरूप लाभान्वित होते हैं। मनुष्यका जीवन जब सांसारिक इच्छाओंसे ऊपर उठ जाता है, तब कर्मकाण्डकी ये शक्तियाँ और विभूतियाँ उसके लिये उपादेय एवं स्पृहणीय नहीं रह जाती हैं।

इस चर्चाके पश्चात् मैंने कई बार और कई तरहसे शास्त्रोंका जो भी अध्ययन किया, उससे मुझे उनके शब्दोंकी सत्यता अधिक प्रखर होती दिखायी दी।

वे आध्यात्मिकता और ज्ञानकी मूर्ति होनेके साथ-साथ एक सच्चे साधु थे और जिस साधुताका प्रकाश बालकोंके जीवनमें दिखायी देता है, वह उनमें भरपूर था। एक बार ऋषिकेशकी गंगाजीमें उनके साथ नहाते हुए जब मैंने १०१ डुबकियाँ लगानेकी बात कहीं, तब वे भी बराबर डुबकियाँ लगाते रहे और अपनी उम्रका लिहाज किये बिना पानीमें मेरे साथ उसी प्रकार आनन्द लेते रहे, जैसे बच्चे लेते हैं।

उन्होंने मुझे हमेशा अपना बेटा माना और मैंने उन्हें सदा अपना पिता। ■

आचार्य श्रीयमुनावल्लभजी गोस्वामी

गुरुजनके भक्त थे

भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे मेरा पचास वर्षका परिचय था। उन दिनों वे बम्बईमें रहते थे। मैं सेठ श्रीधर्मदास त्रिभुवनदासजीके यहाँ कथा कहनेके लिये गया हुआ था। एक दिन माधवबागमें सेठ श्रीत्रिभुवनदासजीसे श्रीभाईजीकी भेंट हो गयी। सेठजीने श्रीभाईजीसे मेरा परिचय कराते हुए कहा— आप वृन्दावनके गोस्वामीजी हैं, बड़ी सुन्दर कथा कहते हैं। जनतामें इनकी कथाका प्रचार कीजिये।

श्रीभाईजी मेरा परिचय जानकर बहुत प्रसन्न हुए। दूसरे दिन वे मुझे अपने साथ नेमानीबाड़ी ले गये। यह स्थान ठाकुरदास रोडपर है। यहाँपर उन दिनों सत्संग, कथा, कीर्तन आदि होते रहते थे। श्रीभाईजीने अपने मित्रोंसे परामर्श करके मेरी कथाकी व्यवस्था नेमानीबाड़ीमें करवा दी। एक मासतक कथाका बड़ा सुन्दर आयोजन रहा। इस अवधिमें श्रीभाईजीने मेरा परिचय एक-दो सम्भ्रान्त परिवारोंसे करवा दिया और उनके यहाँ कई दिनोंतक सत्संगका कार्यक्रम चलता रहा। श्रीभाईजी बीच-बीचमें मेरी कथामें भी सम्मिलित होते थे। वे बराबर ध्यान रखते थे कि मुझे किसी प्रकारकी असुविधा न हो। श्रीभाईजीके अहैतुक प्रेमको देखकर मैं विस्मित था।

उस समय भी श्रीभाईजीको सभी व्यक्ति बड़े पूज्यभावसे देखते थे। उनका व्यवहार सभीके साथ बड़ा स्नेहपूर्ण एवं निश्छल था। जो भी व्यक्ति उनसे मिलता था, उसे यही अनुभव होता था, जैसे वह अपने किसी अत्यन्त स्नेही गुरुजनसे मिल रहा हो। सेठ श्रीधर्मदासजी तो श्रीभाईजीके व्यवहार एवं जीवनसे इतने प्रभावित थे कि एक दिन उन्होंने मुझसे कहा— महाराजजी! श्रीभाईजीसे अच्छा अनुरागी और नहीं मिलेगा, वे बड़े ही प्रेमी हैं।

उन्हीं दिनों राजा श्रीबलदेवदासजी बिड़लाने श्रीमद्भागवतके अष्टोत्तरशत सप्ताह-पाठ करवाये। श्रीबिड़लाजीका श्रीभाईजीपर बड़ा वात्सल्य था तथा श्रीभाईजी भी उन्हें पितातुल्य मानते थे। पाठ करनेवाले पण्डितोंके चयनका भार श्रीभाईजीपर डाला गया। मैंने श्रीभाईजीको कई पण्डितोंके नाम बताये और मुझपर विश्वास करके उन्होंने उन सबका नाम लिख लिया। श्रीभाईजीने कहा— और भी कोई पण्डित आपके ध्यानमें हों तो अभी बता दीजिये, सूची पूरी होनेपर उसमें हेर-फेर नहीं हो पायेगा।

मैंने उन्हें बता दिया था कि अब कोई पण्डित मेरे ध्यानमें नहीं है, पर देवयोगसे दूसरे दिन मेरे एक कुटुम्बी पण्डित वृन्दावनसे बम्बई पहुँच गये और अपना नाम पाठकर्ताओंमें लिखवानेका आग्रह करने लगे। मुझे ज्ञात था कि सूची पूरी हो चुकी है, पर मैं श्रीभाईजीके पास गया और उनसे अपने कुटुम्बीकी बात कही। श्रीभाईजी थोड़ी देरतक तो सोचते रहे, पीछे बोले— महाराजजी! आपकी बातका आदर करना ही है। आप स्वयं पाठ न करके पाठकर्ताओंके निरीक्षकके रूपमें सबकी सँभाल कीजिये और कुटुम्बीजनको अपने स्थानपर पाठ करनेके लिये कह दीजिये।

श्रीभाईजीके इस उदार व्यवहारसे मेरा तथा मेरे कुटुम्बीका हृदय गद्गद हो गया। यह

उदारता एवं दूसरेकी बातको आदर देनेकी भावना श्रीभाईजीके स्वभावमें जीवनभर बनी रही। श्रीभाईजी केवल जन्मसे वैश्य थे, आचार-विचारमें वे ब्राह्मण थे तथा उत्साहमें राजर्षि।

श्रीभाईजी *'सबहि मानप्रद, आपु अमानी'* के जीवित प्रतीक थे। सन् १९६५ में मैं गोरखपुरमें गीताप्रेसके व्यवस्थापक महोदयके घरपर 'श्रीमद्भागवत-सप्ताह' करनेके लिये गया। जब मैं श्रीभाईजीसे मिला, तब उन्होंने दोनों चरण छूकर जिस भक्ति-भावसे मुझे प्रणाम किया, वह मेरे लिये अविस्मरणीय है।

दो वर्ष पूर्व मेरे ग्रन्थ 'श्रीगीतगोविन्द' का तृतीय संस्करण तैयार हो रहा था। मेरे मनमें आया कि श्रीगीतगोविन्दका रस श्रीभाईजीको बहुत प्यारा है, अतएव इस संस्करणका समर्पण श्रीभाईजीको किया जाय। श्रीभाईजीसे इसकी अनुमति लेना आवश्यक था। मैंने अपने एक सम्भ्रान्त प्रेमीके मार्फत इसकी चेष्टा की। जब श्रीभाईजीके सामने यह विषय रखा गया, तब वे बोले— 'श्रीगीतगोविन्द' महान् गुह्य ग्रन्थ है। प्रथम तो इसका प्रकाश ही नहीं होना चाहिये और यदि श्रीगोस्वामी महाराजकी इच्छा इसको प्रकाशित करनेकी है तो मै उस कोटिमें अपनेको नहीं अनुभव करता, जिस कोटिके महानुभाव इसके समर्पणके अधिकारी हैं।

उनका यह उत्तर प्राप्त होनेके पश्चात् भी प्रयत्न चलता रहा। अन्तमें कई मास पश्चात् उन महानुभावने मुझे सूचित किया कि श्रीभाईजीका एक बड़ा लम्बा पत्र आया है, जिसमें उन्होंने लिखा है कि श्रीगोस्वामीजीसे क्षमा-प्रार्थनापूर्वक कहा जाय कि इस प्रस्तावको स्वीकार न करनेमें मुझे दुःख है।

परिणामस्वरूप वह ग्रन्थ अन्य महानुभावको समर्पित करना पड़ा। यह था श्रीभाईजीका अमानित्व!

कई वर्ष पूर्वकी बात है। मैं कलकत्ता गया हुआ था। उन्हीं दिनों श्रीभाईजी भी कलकत्ता पहुँच गये। गोविन्द-भवनमें श्रीभाईजीके सत्संगका आयोजन था। मुझे इसकी सूचना मिली और मैं अपने स्वजन एवं श्रीनाथजीके अधिकारी श्रीकल्याणदासजीके साथ सत्संग-श्रवणकी दृष्टिसे गोविन्द-भवन गया। हम दोनों श्रोताओंकी भीड़में बैठ गये। थोड़ी देर बाद श्रीभाईजी पधारे। कुछ व्यक्ति श्रीभाईजीके आगे-आगे मार्गकी व्यवस्था करते हुए चल रहे थे। पता नहीं, कैसे श्रीभाईजीकी दृष्टि मुझपर पड़ गयी। वे वहीं रुक गये और उन्होंने पैर छूकर मुझे प्रणाम किया और ऊपर मञ्चपर बैठनेके लिये अत्यन्त आग्रहपूर्वक अनुनय-विनय करने लगे। बड़ी कठिनतासे मैंने ऊपर मञ्चपर बैठनेसे छुटकारा पाया। मेरे साथी श्रीभाईजीकी इस विनम्रता एवं गुरुजनोंके प्रति आदरभावको देखकर विस्मित हो गये।

दूसरे दिन हम दोनों श्रीभाईजीके आवास-स्थानपर मिलनेके लिये गये। मिलनेवालोंकी भीड़ लगी हुई थी। श्रीभाईजी एकान्तमें थे और उन्होंने कह दिया था कि कुछ देर वे एकान्तमें ही रहेंगे, किसीसे मिल नहीं पायेंगे। जब हम पहुँचे, तब हमें इसकी सूचना दी गयी। फिर हमलोग मिलकर ही लौटनेके विचारसे बैठ गये। पता नहीं, श्रीभाईजीको हमलोगोंके आनेकी सूचना कैसे मिल गयी और उन्होंने तुरन्त हमलोगोंको भीतर बुला लिया, परन्तु हमलोगोंको इसमें बहुत संकोचका अनुभव हुआ। श्रीभाईजीने हमें फल एवं पुष्प भेंट किये और हम लौट आये। ऐसा था श्रीभाईजीका गुरुजनोंके प्रति आदरभाव। ■

श्रीश्रीगोपालजी नेवटिया

विवादसे परे

श्रीभाईजीके मेरे संस्मरण सन् १९२८ के पहले उन दिनोंके हैं, जब वे बम्बईमें रहा करते थे। वे सामाजिक एवं अन्य विभिन्न सेवाकार्योमें अग्रणी रहा करते थे और मैं उस क्षेत्रमें पदार्पण ही कर रहा था। बम्बई नगरीके कालबादेवी क्षेत्रका वह निवास, वहाँके वे दैनिक क्रिया-कलाप आज भी स्मृति-पटलपर अंकित हैं और उसमें श्रीभाईजीका तत्कालीन चित्र ज्यों-का-त्यों उभर आता है। वे सबके साथ थे, सबमें मिले-जुले, फिर भी सबसे अलग। सफल व्यवसायियोंके बीच वे असफल व्यवसायी थे, पर सांसारिकतामें आपादमस्तक डूबे हुओंके बीच वे उनसे बहुत ऊपर उठे हुए थे।

वह जमाना था सभा-समितियोंका, सेवा-शिक्षा-संस्थाओंका, सामाजिक जागरणका। श्रीभाईजी उनमें यथोचित योगदान देते। हम जैसे उनके गुणग्राहक बराबर पीछे लगे रहते, सब मिल-जुलकर जो बन पाता, वह करते, पर श्रीभाईजीका अपना एक काम और था। उसमें मैं कुछ योगदान कर सका था, उसकी स्मृतिमात्र आह्लादित करनेवाली है।

श्रीभाईजीने प्रार्थनात्मक पद्योंकी एक पुस्तिका लिखकर तैयार की थी। उसका नाम था 'पत्र-पुष्प'। उसे सुन्दर रीतिसे छपवा देनेका कार्य-भार मैने सँभाला था। उनकी वह प्रथम रचना आगेके वर्षोंमें पल्लवित होनेवाले विशाल वृक्षके बीजके समान थी।

उन्हीं वर्षोंमें 'कल्याण'के प्रकाशनका आयोजन हुआ था। श्रीभाईजी उसके प्रकाशनके लिये अदम्य रूपसे उत्साहित थे। उसका पहला अंक बम्बईसे ही प्रकाशित हुआ था। बादमें गोरखपुरसे मुद्रित होनेपर भी चित्रोंकी छपाईका कुछ काम बम्बईसे ही होता था और उसमें मैंने यत्किंचित् योगदान दिया था। उसका स्मरण मेरे लिये हर्षप्रद है।

आगे जाकर श्रीभाईजीका जो रूप प्रकट हुआ, उसे देखकर अब चालीससे भी अधिक वर्षो पहलेकी उन बातोंको याद करता हूँ तो स्मरण आता है कि बम्बईका वह व्यावसायिक जीवन और समाज-सेवासे सम्बन्धित कांम-काज, यह सब उनके लिये गौण थे। उनका मन कहीं और ही था, उनका पथ, उनका मन्तव्य, सब अन्य ही था। बम्बईके उस जीवनसे वे मुक्त होकर ही रहे और उसीमें उनको सुखानुभूति हुई।

उनके इस जंजालसे छूट जानेके बाद भी उन्हें एक बार पकड़ बुलाया गया था। वह कथा बड़ी रोचक है। मैं उस काण्डका अभिनेता था। वह जमाना था समाज-सुधारक, 'अग्रवाल महासभा' और उसके कर्तृत्वोंका। समाजके सुधारक 'समाजी' और प्राचीनताके अन्धानुयायी 'सनातनी'के नामसे जाने जाते थे। दोनोंके क्षेत्र और प्रवृत्तियोंमें भेद था। जवान सुधारक थे, वयः प्राप्त सनातनी। छोटे-छोटे सुधारोंको लेकर, जिनके बारेमें आज सोचनेपर वे उपहासास्पद-से लगते हैं, खूब वितण्डावाद होता, गरमागरम परचेबाजियाँ और लेक्चरबाजियाँ होती थीं। उन सबके बीच एक ऐसा समुदाय भी था, जो दोनोंको एक करनेके प्रयत्नमें था। बम्बईमें 'मारवाड़ी अग्रवाल महासभा'के वार्षिक अधिवेशनका आयोजन हुआ।

उधर 'पंचायत'के नामसे पुराने विचारवालोंने अपना संगठन किया। बीच-बचाववालोंका प्रयत्न था कि दोनों एक हो जायँ तो ठीक रहे। एक होनेकी सभी बातें तय हो गयीं, विशेषता इसी आधारपर कि सभापतित्व श्रीहनुमानप्रसादजी करें। दोनों दलोंका उनपर पूर्ण विश्वास था। ऐसा विश्वासपात्र होना अनोखा ही था।

पर वैसे संत पुरुष इस प्रकारके दो विरोधी दलोंको क्या मिला पाते? 'प्रथमग्रासे मक्षिकापातः'। श्रीभाईजी सभापति निर्वाचित हो गये, वे बम्बई पधारे। स्टेशनपर उनके स्वागतकी व्यवस्था थी, दोनों पक्षोंकी अपार भीड़। श्रीभाईजीके स्टेशनपर पाँव रखते ही इस बातका विवाद प्रारम्भ हो गया कि किस पक्षके तत्त्वाधानमें, स्वागतमें वे रहें। खूब धमाचौकड़ी हुई और श्रीभाईजीने चुपचाप एक ओरसे निकलकर, भाड़ेकी एक विक्टोरिया गाड़ीमें सवार होकर किसी प्रकार उस संकटसे मुक्ति ली। मुझे याद है, मैंने भी उनका 'पीछा' किया था। उस सारे प्रसंगकी सिनेमा फिल्म भी उतारी थी। अब वह फिल्म कहाँ गयी, कुछ पता नहीं, पर उस दिनका सारा दृश्य आँखोंके सम्मुख उपस्थित है। आगे जो हुआ, उससे यही मालूम हुआ कि श्रीभाईजीका वह कार्यक्षेत्र था ही नहीं। वे तो दोनों तरफके मित्रोंके आग्रहपर अच्छी आशा लेकर आ गये थे, पर दोनों पक्षोंके लक्षणोंको देखकर, उससे विरक्त रहनेमें ही उन्हें लाभ प्रतीत हुआ।

एक बहुत पुराना 'चित्र' मैंने उपस्थित कर दिया, उससे पुराने भी उनके 'चित्र' हैं। उनका जो प्रकाशमान चित्र आज हम सबके सम्मुख उपस्थित है और सदैव रहेगा, वह तो है उनके भक्ति-विह्वल मुख-मण्डलका, उनके धर्मसमन्वित आलेखनोंका। ■

श्रीरामनाथजी 'सुमन'

क्या लिखें, क्या बोलें, क्या करें?

बगीचेमें चुप बैठा हूँ। अस्तंगत सूर्यकी ओर देख रहा हूँ। स्वच्छ, निर्मल आकाश दूरतक दिखायी देता है। क्षितिजके एक कोनेपर एकाएक एक नन्हा मटमैला चक्र दिखायी पड़ता है और देखते-देखते भयंकर आँधी उठती है, मेरे सँभलते-सँभलते सम्पूर्ण आकाशपर छा जाती है, अन्धकार सारे प्रकाशको निगल लेता है, हरहराकर बूँदें आती हैं— लगातार बूँदें। फिर अजस्र जलधारा, मानो मेघ धरित्रीको डुबाकर छोड़ेंगे। मैं बुरी तरह भीग गया हूँ और काँप रहा हूँ। काँप रहा हूँ और आकाशकी ओर देखता जा रहा हूँ— दृष्टिहीन रिक्तता और सूनेपनके साथ देखता जा रहा हूँ। नहीं दिखायी देता, फिर भी देखता जा रहा हूँ। हाथ-पाँव फूल गये हैं, भाग नहीं पाता हूँ। आश्रय होगा, पर सम्प्रति आश्रयहीन हो गया हूँ। बस, देखता हूँ और देखता हूँ। क्या देखता हूँ, पता नहीं।

कुछ ऐसी ही स्थिति मेरी २२ मार्च १९७१ को हुई, जब मेरे भाईजीने गोरखपुरमें अपना चोला बदल लिया। महीनोंसे वे बीमार थे, शंकास्पद था उनका बचना। कम ही लोग कहते थे कि वे रहेंगे। तब भी उनकी बिदाई मुझपर एक आकस्मिक वज्रपातकी भाँति आयी। बहुत पढ़ा है, कुछ सुना भी है और जानता हूँ कि एक दिन देहका अन्त होना है। मृत्यु तो पैदा होनेके

दिनसे ही अविच्छेद्य मित्रकी भाँति साथ लगी है। बापू (गाँधीजी) कहा करते थे कि 'मृत्यु ही एक माशूका (प्रियतमा) है, जो कभी धोखा नहीं देती।' भाईजीसे भी बहुत सुना है कि 'शरीरका क्या और इसके प्रति आसक्ति क्यों ?' परंतु जब जानकर भी बराबर अपनेको धोखा दिये जा रहा था कि अभी वे, नहीं जायेंगे, नहीं जायेंगे। सो, जब बिदा होनेकी बात सुनी, सब अकस्मात ऐसा आघात लगा कि बोला भी नहीं गया, सन्न रह गया। तबसे दिन-पर-दिन बीतते गये हैं, मास-पर-मास, यहाँतक कि वर्ष बीतनेको भी आया और मेरी ऐसी स्थिति है जैसा लकवा मार गया है— बुद्धिको, मनको, शरीरको। मेरी आस्था झूठी हो गयी है और जैसे भाईजी नहीं बिदा हुए हैं, मैं ही मर गया हूँ।

कैसे लिखूँ, क्या लिखूँ, किसके लिये लिखूँ? बार-बार कलम उठायी है, चेष्टा की है और बार-बार उसे रख दिया है। लेखनी गूँगी हो गयी है, उसकी पीड़ा इतनी है कि वह कहना चाहती है, परंतु कह नहीं पाती। मुझे संदेह है कि वह अनुभव भी कर पाती है। उसका दर्द अनुभूतिकी सीमाके बाहर चला गया है।

मित्र एवं कृपालु बन्धु मेरी स्थिति देखते हैं, शायद समझते भी हैं, परंतु समझकर भी नहीं समझते, देखकर भी नहीं देखते। वे बार-बार कुछ लिखनेका अनुरोध करते हैं, परंतु समझ नहीं पाते कि कैसे मैं उस अव्यक्तको व्यक्त करूँ, कैसे उस वाणीको खींचकर बोलनेको विवश करूँ, जो मौनमें विसर्जित हो गयी है। फिर किस भाईजीकी बात कहूँ? लेखक, साहित्यकार और कवि, दीनबन्धु और पर-दुःखकातर, ध्यानी और जपयोगी, संत और भक्त, पत्रकार और समाजसेवक, साधक और तपस्वी, परम सुहृद और बन्धु, *'ज्यों-ज्यों डूबे स्याम रंग, त्यों-त्यों उज्ज्वल होय'*— इस महाभावमें निमग्न, किस भाईजीकी बात कहूँ? 'जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू है'। जीवनकी परिधिका इंच-इंच स्थान जिनके स्नेह, शुभाशिष, करुणा, सौहार्द और प्रेमदानसे घिरा हुआ है, उनकी बात क्या कही जा सकती है ? क्या कहूँ, कैसे कहूँ?

वर्षों पहलेका वह दिन याद है जब, 'मारवाड़ी अग्रवाल महासभा'के बम्बई अधिवेशनके समय, जिसके वे सभापति थे, उनके प्रथम दर्शन हुए थे। मैं था महासभाके मुखपत्र 'अग्रवाल समाचार'का सम्पादक। भाई श्रीश्रीगोपालजी नवेटिया, श्रीवेणीप्रसादजी डालमिया इत्यादि मित्रोंके अनुरोधपर मेरे परम स्नेही बन्धु स्व. शिवपूजनसहायजीने मुझे बम्बई भेजा था इस कामके लिये। फिर उस दिन तो जैसे बम्बई ही भाईजीके दर्शनोंके लिये उमड़ पड़ी थी। फ्लोरा फाउंटेनसे धोबीतलाब और क्राफर्ड मार्केटतक उनके स्वागतमें आये हुए लोगोंके मुण्ड-ही-मुण्ड दिखायी पड़ते थे।

उस भीड़में उनतक पहुँचना क्या सम्भव होता ? दर्शन करने उनके स्थानपर गया, हिचकते, डरते, धड़कते हृदयसे। उन्होंने देखते ही मुझे ललककर बाँहोंमें भर लिया। अब हम बोलते नहीं हैं। दोनों द्रवित हैं, दोनोंकी आँखोंसे आँसू टपक रहे हैं और टपक रहे हैं वे आँसू, जो दुःख और सुख, फूल और काँटोंभरे जीवनके लंबे मार्गमें चलते हुए टपकते ही रहे और जब वे मुझे छोड़कर चले गये हैं, तब भी टपक रहे हैं, और लगता है— शायद सदा टपकते रहेंगे। उनका टपकना ही मेरा बल है, उनका बहना ही मेरा प्रेरणास्रोत है। वही है चिर-मिलन-बिन्दु। यह है बिन्दु और सिन्धु, सिन्धु और बिन्दुके मिलन और विच्छेद, विच्छेद और मिलनका अर्घ्य।

मैं बड़े संकोची स्वभावका आदमी हूँ। मैंने जिन्हें जीवनमें प्रेम किया है, बहुत प्रेम किया है, उनसे प्रायः दूर-दूर रहता रहा हूँ। बहुत कम सम्पर्क रखा है, परंतु सम्पर्कके अभावमें भी जो शाश्वत सम्पर्क हो जाता है, उसका मैं क्या करूँ? बापूजीने एक बार लिखा था— 'प्रेम बोलता नहीं। जो बहुत बोलता है, वह प्रेम नहीं।' अतएव मैं भाईजीसे बहुत कम मिलता रहा हूँ, बहुत कम बोलता रहा हूँ, परंतु गाँधीजीके बाद मेरे जीवनको सबसे अधिक उन्होंने प्रभावित किया है, पावन बनाया है। प्रेम और स्नेह तो उन्होंने जो दिया, कोई और दे नहीं पाया। जब उनका प्रथम दर्शन हुआ था, तबसे लेकर अबतककी सुदीर्घ अवधिमें शायद १५ बार हम मिले होंगे, परंतु जीवनका कोई संकटबिन्दु नहीं, जिसमें स्नेहावतार भाईजीने, भगवानके आशीर्वादकी भाँति आकर मुझे उबार न लिया हो। बिना कहे, बिना बोले, वे जान जाते थे। कैसे, यह मैं आजतक जान नहीं पाया। मैं संकोचवश उनसे कटता फिरता था और वे अपनी विशाल भुजाएँ बढ़ाकर मुझे पकड़ लेते, मानो कहते हों— मेरे स्नेह-जालसे छूटकर कहाँ जाओगे?

अगणित हैं उनके स्नेहकी स्मृतियाँ और वे इतनी निजी और इतनी पावन हैं कि उनको कहना या लिखना उनकी पावनताको लजाना है। उन्होंने प्रथम साक्षात्कारके बहुत पहले ही मानो मुझे अपना छोटा भाई मान लिया था और उस उत्तरदायित्वको सदा निबाहा। बिना लिखे, बिना कहे, महीनोंसे जब पत्र-व्यवहार नहीं, मिलना नहीं, न जाने कैसे उन्हें मेरे कष्टोंका पता लग जाता था। १९३९ की बात है, मैं अत्यन्त मारक रोगोंके पंजेमें फँसी पत्नीको जलवायु-परिवर्तनार्थ दिल्लीसे प्रयाग ले आया था— साधनहीन और अकिंचन। पास कोई पूँजी नहीं, क्यों कि मुझपर उन दिनों बापूजीका गहरा रंग चढ़ा था और वे कलके लिये सोचने और संचय करनेको नास्तिकता कहते और मानते थे। महीनेका अन्तिम दिन था। मैं बाहर चबूतरेपर बैठा चिन्तामें मग्न था, मेरे पास कुल तीन-चार रुपये बच रहे थे और पहली तारीख (आनेवाले कल) को ग्वाले, महरी, महाराजिन, मकानमालिक— सबको पैसे चुकाने थे। मैं नया-नया आया था और अपरिचित था। मेरे कहनेपर कोई विश्वास ही क्यों करता? सो बैठा हुआ, आँखें मूँदकर भगवानको पुकार रहा था— 'कैसे होगा? क्या होगा?' पत्नीके गहने एक-एक करके पहले ही बिक चुके थे। आँखें मेरी बंद हैं और 'निरालम्बमीश'के प्रति गुहारके साथ ही अपनी विवशता और असहाय अवस्थापर आँसू गिर रहे थे। अचानक एक पोस्टमैन आता है। मैं अपनेमें इतना डूबा हूँ कि मुझे कुछ भान नहीं होता। पोस्टमैन पुकारता है— बाबूजी! आपका बीमा है।

अब मैं सोच रहा हूँ कि जो सज्जन पहले इस मकानमें रहते होंगे, उनका होगा। इसलिये सूखी हँसी हँसकर कहा— भैया, मेरा बीमा नहीं होगा।

देखिये तो— कहकर उसने उसे मेरे हाथमें पकड़ा दिया। सचमुच मेरा ही है। तीन सौ रुपयोंका बीमा है। 'कल्याण'से आया है। इस बीमारीके कारण लगभग डेढ़ सालसे मैंने भाईजीको कोई पत्र नहीं लिखा था, कोई हाल-चाल उन्हें मालूम न था। उनके अनुरोधपर 'कल्याण'में मैंने लेख लिखे थे। 'कल्याण' प्रायः पारिश्रमिक नहीं देता, न उसकी कोई बातचीत थी, न माँग थी। आजतक मैं न जान सका कि भाईजीको कैसे यह सब मालूम हुआ, कैसे उन्हें मेरे तत्कालीन पतेका ज्ञान हुआ और कैसे उन्होंने बिना किसी भूमिका या पत्रके, पर्देकी ओटमें छिपे दीनबन्धुकी भाँति, वे रुपये भिजवाये। पूछनेपर वे हँस देते थे, कभी

बताया नहीं।

अब मेरी हालत सुनिये। बीमा लेना तो मैं भूल गया हूँ, आँखें पुनः मुँद गयी हैं और आँसू गिर रहे हैं। पोस्टमैन घबरा गया है और कुछ देरतक ठक-सा देखता रह जाता है। फिर मेरा कंधा हिलाकर कहता है— बाबूजी, क्या बात है ? रसीदपर दस्तखत तो कीजिये।

मैं हस्ताक्षर करता हूँ, परन्तु रोये जा रहा हूँ और रोये जा रहा हूँ। यह जीवनमें भगवद्दर्शन है और भाईजी भगवानके आवाहक हैं।

एक बारकी बात है। सरदारशहरके श्रीकन्हैयालालजी दूगड़ और श्रीमोहनलालजी जैनने, जो मेरी रचनाओं तथा विचारोंके अध्येता और प्रशंसक थे, अपने खर्चेसे मुझे वहाँ बुलाया था। जैन-धर्मके एक सम्प्रदायके आचार्यकी शिक्षाओंके विषयमें वे मेरी सलाह चाहते थे। मैं गया। मुझे मालूम नहीं था कि भाईजी रतनगढ़में हैं। रतनगढ़में गाड़ी बदलती थी। भाईजीको मालूम हुआ, तुरंत उन्होंने आदमी दौड़ाया। लौटते समय रतनगढ़ ठहरनेका वचन लिया। लौटनेपर मुझे अपने पास ठहराया। उस समय उनकी इकलौती पुत्री सावित्री बाई ही उनके साथ थी उनकी देख-रेखके लिये। उस समय उसका विवाह नहीं हुआ था। कमरेमें मैं हूँ और भाईजी हैं। हम दोनों आमने-सामने बैठे हैं। बोलना चाहते हैं, परन्तु बोल नहीं पा रहे हैं। बड़ी कठिनाईके साथ अस्फुट-से कुछ शब्द निकलते हैं। स्नेहकी सघनतामें वाणी खो-खो जाती है। ऐसा दिव्य और ऐसा मौन स्नेह-सत्संग मुझे जीवनमें बहुत ही कम मिलता है। बादमें मैंने सुना कि भाईजीने संस्कृतके तरुण कवि अद्भुतशास्त्री इत्यादिके अनुरोधपर मेरे एक व्याख्यानका आयोजन करना स्वीकार कर लिया है। वे ही उस सभाके सभापति भी होंगे। मैंने उनसे और मित्रोंसे बहुत कहा कि जहाँ स्वयं कल्पवृक्ष वर्तमान हो, वहाँ भला मैं क्या कह सकूँगा। फिर भाईजीके सामने मेरा मुँह खोलना शिष्टाचारके भी अनुकूल नहीं।

मेरे द्वारा निवारण किये जानेके बाद भी उनका अनुरोध या आदेश निरस्त नहीं हो सका। शामको मुझे रतनगढ़का पुस्तकालय दिखाया गया, फिर सभा हुई। मैं डेढ़-दो घंटे भारतीय संस्कृतिकी रूप-रेखापर बोला। भाषणका अन्त हुआ और भाईजी मुझसे लिपट गये और स्तुतिका अन्त कर दिया। ज्यों-ज्यों वे कुछ कहते, त्यों-त्यों मैं संकुचित होता जाता। इस विषयपर उनकी उपस्थितिमें मैं कुछ कहनेका अधिकारी नहीं था। बस, इतना ही कहकर मैंने उन्हें नमन किया- भारतीय संस्कृतिका सदेह महाकाव्य जहाँ वर्तमान है, वहाँ मेरी इस धृष्ट शिशुलीलाको प्रोत्साहन मिलना ही है।

तबसे मेरी रचनाओं और मेरी चिन्तनधाराके वे एक उदार पोषक बन गये। कई बार 'कल्याण'में उन्होंने मेरे ऐसे लेख भी छापे हैं, जिनमें उनकी विचारधारासे किंचित् भिन्न मत प्रकट हुआ था। मेरी नारी-समस्या-विषयक रचनाएँ उन्हें विशेष प्रिय थीं और भारतीय नारीके लिये मैं जिस मार्गको अपनानेकी बात कहता रहा हूँ, उसके वे प्रबल समर्थक थे। अपने परिवार अथवा मित्रोंके परिवारमें किसी कन्याके विवाहका निश्चय होता तो वे मुझसे उस अवसरके लिये दो-चार शब्द लिखनेका आदेश अवश्य कर देते थे। यह सब ममतावश ही था। इस सम्बन्धमें मुझे एक बात याद आ गयी है। जब सौभाग्यवती सावित्रीबाईका विवाह हुआ, मैं अपनी विवशताओंके कारण उसमें सम्मिलित न हो सका। यह उनकी एकमात्र संतानका

मंगलोत्सव था। मेरी आर्थिक स्थिति भी अच्छी न थी। मेरी धर्मपत्नीका अनुरोध था– जा नहीं सकते तो कुछ उपहार तो भेजना ही चाहिये।

बड़ा संकोच था, क्या भेजूँ? बड़े-बड़े उपहारोंके बीच मैं जो कुछ भेज सकूँगा, उसकी क्या बिसात? अन्तमें बड़ी हिचकिचाहटके बीच मैंने पोस्ट पार्सलसे खादीकी एक साड़ी भेज दी। जैसा कि मेरे अनन्य बन्धु श्रीभुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'के पत्रसे ज्ञात हुआ, सचमुच एक-से-एक बहुमूल्य उपहार आये थे, अधिकांश भाईजीने विनयपूर्वक लौटा दिये, किन्तु सुदामाकी भेजी वह साड़ी न लौटा सके, उसे प्रेमका चिह्न मान कर रख लिया।

राजस्थानसे मेरा बहुत सम्बन्ध रहा है। किसी समय वहाँका युवावर्ग मुझे बहुत चाहता था और वहाँसे चले आनेके बाद भी, उनके अनुरोधकी रक्षाके लिये बीच-बीचमें मुझे राजस्थानके दौरे करने पड़ते थे। १९३८ में जब दिल्लीमें रह रहा था और मेरी पत्नी बहुत बीमार होकर अस्पतालमें पड़ी थी, कई युवा मित्रोंके अनुरोधपर मुझे राजस्थान जाना पड़ा। कई स्थानोंका कार्यक्रम था और ज्यादा दिन मैं रुग्णा पत्नीसे दूर भी नहीं रह सकता था। जाते समय रतनगढ़में श्रीभाईजीके दर्शन किये। लौटते समय भी रास्ता उधरसे ही था, किन्तु गाड़ी बदलनेमें केवल दो-ढाई घंटे मिलते थे और उसमें वहाँसे आरक्षण मिलनेकी भी सम्भावना न थी। भाईजीने कहा था– सब प्रबन्ध हो जायगा, आप बिना मिले न जाइयेगा।

लौटते समय उतरा, सामान स्टेशनपर छोड़ा और ताँगेपर जाकर उनके दर्शन किये। उनके दो मधुर बोल और आशीर्वाद पाकर निहाल हो गया। प्रेमके आँसू चारों आँखोंमें छलछला आये। उनकी तबीयत खराब थी, नहीं तो स्टेशन चलनेको तैयार थे। गये नहीं, परंतु अपने सुहृद, सेवाके रसमें आकण्ठनिमग्न दूलीचन्दजीको सब व्यवस्था करनेका आदेश देकर साथ भेजा। मेरी अनुपस्थितिमें ही बीकानेर तार देकर रिजर्वेशन भी करा दिया था। दूलीचन्दजीके साथ मेवा-मिष्टान्न भी भेज दिया था। गाड़ी आयी, मैं बैठ गया। जब गाड़ी चलने लगी, तब दूलीचन्दजी यह कहकर कि 'भाईजी न आ सके, इसलिये यह पत्र दिया है', उतर गये। जब स्थिर होनेके बाद मैंने पत्र खोला तो उसमें सौ-सौ रुपयेके कई नोट थे और स्वीकार करनेका अनुरोध था। मैंने लौटनेके बाद उन्हें पत्र लिखा कि इस समय मुझे आवश्यकता न थी। फिर भी उन्हें धन्यवाद दिया था और कृतज्ञता प्रकट की थी। कृतज्ञ हृदयसे निकले उस स्नेहमूर्तिकी प्रशंसाके कुछ शब्द थे। उसका जो उत्तर उन्होंने दिया, उसे एक वे ही दे सकते थे। मेरी प्रशंसासे उन्हें गहरी वेदना हुई थी। कई निजी बातोंके बाद उन्होंने लिखा– आपके पत्रकी भाषासे ऐसा अनुमान हुआ कि मेरे इस व्यवहारसे आपको कुछ संकोचमें पड़ना पड़ा है। आपके ऊँचे शीलके लिये यह स्वाभाविक ही है। परंतु मेरी प्रार्थना यह है कि आप किसी प्रकारका जरा भी संकोच न रखें। उदारताका मूल्य चुकानेकी बात न सोचें। मैं सत्य कहता हूँ, भगवान साक्षी है, मैं उदारतासे बहुत दूर हूँ और न मैं भगवद्भक्त ही हूँ। आपको यदि ऐसा कुछ दीख पड़ा तो उसमें प्रधान कारण आपकी शुभ भावना और वृत्तियोंकी पवित्रता ही है। मैं विनयपूर्वक चाहता हूँ कि इस संबन्ध में आप एक शब्द भी मुझे न लिखें और न मुझे अपने एक भाईके अतिरिक्त और कुछ भी समझें। . . .

परन्तु जब हृदय भरा हो, कृतज्ञताकी भावगंगा कहाँ रुक पाती है। मेरी कृतज्ञताजन्य

स्तुतिसे भरे एक साधारण-से पत्रका जो उत्तर उन्होंने भेजा था, वह उनके विगलित हृदयके अश्रुबिन्दुओंसे जगह-जगह धूमिल हो गया था। इस समय वह मिल नहीं रहा है। इसमें उन्होंने इस आशयके शब्द लिखे थे– आप तो मेरे सच्चे हितैषी हैं, कम-से-कम आपको तो कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिये, जिससे मेरी वृत्तियोंके अन्तर्मुख होनेमें अवरोध आये। . . . .

यह थी उनकी अन्तर्भावना, यह थी उनकी सरलता। देते हैं, परंतु देनेकी भावना नहीं। भावना क्या, उसकी अनुभूति ही नहीं है। वे कोई धनिक नहीं थे, वर्षों पूर्व सब व्यापार-व्यवसाय छोड़ बैठे थे। 'कल्याण'से भी कुछ नहीं लेते थे, न किसीसे कुछ माँगते थे। सच्चे अर्थोमें भगवान ही उनका अवलम्ब थे, वे साधन जुटाते थे। परंतु निःस्व होकर भी उन्होंने शत-शत प्राणियोंकी सहायता की है और उसका कहीं कोई विवरण नहीं। सब गुप्त ही रहा और आज भी गुप्त है। देते थे और सचमुच भूल जाते थे। उन्हे याद नहीं रहता था कि इसको कभी कुछ दिया है। मैं स्वयं बार-बार इसका अनुभव कर चुका हूँ। एक बारकी बात है, मित्रोंने मुझे जबर्दस्ती एक प्लाट लिवा दिया और सरकारसे निर्माणके लिये आठ हजार ऋण भी दिलवा दिया। मैंने कभी यह सूचना उन्हें भी दी होगी। उसके बाद जब उनसे मिला, तब बोले– आठ हजारमें कहीं मकान बनता है ? अच्छा, मैं देखूँगा।

मैंने किसीसे अपने निजी कार्यमें सहायता लेनेमें संकोच प्रकट किया। जब बापूजीने मेरी पत्नीके लिये बम्बईके मित्रोंसे सहायता दिलानेकी बात कही थी, तब भी मैंने विरोध किया था। एक भाईजी ही ऐसे थे, जो मुझे अपना समझकर बड़े भाईके रूपमें मेरा बोझ उठा लेते थे और मैं उस सम्बन्धको मानकर उनके प्रेमजालमें फँस चुका था। वे अपवाद थे। किन्तु उनके पास पैसे थे नहीं। बड़ी बहसके बाद तय हुआ कि वे बिना ब्याज मुझे किसी मित्रसे रुपये दिला देंगे और मैं अपनी सुविधासे धीरे-धीरे उसे चुका दूँगा। उन्होंने एक-दो सूत्रोंसे हजारों रुपये मुझे उधार दिलवा दिये, जिन्हें भगवत्कृपासे बादमें मैंने चुका दिया। चार-पाँच वर्ष बाद जब प्रसंगवश मैंने मकानकी बात कही, तब वे बोले कि उन्हें इसका कोई स्मरण नहीं है।

फिर तो वे मेरे सरपरस्त ही हो गये। जब मैं उनके दर्शन करने जाता, तब लौटनेके दिन वे मेरे लिये गाड़ीमें रिजर्वेशन वगैरह करा देते और आज्ञा देते कि जाते समय मिलकर जाना। मैं उनसे विदाई लेने जाता। यदि उस समय कमरेमें और लोग होते तो उन्हें बाहर जानेको कह देते। मैं प्रणाम करता, तब वे मेरे सिरपर हाथ रखकर थपथपा देते, फिर मुस्कुराकर एक बंद लिफाफा पकड़ा देते। इन्कार करनेपर कहते– यह मेरा दायित्व है।

वे जनमभर अपना दायित्व निभाते रहे और यह मेरा परम दुर्भाग्य है कि मैं उनकी कोई सेवा न कर सका। अपना दुःख प्रकट करनेपर वे कहते– आप इसी प्रकार अपने विचार लोगोंको देते रहें, यही मेरी सेवा है।

उनकी बंद लिफाफेवाली वृत्ति जब बहुत बढ़ गयी, तब इच्छा होते हुए भी मैं उनके दर्शनोंसे लंबी अवधितक अपनेको वञ्चित रखने लगा। किन्तु जाऊँ या न जाऊँ, इससे कोई अन्तर पड़नेवाला नहीं था। मेरे कुटुम्बके प्रत्येक सदस्यका भार बिना कहे-सुने ही उन्होंने अपने ऊपर ले लिया था। भाईजी प्रायः मुझसे कहा करते थे– समय बहुत बदल गया है। अब पुराने लोग नहीं रहे, जो मेरी बातपर सब कुछ करनेको तैयार रहते थे। अब तो 'सत्ता' और 'देन-लेन' की

बात है। व्यापारसे धर्मका लोप होता जा रहा है। लोग मेरे पाँव छूते हैं, परंतु बात नहीं मानते, एक-न-एक बहाना करके टाल देते हैं।

इस बदले हुए वातावरणमें उनका दम घुटता था। समुद्रकी लहरें तटकी ओर आती हैं, चट्टानोंसे टकराती हैं, लौट जाती हैं, परंतु फिर-फिर आती हैं। उनका आना नहीं रुकता, यह उनका स्वभाव है। भाईजीके लिये भी यही बात है। स्नेहकी वृत्ति उनके लिये सहज थी। वे अपनी करते ही रहते थे, जिसे अपना लिया, उसका सुख-दुःख उनका हो गया। उसकी चिन्ता वे जबर्दस्ती ओढ लेते थे। यही है भगवद्वृत्ति। भगवान जिसे अपनाते हैं, उसका सब भार अपने ऊपर ले लेते हैं। इधर वर्षोंसे जब भी मैं उनके दर्शनोंके लिये जाता, सबसे पहली बात वे यही पूछते थे कि बिटियाके विवाहका क्या हुआ ? वे कहते— भैया, समय बहुत खराब है, इसलिये अपने सामने पहले इस कर्तव्यको कर डालो।

मैं मौन रह जाता। मनमें 'अकबर' इलाहाबादीका वह शेर गूँज जाता—

राह तो मुझको बता दी खिज्रने,
ऊँटका लेकिन किराया कौन दे?

वे समझ गये, तब एक बार कहा— आप लड़का तो खोजिये और कुछ चिन्ता न कीजिये।

एक बार उन्होंने कुछ रुपये भी भेजे। परंतु भाग्यकी कैसी विडम्बना है कि जब लड़का मिला तो भाईजी संसारको ही छोड़ गये। इसी बीच पत्नी भयंकर रूपसे बीमार हो गयी और आजतक बीमार है। 'गांधी स्मारक निधि' का जो काम मैं करता था, वह बंद हो गया। विवाह तो होना ही था। एकाध बन्धुओंने यथामति सहायता भी की और विवाह हो गया, परंतु रह-रहकर दिलमें हूक उठती थी। लड़की और उसकी माँको लगता था कि जैसे वे सहसा अनाथ हो गये हैं। सिर्फ पैसेकी बात नहीं थी, जीवनमें आयी हुई जेठकी दुपहरीकी तपनमें स्नेहकी वह शीतल छाया कौन देता, जिसके नीचे हम अपनेको सुरक्षित अनुभव करते थे ? वह मन्द स्मित, जो न केवल निराशाकी अँधियारीको क्षणभरमें दूर कर देता था, वरं अन्तरमें प्रबल आत्मविश्वास भी उत्पन्न करता था, अब कहाँ देखनेको मिलेगा ?

शीलके तो श्रीभाईजी समुद्र ही थे। इस मामलेमें किसीके लिये कोई भेद-भाव न था। अत्यन्त महत् होकर भी वे अपनेको सबसे छोटा समझते थे। जबतक शरीरमें शक्ति थी और अपने छतपरके कमरेसे नीचे उतरते थे, मेरे गोरखपुर जानेपर कम-से-कम एक बार स्वयं चलकर अतिथि-निवासतक मिलने आते थे। जब न आ सकते या न आने योग्य होते, तब बार-बार अपनी विवशता प्रकट करते और सचमुच संकुचित तथा दुःखी होते। अपने कर्तव्यके प्रति उन-जैसा जागरूक व्यक्ति मैंने नहीं देखा। यदि किसीको किसीकी देख-रेख या सेवापर लगा देते और उससे कुछ भी असावधानी हो जाती तो उसे अपनी ही त्रुटि मानकर पश्चात्ताप करते थे।

बहुत-से लोग उन्हें धर्मज्ञ समझते थे, किन्तु वस्तुतः वे 'अनेकरूपरूपाय' थे। उनमें विविध विद्याओं और गुणोंका ऐसा समन्वय था कि विचार करनेपर आश्चर्य होता है। ब्रजभाषा और खड़ी बोलीके उनके सैकड़ों पद हैं, जो उनके अन्तर्मार्दवसे ओत-प्रोत और उल्लसित हैं। कविकी दृष्टिसे भी श्रीभाईजीका अपना एक विशिष्ट स्थान है। सम्पादनमें शायद ही दो-एक

नाम उनके साथ रखे जा सकें। लेखकके रूपमें कठिन विषयको सुबोध शैलीमें समेट लेनेके तो वे आचार्य ही थे। देशभक्तिमें वे बहुत आगे थे और राष्ट्रीय जागरणका प्रत्येक युग उनके सक्रिय सहयोग और पथ-दर्शनसे ऊर्जस्वित हुआ है। वे इस देशकी धरतीको बड़ी गहराईसे प्यार करते थे और उसके सर्वोत्तम प्रतिनिधियोंमेंसे एक थे। तिलक, मालवीय और गाँधी— तीनों उनके राष्ट्रीय अनुरागमें प्रस्फुटित हुए थे। भारतीय संस्कृति उनमें अपनी सीमापर पहुँची थी।

मेरी समझसे श्रीभाईजीकी सर्वाधिक सफलता दो बातोंको लेकर थी। प्रभुके चरणोंमें पूर्ण समर्पण— यही थी उनकी सिद्धि और लोकैषणापर पूर्ण नियन्त्रण— यही थी उनकी साधना, जो व्यावहारिक दृष्टिसे स्वतः महान सिद्धि ही थी। जीवनमें मैं विविध प्रान्तों, प्रदेशों, क्षेत्रों, संस्थाओं एवं महान व्यक्तित्वोंसे सम्बद्ध रहा हूँ। मैंने बड़े-बड़े योगी-यति, मुनि-महात्मा और आचार्य देखे हैं, वीतराग संन्यासियोंके सम्पर्कमें आया हूँ, परंतु ऐसा एक आदमी भी नहीं मिला, जो इस विषयमें उनके समकक्ष हो। घर-गृहस्थी, धनैषणा और संसारका त्याग करना भी अपेक्षाकृत सरल है, परंतु यश और प्रशंसाकी एषणाका त्याग अत्यन्त कठिन है। बड़े-बड़े संसार-त्यागी और सिद्धिप्राप्त महात्मा प्रशंसा एवं स्तुतिके वचन सुनकर संतोष एवं 'अहं'की तृप्तिका अनुभव करते हैं। एक भाईजीको ही देखा, जो स्तुतिवाक्य सुनकर कछुएकी भाँति सिकुड़ते जाते थे, प्रशंसाके वचन उन्हें विषकी भाँति लगते थे। विविध क्षेत्रोंमें लंबी सेवा और साधनाके बाद भी भाईजीने अपने विषयमें कुछ लिखा जाना कभी स्वीकार नहीं किया। कई बार उनके मित्रों, सहयोहगियों, अनुयायियोंने इसके लिये प्रयत्न किया है, तैयारियाँ कर ली हैं, परंतु भाईजीके कानोंमें भनक पड़ते ही वह लताड़ पड़ी है कि हारकर चुप होकर बैठ जाना पड़ा है। एक बार उनके एक भक्त एवं प्रशंसकने कुछ लोगोंको गोपनीय पत्र भेजे कि 'भाईजीकी जन्मतिथि'के समय वे विविध पत्र-पत्रिकाओंमें भाईजीपर लेख लिखकर प्रकाशित करायें। जब भाईजीको पता लगा, तब उनको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने अपने हाथसे एक-एक व्यक्तिको पत्र लिखा और विनय की कि वे अपना बहुमूल्य समय ऐसे तुच्छ कार्यमें न लगाकर किसी महत कार्यमें लगायें। मैंने बहुत खीझकर उन्हें लिखा— आखिर इस विषयमें आपका इतना आग्रह क्यों है ? जो लोग आपके पावन चरितसे कुछ सीख सकते हैं, उन्हें आप इस लाभसे वञ्चित क्यों करते हैं, आप 'तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी' क्यों नहीं हो जाते ?

मेरा वार खाली गया। हवामें चमकाये जानेवाले खड्गकी भाँति कोई झंकार भी न हुई और मिलनेपर भाईजीने बड़ी विनम्रतासे कहा— आप तो मेरे हितकी कामना रखते हैं, आपको तो ऐसा नहीं करना चाहिये, जिससे इन्द्रियवृत्ति प्रबल हो। स्तुतिके शब्द कानोंको प्रिय लगते हैं, इसलिये उनसे दूर ही रहना चाहिये। मैं 'तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी' अभी कहाँ हूँ। मैं तो एक दुर्बल मानव हूँ। हाँ, भगवानसे अवलम्बका आकांक्षी हूँ कि वह मुझे उबार लें। इसलिये मुझे अपनी मर्यादामें रहना चाहिये। संसारमें जो सीखना चाहें, उनके लिये एक-से-एक पावन चरितके उदाहरण हैं। मुझ कंगालके पास क्या हैं ?

उनके इन दैन्यभरे शब्दोंको सुनकर मैं अपने पत्र-लेखनपर ग्लानि कर रहा था।

इधर अनेक वर्षोंसे उनका शरीर उस श्रमको बर्दाशत नहीं कर पाता था, जो वे निरन्तर करते रहते थे। मैंने कई बार लड़कर उनसे सम्पादनका कुछ काम छीन लिया। वे उस समय तो मान

जाते थे, परंतु बादमें चिर-अभ्यस्तकी भाँति फिर उसे स्वयं ही करने लगते थे। एक बार जब नहीं रहा गया, तब मैंने उनसे कहा– शरीर नाशवान है, असत् है, परंतु वही देवताका मन्दिर भी है। इसी असत्‌की आड़में सत्‌की प्राप्ति सम्भव है। तब आप उसके प्रति इतने निष्ठुर क्यों हैं?

वे बोले– निष्ठुर तो नहीं हूँ, परंतु अधिक आसक्ति भी तो ठीक नहीं है।

मैं क्या कहता? बात असलमें यह थी कि अपना गृहीत काम दूसरोंसे करानेमें उन्हें सदा संकोच रहता था। वे तीव्रगतिसे जीवनके अन्तिम दिवसोंमें अन्तर्मुख होते जा रहे थे। रसेश्वर और रसेश्वरीकी आराधना करते हुए वे उनमें विलीन होते जा रहे थे। वे उनकी लीलाओंको प्रत्यक्ष देखते थे और देखते-देखते स्वयं लीला बनते जा रहे थे, उसमें खो-खो जाते थे। वे स्वयं पूजाकी नित्य दीप-शीखा बन गये थे। इस जगतके होकर भी वे मानो इस जगतके नहीं रह गये थे। इसलिये जो सूक्ष्म चैतन्य शरीरको चला रहा था, वह उसे छोड़ने लगा था और छोड़ते-छोड़ते एक दिन बिल्कुल ही छोड़ गया। ■

श्रीमृत्युञ्जयप्रसादजी

दो विभूतियोंका पारस्परिक सौहार्द

मेरा व्यक्तिगत परिचय श्रीभाईजीसे नहीं हो पाया और न उनके दर्शनोंका सौभाग्य ही मुझे मिला, किन्तु उनके लेखोंसे मैंने लाभ उठाया है। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि भगवच्चरणोंमें लीन पूज्य पिताजी (अजातशत्रु देशरत्न डा. श्रीराजेन्द्रप्रसादजी) के साथ श्रीभाईजीके सौहार्दका मुझे पता है। समाज, देश और धर्मके महान कार्यके प्रति दोनों विभूतियोंके हृदयमें कैसी प्रबल उत्कण्ठा थी और कैसा पारस्परिक सहयोग था, इसके प्रमाणमें उनके व्यक्तिगत पत्रव्यवहारका एक प्रसंग उदाहरण स्वरूप नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है। पूज्य पिताजीने नयी दिल्लीसे श्रीभाईजीको जो पत्र लिखा, वह इस प्रकार है–

राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली।
१५ नवम्बर १९५७

प्रिय श्रीहनुमानप्रसादजी,

कुछ दिन हुए मैंने एक व्यंग चित्र देखा, जिसका आधार एक पौराणिक कथा था। जो आदमी उस कथाको नहीं जानता, वह उस चित्रके अर्थको नहीं समझ सकता था। उससे मेरे दिलमें यह विचार उठा कि हिन्दीमें भी एक कोई ऐसा ग्रन्थ होना चाहिये, जिसमें सभी पौराणिक कथाओंका वर्णन संक्षेपमें दे दिया जाये और वह किसी कोषकी तरह ऐसे क्रमसे रहे कि पढ़नेवालेको अगर कथाका नाम या उसके पात्रका नाम मालूम हो तो उसको देखकर वह सारी कथा जान सके। मैंने अँग्रेजीमें इस तरहकी ग्रीक और लैटिन माइथोलौजीकी डिक्शनरी देखी है। इसी तरह हमारे ग्रन्थोंमें जो कथाएँ आयी हैं, उनकी एक डिक्शनरी-सी तैयार हो जाये तो उससे आजकलके विद्यार्थियोंको, जिनको अभी उन कथाओंका ज्ञान नहीं है और न जिनका

परमभागवत श्रीपोद्दारजी

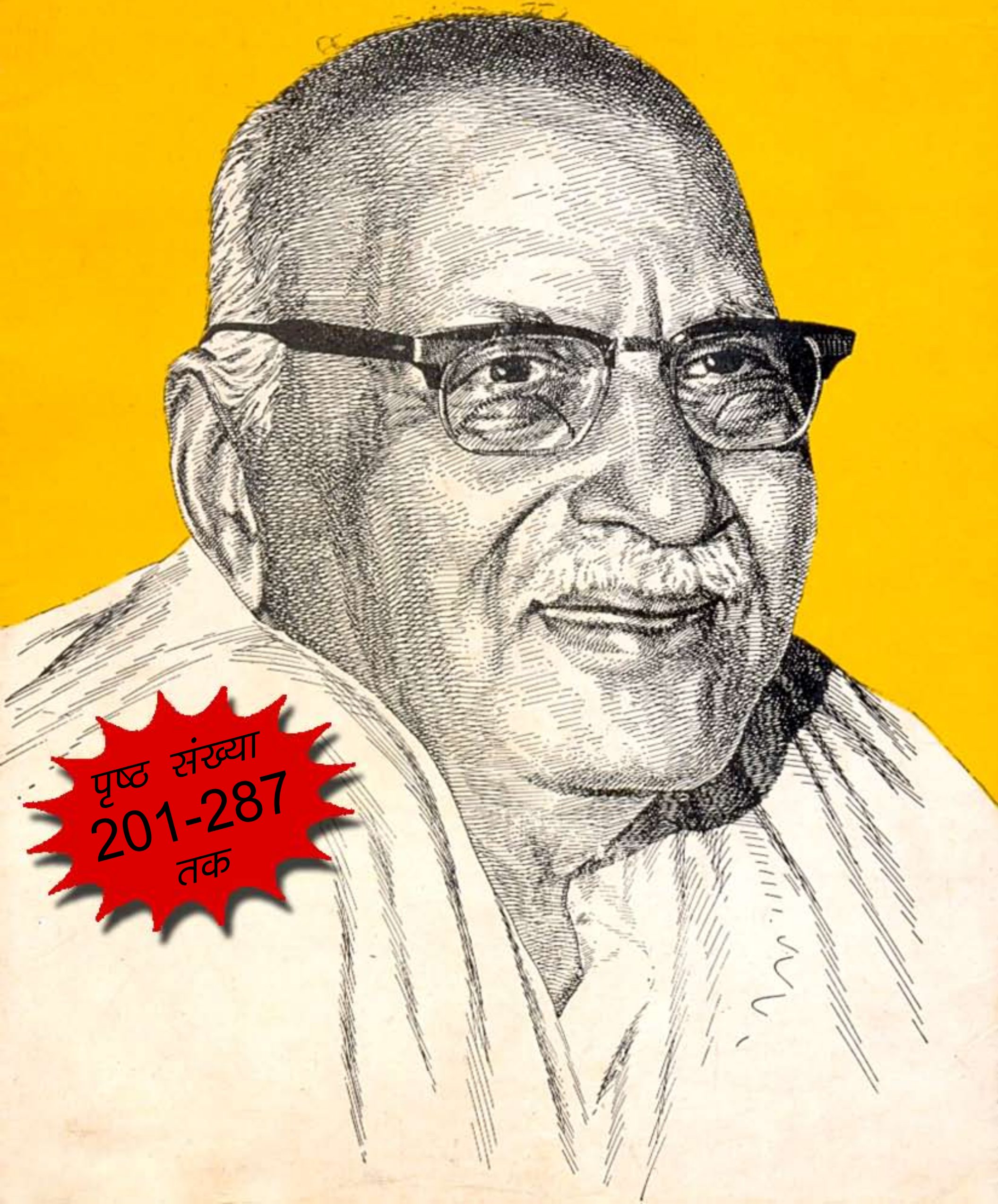

उन ग्रन्थोंसे बहुत परिचय है, कहीं भी अगर किसी पात्र या कथाका जिक्र पावें तो आसानीसे वे उस ग्रन्थको निकाल कर देख लें। आपके पास इस तरहके ग्रन्थका मसाला तो तैयार है ही, क्यों कि किसी न किसी रूपमें और किसी न किसी संदर्भमें कथाएँ आपके यहाँ प्रकाशित हो चुकी होंगी। उनको कोषकी तरह क्रमबद्ध कर देना होगा और कहीं कथा लम्बी छपी हो तो उसको संक्षिप्त कर देना होगा। मुझे मालूम नहीं इस तरहका कोई ग्रन्थ हिन्दीमें है या नहीं। अगर हो तो आप कृपया उसका पता मुझे भेज दें और यदि नहीं हो तो 'कल्याण' उसको हाथमें ले तो अच्छा होगा। अपने मतलबको साफ बतलानेके लिये मैं उदाहरणके रूपमें गोस्वामी तुलसीदासजीकी लिखी चौपाई देता हूँ। 'बाल्मीकि नारद घटयोनी, निज निज मुखन कही निज होनी'। अगर कोई विद्यार्थी उनकी कथाओंको नहीं जानता हो और उनको वह जानना चाहे तो उसको कठिनाई होगी, पर एक डिक्शनरी रहेगी तो उसको देखकर वह जान सकता है। आधुनिक हिन्दी कवितामें भी कुछ वाक्य दिये जाते हैं, जिनको समझनेमें ऐसी पुस्तकसे सहायता मिलेगी।

आपका,
राजेन्द्र प्रसाद

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार,
गीताप्रेस, गोरखपुर।

पूज्य पिताजीका यह पत्र श्रीभाईजीको कुछ विलम्बसे मिला। इन दिनों श्रीभाईजी गोरखपुरमें नहीं थे। वे स्वास्थ्य-लाभके लिये रतनगढ़ (राजस्थान) गये हुए थे। पत्र पहले गोरखपुर और फिर रतनगढ़ गया। रतनगढ़में पाते ही जो उत्तर पूज्य पिताजीके पास श्रीभाईजीने लिखा, वह इस प्रकार है।

रतनगढ़ राजस्थान
१३ दिसम्बर, १९५७

सम्मान्य श्रीराजेन्द्रप्रसादजी,

सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र गोरखपुरसे लौटकर मुझे यहाँ मिला। आप इतने कार्यव्यस्त होते हुए भी साहित्यकी ओर ध्यान रखते हैं और अपने बहुमूल्य समयमेंसे अवसर निकालकर सूचना भेजते हैं, इससे बहुत कुछ सीखनेको मिलता है। आपने पौराणिक कथाओंके सम्बन्धमें एक ग्रन्थ निर्माण करानेकी बात लिखी, सो वास्तवमें बहुत ही उपयोगी चीज है। बंगलामें जीवनी कोषके नामसे दो भागोंमें एक ग्रन्थ निकला है, उसमें पौराणिक औपनिषदिक और महाभारत आदिमें आये हुए प्रायः सभी व्यक्तियोंसे सम्बन्धित कथाओंका संक्षिप्त संकलन है। इसी प्रकार मराठीमें भी एक कोष तीन भागोंमें निकला है। हिन्दीमें एक छोटा-सा कोष 'प्रासांगिक कथा कोश' श्रीमती गुलाब मेहताका इंडियन प्रेस, प्रयागसे निकला है। पर वह बहुत संक्षिप्त है। यों तो रामचरितमानसमें आये हुए पात्रोंका परिचय गीताप्रेससे प्रकाशित मानसांकमें और विनय-पत्रिकामें आये हुए पात्रोंका परिचय विनय-पत्रिकाके परिशिष्टमें छापा गया है। इधर सूरदासजीके पदोंका संकलन कई भागोंमें प्रकाशित हुआ है, उनके परिशिष्टमें भी पात्रोंका परिचय दिया गया है। सारी कथा संक्षेपमें आ गयी है। गीताप्रेससे प्रकाशित इन सब

पुस्तकोंको आपकी सेवामें भिजवा रहा हूँ, आप देखियेगा। परन्तु एक ही ग्रन्थमें सारे पात्रोंका परिचय आ जाय और कोषके रूपमें सारी कथाएँ दे दी जाय तो वह ग्रन्थ बहुत उपयोगी हो सकता है और ऐसे ग्रन्थके निर्माण और प्रकाशनका कई वर्षोंसे विचार भी है, पर अबतक सम्भव नहीं हो सका। आशा है कि अगले वर्षतक ऐसा ग्रन्थ बन जाय। उसमें कविताओंमें आये हुए वाक्य भी दिये जा सकते हैं। आपकी इस सूचनाके लिये मैं आपका कृतज्ञ हूँ।

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। मैं स्वास्थ्य-सुधारके लिये ही यहाँ लगभग तेरह महिनोंसे हूँ।

शेष भगवत्कृपा।

आपका—
हनुमानप्रसाद पोद्दार

पूज्य पिताजीके द्वारा प्रदत्त सुझावको मूर्तरूप प्रदान करनेके लिये श्रीभाईजीने जो तत्परता दिखलायी, वह सराहनीय है। इसके अलावा इस उत्तरसे यह भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्रीभाईजीको अपने कार्य-क्षेत्रके विषयमें कितनी विशद जानकारी थी।

पूज्य पिताजी द्वारा लिखे गये एक और पत्रको मैं यहाँ उद्धृत करना चाह रहा हूँ। वह पत्र पिताजीने हैदराबादसे लिखा था। पत्र इस प्रकार है—

राजेन्द्र प्रसाद

लेकव्यू गेस्ट हाऊस, हैदराबाद
२९ जुलाई, १९६२

प्रिय श्रीहनुमानप्रसादजी,

श्रीकृष्णाचार्य जोशीको आप संभवतः जानते होंगे। वह संसत्सदस्य भी रह चुके हैं। उन्होंने माधवतत्त्वका हिन्दी अनुवाद किया है, जिसकी भूमिका श्री बी. रामाकृष्ण रावने लिखी है। मुझसे कल मिलने आये थे और उक्त ग्रन्थके कुछ अंश पढ़कर मुझे उन्होंने सुनाये। मेरे विचार में उनका काम अच्छा है। उन्होंने इसके प्रकाशनका भार गीताप्रेसको सौंपा है और कुछ समय पूर्व सारी सामग्री भी आपके पास भिजवा दी है। मुझे खुशी होगी यदि आप इसमें स्वयं रुचि लेकर इसे शीघ्र प्रकाशित करवा दें।

मैं स्वास्थ्य-लाभके लिये ३ जुलाईको यहाँ आ गया हूँ और सितम्बर तक मेरा यहाँ ठहरनेका विचार है। यहाँ आकर मेरे स्वास्थ्यमें कुछ सुधार हुआ है।

आशा है कि आप प्रसन्न एवं स्वस्थ हैं।

आपका,
राजेन्द्रप्रसाद

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार,
गीताप्रेस, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश

पूज्य पिताजीके इस पत्रका क्या उत्तर श्रीभाईजीने दिया, इसकी जानकारी नहीं हो पायी, पर दोनों विभूतियोंके पारस्परिक सौहार्दको देखते हुए मैं सहज ही अनुमान लगा सकता हूँ कि श्रीभाईजीने अवश्य ही अनुकूल उत्तर लिखा होगा। इस पारस्परिक सौहार्दका ही यह

स्वाभाविक परिणाम था कि श्रीभाईजीके स्नेह-भरे अनुरोधको स्वीकार करके गीताप्रेसके नवनिर्मित गीता-द्वार एवं लीलाचित्र मन्दिरका उद्‌घाटन करनेके लिये पूज्य पिताजी गोरखपुर गये थे। पूज्य पिताजीकी यह आन्तरिक अभिलाषा थी कि श्रीभाईजीको 'भारत-रत्न' की उपाधिसे विभूषित करके उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्वको राजकीय सम्मान प्रदान करनेका अवसर मिले, परंतु ऐसे सम्मानों-अभिनन्दनोंके प्रति श्रीभाईजीकी घोर उपरामताके कारण उनकी वह सात्त्विक अभिलाषा पूर्ण नहीं हो पायी। वह अभिलाषा मात्र चर्चाका विषय बनकर रह गयी। ■

श्रीकार्ल जी. गेश (लार्ष, जर्मनी)

भारतीय संस्कृतिके संदेशवाहक

सन् १९५६ में मुझे उन महान आत्माके दर्शनका सौभाग्य मिला था। मेरा सम्पर्क अनेक व्यक्तियों एवं महापुरुषोंसे हुआ। अब अपने जीवनके उत्तरार्धकालमें मैं यह कह सकता हूँ कि श्रीभाईजीसे मेरी भेंट अत्यन्त आवश्यक थी। भारतदेशके मेरे प्रवासके प्रारम्भिक दिनोंमें बम्बईमें एक भारतीयने मुझसे कहा था— श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार एक विलक्षण पुरुष हैं।

मैंने अपने सम्पर्कमें उन्हें ऐसा ही पाया। मैंने उनके रूपमें एक विलक्षण पुरुषके ही दर्शन नहीं किये, अपितु मुझे उनके रूपमें एक संतकी प्राप्ति हुई। जो लोग उनसे एक बार भी मिले हैं, वे उस उदार आत्माको कभी भूल नहीं सकते। मेरे प्रति थे उनके ये शब्द— आप हमारे परिवारके एक सदस्य हैं।

ये कोरे शब्द नहीं हैं। मुझे एक घटना याद है। रतनगढ़के लिये श्रीभाईजीके प्रस्थानके समयकी बात है। बहुत लोग श्रीभाईजीका दर्शन करनेके लिये आये थे। श्रीभाईजी और मैं घरके सामने खड़े थे। एकाएक श्रीभाईजीने अपना हाथ मेरे दाहिने कन्धेपर रख दिया। यह घटना उल्लेखनीय न हो, परन्तु इससे मालूम हो गया कि श्रीभाईजीका यह कहना सच था कि आप हमारे लिये विदेशी नहीं हैं, आप हमारे कुटुम्बके सदस्य हैं।

मेरा ऐसा विचार है कि इसी कारण मेरी भारतवर्षकी यात्रा भी सम्भव हो सकी। उनके आत्मीयतापूर्ण आतिथ्य सत्कारके कारण भारतमें मैंने अपनेको कभी विदेशी-अजनबी अनुभव नहीं किया। इसके अतिरिक्त उनके आतिथ्य सत्कारसे मुझे ऐसे देशका वास्तविक दर्शन हुआ, जिसका शताब्दियोंसे संतों, महात्माओं एवं दार्शनिकोंने मानवीय अध्यात्मके एक विलक्षण मन्दिरके रूपमें निर्माण किया है। श्रीभाईजीद्वारा की गयी निर्धन तथा आर्तजनोंकी सेवाके कार्योंका महत्त्व वे ही लोग जान सकते हैं, जिन्हें उनसे सेवा सहायता प्राप्त हुई है। मुझे उन प्रेरणा-स्रोतोंकी तलाश थी, जिनसे श्रीभाईजी इस महान सेवाकार्यमें प्रेरणाशक्ति प्राप्त करते थे। मैंने उनकी शिक्षाओंका भली-भाँति अध्ययन करनेका यत्न किया और मुझे उनकी 'आनन्दकी लहरें' नामक लघु पुस्तिकामें अपनी खोजका उत्तर प्राप्त हो गया—

कोढ़ी, अपाहिज, दुःखी-दरिद्रको देखकर यह समझकर कि 'यह अपने बुरे कर्मोंका फल

भोग रहा है, जैसा किया था वैसा ही पाता है', उसकी उपेक्षा न करो, उससे घृणा न करो और रूखा व्यवहार करके उसे कभी कष्ट न पहुँचाओ। वह चाहे पूर्वका कितना ही पापी क्यों न हो, तुम्हारा काम उसके पापको देखनेका नहीं है, तुम्हारा कर्तव्य तो अपनी शक्तिके अनुसार उसकी भलाई करना तथा उसकी सेवा करना ही है।

मेरा विचार श्रीभाईजीकी पुस्तकोंको जर्मन भाषामें अनुवाद करके प्रकाशित करनेका है, परंतु मैं अच्छा अनुवाद नहीं कर पाता, इसलिये यह इच्छा पूर्ण नहीं हो पायी है। श्रीभाईजीकी पुस्तकें जर्मन लोगोंके लिये भी बहुत लाभदायक होंगी। श्रीभाईजी जैसे संतको जर्मनीमें आना चाहिये था। मैं उन्हें भारतीय संस्कृतिका सबसे उत्तम संदेशवाहक समझता हूँ। ■

श्रीरुडोल्फ सुएस (ल्यूर्जन, स्विट्जरलैंड)

मैं परदेशी नहीं, स्वजन था

महान संत श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सदा-सर्वदा मेरी स्मृतिमें बने रहेंगे और उनके साथ रहनेका जो सौभाग्य मुझे मिला था, वह मैं कभी नहीं भूल सकूँगा। उनके साथ बिताये गये थोड़ेसे समयमें ही मैंने उनका स्नेह, उनका प्रेम, उनके विचार, बल्कि उनकी जीवन-पद्धतिका परिचय प्राप्त कर लिया था।

भारत जाते हुए जेरूशलममें मुझे कैमरान नामके एक भारतीय सज्जन मिले थे। उन्होंने ही मुझे गीताप्रेसका पता दिया था। अयोध्यासे चलकर मैं १७-३-६३ ई. रविवारको गोरखपुर पहुँचा। मुझे पूरा गीताप्रेस देखनेका सौभाग्य मिला। गीताप्रेस मुझे एक संग्रहालय-सा प्रतीत हुआ। मुझे आज भी संगमरमरके उन पत्थरोंकी स्मृति है, जिनपर पूरी गीता खुदी हुई है। संध्याके समय जब मैंने गीताप्रेसमें ही रात बितानेकी इच्छा प्रकट की, तब मुझे बताया गया कि मेरे ठहरनेकी व्यवस्था गीतावाटिकाके सामने स्थित श्रीभाईजीके अतिथि-गृहमें की गयी है।

उस आनन्ददायक बगीचे (गीतावाटिका) में जब मैं पहुँचा, तब अँधेरा फैलने लगा था। वहाँ बरामदेमें कुछ अन्य सम्मान्य व्यक्तियोंके साथ बैठे हुए श्रीपोद्दारजीका मैंने सर्वप्रथम दर्शन किया। मैं उनसे बहुत प्रभावित हुआ। रात्रि बिताकर जब मैं प्रातःकाल उन्हें प्रणाम करके चला, तब मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मेरी कारमें खाने-पीनेका बहुत-सा सामान और ढेर सारे ताजे फल रखे हुए थे।

एक प्रसंग तो मैं भूल ही नहीं सकता। काठमाण्डु पहुँचकर मेरी पर्स खाली हो गयी। मैंने श्रीपोद्दारजीके पास अपनी लाचारी लिखकर भेज दी। मेरा मन आशा-निराशामें पड़ा था, पर मेरा पत्र पाते ही उन्होंने बहुत बड़ी धनराशि मेरे पास डाक द्वारा भिजवा दी। मैं एक विदेशी अपरिचित यात्री था, जो केवल एक रात गीतावाटिकामें ठहरा था। उस अल्पकालिक क्षणिक परिचयका जो आदर उन्होंने दिया, वह मुझे सदा याद रहेगा। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि मेरी आध्यात्मिक यात्राका शुभारम्भ गीतावाटिकासे हुआ।

नेपालकी यात्रा पूरी करके मैं वापस गोरखपुर ८ नवम्बर १९६३ को छोटी श्रीराधाष्टमीके शुभ दिन पहुँचा। वहाँ गीतावाटिकामें मेरा ऐसा स्वागत हुआ मानो कोई स्वजन परदेशसे लौटा

हो। वहाँ मेरी भेंट बाबा श्रीचक्रधरजी महाराजसे भी हुई। मैं श्रीपोद्दारजीके साथ पूजामें भी सम्मिलित हुआ। उस दिन भी मुझे ठहराया गया और दूसरे दिन पूरा दिन वहाँ बिताकर सांयकालकी ट्रेनसे मैं वहाँसे बिदा हुआ।

मुझे आज भी श्रीपोद्दारजी और उनके परिवारका स्मरण बार-बार होता है और मैं प्रायः उनकी तथा उनके सहकर्मियोंकी प्रशंसा करता रहता हूँ। इसीका परिणाम है तथा मेरी भावनाओंका यह प्रमाण भी है कि छब्बीस साल बाद १९८९ के फरवरी मासमें मैं पुनः स्विट्जरलैंडसे भारत आकर गोरखपुरकी गीतावाटिकामें आया परम पूज्य श्रीबाबाजीका दर्शन करनेके लिये तथा अन्य स्नेही जनोंसे मिलनेके लिये। ■

श्रीमाधवप्रसादजी मिश्र (मुख्य आरक्षण-पर्यवेक्षक, पूर्वोत्तर रेलवे, लखनऊ)

मंगलमय सूक्ष्म संनिधि

सन् १९७९ के मई मासमें मैं गम्भीर रूपसे बीमार पड़ गया। मैं कई डाक्टरों और वैद्योंके पास गया और जिसने जो चिकित्सा बतलायी, उसीका मैंने आश्रय लिया, पर कोई लाभ नहीं हुआ। चिकित्साकी जितनी प्रचलित प्रणालियाँ हैं, लगभग सभीके द्वारसे मैं निराश लौट आया। चिकित्सक लोग मेरे रोगके बारेमें एकमत थे ही नहीं। कोई कुछ बतलाता, कोई कुछ बतलाता और इस मत-मतान्तरसे मेरी निराशा और अधिक घनीभूत हो गयी। मैं प्रायः बिस्तरपर पड़ा रहता था और मेरा मन अशुभ विचारोंका आगार बना हुआ था। परिवारके लोग मेरी शारीरिक और मानसिक स्थितिसे बड़े चिन्तित थे।

स्वजनोंने परामर्श दिया स्थान एवं जलवायु परिवर्तनका। यह सुझाव मैंने स्वीकार कर लिया। लखनऊ रेलवे स्टेशनपर आरक्षण-कर्मचारी होनेके कारण मेरे सामने यात्रा सम्बन्धी कोई समस्या अथवा असुविधा नहीं थी, अतः मैं गर्मीके दिनोंमें लखनऊसे ऋषिकेश चला गया और ठहरा स्वर्गाश्रमके गीताभवनमें। गीताभवन वह स्थान है जहाँ पूज्य श्रीभाईजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) प्रायः ग्रीष्मऋतुमें आकर निवास किया करते थे और प्रवचनोंके रूपमें उनकी भागवती वाणीसे अनेक आर्तजनोंको जीवनका आश्वासन और आशीर्वाद मिला करता था। स्वर्गाश्रमके और उसमें भी मुख्यतः गीताभवनके आध्यात्मिक वातावरणका मेरे मनपर बड़ा अनुकूल प्रभाव पड़ा। मैं पूज्य श्रीभाईजीको जानता था और वहाँके शान्त वातावरणमें श्रीभाईजीके संत-व्यक्तित्वकी याद आने लगी। श्रीभाईजीके प्रवचनोंकी, भक्तिभावनाकी, भगवन्नाम-संकीर्तनकी, अतिथि-सत्कारकी, संतसेवाकी, परदुखनिवारणकी, इस भाँति तरह-तरहकी बातें याद आने लगीं। श्रीभाईजीने अबसे लगभग आठ वर्ष पहले अपनी इह-लीलाका संवरण कर लिया था, पर ऐसा लगता था मानो वे आज भी वहाँ विराज रहे हैं। गीताभवनके प्रभावी वातावरणमें ऐसा अनुभव होता था मानो सूक्ष्म रूपसे श्रीभाईजीका सांनिध्य प्राप्त हो रहा है। श्रीभाईजीका व्यक्तित्व था ही ऐसा। उनके लोकोत्तर व्यक्तित्वमें विद्वानोंको मूर्तिमान विद्वत्ता, भक्तोंको मूर्तिमान भक्ति, संतोंको मूर्तिमान आनन्द, साधकोंको मूर्तिमान साधना, गृहस्थोंको मूर्तिमान सज्जनता, साधारणको मूर्तिमान सरलता, दुखियोंको

मूर्तिमान दयालुताकी प्रतीति हुआ करती थी। गीताभवनमें जितने दिन रहनेका मुझे अवसर मिला, उस अवधिमें श्रीभाईजीकी सूक्ष्म उपस्थितिकी जो अनुभूति हुई और उससे जो सूक्ष्म संनिधि मिली, उससे मेरी भावनाओंको बड़ा संरक्षण एवं संपोषण मिला। इस यात्रामें मेरी अन्तरात्माको विशिष्ट प्रकारकी सुखानुभूति हुई।

स्वर्गाश्रमसे वापस लखनऊ लौट आनेपर एक ममतामयी विदुषी माताजीका बड़ा वात्सल्य मिला। वे माताजी 'कल्याण' पत्रिकाकी पुरानी एवं नियमित पाठिका थीं। उनके साधनामय जीवनके निर्माणमें पूज्य श्रीभाईजीकी वाणीका महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। उन वत्सला माताजीकी ममता मुझ रुग्णपर बह पड़ी। उन्होंने मुझसे कहा— आपका यह रोग कुछ भी नहीं है। ऐसा लगता है कि आप भव-पाशसे भयभीत हैं। यह लो 'पावन स्मरण' ग्रन्थ। इसे आदिसे अन्ततक पढ़ डालो। मेरा विश्वास है कि भगवत्कृपासे आपका कल्याण अवश्य-अवश्य होगा।

मैंने उनसे वह विशाल ग्रन्थ 'पावन स्मरण' ले लिया। पौने सात सौ पृष्ठों वाला यह वृहदाकार ग्रन्थ गोरखपुरके श्रद्धालु बन्धुओंने सन् १९७२ में प्रकाशित किया था, जिससे संत श्रीभाईजीके महान व्यक्तित्वकी एक झलक समाजको मिल सके। ममतामयी माताजीके निर्देशानुसार मैंने 'पावन स्मरण' ग्रन्थ पढ़ना आरम्भ कर दिया। इस ग्रन्थके पढ़नेमें मन इतना अधिक रम गया कि खान-पानकी भी सुधि नहीं रहती थी। ग्रन्थमें पूज्य श्रीभाईजीकी साधुता-सज्जनता-मानवीयता-दयालुता-परदुखकातरता भक्तिमयता-कार्यक्षमता-दिव्यता आदिसे सम्बन्धित विविध तथ्योंको पढ़ता जाता था और नेत्रोंसे अनवरत अश्रु-प्रवाह होता रहता था। सच बात तो यह है कि उस अश्रु-प्रवाहके माध्यमसे अन्तरका सारा कालुष्य बह गया। ग्रन्थके पूर्ण होते-होते हृदय एक विचित्र उल्लाससे भर गया। जीवनमें उत्साह एवं शक्तिकी नवीन किरणें फूट पड़ीं। भव-पाशका भय तिरोहित हो गया। 'अभयं', 'अभयं' की वरद ध्वनिसे अन्तःकरण गूँज उठा। बीमारीके कारण मैंने लम्बा अवकाश ले रखा था, पर मैं दूसरे दिनसे ही अपने कामपर रेलवे स्टेशनके आरक्षण-कार्यालयमें जाने लगा। पहले गीताभवनके दिव्यतापूर्ण वातावरणमें और फिर 'पावन स्मरण' ग्रन्थके प्रेरणापूर्ण वाचनमें पूज्य श्रीभाईजी जैसे महान संतकी सूक्ष्म संनिधिका जो लाभ मिला, इस अनुपमेय लाभने मेरे जीवनमें एक आश्चर्य उपस्थित कर दिया। ■

आ. श्रीअचलनन्दिनी श्रीवास्तव

[१] उनका शील उनका स्नेह

मेरे पूज्य पिता श्रीमाधवशरणजी सम्पादकीय परिवारके एक सम्माननीय सदस्य थे। उनपर श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका पुत्रवत् प्यार था, अतः हम सभी भाई-बहिन उन परम श्रद्धेयको बाबाजी कहा करते थे। वे भी हम लोगोंपर पौत्र-पौत्रीकी ही भाँति स्नेह रखते थे। बाबाजीको गीताप्रेसकी ओरसे एक मोटर कार मिली हुई थी। गीतावाटिकासे गीताप्रेस या गोरखनाथ मन्दिर या स्टेशनपर या अन्यत्र कहीं भी आने-जानेके लिये जब आवश्यकता पड़ती थी तो बाबाजी अपनी मोटर हमलोगोंको दे देते थे। कभी-कभी मोटरकारके ड्राइवरके घर चले

जानेके बाद यदि बाबाजीको कहीं जाना होता तो मेरे पिताजी उनकी मोटर चलाकर ले जाते तथा उसमें वे अत्यन्त सुखका अनुभव करते। जब भी ऐसा अवसर आता, बाबाजी मेरे पिताजीसे कहते– भैया माधव! तुम खाली तो हो? मुझे अमुक जगह जाना है। मेरे साथ चलनेमें कोई दिक्कत तो नहीं होगी?

उनके स्वभावका शील और उनकी वाणीका दैन्य देखकर पिताजीका हृदय अत्यन्त विगलित हो जाता था। पिताजी तो हर समय प्रस्तुत ही रहते, बल्कि प्रतीक्षा करते रहते थे कि उनके साथ कहीं जानेका अवसर मिले और इस बहाने थोड़ी देर उनके सान्निध्यका लाभ मिले।

[२] दानके लिये वस्त्र

सन् १९६२ में पूज्य बाबाजी श्रीजगन्नाथपुरी गये थे उनके साथ भगवान श्रीजगदीशजीका दर्शन करनेके लिये मैं, मेरी छोटी बहनें तथा मेरी माँ भी श्रीजगन्नाथपुरी गयी थी। बहुतसे लोग साथ गये थे। बाबाजी किसी तीर्थ-स्थानपर जायें और दो-तीन सौ लोग साथ न हो जायें, यह हो ही नहीं सकता था। पुरीमें हम सभी लोग एक धर्मशालामें ठहरे थे। भगवानका दर्शन करके मन्दिरसे लौटनेके बाद हम लोगोंने देखा कि साथकी अनेक महिलाएँ साड़ी-धोती आदि दान कर रही हैं। ये वस्त्र वे लोग अपने घरसे ही साथ लेकर गयी थीं। हम लोगोंके पास नवीन वस्त्र नहीं थे, जिन्हें दान करते। मेरी माँकी भी इच्छा हुई कि तीर्थमें कुछ दान करना चाहिये।

दोपहरमें जब भोजन करके सभी लोग अपने-अपने कमरेमें विश्राम करने लगे तो मेरी माँ कुछ रुपये और मुझे साथ लेकर कमरेसे धर्मशालाके द्वारकी ओर बढ़ी। मन्दिरसे लौटते समय हम लोगोंने देख लिया था कि धर्मशालाके सामने ही वस्त्रोंकी कुछ दुकानें थीं। हमलोग वहीं जाना चाहते थे, पर हुआ क्या? बाहरी कमरेके पास पहुँचे ही थे कि स्नेह-सना गम्भीर स्वर सुनायी पड़ा– कौन है?

जब सब लोग विश्राम कर रहे थे तो बाबाजी बैठकर सम्पादन-कार्य कर रहे थे। हमलोग उनके कमरेमें चले गये। उन्होंने कहा– अच्छा तो तुम लोग हो? इस समय कहाँ जा रही हो धूपमें?

हम लोगोंने अपनी बात बता दी। हमारी बात सुनकर उन्होंने अपने पीछे रखे हुए साड़ियों-धोतियोंके गट्ठरकी ओर संकेत किया और कहा– खरीदने जानेकी क्या जरूरत है? बहुतसे कपड़े साथमें आये हैं। इन्हींमेंसे ले लो।

मेरी माँने धीरेसे कहा– पर बाबूजी! दान तो अपने पैसोंसे करना चाहिये न?

वे तुरन्त बोले– हाँ, हाँ। ये सब कपड़े अपने निजी पैसोंसे ही खरीदे गये हैं। इसीमेंसे ले लो। धूपमें बाहर मत जावो।

हम लोग आगे कुछ न कह सके। कहते भी भला क्या? चुपचाप एक साड़ी उठायी और अपने कमरेमें वापस आ गये। ऐसा था उनका अपनापन!

[३] झाड़ूसे सफाई

मुझे अपने विवाहके समयकी बात याद आ रही है। बाबाजी प्रतिदिन सुबह ही हमारे यहाँ आ जाते थे। सारा प्रबन्ध देखते थे। हर बात बताते थे। बारातका स्वागत कैसे होगा, जनवासा

कहाँ रहेगा, भोजनमें क्या बनेगा, गाड़ियोंका प्रबन्ध कैसे होगा, साज-सजावटका क्या होगा, हर छोटी-बड़ी तैयारी वे स्वयं देखते थे। छड़ी लिये-लिये सारे घरमें घूमते, कभी रसोईके द्वारपर, कभी भण्डारमें, कभी मण्डपकी ओर। मेरे पिताजी निर्द्वन्द्व बैठे रहते। बाबाजी जो काम बता देते, वही वे करते, स्वयं कुछ भी न सोचते और न करते। कोई उनसे कहता-अरे! आपकी बेटीका विवाह है, आप निश्चिन्त कैसे बैठे हैं?

वे उत्तर देते– चिन्ता करने वाले कर ही रहे हैं। मैं तो उन्हींको सौंपकर निश्चिन्त हूँ।

बाबाजी भी कभी-कभी पिताजीके कंधेपर हाथ रखकर प्यारसे कहा करते थे– माधव तो सरल है, भोला है। उसे क्या मालूम कि बेटीका ब्याह कैसे किया जाता है। यह सब मुझे ही करना है।

द्वारचारका समय आया। हमारे सारे कुटुम्बीजन, गीतावाटिकाके स्नेहीजन, गीताप्रेसके आत्मीयजन, नगरके अन्य स्वजन तथा सबके आगे बाबाजी बारातकी अगवानीके लिये द्वारपर खड़े थे। एकाएक बाबाजीकी सूक्ष्म दृष्टिको कुछ दिखलायी दे गया। जहाँ चौक पूर करके मंगल कलश रखा गया था, वहाँ किसी कोनेमें कुछ कूड़ा उन्हें दिखायी दे गया। तमाम सावधानीके बावजूद वह कूड़ा वहाँ न जाने कैसे रह गया? सम्भवतः किसीने पैरसे मारकर उस कूड़ेको कोनेमें सरका दिया था। बस, बिना किसीसे कुछ कहे वे एक दम मुड़े और तेजीसे घरके अन्दर आ गये। उनकी त्वराको देखकर लोग अनुमान नहीं लगा पाये कि अचानक क्या हो गया। उपस्थित लोग उनकी तत्परताका कुछ अर्थ लगा पायें, इसके पहले ही वे अन्दरसे एक झाड़ू लेकर जल्दी-जल्दी आये और वहाँ बुहारी देने लगे। उनको झाड़ू देते हुए देखकर लोग दौड़ पड़े, पर बाबाजीने बायें हाथसे सबको रोका और दाहिने हाथसे झाड़ू लगाते-लगाते वे बोले– बारात आ रही है न! यह कोना गन्दा रह गया था। इसे साफ कर रहा हूँ।

सारे व्यक्ति स्तब्ध रह गये। मेरे पिताजीके नेत्रोंसे अश्रु बह चले। पिताजी बादमें भी उस घटनाको याद करके अनेकों बार रोने लगते थे।

[४] विवाहमें बिदाई

विवाह कार्य सम्पन्न हुआ। अगले दिन विदाईकी रस्में पूरीकी जाने लगीं। मेरी माँने मेरे आँचलमें सूपसे चावल भरे। अब उन चावलोंको एक पोटलीमें बाँधकर मेरे साथ भेजना था। अब घरमें वह वस्त्र ढूँढा जाने लगा, पर जल्दीमें सही ढंगका वस्त्र मिल नहीं रहा था। उसी समय बाबाजी जल्दी-जल्दी अन्दर आये और बोले– शीघ्रता करो। ट्रेन छूट जायेगी।

किसीने उनको वस्त्र वाली समस्या बता दी। वे अपने कन्धेपर एक अंग-वस्त्र तह करके रखे हुए थे। तुरन्त उन्होंने उसे उतारा और कहा– लो, चावल इसमें बाँध दो।

इतना कहकर फिर किसीकी प्रतीक्षा किये बिना ही चावल उसमें डालकर अच्छी-सी गाँठ लगायी और उन्होंने वह पोटली मुझे पकड़ा दी। मैं उन्हें पकड़कर रो पड़ी तो उनकी भी आँखमें आँसू आ गये।

जब हमलोग स्टेशन पहुँचे तो पता चला कि वरपक्षके कुछ व्यक्तियोंकी 'विदाई-प्रणामी' वाली रस्म पूरी होनेसे रह गयी है। मेरे पिताजी मेरे लिये इतने विह्वल थे कि उन्हें यह रस्म याद

ही नहीं आयी थी। स्टेशन भी वे रुपये लेकर नहीं गये थे, जिससे यह रस्म पूरी की जा सके। वे तो सब कुछ बाबाजीके ऊपर सौंपकर निश्चिन्त थे। ट्रेन छूटनेमें अधिक विलम्ब नहीं था। तीन हजार रुपयोंकी आवश्यकता थी विदाईकी रस्म पूरी करनेके लिये। बाबाजी उसी समय स्टेशन मास्टरके पास गये। बाबाजीके स्टेशनपर आनेकी सूचना पाकर वे स्वयं बाहर आ गये। बाबाजीने उनसे कहा— क्या आप मुझे अभी तीन हजार रुपये दे सकते हैं? मैं गीतावाटिका पहुँचते ही रुपये आपको वापस भिजवा दूँगा।

स्टेशन मास्टरने हाथ जोड़कर कहा— भाईजी! आप जितना चाहें, मेरे पाससे ले लीजिये।

बाबाजीने कहा— नहीं, नहीं। आप यह भी तो सोचिये कि यदि अभी ही एकाउंटकी चेकिंग हो जाय तो क्या होगा? मैं आपको संकटमें नहीं डालना चाहता।

स्टेशन मास्टरने कहा— भाईजी! आप कैसी बातें कर रहे हैं? आपकी कोई सेवा करके मैं अपना अहोभाग्य मानूँगा।

उन्होंने तत्काल तीन हजार रुपये अपनी नौकरीका खतरा मोल लेकर बाबाजीको दे दिया। वे रुपये फिर बादमें उनके पास भिजवाये गये।

जब ट्रेन चलनेको हुई तो मेरी ससुरालके लोगोंके सामने बाबाजी हाथ जोड़कर खड़े हो गये और बोले— माधवकी पहली बेटीका ब्याह था। वह तो भोला है, सरल है। यदि खातिरदारीमें कोई कमी रह गयी हो या कोई भूल हो गयी हो तो उसे आप मेरी भूल मानकर मुझे क्षमा कर दीजियेगा। माधवको या उसकी बेटीको कुछ न कहियेगा। सारी त्रुटि मेरी ही मानियेगा।

मेरे जेठजी, जो कल्याणके अनुरागी पाठक थे, रो पड़े। हाथ जोड़कर बोले— भाईजी! आप संत शिरोमणि हैं। यह तो हम लोगोंका सौभाग्य है कि हम भी आपके परिवारके सदस्य बने।

इसी तरहकी न जाने कितनी बाते हैं, न जाने कितनी घटनाएँ हैं, न जाने कितनी स्मृतियाँ हैं? जीवन उनकी गोदमें बीता है। क्या क्या लिखूँ? ■

आ. श्रीगायत्रीबाई बाजोरिया

स्वागताभिवन्दन

वाराणसीमें हमलोगोंका एक संस्कृत विद्यालय है। उसका नाम है श्रीनन्दलाल बाजोरिया संस्कृत विद्यालय। पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) की मान्यता रही है कि अपने देश भारतमें जितनी भी समस्याएँ हैं, उसका मूल कारण है सब ओर फैली हुई अभारतीयता और भारतीयताका मूल स्रोत संस्कृत साहित्यमें है, एतदर्थ संस्कृत साहित्यके पठन-पाठनके कार्यको बढ़ावा देना चाहिये। अपनी इसी मान्यताके फलस्वरूप पूज्य बाबूजीने सर्वमान्य राष्ट्रपति श्रीराधाकृष्णनूको एकबार लिखे गये पत्रमें लिखा था— *संस्कृत संसार भरकी भाषाओंमें प्राचीनतम और समृद्धतम है। संस्कृत हमारे राष्ट्रीय गौरवका प्रतीक है। साथ ही भारतकी विभिन्न भाषाओंमें भावनात्मक एकताका एक समर्थ माध्यम है।*

संस्कृत भाषा और साहित्यके प्रति जिन बाबूजीकी ऐसी श्लाघनीय मान्यता थी, उनको

अपने विद्यालयमें बुलानेके लिये हमलोगोंकी बड़ी इच्छा थी। २२ जनवरी १९६७ को हमारे विद्यालयका वार्षिकोत्सव होनेवाला था। इसी वार्षिकोत्सवमें मेरे आग्रह भरे अनुरोधको स्वीकार करके बाबूजीने अध्यक्ष बननेकी अनुमति प्रदान कर दी, इससे सभीमें प्रसन्नता छा गयी। उत्सवमें पूज्य बाबूजी पधारे और इस अवसरपर भूतपूर्व राज्यपाल श्रीश्रीप्रकाशजी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके कुलपति डा. त्रिगुणसेन एवं काशीके कई संस्कृत विद्वान उपस्थित थे।

मुझे ज्ञात था कि बाबूजीको सार्वजनिक अभिनन्दन सर्वथा अप्रिय है, अतः यह हमलोगोंके द्वारा होता ही कैसे, किन्तु मनकी श्रद्धाभावना कुछ करनेके लिये उत्सुक भी हो रही थी। उनका अभिनन्दन न सही, पर अभिवन्दन तो हमलोग कर ही सकते थे और वार्षिकोत्सवके सभा-मंचपर विद्यालयके अधिकारी, अध्यापक एवं अध्ययनार्थीगणकी ओरसे उनके व्यक्तित्वका अभिवन्दन किया गया। स्वागताभिवन्दनमें उनके प्रति सहज स्फूर्त आठ श्रद्धोद्‌गार निवेदित किये गये। प्रत्येक श्रद्धोद्‌गार एक सुमन है और प्रत्येक सुमन बाबूजीके व्यक्तित्वके किसी-न-किसी पक्षका यत्किंचित् सौरभ विखेर रहा है। बाबूजीका व्यक्तित्व तो एक विशाल उपवन है, जिसमें अमित सौरभ एवं अचिन्त्य शोभावाले भाँति-भाँतिके असंख्य पुष्प हैं। ऐसे दिव्य उपवनकी सम्पूर्ण सुषमा और सौरभको प्रस्तुत कर सकना कभी सम्भव ही नहीं है। आत्मतोषके लिये केवल आठ सुमन स्वागताभिवन्दनमें समर्पित हुए, वे इस प्रकार हैं—

[१]

अपने सलिलका अनवरत वितरण करनेके बाद भी सुरसरिताका जलकोष असीम है, इसीलिये कि उसका अक्षय स्रोतसे अविरल सम्बन्ध है। इसी तरह आपके आध्यात्मिक प्रकाशकी रश्मियोंके निरन्तर विकीर्ण होते रहनेके उपरान्त भी आपके प्रकाशका पुञ्ज नित्य पूर्ण है, इसीलिये कि प्रकाशके आधार 'अक्षय-प्रकाशक'से आपका नित्य एवं पूर्ण संग है। आपके प्रकाशने साधारण मानवको समुन्नत होनेकी प्रेरणा दी है। विविध भावोंके अनेक भक्त-साधक अपने साधन-पथपर आपके प्रकाशके सहारे सरलतासे बढ़ते गये हैं। ज्ञान-मार्गी अथवा इससे इतर साधक भी आपके प्रकाशसे लाभान्वित होते रहते हैं। 'अक्षय' की साधना करनेवाले सभी साधकोंके, भले ही वे किसी पथके हों, पथको प्रकाशित करनेकी क्षमता, साधनाक्षेत्रके आपके विविध अनुभव-पुञ्जका प्रमाण है। अक्षय भगवानकी नित्य सन्निधिमें रहनेवाले सिद्धोंसे सम्मिलन होनेपर आपके अद्वितीय प्रकाशकी अमाप्य उज्जवलता एवं अकथ्य सरसता अलक्षित रूपसे बिखर उठती है। दूरस्थ अथवा समीपस्थ साधारण या साधक या सिद्धको जाने-अनजाने प्रेरणा देनेवाली आपकी आध्यात्मिकताका प्रकाश चिन्मय है।

हे प्रकाशपुञ्ज! हमारा प्रणाम स्वीकार करें।

[२]

मानव तो वही है, जिसके व्यवहारमें *'आत्मवत् सर्वभूतेषु'*का सिद्धान्त अवतरित हो, किन्तु महामानव वह है, जो पर-हितके लिये निज-हितका परित्याग कर दे। आपके सर्वथा निर्दोष होते हुए भी आपका प्राणान्त करनेके प्रयासमें अथवा आपको फाँसी दिलवानेके प्रयत्नमें संलग्न व्यक्तियोंको भी आपने पोषण एवं प्यार दिया है। आपके निजी परिवारके सदस्योंको चोट पहुँचानेवाले लोगोंका आपने अधिकाधिक मंगल किया है और उनको सम्मान दिया है।

असत्यवादीके असत्य-जन्य अपमानको ढकनेके लिये आपका अन्तर सदैव तत्पर रहता है। स्वजनों और साथियोंकी अनेक अवांछनीय विपरीतताओंको आपका शील-स्वभाव ही सहन कर सकता है। परतन्त्र भारतमें अँग्रेजी शासकोंद्वारा प्रस्तावित श्रेष्ठ उपाधि 'नाइटहुड' को, स्वतंत्र भारतमें केन्द्रीय सरकारद्वारा प्रस्तावित सर्वोच्च उपाधि 'भारत रत्न' को एवं इसी प्रकारके प्रस्तावित अन्य अनेक सम्मानसूचक आग्रहोंको अस्वीकार कर आपने अपने अमानीपनका दुर्लभ उदाहरण प्रस्तुत किया है। आपकी मान-शून्यता, क्षमा, पर-हित-परायणता, सहनशीलता आदि दिव्य सद्गुणावली आदर्श है।

हे महामानव ! हमारा प्रणाम स्वीकार करें।

[३]

गीता, गंगा और गायत्रीके समान गाय भी हिन्दू-धर्म और संस्कृतिका अभिन्न अंग है; उसी गायके आप हृदयसे पुजारी हैं। आपकी अपनी निजी गोशाला है तथा अनेक सार्वजनिक गोशालाओंके आप संचालक एवं पथ-प्रदर्शक हैं। गायकी महिमाके उद्घाटनके लिये, गो-सम्बन्धी तथ्योंके प्रकाशनके लिये, गायके प्रति श्रद्धाके विवर्द्धनके लिये, गो-वंशकी हत्याके निरोधके लिये और गोरक्षाके प्रयासोंके प्रोत्साहनके लिये आपकी लेखनी, वाणी और सम्पादन-कला सदैव प्रयत्नशील रही है। 'कल्याण'का गो-अंक इसका स्पष्ट प्रमाण है। आपने घोषणा की— 'गोरक्षा विश्व-रक्षा है।' सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समितिद्वारा संचालित गोरक्षा-आन्दोलनको 'सर्वदलीय' स्वरूप देनेका श्रेय आपको है तथा उसके सर्वोच्च सूत्रधारोंमें आप भी एक हैं। गोकी रक्षाके लिये देश-विदेशमें होनेवाले भगवदाराधन, देवानुष्ठान तथा आत्म-बलिदानकी प्रेरणा 'कल्याण' ने दी। आन्दोलनकी सफलताके लिये जन-जागरण, द्रव्य-संग्रह एवं गतिरोध-निवारण परमावश्यक है, एतदर्थ आपके द्वारा कृत प्रयास चिर-स्मरणीय है। आपकी गो-भक्ति सर्वथा अनुकरणीय है।

हे गोभक्त ! हमारा प्रणाम स्वीकार करें।

[४]

राष्ट्रके उज्ज्वल भविष्यकी प्रबल कामनाने तथा राष्ट्रके साथ एकात्मताकी प्रबल भावनाने आपके जीवनको एक विशिष्टता प्रदान की है। बीसवीं सदीके आरम्भमें अँग्रेजी शासनके उन्मूलनके स्वप्नोंमें डूबी हुई आपकी क्रान्तिकारी हथेलियोंको बन्दूक और कारतूसोंकी उष्णताकी अनुभूति है। अपनी देशभक्तिके कारण लगभग इक्कीस मासतक आपको नजरबन्दीकी कठिन सजा भोगनी पड़ी है। जीवनकी धारा आध्यात्मिकताकी ओर प्रवाहित होनेके बाद भी स्वतंत्रता-संग्रामकी घटनाओंने समय-समयपर आपके तन-मनको आलोड़ित किया है। स्वदेशी-आन्दोलनमें विदेशी वस्त्रोंका होलिकोत्सव भी आपने मनाया है और अद्यावधि आपके द्वारा खादी-व्रतका पालन हो रहा है। नोआखाली-काण्ड, चीनी-हमला और पाकिस्तानी आक्रमणके समय आपकी वाणीके शौर्यने तथा ओजस्वी आह्वानने भारतीय जन-मानसको आन्दोलित किया है। देशके लिये बलिदान होनेवालोंकी सेवामें आपका धन सदा बहता रहा है। राष्ट्रकी वेदीपर आपके तन-मन-धनका सोत्साह निवेदन अतुल्य है।

हे राष्ट्रसेवक ! हमारा प्रणाम स्वीकार करें।

[५]

भगवान रामकी सुन्दरताने क्या स्वजन, क्या शत्रु, सभीको रिझा लिया था; इसी प्रकार आपके मनकी सरलताने क्या अपरिचित, क्या सुपरिचित, सभीको लुभा लिया है। परस्पर लड़ने वाले परिवारोंके दोनों पक्षोंके लिये आप सदा विश्वसनीय रहे हैं केवल अपनी निश्छल सहृदयताके कारण। गोरक्षा-महाभियानमें विरोधी व्यक्ति या तत्त्व इसीलिये संगठित हो सके कि सभीको आपके व्यक्तित्वपर विश्वास है। श्रमिक-समस्याओंके जालमें यदा-कदा गीताप्रेस फँसता रहा है, परन्तु आप सदैव ही श्रमिकोंकी श्रद्धाके पात्र रहे। बालक आपकी सरलताको देखकर, आर्त्त आपकी सहृदयतामें नहाकर, संस्थाएँ आपसे परामर्श लेकर, समाज आपकी सत्यताको परखकर, विद्वान् आपकी गहराईमें उतरकर, भावुक आपकी भक्तिमें डूबकर, साधक आपके अनुभवोंको पाकर और संत आपकी सेवासे मुग्ध होकर आपको अपना मानते हैं। क्षुद्र एवं संकीर्ण परिधियोंमें आबद्ध न होनेके कारण प्रत्येक नेता, चाहे वे किसी दलके हों और प्रत्येक धर्माचार्य चाहे वे किसी सम्प्रदायके हों, आपको सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं। आपकी दृष्टिकी विशालता, अन्तरकी कोमलता, आत्मीयताकी सहजता और 'स्व' की व्यापकताने आपको जन-जनका स्वजन बना दिया है।

हे सर्वप्रिय! हमारा प्रणाम स्वीकार करें।

[६]

नवनीतकी अपेक्षा संत-हृदयको इसीलिये श्रेष्ठ कहा गया है कि वह निज नहीं, पर-तापसे द्रवित होता है। आपको निज कष्टकी प्रतीति नहीं होती, पर दूसरोंके दुःख-दर्द-दाह आपके अपने हैं। आपके पास धन नहीं है, किन्तु निर्धन दुखियोंकी सेवाके लिये धनका अभाव भी नहीं है। अनेक विद्यार्थियोंके लिये विविध शुल्कोंकी व्यवस्था आप करते हैं। अकाल और बाढ़से पीड़ित क्षेत्रोंमें अन्न-वस्त्रके वितरणकी व्यवस्था एक बार नहीं, अनेक बार आपके द्वारा सम्पन्न हुई है। शीतमें ठिठुरते भिक्षुकों एवं ग्रामीणोंको प्रतिवर्ष आप ही कम्बल-वस्त्रादि देते-दिलवाते हैं। अभाव ग्रस्त परिवारोंकी सामाजिक प्रतिष्ठाकी रक्षा करते हुए आप ही उनके पास प्रतिमास अयाचित द्रव्यराशि भेजते हैं। कुष्ठियोंके लिये चिकित्सा तथा अन्धे-बहरे-गूँगोंकी शिक्षाकी व्यवस्थामें आपका सहयोग सराहनीय है। निर्धन परिवारोंकी कन्याओंके विवाहकी चिंता और अनाथ विधवा बहिनोंके जीवन-यापनकी समस्याके निदानके लिये आप सदा प्रयत्नशील रहे हैं। पर्यटकों तथा तीर्थ-अभिलाषियोंकी विभिन्न समस्याओंके हलका आपका प्रयास भी अनूठा है। पर-दुखसे द्रवित आपका हृदय अनुपमेय है।

हे पर-दुःख-कातर! हमारा प्रणाम स्वीकार करें।

[७]

श्रीमद्भागवत भगवान श्रीकृष्णकी वाङ्मयी मूर्ति है। 'कल्याण' भी उसी प्रकार आपका वाङ्मय स्वरूप है। 'कल्याण'के सम्पादन द्वारा आपने हिन्दी साहित्यके विशाल भण्डारको अपूर्व एवं प्रभूत रत्न प्रदान किये हैं। 'कल्याण'का प्रत्येक विशेषांक अपने विषयका एक विश्व-कोष है। आपकी अमूल्य कृति 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' सरल भाषामें सच्चे प्रेमकी एक स्पष्ट व्याख्या है, जिसने श्रीराधा-माधव-प्रेमसे सम्बन्धित सम्पूर्ण भारतीय साहित्यकी अनेक विकृत

एवं भ्रान्त धारणाओंका उन्मूलन किया है। आपके काव्य-गगनकी उज्ज्वल एवं पावन आकाशगंगा 'श्रीराधा-माधव-रस-सुधा'के षोडश पदोंमें परमोज्ज्वल प्रेमकी सरसतम एवं हृदयस्पर्शी पवित्र अभिव्यक्ति है। आपके लेख-संग्रह, सूक्ति-माला, सूत्र-टीका, पद-रचना, 'शिव'-वचन, भक्त-गाथा आदि प्रकाशन सुबोध भाषामें होनेके कारण मानव मात्रको ईश्वरानुरक्ति, जग-विरक्ति एवं दैवी-सम्पत्तिकी साधनामें संलग्न होनेकी सतत प्रेरणा प्रदान करते हैं। आपका साहित्य दैवी प्रकाश, सतत आह्लाद एवं देवोन्मुखी तन्मयताका अविरल स्रोत है।

हे साहित्यकार! हमारा प्रणाम स्वीकार करें।

[८]

आजके विद्यालयोंकी आधुनिक शिक्षासे दीक्षित न होनेपर भी अनेक भाषाओंपर आपका अधिकार, आपकी विलक्षण प्रतिभा, पहुँच और लगनका परिचायक है। 'कल्याण' पत्रकी प्राञ्जल एवं प्रौढ़ भाषा आपके अगाध पाण्डित्यका प्रमाण है। बंगालके वैष्णव-साहित्यका गहन अध्ययन एवं सहज स्वाभाविक बँगला बोलनेके कारण आप अखिल-भारतीय-बंगभाषा-सम्मेलनके स्वागताध्यक्षपदको सुशोभित कर चुके हैं। आपद्वारा गुजराती-मराठीके अनूदित अंश प्रायः 'कल्याण'में प्रकाशित होते रहते हैं। संस्कृत भाषाके मूलग्रन्थोंका आपने विशद स्वाध्याय किया है। वैसा ही स्वाध्याय अँग्रेजीके धार्मिक एवं नैतिक साहित्यका भी है। दक्षिण भारतकी भाषाओंको भी सीखनेकी आपको सदा ही अभिरुचि रही है। राजस्थानी होनेके नाते आपको राजस्थानी भाषाका सम्यक् ज्ञान तथा राजस्थानी साहित्यकी विस्तृत जानकारी है। आपका भाषाधिकार और भाषार्जन स्तुत्य है।

हे भाषाविद्! हमारा प्रणाम स्वीकार करें। ■

परिशिष्ट

संत का गृहस्थाश्रमी जीवन

– राधेश्याम बंका

आदर्श-दम्पति

॥ श्रीहरिः ॥

* आत्म-निवेदन *

हिन्दू-भूमि भारतमें गृहस्थ-संतोंकी भी एक अखण्ड परम्परा अनादि कालसे अबतक चली आ रही है। प्राचीन कालमें महर्षि वसिष्ठ, महर्षि अत्रि, महर्षि अगस्त्य, महर्षि याज्ञवल्क्य आदि अनेक उदाहरण हैं, जिनका जीवन गृहस्थाश्रमी रहा है। गुजरातके भक्त नरसी मेहता, महाराष्ट्रके संत तुकाराम, बंगालके श्रीरामकृष्ण परमहंस आदि उदाहरण हमारे युगके हैं। गृहस्थ संतोंके अनेक उदाहरण भारतके विभिन्न अञ्चलोंसे उद्धृत किये जा सकते हैं और उन्हीं गृहस्थ संतोंकी परम्परामें पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का नाम भी उल्लेखनीय है।

गृहस्थ-संतोंका गृहिणी-पक्ष संत-जीवनके सदा अनुकूल ही रहा हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। संत तुकारामको गृहस्थ-जीवनमें पदे-पदे प्रतिकूलताका सामना करना पड़ा तो परमहंस श्रीरामकृष्णको सदैव अनुकूलता ही मिली। ऐसी ही अनुकूलता मिली पूज्य बाबूजीको अपनी सह-धर्मिणीसे, जो हैं जगतके लिये सदैव वन्दनीया मातृ-शक्ति। पूज्या माँका व्यक्तित्व मूक सेवाका जीवन रहा है। हिन्दू नारीका आदर्श माँके जीवनमें निखरा है। न अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व है और न अपना कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व। बाबूजीके सपनोंको साकार होनेमें माँने अपनी सफलता मानी है। बाबूजीकी जीवन-सरितामें माँ मिश्रीकी डलीकी भाँति घुल-मिल गयी है। बाबूजीके आध्यात्मिक जीवनमें माँ एक मिठास है। इस भूतलपर बाबूजीका आगमन भगवानके एक 'विशेष कार्य' को सम्पन्न करनेके लिये हुआ था और उस 'विशेष कार्य' की सिद्धितक पहुँचने वाले पथको माँके सर्वभावेन-समर्पणने प्रशस्त किया है। इतना ही नहीं, माँके उदार हृदयके उन्मुक्त वात्सल्यने बाबूजीके आश्रित जनोंको पारिवारिक आत्मीयता प्रदान की है, समाजके दुखित जनोंको कष्ट-निवारण द्वारा अनुमानातीत शीतलता पहुँचायी है और तृषित जनोंको ममताकी निर्मल सुधा-धारासे संतृप्त किया है। ऐसा होकर भी माँ एक हिन्दू नारीकी भाँति भोली है, सरल

है, विनत है, अनुगता है।

पूज्य बाबूजीका जीवन-क्षेत्र बहुत व्यापक और बहुमुखी रहा है। उनका व्यक्तित्व ऐसा था, जो अनेक दृष्टियोंसे समृद्ध था। उनके व्यक्तित्वके विविध पक्ष समाजके लिये अनुकरणीय आदर्श है। अपने इष्ट भगवान श्रीकृष्णकी भाँति उनका जीवन भी आदर्श-पुञ्ज था। वे थे आदर्श पिता, आदर्श पति, आदर्श पुत्र, आदर्श मित्र, आदर्श बन्धु, आदर्श सेवक, आदर्श आत्मीय, आदर्श स्नेही, आदर्श सुहृद, आदर्श गुरु, आदर्श शिष्य, आदर्श साधक, आदर्श सिद्ध, आदर्श प्रेमी, आदर्श कर्मयोगी, आदर्श ज्ञानी, आदर्श लेखक, आदर्श गृहस्थ। इस प्रकार अनेक आदर्शोंका समन्वित रूप था उनका जीवन। आदर्शोंके आगार होकर भी उनके जीवनकी एक ऐसी भी परमादर्श-प्रस्तुतकारिणी स्थिति थी, जहाँ उनका दिव्य अहं इन सभी आदर्शोंको भूलकर और इन सभी आदर्शोंसे ऊपर उठकर श्रीराधामाधवके दिव्य लीला-सिन्धुमें डूब जाता था। तब क्या होता था, यह केवल अनुभव-राज्यकी वस्तु है। उस अलौकिक स्थितिकी अभिव्यक्ति लौकिक शब्दोंके माध्यमसे भला कैसे हो सकती है ? यह अक्षरशः सत्य है कि दिव्य लीलाके सरस सिन्धुमें निमग्न बाबूजीके सदैव वन्दनीय व्यक्तित्वका वर्णन मुझ तमसाच्छन्न व्यक्तिके द्वारा सम्भव ही नहीं है।

संतके गृहस्थाश्रमी जीवनके उल्लेखनीय एवं अनुकरणीय उदाहरण हैं माँ और बाबूजी। जगतमें ऐसी उज्जवल जीवन-शैलीका उदाहरण प्रस्तुत करने वाले 'कँह अस पुरुष कहाँ अस नारी'। गृहस्थाश्रमी संत-जीवन व्यतीत करने वाले माँ और बाबूजीके व्यक्तित्वके जिन कुछ आदर्शोंकी ओर संकेत करनेका साहस किया गया है, यह एक तुच्छ प्रयास मात्र है। उनके व्यक्तित्वके अनेक पक्ष हैं। कुछकी जानकारी ही नहीं है, कुछ शब्दकी सीमासे सचमुच परे है और कुछका इंगित मात्र किया गया है। जो कुछ लिखा गया है, उसके पीछे उद्देश्य रहा है माँ और बाबूजीके संत-जीवनके वर्णनसे लेखनीको और स्वयंको धन्य बनाया जा सके। 'निज गिरा पावनि करन कारन राम जसु तुलसी कह्यो'। इस पावनताको ही मैं अपनी निधि मानता हूँ। यह वर्णन अन्योंमें सद्भावका संचार करे, यही मेरी आन्तरिक सदभिलाषा है।

विनीत

राधेश्याम बंका

[१] नजरबन्दीमें सहयोग

स्वर्गाश्रमके गीताभवनमें सन् १९६६ की बात है। अपराह्णकालमें पूज्य बाबूजी प्रवचन देनेके लिये पधारे। लोग साधना सम्बन्धी अपने प्रश्न लिखकर बाबूजीको प्रवचनके पूर्व दे देते थे और बाबूजी अपने प्रवचनमें उन प्रश्नोंके उत्तर दिया करते थे। सभागारके मंचपर बैठे हुए बाबूजी पहले प्रश्न पढ़ा करते थे फिर यथोचित उत्तर दिया करते थे। सत्संगी लोग बाबूजीसे उनके जीवनसे सम्बन्धित प्रश्न भी पूछा करते थे जैसे नाम जपके अनुभव, भगवत्कृपाकी घटनाएँ, ध्यानमें प्रगति, प्रेतसे मिलन आदि-आदि, पर एक दिन तो एक भाईने बड़ा विचित्र प्रश्न पूछा। उस प्रश्नकर्ताने पूछा था– शिमलापालकी नजरबन्दीमें आपकी नवविवाहित धर्मपत्नी आपके साथ अन्तिम दिनोंमें रही थी और उन दिनों आपकी घोर साधना चल रही थी। आपकी धर्मपत्नीकी उपस्थितिने क्या कोई बाधा खड़ी नहीं की ?

उस प्रश्नकर्ताकी मतिकी बलिहारी है, जो उसने बड़ा अटपटा प्रश्न पूछा। बाबूजीका विवाह हुआ था मई १९१६ में और दो मास बाद जुलाई १९१६ में बाबूजी राजद्रोहके अपराधमें गिरफ्तार कर लिये गये थे और फिर शिमलापाल ग्राममें नजरबन्द कर दिये गये थे। गिरफ्तारीके पन्द्रह मास बाद सरकारने धर्मपत्नीको साथ रहनेकी आज्ञा प्रदान कर दी थी। एक ओर दाम्पत्य जीवन और दूसरी ओर साधना-परायण जीवन, इसीको लेकर प्रश्नकर्ताके मनमें कुछ उलझनपूर्ण हलके स्तरका चिन्तन चला होगा, जो प्रश्नके स्वरूपसे स्पष्ट है और जिसको उसने भरी सभामें पूछनेका साहस किया और बाबूजीके अति सरल स्वभावकी भी बलिहारी है, जो उन्होंने भरी सभामें खुला उत्तर दिया। उन्होंने कहा–

राजनैतिक गतिविधियोंके कारण बंगाल सरकारने सन् १९१६ ई. में मुझे बाँकुड़ा जिलाके शिमलापाल नामक गाँवमें नजरबन्द कर दिया। मैं रातको झोपड़ीसे और दिनको गाँवसे बाहर नहीं जा सकता था। नजरबन्दीसे मेरे जीवनमें एक आध्यात्मिक मोड़ आ गया। शिमलापालके एकान्त जीवनमें ध्यान, नामजप और स्वाध्याय करनेका अवसर मिला। मैं अपना सारा काम भोजन बनाना, कपड़े धोना, घर साफ करना, यह सब कार्य मैं स्वयं अपने ही हाथसे करता। पुलिस वालोंसे भी मेरा बड़ा आत्मीयतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गया था। उनके डाकके थैले मैं खोलता, उनके पत्रोंके उत्तर मैं देता और उनकी रिपोर्ट मैं लिखता। आरम्भके पन्द्रह मास मैं अकेले ही रहा। इन दिनों मेरी धर्मपत्नी अपने नैहरमें थी। बादमें जब पुलिसवालोंकी दृष्टिमें मैं 'अच्छा' गिना जाने लगा, तब मेरी धर्मपत्नी मेरे पास आ गयी और अन्तके छः मासतक मेरे साथ रही। उन दिनों मैं होमियोपैथिक दवा भी लोगोंको दिया करता था, इससे गाँववालोंको बड़ा

लाभ हुआ और मुझे सेवा करनेका अवसर मिल गया। मेरी धर्मपत्नी भी इस काममें हाथ बँटाने लगी। भोजन बनाना, बर्तन माँजना, कपड़े धोना, पौधोंको सींचना, सफाई करना, इन सब कामोंके अलावा शीशियाँ साफ करना, उनपर लेबिल लगाना, दवाकी पुड़िया बनानेके लिये कागज काटना, पुड़िया बाँधना आदि कार्य यह किया करती थी। शिमलापालकी नजरबन्दीमें मेरी पत्नीकी ओरसे किसी भी प्रकारकी कोई बाधा मेरी साधनामें नहीं खड़ी की गयी। कोई अड़चन, कोई विरोध, कुछ भी मेरे सामने उपस्थित नहीं हुआ, अपितु मेरी पत्नीने मुझे सदा सहयोग ही दिया। परस्पर स्पर्शकी कोई कल्पना ही नहीं थी। उसका सहयोग ही मेरी प्रगति थी। हाँ, दादीजी और माताजी कलकत्ते ही रहीं। वे शिमलापाल नहीं आ सकीं।

[२] वस्त्रोंकी होली

गाँधीजीके स्वदेशी आन्दोलनका फैलाव एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्त, एक नगरसे दूसरे नगर और एक गाँवसे दूसरे गाँव होता जा रहा था। इंगलैंडमें बनी चीजें भारतीय बाजारमें बिकें, भारतका धन विदेशोंमें जाय और इस तरह भारतीय जनताका शोषण हो, यह गाँधीजीको स्वीकार नहीं था। भारतीय जनता भारतमें बनी स्वदेशी वस्तुओंका व्यवहार करे तथा हर विदेशी वस्तुका परित्याग करे, यही गाँधीजीके स्वदेशी आन्दोलनका मुख्य स्वरूप था। विदेशी वस्तुओंके बहिष्कारका आन्दोलन चल पड़ा। विदेशी शिक्षाका, विदेशी साहित्यका, विदेशी नौकरीका, विदेशी वस्तुओंका विरोध सर्वत्र होने लगा तथा यह विरोध क्रमशः जोर पकड़ने लगा। विदेशी वस्तुओंकी, मुख्यतः विदेशी वस्त्रोंकी होली देशके कोने-कोनेमें जलायी जाने लगी। लाखोंका माल चन्द मिनटोंमें स्वाहा कर दिया जाता। नगर-नगरमें यही हाल था। जिस तरह भारतीय सतीत्वकी परीक्षा एक बार चित्तौड़ दुर्गमें चिताकी लपटोंपर हुई थी, उसी तरह भारतीय सत्त्वकी परीक्षा पुनः भारतके नगर-नगरमें अग्निकी लपटोंपर होने लगी।

बाबूजी बम्बईमें थे। सम्भवतः सन् १९२१ ई. की बात है। गाँधीजी बाबूजीके घरपर दादी रामकौरसे विदेशी कपड़े माँगने आये। गाँधीजीके स्वदेशी आन्दोलनके पक्षमें बाबूजी थे ही। विदेशी वस्तुओंका बहिष्कार होना ही चाहिये। घरमें विदेशी वस्त्र रहे ही क्यों? विदेशी वस्त्रोंका घरमें होना एक कलंक है, किन्तु विदेशी वस्त्रोंको जलानेके पहले माँकी अनुमति प्राप्त कर लेना आवश्यक था। बाबूजीने माँसे कहा– यदि तुम्हारी अनुमति हो तो सारे विदेशी कपड़े जला दिये जायँ?

माँने जिज्ञासा प्रकट की– विदेशी कपड़ोंके जलानेकी बात मनमें कैसे आयी?

बाबूजीने माँको समझाना चाहा कि किस प्रकार महात्मा गाँधीका स्वदेशी आन्दोलन चल रहा है और किस प्रकारसे ये अँगरेज लोग भारतमें विदेशी मालको बेचकर भारतीय जनताका शोषण कर रहे हैं। अँगरेजोंकी इस वृत्तिका विरोध करनेके लिये विदेशी मालका बहिष्कार और एतदर्थ विदेशी वस्त्रोंको जलाना आवश्यक है। राजनीतिसे अनभिज्ञ तथा सरलताकी मूर्ति माँको ये सब बातें समझमें नहीं आयी, परंतु इसके साथ ही बाबूजीके विचारोंका विरोध भी नहीं किया। विरोधके स्थानपर एक सुझाव दिया और कहा– यदि विदेशी वस्त्र घरमें नहीं रखना है तो जलानेके बजाय गरीबोंमें बाँट देना चाहिये। ये वस्त्र उन गरीबोंके काम आ जायेंगे।

बाबूजीने कहा– गरीबोंको देनेका मतलब यह हुआ कि हम प्रयोग न करके हमारे भाई उस

विदेशी मालका प्रयोग करें। यह तो उचित नहीं। उचित तो यह है कि कोई भी भारतवासी भारतके बाहरसे आयी हुई चीजको काममें ले ही नहीं, अतः जितने विदेशी वस्त्र हैं, उनको जला देना ही ठीक है।

भारतके बाहरसे क्या आता है और क्या नहीं आता है, भारतके भूगोलसे अपरिचिता माँको, ऐसी नितान्त सरला माँको कुछ समझमें नहीं आया। बाबूजी कुछ कह रहे हैं, वे जो कह रहे हैं, ठीक कहते हैं और जो कहते हैं, वही मुझे करना है, बस, यही माँके मनकी सरल-सी विचार धारा थी। माँने प्रसन्न मनसे सहमति दे दी। बाबूजीसे माँने कहा– आप ऐसा ठीक समझते हैं, तो अवश्य कीजिये। वस्तुओंका, वस्त्रोंका क्या मोह? भगवान और भी देगा।

फिर माँने मन-ही-मन कहा– इसके अतिरिक्त जब आप हैं, फिर मुझे क्या चिन्ता?

वस्त्रोंकी पेटी खोली गयी। विदेशी कपड़े बाहर निकलने लगे। साड़ी या अन्य वस्त्र चाहे कितने कीमती हों, सारे विदेशी वस्त्र एक-एक करके जलानेके लिये इकट्ठे होने लगे। वस्त्रोंका ढेर लग गया।

बाबूजीने पूछा– और तो कोई विदेशी कपड़ा घरमें बचा नहीं है न?

माँने कहा– नही।

बाबूजीने फिर सावधान किया– फिर देख लो। शायद कहीं बचा-खुचा पड़ा हो।

माँने उत्तर दिया– सब देख लिया। कहीं कुछ नहीं है।

बाबूजीने अपने शब्दोंको फिर दुहराया– एक बार और देख लेना चाहिये।

माँने भी अपना उत्तर दोहरा दिया– अब कुछ बचा नहीं है।

बाबूजीको एक कपड़ा दिखलायी दे रहा था, इसीलिये वे बार-बार सावधान करते हुए कह रहे थे– एक बार और देख लेना चाहिये। मुझे लगता है कि एक कपड़ा और है।

इतना कहकर बाबूजीने आँख झुकाकर माँकी साड़ीकी ओर देखा। बाबूजीकी दृष्टिसे दृष्टि मिलाये रखनेवाली माँकी दृष्टि अपने शरीरपर पहनी हुई साड़ीपर गयी। सचमुच यह विदेशी साड़ी थी। बाबूजीके द्वारा बार-बार आग्रह होनेका अर्थ माँके समझमें अब आया। 'अभी आती हूँ', ऐसा कहकर माँ कमरेमें गयी, उन्होंने अपनी साड़ी बदली और वह अन्तिम अवशेष साड़ी भी जलानेके लिये एकत्रित विदेशी वस्त्रोंके ढेरपर डाल दी गयी।

[३] पुत्रकी मृत्युपर

बाबूजी व्यापार करनेके लिये सन् १९१८ में रतनगढ़से बम्बई गये और बम्बईमें सन् १९२२ में माँने एक पुत्र रत्नको जन्म दिया। यह पुत्र शायद सोलह-सत्तरह मास बाद चल बसा। माँ और बाबूजीकी गोदमें वह शिशु केवल कुछ मास ही खेलनेके लिये आया था। प्रथम पुत्रकी मृत्युपर मातृ-हृदय शोकाकुल हुआ ही, परंतु बाबूजीने तो भक्त नरसी मेहताकी एक पंक्ति ही गुनगुनायी–

भली थयूं भागी जंजाल। सुखे भजस्यूं श्रीगोपाल।

यह गीत भक्त नरसी मेहताने अपने पुत्रकी मृत्युपर गाया था कि भला हुआ जंजाल भाग गया। अब सुखसे भगवानका भजन करूँगा।

[४] खद्दरकी साड़ियाँ

बाबूजीका भेजा हुआ एक बार एक बड़ा-सा पारसल गौहाटी आया। यह प्रसंग बंगालसे निष्कासित होनेके बादका है। पारसलको लेकर श्रीसीतारामजी (बाबूजीके श्वसुरजी) घरके अन्दर आकर कहते हैं– ए रामदेईकी माँ! कँवरजीने एक पारसल भेजा है। बड़ा भारी पारसल है।

नानीजी (बाबूजीकी सासूजी) रसोईघरमें थी। वे रसोईघरमेंसे ही बोली– खोलिये। देखें, कँवरजीने क्या भेजा है?

नानाजी (श्रीसीतारामजी) ने पारसल खोला। उसमेंसे निकली दो साड़ियाँ। साड़ियाँ थी खद्दरकी। बहुत ही मोटा खद्दर, जिससे शरीर भी छिल जाय। भेजी गयी थी माँ (बाई रामदेई) के लिये। खद्दरकी साड़ियोंको देखते ही नानाजीकी आँखें भर आयीं। नानाजीने आवाज लगायी– ए रामदेईकी माँ! यहाँ तो आ। देख तो सही, कँवरजीने कैसी साड़ियाँ भेजी हैं?

नानीजी रसोइघरसे बाहर आयी, आकर साड़ी देखी। पीछे-पीछे आकर माँ भी पर्देकी ओटमें खड़ी हो गयी। खद्दरकी साड़ियोंको देखकर नानीजीकी आँखोंसे आँसूकी बूँदें टपकने लगी। वे व्यथा और उलाहना भरी आवाजमें कहने लगी–हाय, कितनी मोटी साड़ियाँ हैं? ये तो मेरी बेटीसे भी भारी हैं। साड़ियों जितना बोझ तो मेरी बेटी रामदेईमें भी नहीं है। ये भी भला पहननेकी साड़ियाँ हैं?

नाना-नानीजीकी व्यथाको देखकर उनको सान्त्वना देनेके लिये तुरन्त माँने कहा– बापूजी! आप ऐसा न कहें। इन साड़ियोंको मैं बड़े प्रेमसे पहनूँगी। माँ! ये साड़ियाँ अच्छी तो हैं। उन्होंने बड़ी अच्छी साड़ियाँ मेरे लिये भेजी हैं। मैं इन्हें जरूर पहनूँगी।

प्यारसे भेजी हुई साड़ियोंको माँने सहर्ष स्वीकार किया और बादमें बड़े उत्साहसे पहना भी।

[५] वह एकान्त जीवन

सन् १९३२ के उत्तरार्ध (अर्थात् सं. १९८९ वि. के शीतकाल) में पूज्य बाबूजी रतनगढ़ रहनेके लिये आये, पर वे चाहते थे एकान्तमें साधनामय और सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करना। शिमलापालके एकान्तवासके समयसे ही बाबूजी एकान्तप्रिय हो गये थे। वहाँके एकान्त जीवनमें बाबूजीको अनेक महान उपलब्धियाँ हुई थीं। वे आत्मोन्नतिके लिये इसकी उपादेयता स्वीकार करते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि मनुष्यकी लौकिक या पारमार्थिक, सभी प्रकारकी उन्नतिका मूल है संकल्पशक्ति और उसका उपार्जन एकान्त-साधनासे सम्भव है। एक बार उन्होंने कहा था– *दस वर्षतक एक हजार आदमियोंके सामने लगातार व्याख्यान देनेसे जितना काम नहीं हो सकता है, उतना भगवत्कृपाके बलसे एक दिनमें शुभ-संकल्पद्वारा हो सकता है, परंतु ऐसी शक्ति प्राप्त करनेके लिये साधन करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। एकान्तमें रहकर साधन करनेसे ऐसी शक्ति प्राप्त की जा सकती है। मैं जबसे यहाँ आया, तभीसे एकान्तमें रहनेकी इच्छा बनी हुई है।*

बाबूजीके मनमें ऐसा विचार आया कि यदि शहरवाली अपनी हवेलीमें रहना हुआ तो जनसम्पर्कके कारण साधनापूर्ण जीवन व्यतीत नहीं हो पायेगा, अतः उन्होंने यही सोचा कि

नगरके बाहर कहीं ऐसे स्थानपर रहा जाय, जिससे नगरके कोलाहलसे दूर रहना हो सके, पर ऐसा निर्णय ले लेनेमें भी एक बाधा थी। माँकी गोदमें तीन वर्षकी बालिका सावित्री थी, अतः नितान्त जन-शून्य एकान्त स्थानमें भी निवास करना उचित नहीं था।

रतनगढ़के बाहर डेढ़ मील दूर भरतियोंकी ढाणी थी। राजस्थानमें ढाणी उस प्रकारकी बस्तीको कहते हैं, जो शहरसे दूर हो और साधारण स्तरके लोगोंके रहनेके लिये घास-फूसके झोपड़ोंका झुरमुट हो। इस ढाणीमें संयोगसे दो अनुकूलताएँ मिल गयीं। भरतियोंकी ओरसे बना हुआ एक पक्का कुँआ था और दो-तीन पक्के कमरे थे, जो आने-जानेवाले लोगोंके ठहरनेके लिये बने थे। यहींपर बाबूजीने रहनेका विचार किया। बाबूजीके लिये माँकी अनुमति प्राप्त करना शेष था।

माँने सदा ही बाबूजीकी उन्नतिमें, उनकी प्रगतिमें, उनकी विकासोन्मुखतामें कदम-से-कदम मिलाया है। माँकी उस समय आयु मात्र तीस वर्ष थी, अतः माँके मनमें ऐसी अभिलाषाका होना स्वाभाविक है कि ऐसे स्थानपर रहा जाय, जहाँ समस्तरीय लोगोंका पास-पड़ोस हो और समवयस्कोंसे मिलना-जुलना हो तथा कुछ-एक आवश्यक सुविधाएँ हों, परंतु इन भावनाओंके ऊपर उनकी भावना थी अपने जीवन-सर्वस्व (अर्थात् बाबूजी) के सपनोंको साकार होनेमें सर्वदा सहयोग देनेकी। माँको बाबूजीकी यह योजना स्वीकार थी। बालिका सावित्री गोदमें थी और एकान्त जीवनकी कठोरता सामने थी, फिर भी एकान्तवासके उस कठोर जीवनको बाबूजीके लिये उन्होंने स्वीकार किया।

भरतियोंकी ढाणीमें प्रतिदिन प्रातःकाल पाँच बजे सत्संग हुआ करता था। शहरसे श्रीशिवचन्दरायजी खेमका, श्रीइन्द्रचन्दजी थरड, श्रीब्रह्मादत्तजी अजीतसरिया, श्रीमहादेवजी लोहिया आदि लोग सत्संगके लिये ठीक समयपर पहुँच जाते। उस समयतक बाबूजी अपने नित्य-कर्म, पूजा-पाठ आदिसे निवृत्त हो जाते। घर साफ करना, सत्संगके लिये सत्संग-स्थलीपर सफाई करके बिछावन बिछाना, बाबूजीके स्नानके लिये पानीका प्रबन्ध करना, उनके पूजा-पाठकी पूर्व व्यवस्था करना, यह सब काम चाहे कितना ही कठोर शीत पड़ता हो, माँ पाँच बजेके पहले-पहले कर लेती थी। माँका ऐसा साधनामय जीवन, उनका कठिन जीवन-यापन तथा अपने एकान्त जीवनमें सहयोग देखकर बाबूजी भीतर-ही-भीतर माँके प्रति विनत थे।

[६] दो तन एक मन

एक बार मैं पूज्या बुढ़िया नानीजी (माँकी पूज्या माताजी) के पास बैठा हुआ था। नानीके पास यहाँ-वहाँकी अनेक तरहकी चर्चा चलती रही। फिर मोटर-रेल-दुर्घटनाकी चर्चा चल पड़ी। दुर्घटनाका प्रसंग छिड़ते ही नानीजीने बाबूजीके जीवनकी एक पुरानी घटना सुनायी। पूज्या नानीने बतलाया— हरिनाम संकीर्तनके द्वारा राम-नामका प्रचार करनेके लिये कँवरजी (अर्थात् बाबूजी) आसामकी ओर गये हुए थे। सावित्रीकी माँ घरपर गोरखपुर ही थी। एक रात सावित्रीकी माँको स्वप्न आया। उसने स्वप्नमें देखा कि चारों ओर समुद्र है। उसके बीच वह डूब रही है। उसे कोई सहारा नहीं मिल रहा है। वह न तो अच्छी तरह डूब पा रही है और न ऊपर आकर बच पा रही है। उसका मन छटपटा रहा है। पास ही एक पत्थर तैर रहा है। सावित्रीकी माँ

चाहती है कि उसको पकड़ लूँ। पकड़नेके लिये सारे प्रयास विफल हो जाते हैं। अकस्मात् वह पत्थर उसके हाथ लग जाता है। फिर वह पत्थरपर बैठ जाती है। पत्थरपर बैठते ही उसकी सारी परेशानी दूर हो गयी और तुरन्त नींद खुल गयी। सुबहं होते ही सावित्रीकी माँने अपनी बहिन द्रौपदीको स्वप्नकी सारी बात बतायी। सारा सपना बताकर उसने द्रौपदीसे पूछा कि इस सपनेका क्या मतलब है? मन क्यों अशुभकी कल्पना कर रहा है? क्या, तुम्हारे जीजाजी (अर्थात् बाबूजी) पर कोई संकट तो नहीं आया?

द्रौपदी सावित्रीकी माँके स्वप्नका कोई सन्तोषजनक मतलब तो नहीं बता सकी, परंतु द्रौपदीने उसको थोड़ा डाँटते और थोड़ा समझाते हुए कहा– यह तो सपना मात्र है। इससे क्या बनता-बिगड़ता है? सपना था, सपनेकी तरह आया और गया। अशुभकी कल्पना व्यर्थमें क्यों करती हो? अशुभ बात नहीं सोचनी चाहिये।

द्रौपदीकी बात सुनकर सावित्रीकी माँ मौन हो गयी, पर उसके मनमें किसी अशुभकी आशंका घुमड़ती रही।

कुछ दिन बाद कँवरजी अपनी आसाम-यात्रासे लौटकर आये। उनको वापस आया हुआ देखकर परिवारके, पड़ोसके, गीतावाटिकाके सभी लोगोंके मनमें प्रसन्नता छा गयी। जब कुशल-क्षेमकी और यात्राकी बात पूछी गयी तो कँवरजीने अपनी यात्रा-दुर्घटनाकी बात सुनायी। आसाममें एक बार गोलाघाटसे तिनसुकियाको मोटर-बस द्वारा वे लोग जा रहे थे। बसमें कई लोग थे। रात्रिका समय था। पहाड़ी रास्ता था। एक स्थानपर रास्ता बड़ा सकरा था, वहींकी बात है। भावी विचित्र है। उस सकरे रास्तेसे जब मोटर-बस जा रही थी, बसमें बैठा हुआ एक नौकर 'पानी-पानी' कहकर इतनी जोरसे चिल्लाया कि सभी सोचने लगे कि क्या हो गया। उस नौकरके अकस्मात् चिल्लानेसे ड्राइवरका हाथ काँप गया, स्टियरिंग हिल गया। बस ढालपर थी। बसका पहिया स्लिप कर गया। तब फिर क्या था? बस खाईमें जा गिरी। गिरनेका अर्थ है कालके गालमें जाना। उस समय ईश्वरके अतिरिक्त और कौन सहायक था? ज्यों ही बसके पहियेने स्लिप किया और बस खाईमें गिरी, त्यों ही कँवरजी दोनों हाथ ऊपर करके बसमें, जितना सम्भव हो सकता था *'नारायण', 'नारायण', 'नारायण'* का उच्च स्वरमें घोष करने लगे। मनकी सच्ची पुकार थी। नारायण ही एक मात्र रक्षक हैं। नारायणके अतिरिक्त और कौन बचा सकता है? नारायणके नामकी टेर लगाने भरकी देर थी कि बस एक स्थानपर ठहर गयी। पेड़के एक तनेसे टकराकर, उससे अटककर खड़ी हो गयी। बस कुछ क्षतिग्रस्त हो गयी। ड्राइवरको हलकी-सी चोट आयी, पर भगवानके नामके स्मरणका अनोखा प्रभाव देखा गया कि कँवरजीको कहीं भी चोट नहीं आयी। कँवरजी साफ बच गये। कुछ लोग तो घायल हुए, पर कई लोग बिल्कुल साफ बच गये। जब कँवरजी इस दुर्घटनाको सुना रहे थे तो बार-बार सावित्रीकी माँके स्वप्न वाली बात याद आ रही थी।

पूज्या नानी आसाम-यात्रामें हुई बस-दुर्घटनाको मुझे सुना रही थी। मैं ज्यों-ज्यों इसको सुन रहा था, त्यों-त्यों मुझे माँकी मनकी स्थितिपर आश्चर्य हो रहा था कि उधर दुर्घटना घटी और इधर दुर्घटनाका सांकेतिक स्वप्न माँको हुआ। बाबूजीके जीवनसे माँकी इतनी एकात्मता, इतनी तदात्मताकी कल्पना करके मैं विस्मय कर रहा था।

[७] बधाईकी न्योछावर

सन् १९५७ ई. की राधाष्टमीके अवसरपर बाबूजी और बाबा रतनगढ़में ही थे। अष्टमीको श्रीराधा-जन्मका और नवमीको दधिकाँदोका उत्सव सोत्साह मनाया गया। दधिकाँदोके उत्सव सम्पन्न होनेके बाद भक्तगण नोहरेकी बालुकामयी भूमिपर बैठे हुए हैं। नोहरेके भीतर टिन-शेड है और टिन-शेडके सामने विस्तृत रेतीली जमीन है। टिन-शेडके अभिमुख बैठे हुए भक्तोंके तन-मनपर खुमार चढ़ी हुई है। कोई भी हटने या जानेका नाम नहीं ले रहा है। भाव-विभोर श्रीढोलकियाजी बोल रहे हैं 'बधाई है', 'बधाई है'। श्रीढोलकियाजीके पीछे-पीछे सभी भक्त बोल रहे हैं और रह-रह करके 'बधाई है', 'बधाई है', की सामूहिक ध्वनि आकाशको गुँजा देती है। श्रीढोलकियाजी, माने श्रीबजरंगलालजी बजाज, जो इस उत्सवमें सदा ढाढी बनते हैं और श्रीराधारानीके जन्मकी बधाई श्रीवृषभानुजीको सुनाया करते हैं। श्रीढोलकियाजीने यह व्रत अपने जीवनके अन्ततक निभाया। बधाईमें ढोलक बजानेके कारण ही इनका नाम ढोलकियाजी पड़ गया। बालूपर बैठे हुए भक्तगण भी ढोलकियाजीके स्वरमें स्वर मिला रहे हैं। श्रीढोलकियाजी द्वारा बधाई बोले जानेका क्रम जारी है। श्रीढोलकियाजीकी सजल आँखें, सकम्प देह, गद्गद वाणी आदि बाह्य लक्षण उनकी भावमयी स्थितिकी ओर संकेत कर रहे हैं।

श्रीढोलकियाजीके बगलमें ही भाई श्रीरामनिवासजी ढंढारिया बैठे हैं। यह 'खुमारी' भी एक छूतका रोग है। श्रीढोलकियाजीके साथ-साथ भाई श्रीढंढारियाजी भी हुलसित-पुलकित हो रहे हैं! श्रीढंढारियाजीने भाव-विभोर भाषामें पुकारकर माँसे कहा— आज तेरे द्वारपर अनोखा ही ढाँढी आया है। बधाईकी न्योछावर मिले, तभी यह जायेगा।

माँने यह पुकार सुनी, पर महिलाओंसे घिरी होनेके कारण आ नहीं सकी, किन्तु इधर तो 'बधाई है' का सस्वर एवं उच्च घोष चलता ही रहा। श्रीढंढारियाजीने फिर माँसे कहा— तुम इनकी बधाईको क्यों नहीं स्वीकार करती ? ये कबसे बधाई दे रहे हैं। एक बार इधर तो आओ।

दूरसे बाबूजी यह सब देख रहे थे श्रीढोलकियाजीकी बधाई, माँकी व्यस्तता, श्रीढंढारियाजीकी बुलाहट और माँकी प्रतीक्षामें डूबी हुई भक्तगणकी उत्सुकता। बाबूजीने दूरसे यह भी देखा कि माँ बधाई बोलनेवालोंके पास आकर टिनशेडवाले बरामदेमें एक किनारे खड़ी हो गयी है। माँने मौन अधरोंसे किन्तु उल्लसित नयनोंसे देखा भाव-विभोर स्थितिको, श्रीढोलकियाजीको, श्रीढंढारियाजीको तथा अन्य भक्तोंकी भाव-विभोर स्थितिको तथा सुनने लगी बधाईके श्रुतिप्रिय घोष को।

श्रीढंढारियाजीने माँसे फिर कहा— आज तो कृपा करनी ही पड़ेगी, बधाईमें आज न्योछावर देनी पड़ेगी।

माँ असमंजसमें पड़ गयी कि क्या दूँ ? लोकोत्तर भावमें विभोर जनोंको क्या कोई लौकिक वस्तु दूँ ? दुविधामें माँ काफी देरतक खड़ी रही। दूरसे देख रहे बाबूजी माँकी दुविधाको समझ गये। बाबूजी माँको अधिक देरतक असमंजसमें रहने देना नहीं चाहते थे। वे धीरेसे आकर माँके थोड़ा-पीछे, थोड़ा बगलमें खड़े हो गये।

बाबूजी सहित माँको सामने खड़े देखकर 'ढाँढी' की और 'ढाँढी' के सहयोगियोंकी वाणी और भी पुलकित एवं विवर्धित हो गयी। फिर वही बधाईका स्वर और फिर उसी न्योछावरकी

माँग। अबकी बार बाबूजी आगे आये। उन्होंने लोगोंको शान्त करानेके लिये अपना हाथ सामने उठाया। बालूपर बैठा 'ढाँढी-परिवार' शान्त हो गया। बाबूजीने कहा– बजरंगजी (यानी ढोलकियाजी) को एक माला दो। ऐसी माला, जिससे 'किसी' (अर्थात् पूज्य बाबा) ने निरन्तर जप किया है और बड़ी महत्त्वपूर्ण माला है।

इतना कहते ही बाबूजीका स्वर स्नेहातिरेकसे भारी हो गया। माँजीके अधर मुलक उठे, श्रीढोलकियाजीकी आँखें बह चलीं, श्रीढंढारियाजीका मन भर आया, भावुक भक्त श्रीढोलकियाजीके भाग्यकी सराहना करने लगे और उपस्थित लोग धन्य-धन्य कहने लगे माँ-बाबूजीको एवं माँ-बाबूजीकी इस अनुपम न्योछावरको।

[८] युगलका आशीर्वाद

राजवैद्य पं. श्रीलक्ष्मीनारायणजी शर्मा थे तो उदयपुरके निवासी, परंतु वृन्दावनी रसके प्रलुब्ध भ्रमर होनेके कारण आप श्रीवृन्दावन धाममें चले आये और जीवनके अंततक आप धाममें ही रहे। आप श्रीराधासुधानिधि जैसे नितान्त रस-रहस्य-पूर्ण काव्यके परम रसिक एवं मर्मज्ञ थे। आपका पूज्य बाबाके साथ तो खुला व्यवहार था, परंतु पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के प्रति पितृ-भाव होनेके कारण उनसे कुछ भी कहनेमें वे बहुत संकोचका अनुभव करते थे। बाबूजीके रसमय एवं भावपूर्ण व्यक्तित्वपर वैद्यजीका हृदय अत्यधिक विमुग्ध था। प्रस्तुत पुरातन प्रसंग उन प्रारम्भिक दिवसोंका है, जब बाबूजीके प्रति आपकी निकटता क्रमशः घनिष्ठताके रूपमें परिणत होती चली जा रही थी।

ज्यों-ज्यों बाबूजीसे उनकी आन्तरिक घनिष्ठता बढ़ती जा रही थी, त्यों-त्यों वैद्यजीकी श्रद्धा-भावना प्रगाढ़से भी अधिक प्रगाढ़ होती जा रही थी। श्रद्धा-भावका आधिक्य भी तो अधरोंको मूक बना देता है। वैद्यजीकी आन्तरिक अभिलाषा थी कि बाबूजी अपना वरद कर-कमल मेरे शीशपर रख दें, पर यह बात कैसे बने। वे अपना कर-पल्लव केवल एक बार ही मेरे शीशपर रख देंगे तो मनकी यह गहरी साध पूर्ण हो जायेगी, पर साधको पूर्ण होनेका कोई मार्ग सूझ नहीं रहा था। संकोचके अतिरेकमें अधर खुल नहीं पा रहे थे और अभिव्यक्तिके अभावमें बात बन नहीं पा रही थी।

वैद्यजीने पूज्या माँके श्रीचरणोंका आश्रय लिया। परम वत्सला एवं सदा स्नेहार्द्रा माँके श्रीचरणोंमें वैद्यजीने एक दिन अवसर पाकर निवेदन किया– आप वह बानक बना दें, जिससे मेरे मनकी एक साध पूर्ण हो जाय। आप चाहें तो बात बन सकती है। न जाने कबसे मैं चाह रहा हूँ, पर उस चाहके पूर्ण होने या करनेका कोई उपाय सूझ नहीं रहा है। मुझ बालकपर आप कृपा करें। सचमुच, आप चाहेंगी तो मेरी बात बन जायेगी। वह बात आपके लिये सर्वथा साधारण है, पर मेरे लिये एक महान निधि है। मेरे हृदयकी आन्तरिक साध है कि श्रीभाईजी मेरे शीशपर अपना कर-कमल रख दें। संकोचके मारे श्रीभाईजीके सामने मैं कुछ बोल नहीं पाता, पर आपसे तो कोई संकोच नहीं, तभी तो हृदयकी यह भीतरी चाह आपके सामने रख दी। बस, मेरी यही कामना है, सविनय याचना है कि श्रीभाईजी एक बार, केवल एक बार मेरे शीशपर अपना हाथ रख दें।

वैद्यजीकी विनतीकी सच्चाई माँके हृदयको छू गयी। वैद्यजीकी बात सुनकर उन्होंने

मन-ही-मन विचार कर लिया कि कभी वैद्यजीकी बातको बनाना है, परंतु प्रकट रूपसे कोई स्पष्ट आश्वासन नहीं दिया। हाँ, अल्पभाषिणी माँने मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए मात्र इतना ही कहा— है तो मुश्किल, पर देखूँगी।

एक दिन मध्याह्नके समय जब माँ बाबूजीको भोजन कराने वाली थीं, उस समय वैद्यजी भी वहाँ उपस्थित थे। वैद्यजीके सामने ही माँने बाबूजीसे कहा— आप इन्हें आशीर्वाद क्यों नहीं दे देते ? आपके आशीर्वादके लिये इनके मनमें बड़ी इच्छा है।

माँकी बातको काटते हुए बाबूजीने कहा— मैं क्या कोई महात्मा या महन्त हूँ, जो आशीर्वाद दूँ ? मैं तो एक साधारण व्यक्ति हूँ। जैसे ये वैद्यजी हैं, वैसे ही मैं भी एक हूँ। मेरे आशीर्वादमें भला क्या रखा है ?

बैठे हुए वैद्यजी माँकी बातको सुनकर माँके श्रीचरणोंपर बलिहार जा रहे थे कि माँने कितने मधुर ढंगसे उपयुक्त अवसर पाकर मेरी सिफारिश कर दी। वैद्यजीको उस समय गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकी पंक्तियाँ याद आ रही थीं।

कबहुँक अम्ब अवसर पाई।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाई।।

जहाँ वे माँके चरणोंपर बलिहार जा रहे थे, वहीं वे बाबूजीके उत्तरको सुनकर बड़ी दुविधामें झूल भी रहे थे कि पता नहीं मेरी बात बनेगी या नहीं। बाबूजीने ज्यों ही अपना दैन्य प्रदर्शित किया, त्यों ही माँने भी उनकी बातको काटते हुए कहा— जब आपमें कुछ नहीं है, तब इनके सिरपर हाथ रखनेमें भला क्या आपत्ति है ? हाथ रखनेसे यदि इनके मनको सन्तोष मिलता हो तो रख देना चाहिये।

बाबूजीने कुछ झुँझलाते हुए माँसे कहा— तुम हमेशा बेकारकी बातें कहती और करती हो। यह कोई अच्छी बात है क्या ?

उस झुँझलाहटको देखकर वैद्यजी तो निराश हो गये, पर माँ तो भली प्रकार जानती थी उस झुँझलाहटके स्वरूपको। माँने बड़े मीठे स्वरमें, ऐसे मीठे स्वरमें मानो उस झुँझलाहटपर शीतलताकी वर्षा हो गयी हो, बस, ऐसे बड़े मीठे स्वरमें कहा— देखिये, किसीका मन खिन्न नहीं करना चाहिये। किसीको निराश करना कोई भली बात है क्या ? आज तो थाली तब परोसूँगी, जब आप अपना हाथ इनके मस्तकपर रख देंगे।

इतना कहते-कहते माँने वैद्यजीको पास बुलाया और बाबूजीका हाथ थामकर उनका कर-पल्लव वैद्यजीके शीशपर रख दिया। वैद्यजी तो निहाल हो गये। साधकी सिद्धि और श्रद्धाकी निधि आँखोंमें छलक पड़ी। पहले श्रद्धाके अतिरेकमें अधर मूक थे और अब भावके अतिरेकमें अधर पुनः मूक ही रहे। बस, अधरोंके समीप भीगते हुए कपोल ही उस अपार आनन्दको व्यक्त कर रहे थे। एक आश्चर्य और हुआ। केवल बाबूजीका ही आशीर्वाद नहीं मिला, अपितु युगलका आशीर्वाद मिला। बाबूजीके साथ-साथ माँका भी तो कर-पल्लव मस्तकपर था। यह तो एक असम्भव कार्य, कल्पनासे सर्वथा परेका कार्य चरितार्थ हो गया। ऐसा युगलाशीर्वाद भला किसे और कब मिल पाया है ?

युगलाशीर्वाद प्राप्त श्रीवैद्यजीके सिद्धार्थ एवं कृतार्थ जीवनको बार-बार वन्दन।

[१] फटकार और दुलार

प्रसंग सन् १९६० या ६१ का है। मैं कालेज बन्द होनेपर सरदारशहरसे गोरखपुर आ गया था। बाबूजी अपने स्वरचित पद प्रायः किसीको नहीं देते थे, यहाँतक कि दिखलानेमें भी हिचकते थे। मुझपर विश्वास करके उन्होंने मुझसे कहा– इन पदोंकी नकल साफ-साफ उतार लो।

गर्मीकी छुट्टी थी। इस दुर्लभ सेवावसरको पाकर मैं अपने भाग्यकी सराहना करने लगा। बाबूजीके पदोंकी, यहाँ तक कि निकुञ्ज-लीलाके निगूढ़तम पदोंकी नकल भी उतारनेका सौभाग्य मिला।

श्रीबजरंगलालजी बजाज बाबूजीके घनिष्ठ मित्र थे। बाबूजीके पदोंमें उनकी बड़ी रुचि रहती थी। श्रीबजरंगलालजीके जबलपुरसे आनेपर गीतावाटिकामें रासपञ्चाध्यायी, कीर्तन, पद-गायनकी सरिता बहने लगती। रात्रिमें पदोंका कार्यक्रम होता। श्रीबजरंगलालजी प्रेरणा करके बाबूजीको ले आते। पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीको भी बुला लाते। रातको नौ-दस बजेसे चलनेवाला कार्यक्रम दो-तीन घंटे चलता। कभी-कभी तो रातके दो-तीन भी बज जाते।

एक रातकी बात है। पदोंके गायनका कार्यक्रम चल रहा था। कोठीके हॉल-कमरेमें वाटिकाके कतिपय स्वजन उपस्थित थे। सभी अपने ही लोग थे। बाबूजी तकियेके सहारे लेटे हुए थे। कभी कोई, कभी कोई अपनी रुचिका पद बताता, उस पदको पूज्य श्रीगोस्वामीजी गाते, किन्तु अधिकांश बार बाबूजीके ही द्वारा बताया हुआ पद गाया जाता। मैंने भी उस समय रसके प्रवाहसे प्रभावित होकर एक पद पूज्य श्रीगोस्वामीजीसे गानेके लिये अनुरोध किया। पदमें निकुञ्जकी निगूढ़ लीलाका चित्रण था। बाबूजीके पदोंकी कुछ-कुछ जानकारी तो थी ही। पूज्य श्रीगोस्वामीजीने गाना आरम्भ किया। पदकी भाव धारामें सभीका मन डूब गया।

पदका गान समाप्त होते ही बाबूजी तकियेका सिरहाना छोड़कर उठ बैठे। उनके उठनेसे मैंने यह अनुमान लगाया कि वे इस निकुञ्ज लीलाके पदसे मेल खानेवाले किसी दूसरे पदको गानेके लिये बतायेंगे, पर बात तो दूसरी ही थी। किसे पता था कि बाबूजीके अन्तरमें रोष है। बाबूजीके अन्तरका रोष उनकी आँखोंमें उतर आया। वही रोष वाणीमें उतर आया। मेरी ओर उन्मुख होकर क्षोभ भरी वाणीमें कहा– यह पद गानेके लिये क्यों कहा? यह चीज क्या सबके सामने गानेकी है?

उनकी वाणीमें क्षोभ बहुत ज्यादा था। मैं भावुक हृदय इस रोषकी कल्पना भी नहीं कर सकता था। मेरी तो नीचेकी जमीन ही खिसक गयी। मेरे चेहरेका रंग बदल गया। बाबूजीका डाँटना जारी था– क्या निकुञ्जके भाव दुनियाको बतानेकी चीज है? कलसे पदोंकी नकल करना बन्द। इसको सुननेके कितने लोग अधिकारी हैं? कितने पात्र हैं, जो इसको सही रूपमें ग्रहण कर पायेंगे?

मेरी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। थोड़ी देर बाद बाबूजीने पूछा– क्या तुमने किसी पदकी नकल अपने लिये की है?

मैं चाहता था बोलना, पर बोल नहीं पाया। तालूसे जीभ चिपक गयी। बड़ी कठिनाईके बाद इतना ही कह पाया– नहीं।

बाबूजीने फिर पूछा– क्या किसीको किसी पदकी नकल करके दी है ?

मैंने फिर कहा– नहीं।

बाबूजीने रोषमें कहा– बस, कलसे नकल करना बन्द। मेरे लिखे पद तथा सारी प्रतिलिपियाँ मुझको कल वापस कर दो।

सारे श्रोता गुम-सुम हो गये। श्रीबजरंगलालजीने परिस्थितिको सँभाला। पद-गानका कार्यक्रम समाप्त हुआ। सभी अपने-अपने घर पधारे। मैं भी अपने कमरेमें आ गया, पर आँखोंमें नींद नहीं। मन पीड़ासे व्यथित था। बाबूजीने ठीक ही तो कहा कि निकुञ्ज-रहस्यकी यह निगूढ़ चर्चा क्या जगतमें प्रकट करनेके योग्य है और मुझे क्या अधिकार है कि किसीके जीवनके सौरभको, ऐसे गुह्य सौरभको इस प्रकार बिखेरनेका प्रयास करूँ ? विश्वास करके बाबूजीने मुझको सेवा सौंपी, पर मैं न सेवा ठीकसे कर सका और न विश्वास पूरा निभा पाया।

दूसरे दिन सबेरे भी बिस्तरसे दुःखके मारे मुझसे उठा नहीं गया। देखता क्या हूँ ? आठ-नौ बजे मेरे कमरेके द्वारपर माँ खड़ी है। पता नहीं माँको किसने यह सब बातें बता दी। माँके आनेका मुझे अनुमान नहीं था, खिन्नताके मारे मुझे अनुमान लगानेका अवकाश ही कब था ? माँ मेरी इस स्थितिको न जाने कैसे जान गयी। माँके थी ओठोंपर मधुर मुस्कान, मुखपर अपार आत्मीयता और आँखोंमें अमित वात्सल्य। माँने कहा– पगले ! अभी तक उठे नहीं।

थोड़ी देर रुककर फिर माँने कहा– उनके कहनेका विचार नहीं करना चाहिये। उनका रोष तो पानीपरकी लकीर है। उनको खुद अपने कहनेपर दुःख है। उठो, नहाओ-धोओ।

मैं रो पड़ा। अपने आँसुओंमें बह पड़ा। बाबूजीकी अन्तरंग निधिको सबके सामने कर देनेका परम खेद तो था ही, माँके वात्सल्यने मेरे बाँधको तोड़ दिया। माँके अतिरिक्त और कौन है जो आश्रितको सँभाले, जो भावोंको सहलाये ? माँके वात्सल्यने मेरे मनके भारको बहुत कुछ हलका कर दिया और वस्तुतः बाबूजीका वह रोष पानीपरकी लकीर था। इसका प्रमाण यही है कि पदोंके नकल करनेका कार्य पूर्ववत् चालू रहा।

[१०] नौकरोंके प्रति अपनापन

आँवला नवमी प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्ल नवमीको आती है। बाबूजीके घरमें प्रायः यह होता रहा है कि आँवला नवमीके दिन आँवलेके वृक्षके नीचे भोजन बने, फिर आँवलेके वृक्षका पूजन हो, वहीं आमन्त्रित ब्राह्मणोंको भोजन कराया जाय और अन्तमें घरके सब लोग आँवलेके वृक्षके नीचे प्रसाद पावें।

प्रसंग सम्भवतः सन् १९६२ या ६३ की आँवला नवमीका है। परम्परानुसार आँवलेके वृक्षके नीचे भोजन बना, आँवलेके वृक्षका पूजन हुआ और आमन्त्रित ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया। यह सारा कार्य पूज्य पं. श्रीरामजीलालजीकी देख-रेखमें हो रहा था। ब्राह्मणोंके भोजन करनेपर बाबूजीने उनको तिलक किया, दक्षिणा दी और चरण छूकर प्रणाम किया। सम्मानित ब्राह्मण अपने-अपने घर चले गये।

ब्राह्मणोंको जिमाने और दक्षिणा देकर विदा करनेमें काफी समय निकल गया। सुबहसे बाबूजीने कुछ खाया-पीया नहीं था। अतः माँने पण्डितजी (श्रीरामजीलालजी)से कहा– आप

पहले उनको (अर्थात् पूज्य बाबूजीको) जिमा दीजिये। काफी देर हो गयी है। बाकी लोग धीरे-धीरे जीमते रहेंगे।

पण्डितजीने बाबूजीको जिमानेके लिये पत्तल लगा दी और बाबूजी जीमनेके लिये बैठ गये। वहींपर बगीचेका माली गया लाठी लिये पहरेपर खड़ा था। वाटिकामें बन्दर बहुत हैं और वे उत्पात मचाते रहते हैं। उन बन्दरोंकी रोक-थामके लिये ही गया लाठी लेकर खड़ा था। जिमाने वाले बाबूजीकी पत्तल परोसनेकी तैयारी कर रहे थे कि बिना किसीसे कहे-सुने बाबूजी पत्तल छोड़कर उठ गये और जाकर टिन-शेडके नीचे बैठ गये। वे क्यों उठ गये और क्यों चले गये, इसके हेतुका ज्ञान किसीको कुछ भी नहीं।

बाबूजीके उठ जानेसे माँ भी दुखित हो गयी। किसीका साहस नहीं हुआ जो बाबूजीसे पूछे कि आप पत्तल परसे क्यों अचानक उठ गये। पण्डितजी बाबूजीके पास गये और कहा— आप चलकर प्रसाद लीजिये।

बाबूजीने कहा— पण्डितजी! इस समय मेरा जी अत्यन्त खिन्न है। मैं प्रसाद नहीं लूँगा।

पण्डितजीने पूछा— ऐसी क्या बात उपस्थित हो गयी?

बाबूजीने बताया— हमलोग तो हलुआ पूड़ी खाते रहे और यह गरीब गया माली भूखा ही लाठी लिये खड़ा रहे। जबतक ये भूखे नौकर नहीं खा लेंगे, तबतक मैं नहीं खाऊँगा।

ऐसा कहकर बाबूजी टिन-शेडसे उठे और अपने कमरेमें चले गये। पण्डितजीने आकर सारी बात माँको कही। माँने कहा— यह तो मेरी ही गलती है, जो आज उनको (बाबूजीको) पहले ही जीमनेके लिये कह दिया। मैं तो स्वयं सभी नौकरोंको जिमानेके बाद जीमती हूँ। आज उन्होंने कुछ लिया नहीं था, इसीलिये पत्तलपर पहले बैठनेके लिये कह दिया था।

अब बगीचेके सारे नौकरोंको पहले जिमाया गया। जो-जो वाटिकामें रहते हैं, सबके जीम चुकनेपर पण्डितजी बाबूजीको बुलाकर लाये। फिर बाबूजीने आँवला नवमीका प्रसाद पाया।

ठीक इसी तरहका एक प्रसंग बाई पुष्पाके मंगल विवाहके अवसरपर घटित हुआ। आनेवाले अतिथियोंकी भीड़ लगी है। सबेरेका मौका है। जलपानमें सभी अतिथियोंको चाय और कलेवा दिया जा रहा है। काम करते-करते कुछ नौकर थक गये थे। उन्होंने श्रीरामसनेहीजीसे चाय माँगी। रामसनेहीजीने कहा— चाय सबको मिलेगी, पर पहले बड़े लोगोंको पी लेने दो।

एक नौकरने कहा— बाबू, काम करते-करते थक गये हैं और भूख भी लगी है।

रामसनेहीजीने कहा— एकको दो तो फिर सबको दो और फिर नौकरोंका नम्बर लग जायेगा। थोड़ा रुको। थोड़ी देरमें दे देते हैं।

उस नौकरका आग्रह चलता रहा कि दे दीजिये और रामसनेहीजी समझाते रहे कि थोड़ा रुक जाओ। तभी माँ उधरसे निकली। रामसनेहीजी और नौकरमें चल रही बातको खड़ी होकर सुनने लगी। नौकरने माँसे भी यही कहा।

माँने तत्काल कहा— रामसनेहीजी! दे दीजिये न! बेचारे सबेरेसे काम कर रहे हैं। आखिर ये भी तो आदमी ही हैं। जब देना ही है, फिर देनेमें अभी-तभी क्यों और टालना क्यों? जैसे बाबू लोग पीते हैं, वैसे ही ये भी पीयें।

माँकी उदारतापर नौकर द्रवित हो गया, चौकेके रसोइया महाराज रीझ गये और पास खड़े कुछ लोग तो सजल नेत्र हो उठे।

[११] परिस्थितिकी सँभाल

सं. २०२१ वि. की होलीकी बात है। सूर्योदयके कुछ समय पूर्व ही होलिका-दाहका मुहूर्त था। मुहूर्तमें अधिक देर नहीं थी। इस अल्प समयमें ही घरमें होलिकाका पूजन भी कर लेना था, पूजा किये हुए बड़कुले (गायके गोबरके बने हुए गोल-गोल छेदवाले गोले) भी होलिकापर चढ़ाने थे तथा होलिका-दाह भी करना था।

समय कम होनेके कारण, शीघ्रतासे घरके नीचेके बरामदेमें पूजनकी सारी तैयारी की गयी। घरके सारे व्यक्ति इकट्ठे हुए, परंतु बाबूजी अभीतक नहीं आये। बुलानेके लिये एक व्यक्ति गया, दूसरा गया, तीसरा गया, पर बाबूजी नहीं आये। आते कैसे ? जो व्यक्ति बुलानेके लिये गये, उनकी बात बाबूजी सुन पायें, तभी तो आ पाते। बाबूजी इस लोकमें थे ही नहीं। बाह्य-चेतना-शून्य बाबूजीको क्या पता, बुलानेके लिये कौन-कौन आया, कब-कब आया और उसने क्या-क्या कहा ? दिव्य युगलकी मधुर लीलाके रस-सागरमें खोये हुए बाबूजीको कुछ पता नहीं कि ये स्वजन किस दौड़-धूपमें हैं और किस उधेड़बुनमें हैं। बाबूजीकी इस प्रकारकी स्थिति कई बार हो जाया करती है। लोकाचारके नाते सभी व्यक्तियोंकी यह इच्छा स्वाभाविक थी कि बाबूजी भी हमारे बीच रहें और हमारी पूजामें सम्मिलित हों। माँ नीचे बरामदेमें ही बैठी थी। सबने बाबूजीके बुलानेका भार माँपर डाल दिया। सभीने कहा— माँ ! तुम ऊपर जाकर और उन्हें साथ लेकर आओ।

माँ ऊपर गयी, पर बाबूजी तो बाह्य स्थितिसे सर्वथा उपरत अपनी भाव-समाधिमें तल्लीन थे। लाचार माँने कंधा पकड़कर हिलाया। बाबूजीको कुछ-कुछ बाह्य चेतना हुई। माँने फिर बाबूजीकी बाँह पकड़कर उठाया। बाबूजी उठे तो सही, पर वे अब भी अपनी तल्लीनतामें निमग्न-से थे।

बाबूजीने पूछा— कहाँ चलना है ?

माँने कहा— नीचे चलना है।

बाबूजीने पूछा— किधरसे चलना है ?

माँने कहा— सीढ़ीसे उतरकर नीचे चलना है।

बाबूजीने पूछा— सीढ़ी कहाँ है ?

माँ समझ गयी कि बाबूजी प्रकृत धारातलपर नहीं है। माँने बाबूजीकी बाँह पकड़ी। माँके अतिरिक्त और किसमें सामर्थ्य है, जो उनकी बाँहको सँभाल सके ? माँ बाबूजीको धीरे-धीरे नीचे ले आयी। पूजन-स्थलीके पास एक आसनपर उन्हें बिठाया। माँने पूजा करनेके लिये कहा। जैसे-जैसे उन्होंने कहा, उसी प्रकार यन्त्रवत् बाबूजी करते गये। रोली चढ़ाई, अक्षत चढ़ाये, माँ बताती गयी, बाबूजी तदनुसार पालन करते गये, मानो माँ हैं संचालिका और बाबूजी हैं संचालित। पूजाके बाद बाबूजी वहीं खाटपर बैठ गये।

फिर घरके अन्य सदस्योंने होलीकी पूजा की। पूजनोपरान्त बड़कुले हाथमें लेकर लोग

होलिका-दहन-स्थलीपर गये। वहाँ होलिकाका दहन हुआ। होलिका-दहनके बाद सभी लोग घरमें वापस लौट आये, पर बाबूजी उसी स्थितिमें बैठे हैं, जैसे पहले बैठे थे। सूर्योदय हो चुका था, धीरे-धीरे प्रकाश फैलता जा रहा था। अब बाबूजीको धीरे-धीरे बाह्य चेतना हुई। घरके और लोग तो अपने-अपने काममें लग गये, पर माँ वहींपर रही। बाह्य चेतना होनेपर बाबूजीने पूछा— मैं तो ऊपर कमरेमें था, यहाँ कैसे आ गया?

माँने बताया— मैं ही आपको लायी थी। आज होली थी न! होलीका पूजन करवाना था। क्यों, ठीक नहीं किया क्या?

बाबूजीने मुस्कुराते हुए कहा— बहुत ठीक किया। इस प्रकारकी भूल यदि मुझसे अनजानमें बन जाय, तो उसको तुम्हीं तो ठीक करोगी। तुम ही तो सँभालोगी। तुमने बहुत अच्छा किया।

[१२] श्रद्धेय श्रीसेठजी

पूज्य श्रीसेठजीका माँ और बाबूजीके जीवनमें बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। सांसारिक दृष्टिसे श्रीसेठजी बाबूजीके मौसेरे भाई लगते थे, पर साधनाकी दृष्टिसे श्रीसेठजीका पथ-निर्देशन बाबूजीके लिये अत्यधिक लाभकारी सिद्ध हुआ। निराकार और साकार साधनाके प्रारम्भिक दिवसोंमें पूज्य श्रीसेठजीके सांनिध्य और संरक्षणसे बाबूजीको उल्लेखनीय सफलता मिली। निराकार साधनामें ब्रह्माकार वृत्तिका होना और साकार साधनामें भगवान श्रीविष्णुका दर्शन होना, यह पूज्य श्रीसेठजीके चरणाश्रयका महाप्रसाद था। जब बाबूजी शिमलापाल ग्राममें नजरबन्द थे, तब भी श्रीसेठजीने इनकी और इनके परिवारकी बड़ी सँभाल की थी। पूज्य श्रीसेठजीके प्रति माँ और बाबूजी आजीवन सदा कृतज्ञ एवं परम विनीत रहे।

माँ और बाबूजीके लिये सदा श्रद्धेय पूज्य श्रीसेठजीको जब पथरीकी शिकायत हुई, तब उनको प्रायः दर्द और ज्वर बना रहने लगा। सन् १९६४ के उत्तरार्धमें निदान और चिकित्साके लिये श्रीसेठजीको बाँकुड़ासे वाराणसी लाया गया। माँ और बाबूजी भी गोरखपुरसे वाराणसी गये। बाबूजीकी उपस्थितिमें वाराणसीके विख्यात छः सात वैद्योंने सम्मिलित रूपसे श्रीसेठजीका निरीक्षण-परीक्षण किया और चिकित्सा-अनुपान आदिकी रूपरेखा निश्चित की गयी। बाँकुड़ा वापस आनेपर औषधि-सेवनसे श्रीसेठजीको कुछ लाभ हुआ, पर वह स्थायी नहीं था। दिन-प्रति-दिन स्वास्थ्य गिरता ही गया। श्रीसेठजीको ऐसा लगने लगा कि अब शरीर अधिक दिन नहीं रहेगा, अतः गंगातटपर स्थित गीताभवन (स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश) चलनेका विचार निश्चित कर लिया।

बाँकुड़ासे २९ मार्च १९६५ को चलकर ३० मार्चको श्रीसेठजी लखनऊ पहुँचे। श्रीसेठजीके दर्शनके लिये माँ और बाबूजी गोरखपुरसे लखनऊ गये। श्रीसेठजीके स्वास्थ्यको देखकर माँको उसी क्षण सन्देह हो गया उनके जीवनके बारेमें। बाबूजी लखनऊ गये थे इसलिये कि श्रीसेठजीका दर्शन करके वापस गोरखपुर आ जाऊँगा, पर श्रीसेठजीकी स्थितिसे अत्यधिक चिन्तित माँने बाबूजीसे कहा— अपनेको गीताभवन अभी साथ-साथ चलना चाहिये।

बाबूजीको किसी आवश्यक कार्यसे ४ अप्रैलको गोरखपुर रहना आवश्यक था। माँकी बातको सुनकर तथा उसके प्रति आन्तरिक अनुमोदन होनेपर भी बाबूजीको विवशतः लखनऊसे गोरखपुर आना पड़ा। लौटते समय व्यथापूर्ण शब्दोंमें माँने बाबूजीसे कहा— श्रीसेठजी

अब कुछ दिन कठिनतासे निकाल पायेंगे।

माँ और बाबूजी आये गोरखपुर और श्रीसेठजी पहुँचे स्वर्गाश्रम। स्वर्गाश्रमसे समाचार गम्भीर ही आ रहे थे। ४ अप्रैलको आवश्यक कार्य निपटाकर माँ और बाबूजी ५ अप्रैलको स्वर्गाश्रमके लिये रवाना हो गये और ६ अप्रैलको वहाँ पहुँच गये। वस्तुतः स्थिति ऐसी ही थी कि 'हंस' न जाने कब उड़ जाय। माँ और बाबूजी ठहरे थे डालमिया कोठीमें, पर चित्त अटका रहता था सदा गीताभवनमें श्रीसेठजीके पास। ११ अप्रैलके सबेरे बाबूजीको एक स्वप्न हुआ। एक रमणीय प्रदेशमें एक कुटिया है। उस कुटियासे बाहर निकलकर श्रीसेठजी आये हैं। उनकी मुखाकृति बड़ी सौम्य है। वे बाबूजीसे कह रहे है– तुम चिन्ता क्यों करते हो ? मैं १६ अप्रैल शुक्रवारतक तो तुम्हारे साथ हूँ ही।

और सचमुच १७ अप्रैलको वह 'हंस' उड़ गया और पार्थिव शरीर पीछे रह गया। विदा होनेके पहले श्रीसेठजी बाबूजीसे कह गये– हनुमाना! अब गीताभवनके ग्रीष्मकालीन सत्संगका दायित्व तुमपर ही है। यह भली प्रकार चलता रहे। इस सत्संगसे न जाने कितने लोगोंको कैसी कैसी दिव्य प्रेरणा मिलती रहती है।

इन दिनों बाबूजीके मनकी माँग कुछ और ही थी। प्रायः भाव-समाधिमें लीन रहा करते थे। वे चाहते थे नितान्त एकान्त। बहिर्मुखता रंचमात्र प्रिय नहीं थी, अपितु सर्वथा अप्रिय थी, पर महदाज्ञाका पालन करनेके लिये मनको जो प्रिय नहीं था, वह भी उन्होंने किया और जबतक शरीरने साथ दिया, वे और पूज्या माँ गोरखपुरसे स्वर्गाश्रम आते रहे गीताभवनके ग्रीष्मकालीन सत्संगके लिये।

[१३] श्रीभागवत-भवनका शिलान्यास

मथुराके श्रीकृष्ण जन्मस्थानपर विशाल भागवत-भवनके निर्माणकी योजना आरम्भमें बाइस लाख रुपयेकी थी, पर उसपर व्यय हुआ अवश्य ही कुछ करोड़। भागवत-भवनका शिलान्यास ११ फरवरी १९६५ को हुआ था। शिलान्यासके उत्सवकी तैयारी बड़े उत्साहसे की गयी। इस उत्सवका पर्याप्त प्रचार किया गया। उत्तर प्रदेश तो अपना राज्य (State) है और इस राज्यकी विभिन्न दिशाओंसे अतिथिगण आये ही, इसके अतिरिक्त दिल्ली, बम्बई, महाराष्ट्र, बंगाल, मध्य प्रदेश, राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश, मद्रास आदि अनेक राज्योंसे भी अतिथियोंका आगमन हुआ और उनको ठहरानेकी सुन्दर व्यवस्था की गयी। विद्युत् प्रकाशसे श्रीकृष्ण मन्दिर, श्रीकृष्ण चबूतरा, भागवत-पारायण-पंडाल, सभा-भवन, विश्रामालय, गीता-मन्दिर, बिड़ला-धर्मशाला जगमग-जगमग जगमगा रहे थे। आने-जानेवाले दर्शनार्थियोंके लिये स्पेशल बसोंका प्रबन्ध किया गया था। श्रीकृष्ण चबूतरेके समक्ष पारायण-पंडालमें लगभग ३५० वैष्णव विद्वान पण्डितोंने श्रीमद्भागवतका सप्ताह पारायण किया है। यह एक अनोखा दृश्य था। मथुराके वृद्धजनोंसे सुना *'न भूतो न भविष्यति'*। वस्तुतः कल्पना करने योग्य प्रसंग है कि ३५० कण्ठ जब एक स्वरसे श्रीमद्भागवतका पाठ कर रहे होंगे, वह दृश्य कितना भव्य रहा होगा ? अपने भाषणमें इसकी ओर संकेत करते हुए बाबूजीने कहा था–

लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व अत्याचारी औरंगजेब द्वारा मन्दिरके ध्वंस किये जानेके बाद यही पहला अवसर है, जब इस पुण्य-भूमिमें ब्रजके विद्वानोंद्वारा श्रीमद्भागवतका मंगल-पारायण हो

रहा है। इस प्रकार भस्मीभूत भूमिपर जो पवित्र सुधाधारा प्रवाहित हो रही है, इसके लिये इन अनुष्ठानोंके पुण्यभागी संयोजकोंका हम सभी हृदयसे अभिनन्दन करते हैं।

इस सप्ताह-पारायणके अतिरिक्त ब्रज-विख्यात व्यास परम वैष्णव श्रीनित्यानन्दजी भट्ट द्वारा श्रीमद्भागवतकी सप्ताह कथा हुई। सप्ताहकी कथा कहते समय एक बार भी श्रीमद्भागवत ग्रन्थकी ओर न देखकर धारा-प्रवाहरूपसे ब्रजभाषामें सारी कथाको कोई भी प्रसंग न छोड़े हुए कहना, कोई साधारण बात नहीं है। इनकी सप्ताह कथाके उपरान्त फिर एक और श्रीमद्भागवत सप्ताह कथा हुई। दूसरी सप्ताह कथाके वक्ता थे कानपुरके भक्त हृदय पं. श्रीब्रजकिशोरजी मिश्र, जिनकी भक्ति-भावनाने कथामें सरसता घोल दी। सप्ताह-कथाके अतिरिक्त प्रति रात्रि रासलीला होती, जिसमें सम्पूर्ण श्रीकृष्ण-लीला संक्षेपमें प्रस्तुत की जाती। इस प्रकारके ऐतिहासिक शिलान्यास उत्सवमें भाग लेनेके लिये माँ और बाबूजी गोरखपुरसे प्रस्थान करके ८ फरवरी १९६५ को मथुरा पहुँचे। साथमें भक्त-मण्डली थी। ये लोग थे लगभग डेढ़-दो सौकी संख्यामें, जो गोरखपुर, लखनऊ, कानपुर आदि स्थानोंसे ही साथ हो लिये थे। मथुरा स्टेशनपर संत-समुदायके कीर्तनकी उच्च ध्वनिने तथा सम्भ्रान्त नागरिकोंकी पुष्पमालाओंने माँ और बाबूजीका भव्य स्वागत किया। माँके आस-पास चारों ओर प्लेटफार्मपर फूल-ही-फूल बिखर गये। बाबूजीके गलेकी माला और कानपरके चश्में होड़ लगी थी कि कौन ऊपर रहेगा।

माँ और बाबूजीके निवासकी व्यवस्था की गयी थी बिड़ला धर्मशालामें, जो मथुरा-वृन्दावनके मध्य निर्मित है। तीन दिन बाद ११ फरवरी १९६५ का स्मरणीय दिवस आया। प्रातः श्रीकृष्ण जन्मस्थानके गर्भ-गृहमें, जहाँ वस्तुतः द्वापरमें भगवान श्रीकृष्णका प्राकट्य हुआ था, माँ और बाबूजी पधारे। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने माँ और बाबूजीके द्वारा देवी-देवताओंका पूजन करवाया।

इसके बादका मुख्य कार्य था शिलान्यासका। लगभग १२, १३ फीटसे भी अधिक गहरा गड्ढा खोदा गया था। सीढ़ियोंसे नीचे उतरनेकी व्यवस्था थी। माँ और बाबूजी शिलान्यास-स्थलपर पधारे और सीढ़ियोंसे नीचे उतर करके अर्चकके आसनपर बैठ गये। पं. श्रीदेवधरजी सारे आयोजनका नेतृत्व कर रहे थे। पं. श्रीरामजीलालजी शास्त्रीने विधिपूर्वक देव-पूजन करवाया। श्रीगणेशजी, श्रीवास्तुदेवता, श्रीपृथ्वी माता आदिके पूजनका मांगलिक कार्य लगभग एक-डेढ़ घंटेतक चलता रहा। पूजनके अन्तमें बाबूजीने शक्तिकी (पूज्या माँकी) साक्षीमें भागवत भवनके नींवकी ईंटें रखीं एवं उनपर चाँदीकी करनीसे गारा लगाया। जयकारसे सारा गगन-मण्डल गूँज उठा। अगले दिन उत्तर भारतके प्रमुख दैनिक समाचार-पत्रोंमें इसका विवरण फोटो सहित छपा।

शामको पंडालमें कार्यक्रम हुआ। पंडाल जन-समुदायसे खचाखच भरा हुआ था। पहले सांस्कृतिक कार्यक्रम हुए, फिर आगन्तुक सज्जनोंके भाषण हुए। अन्तमें बाबूजीका प्रभावशाली भाषण हुआ। बाबूजीका ऐसा जोशीला भाषण मैंने कम ही सुना है। भारतमें इस समय जैसी गन्दी राजनीति चल रही है, उसकी आलोचना करते हुए बाबूजीने कहा—

किसी समय किसी अंशमें मेरा क्रान्तिकारी जीवन था और लगभग पौने दो वर्ष बंगालके एक गाँवमें मैं नजरबन्दके रूपमें भी रहा था, पर आज न तो वह जीवन है, न वह काल है। उस

समय देशभक्ति व्यापार नहीं था। वह बाजारमें बिकती नहीं थी। देशभक्ति सिद्ध करनेके लिये कारागारके प्रमाणपत्रकी आवश्यकता नहीं थी। वह था मातृभूमिकी स्वतन्त्रताके लिये बिना किसी आशा-आकांक्षाके जीवनको उत्सर्ग कर देनेका निर्मल भाव। हजारों-हजारों उगते और चढ़ते सूर्य जैसे नवयुवकोंने अपनेको उत्सर्ग कर दिया मातृभूमिकी बलवेदीपर। सामने चमकनेवाले बहुत हैं, पर जिन्होंने अपना रक्त दिया और मातृभूमिकी स्वतन्त्रताके प्रासादके जो नींवके पत्थर बने, उन्हें कोई नहीं जानता। उस जमानेकी बात दूसरी थी। उस समय था केवल 'विशुद्ध त्याग' और आज है उसके स्थानपर अधिकारकी माँग। आज राष्ट्रीयताके नामपर, अधिकारका भूखा नेतृत्व बुरी तरह झगड़ रहा है एवं उनके द्वारा निरीह विद्यार्थी एवं जनताको भड़काकर देशको लजानेवाले उपद्रव यत्र-तत्र करवाये जा रहे हैं। यह हमारे लिये बड़ी ही अशोभनीय और दुर्भाग्यकी बात है। पता नहीं इसका क्या परिणाम होगा। भगवान सबका मंगल करें। सबको सद्बुद्धि दें।

फिर मथुराकी महिमा और श्रीकृष्ण जन्मभूमि ट्रस्टका संक्षिप्त विवरण रखते हुए बाबूजीने बताया कि महामना पण्डित मदनमोहनजी मालवीय, दानवीर धर्मपरायण हिन्दुत्वनिष्ठ श्रीजुगलकिशोरजी बिड़ला तथा अन्य अनेक मौन एवं सच्चे कर्मठ कार्यकर्ताओंके सत्प्रयासोंसे यह भूमि किस प्रकार खरीदी गयी और मुसलमानोंसे अनेक मुकदमा लड़ करके तथा विविध कठिनाइयोंको पार करके अपने अधिकारमें ली गयी, किस प्रकार श्रीकृष्ण चबूतरा और श्रीकृष्ण-मन्दिरका निर्माण हुआ, किस प्रकार सभा-भवन, कार्यालय, पुस्तकालय, औषधालय, विश्रामालयका निर्माण हुआ और किस प्रकार भागवत-भवनकी योजना सामने आयी। फिर भागवत भवनकी योजनाका प्रारूप एवं महिमा प्रस्तुत करनेके बाद देशके मुसलमान भाइयोंसे बाबूजीने प्रार्थना की कि वे मुसलमान बादशाहोंद्वारा किये गये अमानुषिक अत्याचारोंके निशानोंको, जो इतिहासके पृष्ठोंपर अंकित हैं, मिटानेमें सहयोग दें। मुसलमानोंसे बाबूजीने अनुरोध किया—

आज हमारा देश स्वतन्त्र है, गणराज्य है। हिन्दू-मुसलमानका कोई प्रश्न नहीं। इस अवस्थामें बर्बरतापूर्ण आक्रमणोंद्वारा हमारे जिन मन्दिरोंको, धार्मिक स्थानोंको, भ्रष्ट करके छीन लिया गया था, हमारे आजके मुसलमान भाइयोंका यह कर्तव्य है कि वे हिन्दुओंके उन पवित्र स्थानोंको बड़े प्रेमभावसे लौटा दें। हम मुसलमानोंके धर्म स्थानोंको, मस्जिदोंको आदरणीय मानते हैं, पर हिन्दुओंके धर्मस्थान बलपूर्वक छीनकर उनपर जो मस्जिदें बनायी गयी हैं, वे आज हमारे देशमें कलंकरूपमें खड़ी निरन्तर उन अत्याचारोंका, उन भयानक विनाश काण्डोंका स्मरण कराती हैं और वे हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्यमें सतत बाधा देती हुई देशके हृदयको पीड़ित कर रही हैं। अतएव, हम अपने मुसलमान बन्धुओंसे बड़े प्रेम तथा आग्रहके साथ विनयपूर्वक यह निवेदन करते हैं कि वे आक्रमण करके हिन्दुओंके छीने हुए पवित्र स्थानोंको तुरन्त वापस कर दें। इसमें उनका कल्याण है, हिन्दुओंका कल्याण है और देशका भी कल्याण है। वे मानेंगे या नहीं, भगवान जानें। पर यदि स्वेच्छासे न मानेंगे तो भगवान और काल उन्हें मनवा लेगा, आज चाहे न मानें।

उसी तरह देशके धनिकोंसे बाबूजीने प्रार्थना की— *धनिकोंको भी खुले हृदयसे धन देना चाहिये। जीवन किसीका स्थायी रहेगा नहीं, धन किसीका बना रहेगा नहीं और कौन जानता है*

ऐसा शुभ अवसर फिर कभी आयेगा या नहीं ? अतः इस पावन कार्यमें जितना सहयोग दिया जा सके, देना चाहिये।

१४ फरवरीको माँ श्रीमद्भागवत सप्ताह-पारायण-पण्डालमें पधारी। पाठ करनेवाले प्रत्येक ब्राह्मणके सामने जाती, नत-मस्तक होकर प्रणाम करती तथा स्वयं दक्षिणा भेंट करती। माँके अनुकरणमें अन्य कई भक्तोंने भी इसी प्रकार दक्षिणा प्रदान की। इसके बाद पारायण-पंडालके मध्यमें माँ और बाबूजी खड़े हुए थे कि कतिपय स्वधर्मनिष्ठ ब्राह्मणोंने ऊँची ध्वनिमें वेद-मंत्रोंके सस्वर पाठके द्वारा स्वस्ति वाचन करके मंगल जल, मंगल पुष्प और मंगल अक्षतके द्वारा माँ और बाबूजीको अभिषिक्त किया। आशीर्वादके मंगल भारसे माँ और बाबूजीके मस्तक विनत हो गये। ब्राह्मणोंके श्रीचरणोंमें झुककर दोनोंने प्रणाम किया। माँ और बाबूजी जितने दिन वहाँ रहे, वृन्दावन और मथुराके शत-शत ब्राह्मणोंके घर-घर अपना आदमी भेजकर उनके पदके अनुसार पत्र-पुष्पके रूपमें दक्षिणा भेंट की। असहाय एवं आर्तजनोंकी वस्त्र-धनसे सहायता की गयी। बहुत-सी संस्थाओंको दान दिया गया। संतोंकी सेवा की गयी। बरसाना-गोवर्धन आदि-आदि स्थानोंकी अपने परिजनों सहित यात्रा की गयी। माँ तथा बाबूजी अपनी इस यात्रामें तथा अलगसे अन्य अवसरोंपर भी श्रेष्ठ सम्मान्य संतोंके दर्शनार्थ गये। वृन्दावनके लगभग सभी प्रधान मन्दिरोंके श्रीविग्रहोंके उन्होंने दर्शन किये तथा भेंट चढ़ायी। वृन्दावन नगरपालिकाकी ओरसे बाबूजीका परम रसिक भक्त, भारतीय संस्कृतिके प्रतीक, धर्मके महान रक्षक, आध्यात्मिक प्रेरणाके केन्द्रके रूपमें अभिनन्दन किया गया। पूज्य स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वतीने अपने श्रीकृष्णाश्रम (उड़िया बाबा आश्रम) में माँ और बाबूजीका अपने निकटतम स्वजनके रूपमें स्वागत किया तथा स्वागत-भाषणमें अपने अश्रुकणोंसे अभिसिक्त भावोंकी सुमनाञ्जलि माँ और बाबूजीके प्रति समर्पित की। बाबूजीका निर्मल हृदय भी महाराजश्रीके नेत्रोंकी स्नेहसनी सजलताके भाव-वैभवको समझता है, बाबूजीके स्नेहाश्रुओंने स्वयं आगे बढ़कर स्वामीजीके स्नेहाश्रुओंका स्वागत किया, अभिनन्दन किया। बाबूजी भाषण देनेके लिये खड़े हुए, परंतु कण्ठावरोध हो गया। वे स्वामीजीके उस स्नेह सने सत्कारका किन शब्दोंमें अभिवन्दन करें। यह मिलन तो घरके दो पुराने परम स्नेही सदस्योंका अनुपम मिलन था। एक दिन मथुराके विप्र-मण्डलने बाबूजीके वास-स्थानपर ही पधारकर युगल (माँ और बाबूजी) को अपने आशीर्वादसे भिगो दिया। संस्कृत भाषामें दिये गये संक्षिप्त भाषणोंद्वारा विप्र-मण्डलने इतनी सराहना की और ऐसा आशीर्वाद दिया कि बाबूजी संकोचके मारे स्वयंमें सिमटने लगे। माँ संस्कृत तो समझती नहीं, पर आशय उन्होंने भी ग्रहण कर लिया। वस्तुतः सरल हृदय विप्र स्वभावसे बड़े ही उदार और शीघ्र प्रसन्न होनेवाले होते हैं।

इस बारकी यात्रामें कुल उन्नीस दिनका ब्रजवास करके तथा श्रीमद्भागवत महापुराणके पावन भवनके शिलान्यासके शुभ कार्यको सम्पन्न करके माँ और बाबूजी राजस्थानकी ओर चले गये।

[१४] प्रवचन या रास

सन् १९६५ के फरवरी मासमें श्रीभागवतभवनका शिलान्यास करनेके लिये पूज्य बाबूजी मथुरा गये। उस अवसरपर दो भागवत-सप्ताह-कथाका आयोजन रहा। लगभग उन्नीस दिन

बाबूजी मथुरा रहे।

रात्रिको प्रायः रासका कार्यक्रम रहता था। एक दिन कुछ भक्तोंने कहा– बाबूजी ! आज रासके स्थानपर आपका प्रवचन होना चाहिये। सार तत्त्वकी बात तो प्रवचनमें ही सुननेको मिलती है।

पहले तो बाबूजीने टालना चाहा, पर लोगोंके आग्रहपर अन्ततः रात्रिमें प्रवचनका कार्यक्रम तय हो गया। रास-रस-रसिकोंको यह अभिप्रेत नहीं था। रासके प्रेमीजन रासेश्वरी-रासेश्वरकी युगल छविके दर्शनका लाभ लेना चाहते थे। अब समस्या यह थी कि प्रवचनका कार्यक्रम बन चुका है और उसके स्थानपर फिरसे रासका कार्यक्रम कैसे बने। रासप्रेमी स्वजन माँके पास गये और कहा– माँ ! आज एक कामसे आये हैं। प्रवचन तो सदा ही सुनते हैं। वृन्दावन-मथुरासे जाकर गोरखपुरमें फिर प्रवचन ही सुनना है, किन्तु यहाँपर रासेश्वरी-रासेश्वरके सहज सुलभ रास-विलासके दर्शनसे क्यों कर वंचित रहें ? कुछ लोगोंके कहनेसे बाबूजीने प्रवचनके लिये हाँ भर ली है, पर तुम यदि चाहो, तो फिरसे प्रवचनके स्थानपर रासलीला हो सकती है।

स्वयं माँकी रास देखनेमें रुचि रहा करती है। जब भी रासमण्डली गोरखपुर आती है, माँके मनमें उनकी सेवा उनके सत्कारके लिये बड़ी उमंग रहा करती हैं। माँने कहा– देखो, कोशिश करूँगी। आगे जैसा होना होगा, हो जायेगा।

रासमण्डलीवालोंने भी अनुरोध किया– माँ ! हमारी भी इच्छा है कि आप लोग रासलीलाका दर्शन करें।

थोड़ी देर बाद बाबूजी किसी कामसे माँकी ओर आये। माँने पूछा– आज रातको क्या कार्यक्रम है ?

बाबूजीने कहा– कार्यक्रम तो प्रवचनका है।

माँने पूछा– रातको तो रासलीला हुआ करती थी न ?

बाबूजीने कहा– रासलीला तो होती थी, पर लोग चाहते हैं कि प्रवचन हो।

माँने मीठी चुटकी ली– मुझे तो लगता है कि आप ही चाहते हैं कि प्रवचन हो। आपमें ही सुनानेका चाव ज्यादा है, भले ही लोग सुनना न चाहते हों।

बाबूजीने बात सँभालनी चाही– मैं थोड़े ही सुनाना चाहता हूँ। लोगोंने प्रवचनके लिये बार-बार आग्रह पूर्वक कहा तो मैंने हाँ भर ली।

माँके व्यंग्यका सिलसिला जारी रहा– न जाने कबसे आप सुना रहे हैं, पर आप नहीं थके, भले सुननेवाले थक जायँ।

बाबूजीने विश्वास दिलानेकी चेष्टा की– मैंने नहीं तय किया। प्रवचनका कार्यक्रम तो लोगोंने ही तय किया है।

माँने बताया– यदि ऐसी बात होती, तो लोग आकर मुझसे कैसे कहते कि रासलीला होनी चाहिये। मैंने तो यही सुना है कि रासलीलाके कार्यक्रमको रोककर प्रवचनका कार्यक्रम रखा गया है।

बाबूजीको तत्क्षण परिस्थितिके विकास और विस्तारका अनुमान हो गया। बातको बनाने

तथा माँको प्रसन्न करनेकी दृष्टिसे उन्होंने तत्काल कहा– रातको रासलीलाका ही कार्यक्रम रहेगा। जिन लोगोंने तुमसे कहा, यदि वे लोग मुझसे कहते तो रासलीलाका कार्यक्रम ज्यों-का-त्यों रहता। प्रवचनका कार्यक्रम रखा ही क्यों जाता ?

माँने कहा– लोग कहते क्या ? वे संकोच और सम्मानमें आपसे कुछ कह नहीं पाते।

बस, तत्काल रासलीलाका कार्यक्रम तय हो गया। उस रात्रिको रास भी विशिष्ट हुआ। हाँ, रासके पहले बाबूजीने पाँच मिनटका प्रवचन शायद प्रवचन-प्रेमियोंके मनको रखनेके लिये भी दिया।

[९५] अतिथि भी आत्मीय

मेरे मित्र डॉ. श्रीसुरेशचन्दजी सेठ अब सेवानिवृत्त होकर अपने घरपर साधनामय जीवन व्यतीत कर रहे हैं, पर पहले वे सरदारशहर (राजस्थान) के एक महाविद्यालयमें प्राध्यापनका कार्य करते थे। श्रीसुरेशजीका व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभाओंसे सम्पन्न है। लेखक, कवि, वक्ता, चित्रकार, गायक, सभा-संयोजक आदि अनेक गुणोंसे समन्वित होकर भी आध्यात्मिक विषयोंमें इनकी बहुत रुचि है। समय-समयपर पूज्य स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज द्वारा आयोजित साधन-सप्ताहमें वे भाग लेते रहते थे और जब भी अवकाश मिलता था, वे सत्संगके लिये ग्रीष्मावकाशमें स्वर्गाश्रम भी आ जाते थे। स्वर्गाश्रममें आते रहनेके कारण माँ और बाबूजीसे भी इनका परिचय हो गया था।

सन् १९६६ के मई मासमें एक सप्ताहके लिये श्रीसुरेशजी स्वर्गाश्रम आये। एक कमरेमें सामान रखकर तुरन्त ही माँ और बाबूजीको प्रणाम करनेके लिये चल पड़े। साथमें मैं भी था। बाबूजी डालमिया कोठीके अपने कमरेमें बैठे थे और वे पैडपर कुछ लिख रहे थे। शायद किसीको पत्र लिख रहे होंगे। कमरेमें प्रवेश करते ही श्रीसुरेशजीने प्रणाम किया तथा वहीं उनके निकट बैठ गये। बाबूजीके सौम्य और गम्भीर मुखमण्डलपर एक हल्की-सी मुस्कान झलक उठी। हाथ जोड़कर अभिनन्दन करते हुए बाबूजीने कुशल-क्षेम पूछी– अच्छे तो हैं ?

श्रीसुरेशजीने प्रसन्न वाणीमें कहा– जी, आपकी कृपा है।

बाबूजीने फिर पूछा– कब आये ?

विनम्र उत्तर था– अभी-अभी सीधे ही चला आ रहा हूँ।

मैं भी वहाँ बैठा था। बाबूजीने मुझसे पूछा– कुछ जलपान करवाया या नहीं ?

मेरे द्वारा नकारात्मक उत्तर पाकर तुरन्त आदेश हुआ– जाओ, पहले इन्हें जलपान कराओ।

बाबूजीके इस कथनसे मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ, क्यों कि हमलोग तो साथ रहते-रहते इस प्रकारके आदेशसे अभ्यस्त हो गये थे, पर श्रीसुरेशजीकी आँखोंमें आश्चर्य उभर आया था। बादमें उन्होंने अपनी भावनाएँ व्यक्त करते हुए मुझसे पूछा था– जहाँ अनेकानेक व्यक्ति नित्य मिलनेके लिये आते हैं, वहाँ यह क्रम कैसे चलता और निभता है ? मुझे तो यही देखकर आश्चर्य हो रहा है कि एक निरासक्त व्यक्तित्व अतिथि-सत्कारमें इतना सजग और सचेष्ट कैसे रह पाता है ?

इसके अतिरिक्त मेरे मित्रको एक आश्चर्य और था। बाबूजीसे श्रीसुरेशजीका कोई घनिष्ठ

सम्पर्क नहीं था। कभी स्वर्गाश्रम, कभी रतनगढ़, कभी गोरखपुर और कभी दिल्लीमें समय-समयपर ही कुछ देरके लिये मात्र मिलना हुआ है। कभी कोई पत्र-व्यवहार नहीं हुआ अथवा निकट बैठकर कभी बातें भी नहीं हुई, फिर भी यह एक विशेष बात थी कि बाबूजीके स्मृति-पथसे श्रीसुरेशजी ओझल नहीं हुए। बाबूजीको उनकी बराबर याद थी।

वहाँसे उठकर श्रीसुरेशजी माँके पास गये। बरामदेमें ही बैठी माँ कुछ महिलाओंसे बात कर रही थीं। चरण-स्पर्श करके सुरेशजीने माँको प्रणाम किया। माँके अधरोंपर मुस्कुराहट दौड़ गयी। नेत्रोंसे मातृत्व झरने लगा। माँने पूछा— क्यों राजी हो न ?

श्रीसुरेशजीने कहा— जी, आपकी कृपा है।

माँने पूछा— कब आये ?

मैंने कहा— ये अभी-अभी तो आकर खड़े हुए है।

फिर माँने पूछा— कुछ खाया-पिया कि नहीं ?

प्रश्न साधारण है, किसी भी अतिथिके आनेपर ये प्रश्न पूछे ही जाते हैं, पर यह भी एक आश्चर्य था अथवा एक संयोग था कि जिस प्रकारसे और जिस क्रमसे जो प्रश्न बाबूजीने पूछे, उसी प्रकारसे और उसी क्रमसे उन्हीं प्रश्नोंको माँने दोहरा दिया। श्रीसुरेशजीपर इस तथ्यका ऐसा प्रभाव हुआ कि बादमें वे मुझसे कहने लगे— भाई ! क्या ये सचमुच एक प्राण दो देह हैं ?

श्रीसुरेशजीके लिये तुरन्त जलपानकी व्यवस्था हो गयी। वे स्वर्गाश्रममें एक सप्ताह ठहरे और मेरे साथ-साथ सप्ताह भरतक उनका भोजन भी बाबूजीके चौकेमें होता रहा, परिवारके सदस्यकी भाँति। गंगाजीका स्नान, संतोंका समागम, बाबूजीका प्रवचन, परस्परमें सच्चर्चा आदिमें सात दिन बीत गये और एक सप्ताह कैसे निकल गया, कुछ पता ही नहीं चला। अब वापस जानेका दिन आ पहुँचा। स्वर्गाश्रमसे प्रस्थान करनेके पूर्व श्रीसुरेशजी माँ, बाबूजी और बाबासे विदाई लेनेके लिये गये। पूज्य बाबा मौन थे, अतः श्रीसुरेशजीने कुटीरके द्वारको ही प्रणाम कर लिया। फिर बाबूजीके पास गये और उनको श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। बाबूजीने पूछा— क्यों, आज जा रहे हैं क्या ?

श्रीसुरेशजीने कहा— जी, इच्छा तो अभी नहीं थी, पर कुछ आवश्यक कार्यसे जाना पड़ रहा है।

हाथको जोड़ते हुए और मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए बाबूजीने कहा— अच्छा, कृपा दृष्टि बनाये रखियेगा।

इन विनम्र शब्दोंको सुनते ही श्रीसुरेशजी भीतर-ही-भीतर गड़ गये। मन-ही-मन कहने लगे कि जो शब्द मुझे कहने चाहिये थे, वे शब्द बाबूजी कह रहे हैं और मुझ साधारण व्यक्तिसे कह रहे हैं, यह क्या विचित्रता है ? वे पुनः सोचने लगे कि संतके जिन लक्षणोंकी तथा विनम्रताकी चर्चा प्रवचनमें सुननेको मिलती थी, उसकी प्रत्यक्ष झाँकी बाबूजीके जीवनमें देखनेको मिल रही है। इतनेमें मुझे आदेश मिला— जाओ, इन्हें पहुँचा आओ।

आशीर्वाद पाकर श्रीसुरेशजी वहाँसे उठ खड़े हुए। बाबूजीसे विदाई लेकर श्रीसुरेशजी माँके पास आये। माँ आँगनमें ही किसी कार्यसे खड़ी थीं। माँके सामने श्रीसुरेशजी हाथ जोड़कर खड़े

हुए और उन्होंने विनम्र शब्दोंमें निवेदन किया– माँ, चलनेके लिये आज्ञा दीजिये।

माँने पूछा– अरे, अभीसे जा रहे हैं क्या?

श्रीसुरेशजीने संक्षिप्त उत्तर दिया– जी, कुछ आवश्यक कार्य है, इसीसे अभी जाना है।

माँने पूछा– आपकी माताजी कहाँ हैं?

श्रीसुरेशजी क्या उत्तर देते? उनकी अपनी माँका देहान्त तो बहुत पहले शिशु अवस्थामें ही हो चुका था, परंतु उन्हींमें माँका वात्सल्य देखकर उन्होंने तुरन्त कहा– आप मेरी माँ हैं न!

उनके इस उत्तरसे माँने सारी वस्तुस्थितिको समझ लिया और करुणासे उनका हृदय गद्गद हो गया। इतनेमें माँने एक महिलाको रोली-चावल-फल लानेका संकेत किया, पर इस संकेतको श्रीसुरेशजी समझ नहीं सके। श्रीसुरेशजीको क्या पता था कि माँ उन्हें उसी प्रकार विदाई देनेवाली हैं, जैसे परिवारके एक सदस्यको दी जाती है। श्रीसुरेशजीके भालपर माँने रोलीका तिलक किया, चावल लगाया और हाथमें दो बढ़िया पके आम दिये। श्रीसुरेशजीकी विदाई एक अतिथिके रूपमें नहीं, एक आत्मीयके रूपमें हुई। श्रीसुरेशजीने माँके चरण-स्पर्श किये, पर हृदय रह-रहकर मातृत्वकी जय-जयकार कर रहा था। माँने शीश और पीठपर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। उस समय मैंने देखा था कि मेरे मित्र श्रीसुरेशजीके नेत्र छलछलाये हुए थे।

[१६] स्वामी श्रीब्रह्मजीका सत्कार

स्वामी श्रीब्रह्मजी नामके एक महात्माका दर्शन गर्मीके दिनोंमें स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) में हो जाया करता था। वे प्रायः बाबूजीके पास आया करते थे। बाबूजीके प्रति उनकी आदर-भावना थी। ठिगना कद, साँवला रंग, दुबला शरीर, नाकपर चश्मा और कमरमें कटिवस्त्र, यही था उनका बाह्य परिवेश। लोगोंके कथनानुसार उनकी आयु लगभग सवा सौ वर्षसे भी अधिक थी। अनेक वृद्ध गृहस्थ कहते थे कि न जाने कबसे श्रीब्रह्मजीको इसी आकृति, इसी रंग, इसी वेश, इसी प्रसन्नताकी स्थितिमें देख रहे हैं। ऐसा लगता है कि वृद्धावस्था उनके शरीरमें कोई परिवर्तन करनेमें असमर्थ रही है। मौनका व्रत नहीं था, किन्तु लगभग नहीं बोलते थे। श्रीब्रह्मजीको आसनोंका बड़ा अभ्यास था। सभी उनको बड़ी पूज्य दृष्टिसे देखते थे।

सन् १९६६ के जून मासमें एक दिन श्रीब्रह्मजी बाबूजीके पास आये और कहा– आज आप मेरे आसन देखिये।

महात्माके मनकी मौज ही है। स्वामीजीके मनमें आसन दिखानेकी आ गयी। महात्माओंके मनको रखना बाबूजीका सहज स्वभाव है। बाबूजी अपने कामको पूरा नहीं कर पायें तो न सही, कामको पूरा करनेके लिये रातमें जगना पड़े तो कोई बात नहीं, ऐसी सारी व्यक्तिगत असुविधा सहकर भी सामनेवालेके मनको रखना, यह बाबूजीका सहज स्वभाव है। बाबूजीके मनमें माँको भी आसन दिखलानेकी बात आयी। वे अपने कमरेमेंसे माँके कमरेमें गये। माँका शरीर अस्वस्थ था। वे खाटपर लेटी थीं। बाबूजीने कहा– वे ब्रह्मजी आये हैं। अपने आसन दिखायेंगे। देखोगी क्या?

माँ खाटपर बैठ गयी और प्रसंगको टालनेके लिये कहा– आप ही देख लीजिये।

माँका स्वास्थ्य शिथिल था, पर बाबूजीके मनमें था कि माँ भी देखे। उन्होंने माँसे फिर

कहा। माँ उठकर कमरेके बाहर आ गयी और बरामदेमें बैठ गयी। घरकी और भी अनेक महिलाएँ आसन देखनेके लिये माँको घेरकर बैठ गयीं। बाबूजी तथा अन्य भाई लोग भी एक ओर बैठ गये।

स्वामी श्रीब्रह्मजीने आसन दिखलाना आरम्भ किया। मयूरासन, धनुषासन, शीर्षासन, इस प्रकारसे एक-पर-एक आसन दिखाते जा रहे थे। कहाँ तो उनका वृद्ध शरीर और कहाँ आसनोंकी कठिन मुद्राएँ? सभी आश्चर्य कर रहे थे। क्रम-क्रमसे आसन दिखाते-दिखाते श्रीब्रह्मजीने व्याघ्रासन दिखलाया। व्याघ्रासनको देखकर माँ थोड़ी डरी। सचमुच मुद्रा भयानक थी। माँ इसलिये भी डरी कि कहीं श्रीब्रह्मजीका शरीर टूट न जायँ, वे विकलांग न हो जाय। माँने घबराते हुए बाबूजीसे कहा– आप इन्हें मना क्यों नहीं करते? कहीं स्वामीजीको कुछ हो न जाय?

पास बैठी हुई एक माताजीने कहा– माँ, इनको अभ्यास है, अतः इनका कुछ बिगड़ेगा नहीं।

यह सुनकर भी माँका कोमल हृदय इसे स्वीकार नहीं कर सका। कोमल हृदया माँ अधिकाधिक डरती रही तथा वह आसन बन्द करनेके लिये बार-बार निवेदन करती रही। व्याघ्रासनके बाद अब और आसन नहीं दिखलानेके लिये अनुरोध किया गया और स्वामी श्रीब्रह्मजीने स्वीकार कर लिया। सभी उपस्थित लोग उनके आसनकी सराहना करने लगे।

आसनके बाद माँने स्वामीजीको कुछ देना चाहा। इस हेतुसे बाबूजीकी ओर उन्होंने संकेत किया। बाबूजीने कहा– स्वामीजी लेंगे नहीं।

माँने कहा– लेंगे क्यों नहीं?

माँकी इच्छा जानकर समीपस्थ एक माताजीने स्वामीजीसे पूछा– स्वामीजी! आप क्या लेना चाहेंगे?

स्वामीजीने गर्दन हिलाकर संकेत किया– कुछ नहीं।

उन माताजीने माँको बताया– माँ! ये कुछ नहीं लेंगे।

माँने जोर दिया– लेंगे क्यों नहीं?

फिर स्वामीजीसे विनम्र शब्दोंमें मुस्कुराते हुए माँने कहा– स्वामीजी! आप कुछ तो लेंगे ही?

स्वामीजीने फिर गर्दन हिलाकर संकेत किया– कुछ नहीं।

माँने पुनः स्वामीजीसे कहा– क्या इसके द्वारसे खाली हाथ जायेंगे?

स्वामीजीसे ऐसा कहकर फिर उन माताजीकी ओर रुख करके कहा– जा, कुछ ला तो।

इसके बाद फिर स्वामीजीसे माँ बोली– स्वामीजी! कुछ तो लेना ही होगा।

श्रीब्रह्मजीने फिर गर्दन हिलाकर संकेत किया– कुछ नहीं।

माँने अपना आग्रह जारी रखा– स्वामीजी! कुछ तो स्वीकार करें।

बाबूजी बैठे-बैठे इन दोनोंके आग्रहोंके मधुर-द्वन्द्वका रसास्वादन करते रहे। अंततोगत्वा जीत माँकी हुई। भला अन्नपूर्णाके द्वारसे कोई खाली हाथ कैसे लौटे? माँके आग्रहके समक्ष स्वामीजीको झुकना ही पड़ा। उन्होंने अपनी रुमाल माँके सामने फेंक दी। माँने कमरेमेंसे चार

बढ़िया आम मँगवाये और स्वयं अपने हाथसे उनकी रुमालमें बाँध दिये।

[१७] देना, वह भी छिपाकर

गोवर्धन गिरिकी तलहटीमें स्थित जतीपुराके निवासी श्रीहरिवल्लभजी संगीतके मर्मज्ञ हैं। भगवानने उनको मधुर कण्ठका तथा ललित राग-रागनियोंका महान वरदान दिया है। गीतावाटिकामें आते हैं तो बहुत दिनोंतक रहते हैं। गीतावाटिकामें रहते समय उनका काम है एकान्तमें भजन करना और समय-समयपर पूज्य बाबाको पद सुनाना। इसके अतिरिक्त पूज्य बाबूजीको भी समय-समयपर पद सुनाते थे और उनके प्रवचनोंके पूर्व संतोंके पद गाया करते थे। सं. २०२३ वि. की ग्रीष्म ऋतुमें जब बाबूजी सत्संगके लिये गोरखपुरसे स्वर्गाश्रम आये तो यहाँपर भी श्रीहरिवल्लभजी जतीपुरासे आये तथा बाबूजी तथा बाबाको अपनी रागाञ्जलिसे आह्लादित करते रहे।

स्वर्गाश्रम गिरिराज हिमालयका चरण-प्रान्त है, ऋषियों-साधुओंकी तपोभूमि है और माँ गंगाके पावन तटपर स्थित रमणीय भजन स्थली है। स्वार्गाश्रममें संत-समागमका सुन्दर अवसर जानकर श्रीहरिवल्लभजीकी धर्मपत्नी आदरणीया श्रीकलावतीजी भी जतीपुरासे स्वर्गाश्रम चली आयीं और पाँच-दस दिनतक यहाँपर रहीं।

जब श्रीहरिवल्लभजी और उनकी धर्मपत्नी अपने घर जतीपुरा वापस जाने लगे तो बाबूजीने रेल-टिकटकी व्यवस्था कर दी, साथ ही राह-व्ययका भी प्रबन्ध कर दिया। विदाईमें माँ कुछ भेंट करना चाहती है, पर देनेमें संकोच लगता है। माँने बाई (सौ. श्रीसावित्रीदेवी फोगला) से कहा— सावित्री ! जा तू दे आ।

बाईने कहा— तुम्हारे रहते मेरा देना क्या अच्छा लगेगा ? तुमको देना चाहिये, उसीमें शोभा है।

माँने यह तो कहा नहीं कि मुझे देते संकोच लगता है, पर फिर बाईको कहा— इसमें क्या है ? तू ही दे दे।

बाईने कहा— नहीं माँ, तुमको ही देना चाहिये।

अब और कोई चारा नहीं था। एक बँधा हुआ बण्डल माँने आदरणीया कलावतीजीके बिस्तरके ऊपर धीरेसे रख दिया, रखा इस प्रकारसे मानो यह कोई नगण्य कार्य हुआ है। देखने वाला अनुमान लगा सकता था कि इस बण्डलमें सम्भवतः कुछ वस्त्र होंगे। बाबाने भी देखा कि माँने एक बण्डल आदरणीया श्रीकलावतीजीको दिया है। बाबाके मनमें जिज्ञासा हुई कि माँने क्या दिया ? माँके वात्सल्यकी किञ्चित् झाँकी तो मिले !

फिर बाबाने उस बण्डलको मँगवाया और उसे खोलनेके लिये कहा। बण्डल खोला गया। उसमेंसे निकली एक साड़ी, फिर उसके अन्दर एक साड़ी, फिर उसके अन्दर एक कब्जा, उस कब्जेके अन्दर एक और कब्जा और उस दूसरे कब्जेकी पाकेटमें सोनेका एक गहना। माँकी गरिमाका उद्घाटन करते हुए बाबा बोल पड़े— माँके अतिरिक्त और कौन है, जो दे और छिपाकर दे। बस, यह तो माँके ही योग्य है।

सचमुच लोग थोड़ा देकर भी ढोल पीटते हैं और कोई अधिक देकर भी मौन रहता है,

संकोचके मारे छिपाकर देता है। बाबूजी भी तो छिपाकर बिना जनाये देते थे, चुपचाप देते थे। बाबूजीकी शैली थी, जिसको देना हो और जितना देना हो, लिफाफेमें बन्द करके दो। बाबूजीकी तरह माँ भी देकर सामने आना नहीं चाहती।

[१८] तीजपर खुला द्वार

सं. २०२३ वि. की सावनी तीज। बरसाती मौसमकी फुहारके कारण प्रकृतिके आँगनमें हरियाली और हरियाली तीजके दिन बहू-बेटियोंके मनमें भी हरियाली। माँ, चाहे वह किसी जातिकी हो, किसी कुलकी हो, माँ माँ ही है, और माँके वात्सल्यकी फुहार अपनी बहू और बेटियोंके अन्तरमें, उनके जीवनके भीतर-बाहरमें हरियाली ला देती है।

माँने अपनी बेटी सावित्री (सौभाग्यवती श्रीसावित्रीबाई फोगला) का सिन्हारा (शृंगार) किया, सौभाग्य चिह्न दिये, मंगल वस्त्र दिये, परंतु और भी चरणाश्रिता अथवा सेवा-परायणा अथवा समर्पिता अथवा श्रद्धालु बहनें हैं, जो माँको माँ कहती हैं और हृदयसे माँको माँ मानती है। माँ उनका भी सिन्हारा करती है, उनको साड़ी देती है और द्रव्य देती है। प्रतिवर्षकी तरह इस बार भी माँने इन सबका सिन्हारा किया, विधवा बहिनोंको श्वेत परिधान दिया, सधवा बहू-बेटियोंको अच्छी-अच्छी साड़ी तथा बालिकाओंको बढ़िया-बढ़िया वस्त्र दिये। सधवाओंके हाथकी मेंहदीको और शरीरके सुन्दर वेषको देखकर माँका मन पुलक उठता।

तीजकी शामके समय माँकी तबीयत खराब हो गयी। सिरमें दर्द, हाथ-पैरमें जलन, जीमें बेचैनी थी। चौथके दिन भी पीड़ा और परेशानी कम नहीं हुई। बाबूजी माँकी तबीयतकी बड़ी चिन्ता करते। जब भी तकलीफ ज्यादा होती, वे माँके पास बैठते, यथावश्यक उपचार करते और औषधि देते। वे आराम करनेके लिये माँसे अनुरोध करते। सबेरे माँको दौरा आया। शरीरका होश नहीं रहा। पासमें आदरणीया रामकली भाभीजी और कौशल्याबाई बंका थी। बाबूजीने माँके कमरेका दरवाजा हलके-से मिला दिया, जिससे माँ आरामसे लेटी रहे और फिर भाभीजीसे तथा बहिन कौशल्यासे कहा— कोई भी सावित्रिकी माँके पास जाने नहीं पाये।

दोनोंने कहा— हम दोनों यहीं रहेंगी तथा पूरी चौकसी रखेंगी।

इनके ऐसा कहनेपर भी बाबूजीका मन आश्वस्त नहीं हुआ। अपने कमरेमें जानेके पहले बाबूजीने फिर सावधान किया— देखो, आज शहरसे बहुत-सी औरतें आयेंगी। सभी अन्दर जाना चाहेंगी। कोई कुछ कहे तो बता देना मैंने मना किया है। कोई भी इसको परेशान न करें, जगानेकी चेष्टा न करे, स्वास्थ्यका समाचार न पूछे। बस, इसे शान्तिके साथ आराम करने दिया जाय।

बाबूजीकी इस कड़ी हिदायतको भाभीजी तथा बहिन कौशल्याने नत-मस्तक होकर स्वीकार किया। बाबूजी अपने कमरेमें चले गये। बहिन कौशल्या दरवाजेपर पहरेके लिये बैठ गयी। भाभीजी माँके पासके एक-दो छोटे-मोटे कामोंको सलटाने लगी। शहरसे औरतोंका आना आरम्भ हो गया। सबके मनमें माँसे मिलनेकी चाह रहती है, पर जब यह सुना कि माँका स्वास्थ्य खराब है तो उनकी मिलनेकी उत्सुकता और बढ़ गयी। औरतें माँके कमरेकी ओर जातीं, परंतु दरवाजेपर बाबूजीके आदेशके अनुसार बड़ा पहरा था। भाभीजी कमरेके अन्दर गयीं। माँकी बेचैनी कुछ कम हो गयी थी। आनेवाली औरतोंकी आहट माँको मिल चुकी थी। माँने लेटे-लेटे

इशारा किया— दरवाजा खोल दो।

भाभीजीने कहा— माँ! उनके आनेसे शोर-गुल होगा, हलचल मचेगी। इससे आपकी परेशानी फिर बढ़ जायेगी और बाबूजीने मना भी कर रखा है।

माँने धीरेसे कहा— अरी, वे सब शहरसे चलकर आयी हैं। जरा यह भी सोच कि नहीं मिलनेसे उनको कितना दुःख होगा।

भाभीजीने कहा— पर माँ! आपका स्वास्थ्य तो ठीक नहीं है।

इसी बीच बाबूजी वहाँ आ गये। बाबूजीने भाभीजीके शब्दोंका समर्थन करते हुए कहा— यह ठीक तो कहती है। दरवाजा खोलनेसे सब औरतें आयेंगी और उनके शोरगुलका उनकी बातचीतका तुम्हारी तबीयतपर असर पड़ेगा।

माँने कहा— अजी, यह कहाँतक ठीक है कि तीजके अवसरपर स्त्रियाँ मिलनेके लिये आयें, मैं यहाँ लेटी रहूँ और वे बाहरसे निराश तथा खिन्न मनसे वापस चली जायें। मैं यहाँ लेटी रहूँगी, मैं चुप रहूँगी, मैं बात नहीं करूँगी, पर उनसे मिल तो लूँगी।

फिर माँने भाभीजीसे कहा— तू दरवाजा खोल दे।

बाबूजीने कुछ भी विरोध नहीं किया। वे अपने कमरेमें चले गये। बाबूजीके बाहर जानेके लिये दरवाजा जो खोला गया, वह खुला ही रहा। आनेवाली औरतोंसे माँ मिली, पर लेटे-ही-लेटे और अधिकांश मौन रही। हाँ, आनेवाली औरतोंको हाथके इशारेसे बैठनेके लिये कहती रहीं।

[१९] श्रीहनुमान-मन्दिरका शिलान्यास

'नन्द बाबा' के नामसे विख्यात पण्डित श्रीसभापतिजी त्रिपाठी हम सभीके लिये प्रणम्य थे। वे गीतावाटिकामें श्रीमद्भागवतका ऋतु-पारायण पाठ नित्य किया करते थे। गोरखपुरके बेतियाहातामें श्रीनन्द बाबा श्रीहनुमानजीका एक मन्दिर बनवाना चाहते थे। अर्थकी स्वल्पताके कारण उनका जीवन स्तर साधारण भले ही हो, पर वे भावनाओंके धनी थे। भक्तिकी भावना धन-सापेक्ष नहीं होती। चाहको राह मिलती ही है। गोरखपुरके मण्डलायुक्त श्रीनागर साहबकी अनुकूलतासे बेतियाहातामें थोड़ी-सी जमीन मिल गयी। जमीन मिली श्रावण शुक्ल चतुर्दशी (२९ अगस्त १९६६) को और कल ही अर्थात् एक ही दिन बाद श्रावणी पूर्णिमाके दिन मन्दिरके शिलान्यासका शुभ मुहूर्त निकला। श्रीनन्दबाबाकी इच्छा थी कि बाबूजी शिलान्यास करें, परंतु अत्यधिक व्यस्त, प्रायः अस्वस्थ तथा घंटों समाधिस्थ बाबूजीके सामने प्रस्ताव कैसे रखा जाय? कार्य-संकुल दिनचर्या और गीताप्रेसकी अनेक समस्याओंके अतिरिक्त एक कठिनाई और थी। आज राखीका दिन था, अतः ब्राह्मणोंका और बहिनोंका समुदाय बाबूजीके पास आनेवाला था। इन सब बातोंको सोचकर श्रीनन्द बाबाका साहस नहीं हुआ कि प्रस्ताव उनके सामने रखा जाय, किन्तु कार्यकी पवित्रता और भावकी प्रबलताने भी शान्त साहसमें भी ज्वार ला दिया।

श्रीहनुमानजीके मन्दिरके शिलान्यासका प्रस्ताव लेकर श्रीनन्दबाबा बाबूजीके पास गये। बाबूजीका कमरा बन्द था। कमरेमें बाबूजी संध्या कर रहे थे। छतपर माँके दर्शन हो गये। शुभ अवसर जानकर श्रीनन्दबाबा माँके पास गये। प्रणाम करके माँने श्रीनन्दबाबाका समुचित

सम्मान किया और आसन दिया। श्रीनन्दबाबाके लम्बे श्वेत केश और उनका चौड़ा उन्नत ललाट उनके गौरवके गीत गा रहे थे। श्रीनन्दबाबाने माँसे कहा– माँजी ! हम तो श्रीसम्प्रदायके हैं, जिसमें जगदम्बाकी प्रधानता है, जगदम्बाकी ही आराधना है, जगदम्बाके आशीर्वादसे कार्यका आरम्भ होता है और जगदम्बाके चरणोंमें सर्व समर्पण होता है। यहाँ बेतियाहातामें श्रीहनुमानजीके मन्दिरके निर्माणकी योजना है। कार्यकी सम्पन्नताके लिये आपका आशीर्वाद और आपकी आज्ञा लेने मैं आया हूँ।

माँको संकोच हुआ कि मेरे लिये वन्दनीय श्रीनन्दबाबा मुझ मूर्खासे क्या कहते हैं, परंतु संकोचके साथ-साथ उनका मन मन्दिर-योजनाका पूर्णतः समर्थन कर रहा था। स्वयं माँके हृदयमें भी श्रीहनुमानजी महाराजकी परम भक्ति है। वे प्रति मंगलवारको हनुमानजीको नैवेद्य चढ़ाती हैं तथा बाँटती हैं। माँ जब-जब राजस्थान जाती हैं, तब-तब सर्वदा ही सालासरके श्रीहनुमानजीके दर्शनार्थ जाया करती हैं। कोई विशेष संकट आनेपर हनुमानजीको मनौती भी मनाया करती हैं। सन् १९६३ में बाबूजीके हाथमें बड़ी तकलीफ थी। चिकित्सासे भी पीड़ा दूर नहीं हो रही थी, तब उन्होंने पीड़ा-निवृत्तिके लिये संकटमोचन हनुमानाष्टकके तथा हनुमानबाहुकके अनेक सामूहिक पाठ करवाये थे। माँने प्रफुल्ल मनसे तथा उल्लसित आँखोंसे योजनाका स्पष्ट समर्थन करते हुए कहा– इससे सुन्दर बात और क्या होगी ? हनुमानजीके मन्दिरको जरूर बनवाना चाहिये और हमारे लायक जो सेवा हो, वह आप कहें।

श्रीनन्दबाबाने कहा– आपकी आज्ञा मिली और आशीर्वाद मिला, यही क्या कम है ?

इसके थोड़ी देर बाद रुककर श्रीनन्दबाबाने कहा– अब बाबूजीसे मिलना है तथा उनसे अनुरोध करना है कि शिलान्यासके लिये थोड़ा समय निकालें और मन्दिरकी जमीनपर शामको पधारें।

माँने कहा– उनको जाना चाहिये और जानेमें ही उनकी शोभा है। वे जरूर जायेंगे। भागवत-भवनका शिलान्यास करनेके लिये वे गोरखपुरसे मथुरा गये थे। वे वहाँ जा सकते हैं तो यहाँ क्यों नहीं जायेंगे ? यह तो शहरके भीतर ही हो रहा है। चीज दोनों एक ही है।

माँके इन भावोंको सुनकर श्रीनन्दबाबा गद्‌गद हो गये। माँके ऐसा कहनेपर भी श्रीनन्दबाबाको यह विश्वास नहीं हो रहा था कि बाबूजी जा पायेंगे। बाबूजीकी व्यस्तता, कार्यभारकी बोझिलता, समस्याओंकी बहुलता, स्वास्थ्यकी शिथिलता आदिको देखकर श्रीनन्दबाबाके मनका संदिग्ध होना स्वाभाविक था। थोड़ी देर बाद बाबूजीके कमरेका द्वार खुला। श्रीनन्दबाबा कमरेके अन्दर गये। बाबूजीने प्रणाम करके उनका स्वागत किया और फिर विनम्र शब्दोंमें आनेका कारण जानना चाहा। श्रीहनुमानजीके मन्दिरकी सारी योजनाको बतला करके श्रीनन्दबाबाने कहा– आज श्रावणी पूर्णिमाके दिन ही मन्दिरका शिलान्यास है। ऐसी अभिलाषा है कि मन्दिरका शिलान्यास आपके शुभ हाथोंसे हो।

फिर कुछ रुककर श्रीनन्दबाबाने कहा– यदि आप किसी कारणसे नहीं जा सकते हों, तो आपका शुभाशयपूर्ण मंगलानुशासन ही मुझे प्राप्त हो जाय। आपका मंगलानुशासन आपकी उपस्थितिसे कम नहीं है।

श्रीनन्दबाबाके संकोचोद्‌भूत विनयोक्तिको सुनकर बाबूजीकी भावनाएँ स्नेहार्द्र हो उठीं।

उन्होंने श्रीनन्दबाबासे कहा— आपका आदेश मुझे शिरोधार्य है। आप जब कहें, मैं चलनेके लिये तैयार हूँ।

श्रीनन्दबाबाने बाबूजीके संकोचका निवारण करनेके लिये फिर कहा— मैं स्वयं आया हूँ, इसके कारण किसी संकोचमें पड़नेकी जरूरत नहीं है। यद्यपि मेरी आन्तरिक इच्छा अवश्य है कि यह कार्य आपके हाथोंसे ही सम्पन्न हो, पर मुझे इसमें भी पूर्ण सन्तोष हैं कि आपका मंगलाशीर्वाद प्राप्त हो जाय।

बाबूजीने कहा— मन्दिर-निर्माणका कार्य भी तो अपना ही काम है, अतः अवश्य चलूँगा।

शामको पाँच बजे चलनेका समय निश्चित हो गया। बाबूजी शामको कारसे गये। साथमें हमलोग भी दो-तीन व्यक्ति थे। शाम छः बजे बेतियाहातामें श्रीहनुमानजीके मन्दिरका शिलान्यास हुआ। कमिश्नर साहब, कलक्टर साहब, जिला अधिकारी आदि-आदि एवं गाँवके कुछ लोग आस-पास खड़े थे खुले मैदानमें, जहाँ था ऊपर आकाश और नीचे दूबका जंगल। जब बाबूजी मोटरकारसे बेतियाहाताके मैदानमें उतरे तो वहाँके सहज वातावरणको देखकर मुझको मथुराके भागवतभवनके शिलान्यासके उत्सवकी स्मृति हो आयी। बेतियाहातामें जो शिलान्यास हुआ, उस अवसरपर स्वागतमें कीर्तनकी उच्च ध्वनि नहीं थी, उपस्थित जनोंके हाथोंमें स्वागतकी पुष्पमाला नहीं थी, प्रचारका कहीं नामोनिशान नहीं था, आये हुए लोगोंके बैठनेकी कुछ व्यवस्था नहीं थी, फोटो लेनेके लिये कैमरेकी फ्लैश लाइट नहीं थी, स्वागत या अभिनन्दन भाषण नहीं था और समाचार-पत्रोंमें इसकी चर्चा नहीं थी, फिर भी इस शिलान्यासका कार्य विधिवत् एवं सोत्साह सम्पन्न हुआ। उस ओर मथुरामें थी भागवत भवनके शिलान्यासोत्सवकी भव्यता और इस बेतियाहातामें थी श्रीहनुमानजीके मन्दिरके शिलान्यासोत्सवकी सादगी। स्वयं श्रीनन्दबाबाने पूजा करवायी। पूजन-अर्चनके बाद बाबूजीने श्रीहनुमानजीके मन्दिरका शिलान्यास किया। उन्होंने नींवकी ईंट रखी तथा गारा लगाया। इस शिलान्यासमें भागवत भवनकी तरह न पत्थरकी ईंटें हैं और न चाँदीकी करनी है, पर उद्देश्यकी पवित्रता और भावनाकी कोमलता वही है। शिलान्यासके बाद कमिश्नर साहबसे बाबूजीने कहा— आजसे डेढ़ साल पहले इसी तरह मथुरामें भागवत भवनकी भी नींव रखनेका शुभ अवसर भगवानने प्रदान किया था।

शिलान्यासके बाद श्रीहनुमानजी महाराजकी जयकार बोली गयी तथा थोड़ी देरतक भगवन्नामका कीर्तन हुआ।

[२०] सरोजकी सँभाल

पंजाबके हाँसी नगरके एक सम्पन्न और सम्भ्रान्त अग्रवाल घरानेकी बात है। दिन भर कार्य करके श्रीअग्रवालजी कार्यालयसे रातको दस बजे घर आये। उनकी लड़की सरोजबालाने घरका दरवाजा खोला। वे थके-माँदे थे। उन्होंने अपने कपड़े उतारे, भोजन किया और घरकी छतपर जाकर वे सो गये। जब वे सबेरे उठे तो पता चला कि सरोज अपने कमरेमें नहीं है। सरोज अपने भाई-बहनके साथ सो रही थी। सुबह उठनेपर उन्होंने सरोजको नहीं पाया। बड़ी खोज की, पर कहीं कुछ पता नहीं चला। घरके और पास-पड़ोसके सभी लोग घबरा गये।

आजकल कुछ ऐसे गुण्डे भी हैं, जो लड़के-लड़कियोंको चुराकर पाकिस्तान ले जाते हैं।

तरह-तरहके वहम किये जाने लगे। जवान लड़कीके इस तरह गायब हो जानेसे माँ-बापको बड़ा सदमा पहुँचा। सरोजकी माँने कहा— मेरी लड़की मथुरा-वृन्दावनके अलावा और कहीं नहीं गयी है।

पता चलानेके लिये सगे-सम्बन्धी मथुरा, वृन्दावनकी ओर भेजे गये। जगह-जगह टेलीफोन किया गया और तार भेजा गया, पर कोई फल नहीं। घरके लोग सरोजके लिये बहुत चिन्तित हो उठे।

इन दिनों सरोजके मनमें अधिक विरक्ति जाग उठी थी। उसे जगत सुहाता नहीं था। वह सात-सात घंटे जप करती और आध्यात्मिक पुस्तकोंके स्वाध्यायमें लगी रहती। किसी संतका आश्रय और ईश्वर-दर्शनकी लालसा उसके मनमें जाग पड़ी थी। जब उसे अवसर मिलता, वह कमरा बन्द करके एकान्तमें बैठ जाती। एक-दो बार उसने अपनी माँसे कहा भी था कि मैं वृन्दावन जाऊँगी, पर उसकी बात हँसीमें टाल दी जाती थी।

रातको लगभग बारह-एक बजे सरोज मथुरा-वृन्दावनके लिये घरसे अकेली निकल पड़ी। राहमें संयोगसे एक किसी कुलीन, समझदार और सत्संगी महिलाका साथ मिल गया। उस महिलाके साथ दिल्ली आयी। उस महिलाने कहा— यदि सचमुच तुम आध्यात्मिक पथपर चलना चाहती हो और संतोंके आश्रयमें रहना चाहती हो, तो गीताप्रेस गोरखपुर जाओ। दिल्लीमें सरोजका विचार बदल गया। उसने दिल्लीसे मथुराकी नहीं, गोरखपुरकी रेल-टिकट ली और वह गोरखपुरके लिये चल पड़ी।

१ सितम्बर १९६६ की दोपहरमें सरोज गोरखपुर पहुँची और फिर गीतावाटिका आयी। उसे बाबूजीके पास पहुँचाया गया। एकान्तमें बाबूजीने उससे बात की। बाबूजीने बड़े प्यारसे बात की, उसे अपना आन्तरिक स्नेह दिया और शीशपर-पीठपर हाथ फेरकर उसको सान्त्वना दी। सरोज अपने घरसे एक पवित्र उद्देश्य और सच्ची नीयतसे निकली थी। उसने बाबूजीको सारी बात सही-सही बता दी। बाबूजीने उससे कहा— बेटी! तेरे माँ-बाप कितने परेशान हो रहे होंगे? जिस उद्देश्यको लेकर तू चली है, उसकी प्राप्ति घरपर रहकर भी हो सकती है। आजकल घरसे बाहर निकलना खतरेसे खाली नहीं है। सच्चे साधु अब मिलते ही कहाँ हैं? जो ईश्वरको वस्तुतः प्राप्त करना चाहता है, उसे घरपर ही रहकर साधना करनी चाहिये।

बाबूजीने बात-बातमें धीरेसे उसके पिताका नाम और पता पूछ लिया। फिर बाई (सौ. श्रीसावित्रीदेवी फोगला) को बुलाकर सरोजको सँभला दिया कि ठीकसे बड़े प्यारसे रखना। बाईने उसे पहननेके लिये वस्त्र दिये। स्नान करनेके बाद सरोजको बड़े प्यारसे खिलाया-पिलाया।

बाबूजीने माँसे कहा— देखो, यह सरोज कितनी भोली और सरल है? यह तो अच्छा हुआ कि यह यहाँ चली आयी, पर इस तरह जो अन्य लड़कियाँ भावुकतामें घरसे भागकर चली जाती हैं, यदि किसी गुण्डेके हाथ पड़ जायँ, तो उनका क्या होता होगा?

माँका मन करुणासे भर गया। बाबूजीने गोरखपुरसे सरोजके पिताको हाँसी तार दे दिया कि आपकी लड़की सरोज यहाँपर सुरक्षित है। आपको यहाँ आना चाहिये। इस तारके जवाबमें श्रीअग्रवालजीका तार हाँसीसे दूसरे दिन आ गया और ३ सितम्बर १९६६ को सरोजके

ताऊजी गोरखपुर पहुँच गये। ताऊजीके साथ एक सम्बन्धी और थे। वे लोग गीतावाटिका आये। नीचे ही सरोज खड़ी हुई मिल गयी। सरोजने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। सरोजको देखकर उनका हृदय प्रसन्न हो गया। परिवारकी जाती हुई प्रतिष्ठा वापस मिल गयी। एक खोया हुआ धन वापस मिल गया। पासमें ही बाई (सौ. श्रीसावित्रीबाई फोगला) खड़ी थी। सरोजकी थोड़ी देरतक अपने ताऊजीसे बात हुई। जिस आत्मीयतासे बाईने, माँने और बाबूजीने सरोजको अपने पास रखा, उसे सुनकर उसके ताऊजी मुग्ध हो गये। उन्होंने सरोजसे कहा— यद्यपि बिना कहे घरसे बाहर निकलकर तुमने परिवारका अनुशासन भंग किया है, किन्तु भगवानकी कृपासे तुम ऐसे घर आयी, जो अपने घरसे भी बढ़कर है और जो सबका अपना घर है। इस घरमें आनेसे एक ऐसा सम्बन्ध जुड़ गया है, जिससे हमारे कुलके गौरवकी अभिवृद्धि ही हुई है।

फिर सरोजको लेकर ताऊजी ऊपर गये और ताऊजीने बाबूजीको प्रणाम किया। बाबूजीसे वे क्या कहते? जिन्होंने एक पराई बेटीको अपनी बेटीकी तरह प्यार किया, अपनी बेटीकी तरह घरमें रखा, अपनी बेटीसे बढ़कर उसकी इज्जत समझी और इज्जत की, उन्हें क्या कहें? कहनेके लिये शब्द ही कहाँ हैं? नेत्रोंकी बहती हुई सजलताने और कपोलोंकी कृतज्ञताभरी आर्द्रताने सारा अनकहा कह दिया। सरोजके ताऊजीको खिलाया-पिलाया गया। बाबूजीने कहा— गोरखपुर आये हैं तो श्रीगोरखनाथजीके दर्शन कर आइये।

सभी दर्शन करने गये। फिर उन्होंने गीताप्रेस भी देखा। श्रीगोरखनाथ तथा गीताप्रेस हो आनेके बाद अब सरोजको अपने ताऊजीके साथ वापस जाना था। दो दिनमें ही इतनी घुल-मिल गयी कि बाबूजीको बाबूजी, माँको माताजी और बाईको बहिनजी कहने लगी। जाते समय माँने पूछा— भोजन कर लिया क्या?

सरोजने कहा— नहीं माताजी, पर इच्छा भी नहीं है।

माँने सिरपर हाथ फेरते हुए कहा— पर भूखे थोड़े ही जाते हैं।

फिर माँने एक बहिनसे कहा— जा, एक छन्नीमें कलेवा ला। देख, काफी लाना।

वह बहिन कलेवा लेकर आयी। अपने हाथसे माँने सरोजको खानेके लिये दिया। फिर दो नयी कुर्ती, दो नये सलवार और दो नयी चुन्नी पहननेको दी। हाथमें इक्कीस रुपये दिये और ढेर सारे फल दिये। अपनी बेटीकी तरह सरोजको विदाई दी। सरोज माँके प्यारको समेट नहीं पायी। वह आँखोंके कगारोंसे बहने लगा। माँके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया। उसने बड़े भारी मनसे बिदायी ली। बाबूजीने पीठपर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया। माँ और बाबूजीसे विदा होकर सरोज जब नीचे जाने लगी, तब सीढ़ियोंसे नीचे उतरते समय मैंने उससे कहा— बहिन! गीतावाटिकाको भूल मत जाना।

सीढ़ियोंपर ठहरकर मेरी ओर देखते हुए सरोजने कहा— मेरी किस्मत चेत गयी, जो मैं यहाँ आयी। मैं क्या आयी, भगवान लाये हैं। भला इस स्थानको कैसे भूल सकती हूँ।

[२१] राधाष्टमीपर विदाई

२३ सितम्बर १९६६ को राधाष्टमीका उत्सव सम्पन्न हुआ। उत्सवमें भाग लेनेके लिये बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, पंजाब, बम्बई, राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र आदि प्रदेशोंसे आये हुए अतिथि वापस जानेकी तैयारीमें लगे थे। गोरखपुरके चारों ओर

४०-५० मीलतककी दूरीका जितना क्षेत्र है, उससे आया हुआ विशाल जन-समूह भी वापस जा रहा था। एक-डेढ़ हजार व्यक्ति उत्सवमें सम्मिलित होकर घर लौट रहे थे। लोग माँ और बाबूजीसे मिलकर, प्रसाद पाकर तथा आशीर्वाद लेकर जाना चाहते थे।

अपराह्न चार बजे उत्सवके सम्पन्न होते ही जानेवाले माँ तथा बाबूजीके पास आने लगे। आनेका क्रम रात्रिके दस बजेतक चलता रहा। समझमें नहीं आता कि बाबूजीका शरीर किस धातुका बना है? आयु ७४ वर्षकी है, इसके बाद भी उनके वृद्ध शरीरमें इतना सामर्थ्य कहाँसे फूट पड़ता है? अष्टमीके दिन सुबह आठ बजेसे लेकर रात्रिके बारह बजेतक उत्सवके कार्यक्रममें व्यस्त रहे। नवमी तिथिको पुनः सुबह आठ बजेसे अपराह्नके चार बजेतक दधि-कर्दमोत्सवके कार्यक्रममें व्यस्त रहे और फिर मिलनेवालोंका क्रम चालू हो गया था। इस सारे श्रमने उनको अत्यधिक थका दिया। वे स्वयं कितना ही थक गये हों, पर विदाई देते समय श्रीमुखपर वही प्रसन्नता, अधरोंपर वही मुस्कान, नयनोंमें वही आत्मीयता और वाणीमें वही सरसता। राधाष्टमी उत्सवके अलौकिक आध्यात्मिक वातावरणने अतिथियोंके अन्तरमें न जाने कितना अनुपम भगवद्रस उड़ेल दिया, न जाने कितना दिव्य प्रेमरस पिला दिया कि उस रससे छके और सिक्त सभी आगन्तुक माँ-बाबूजीको अपनी सुमनाञ्जलि समर्पित करते न अघाते। किसीके सुमन समर्पित होते दैन्यके रूपमें, किसीके सुमन समर्पित होते आँसूके रूपमें और किसीके सुमन समर्पित होते मूक निवेदनके रूपमें। जिसने जैसे समर्पित किया, उसको उसी रूपमें बाबूजी स्वीकार करते। *'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'*, अपितु उनसे कई गुना अधिक अपना प्यार तथा अपना आशीर्वाद देकर उन्हें विदाई देते। विदाईका जो क्रम नवमी तिथिके दिन चला, वही क्रम दशमी तिथिके सारे दिन चलता रहा। शरीर थककर चूर-चूर हो रहा था, इसके बाद भी बाबूजीमें वही उमंग, वही स्फूर्ति, वही तत्परता, वही आत्मीयता।

बाबूजी विदाई दे रहे थे अपने कमरेमें बैठे हुए और माँ विदाई दे रही थी उधरके दूसरे कमरेमें लेटी हुई। माँकी तबीयत ठीक नहीं। सप्तमी-अष्टमीको रक्त-चापकी परेशानी काफी बढ़ गयी थी। अष्टमी, जो जन्मोत्सवका पावन दिन था, उस दिन बाबूजीने साफ कह दिया था कि माँ पंडालमें नहीं जायेगी, पर भाई कृष्णचन्द्रका मन था कि माँ जरूर जाये। बाबूजीने मुझसे कहा— जाकर उससे पूछ लो, वह जायेगी क्या? भरसक उसे नहीं जाना चाहिये। वहाँ जानेसे और लगातार बैठनेसे उसकी तबीयत और खराब हो जायेगी, अतः नहीं जाना चाहिये।

मैंने जाकर माँसे बाबूजीकी बात ज्यों-की-त्यों कह दी। माँ खाटपर लेटी थी। लेटे-ही-लेटे माँने कहा— नहीं रे, जाऊँगी जरूर।

और माँ अस्वस्थावस्थामें ही पंडालमें गयी। अस्वस्थ होते हुए भी उत्सवमें लगातार चार घंटे बैठी रही। यही अस्वस्थता नवमीके दिन भी थी। पारिवारिक चिकित्सक डाक्टर चक्रवर्तीके मना करनेपर भी माँ नवमीके दिन होनेवाले दधि-कर्दमोत्सवमें गयी। कई घंटे बैठी रही। माँकी तबीयत पहलेसे ही खराब थी। अष्टमी और नवमी तिथिके श्रमने उनके शरीरको और भी थका दिया। अत्यन्त श्रमित एवं रुग्ण माँ खाटपर लेटी थी, परंतु उनका वात्सल्य भी धन्य है। खाटपर तकियेके पास छन्नी रखी थी और छन्नीमें रोली और चावल रखे थे। पास ही प्रसाद और फल रखा था। जो भी आता, माँको प्रणाम करता। माँ उनके प्रणामको स्वीकार करती, तिलक लगाती

और फल देती। जिन्हें प्रसाद नहीं मिला था, उनको प्रसाद देती। शीशपर, पीठपर हाथ फेरती और अन्तमें हलकी-सी मुस्कान, वात्सल्य भरी दृष्टि तथा मिश्री-सी वाणीके द्वारा आगन्तुकको विदाई देती। आगन्तुकोंको क्या पता कि माँका शरीर कितना श्रमित और रुग्ण है?

क्या माँ और क्या बाबूजी, दोनोंका ही ध्यान अपने शरीरपर नहीं है। अपने शरीरके और अपने स्वास्थ्यके मूल्यपर भी हर आगन्तुकको पूर्ण सम्मान देते थे, आन्तरिक स्नेह देते थे, अलौकिक रस देते थे और देते थे प्रेरणा एक दिव्य जीवनकी, जिसके वे स्वयं मूर्तिमान स्वरूप रहे।

[२२] गोभक्त-दम्पति

गाय हिन्दू धर्म और संस्कृतिका अभिन्न अंग है। स्वतंत्रताके बाद भी भारतमें गोवंशकी हत्याका होते रहना देशवासियोंके माथेपर कलंक-सदृश है। गोवंशकी हत्याकी बन्दीके लिये अनेक प्रयत्न हुए। इन सभी प्रयत्नोंमें 'सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति' द्वारा संचालित सन् १९६६ के नवम्बर-दिसम्बर वाले आन्दोलनका विशेष स्थान है। यह नहीं है कि इससे पहले गोरक्षाके लिये आन्दोलन नहीं हुए। हुए, पर अपने वैयक्तिक रूपमें। कभी कोई व्यक्ति, कभी कोई संस्था, कभी कोई सम्प्रदाय, सभी अपने निजी स्तरपर करते, पर इस आन्दोलनको 'सर्वदलीय' बनानेका श्रेय बाबूजीको है।

सन् १९६६ के जून मासकी बात है। बाबूजी स्वर्गाश्रम (ऋषीकेश) में थे। इसी समय दिल्लीसे अनेक प्रमुख कार्यकर्ता जैसे श्रीविश्वम्भरप्रसादजी शर्मा मन्त्री भारत गो-सेवक समाज, पूज्य श्रीआनन्दस्वामीजी मन्त्री भारत साधु समाज, श्रीप्रेमचन्दजी गुप्ता, लाला श्रीलक्ष्मणदासजी आदि बाबूजीके पास पहुँचे। उन्होंने कहा— किसी प्रकार गोकी रक्षा होनी चाहिये, इसके लिये प्रयत्न करना चाहिये और इस प्रयत्नमें भारतके सभी धर्माचार्य, सभी सम्प्रदाय, सभी राजनैतिक दल, सभी प्रमुख व्यक्तियोंका प्रतिनिधित्व एवं सहयोग हो। इसी नीयतसे हमलोग आपके पास आये हैं।

बाबूजीने प्रोत्साहित करनेके साथ-साथ वस्तुस्थितिसे अवगत कराते हुए कहा— यदि ऐसा हो जाय तो कितना सुन्दर हो, पर मुझे आशा नहीं है। भारतमें सभीकी अपनी-अपनी डफली, अपना-अपना राग है। पूज्य श्रीकरपात्रीजीका प्रयास अलग है। पूज्य ब्रह्मचारीजीका प्रयास अलग है, अन्य महामण्डलेश्वरोंका प्रयास अलग है। मुझे तो सफलताकी आशा नहीं लगती।

श्रीप्रेमचन्दजीने कहा— कम-से-कम ऐसा प्रयास तो करें। हो सकता है कि प्रयत्न करनेसे शायद सफलता मिल जाय और सभी मिलकर गोरक्षा आन्दोलनके लिये सम्मिलित प्रयास करें। इस दिशामें पहला काम तो यह करना है कि पूज्य श्रीकरपात्रीजी महाराजका तथा पूज्य श्रीब्रह्मचारीजीका एक स्थानपर हस्ताक्षर हो।

यद्यपि मनमें निराशा थी जरूर, परंतु बाबूजी इसके लिये सहमत हो गये। बदरीनाथजीकी यात्रासे लौटकर २३ जून १९६६ को प्रातःकाल पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी बाबूजीसे मिलनेके लिये आये। उनके सामने सारी बातोंके श्वेत-श्याम पक्षको रखते हुए बाबूजीने कहा— हमको, आपको, पूज्य करपात्रीजीको सबको साथ मिलकर गोरक्षाके लिये आन्दोलन करना चाहिये।

पू. श्रीब्रह्मचारीजीने कहा— मैं तो तैयार हूँ, पर क्या करपात्रीजी साथ होना या लेना चाहेंगे?

बाबूजी पू. श्रीब्रह्मचारीजीके कथनकी वास्तविकतासे परिचित थे। पूज्य श्रीकरपात्रीजी महाराजके स्वभावमें अत्यधिक-सिद्धान्त-निष्ठा-जन्य जो विशेषाग्रह है, उसके कारण पू. श्रीब्रह्मचारीजीका ऐसा सोचना स्वाभाविक था। बाबूजीने कहा— आपका कहना मान लिया, पर आप लोगोंका यह उलाहना क्यों लेते हैं कि ब्रह्मचारीजी मिलकर काम करना नहीं चाहते। आप तो अपनी ओरसे सहयोग दीजिये ही।

पू. श्रीब्रह्मचारीजी सहमत हो गये। संयोगकी बात, इस समय पूज्य श्रीकरपात्रीजी महाराज भी ऋषिकेशमें विराज रहे थे। तुरन्त बाबूजी पू. श्रीब्रह्मचारीजीको तथा अन्य प्रमुख कार्यकर्ताओंको साथ लेकर श्रीकरपात्रीजीके पास गये। बाबूजीने अपने आनेका प्रयोजन व्यक्त करते हुए निवेदन किया— व्यक्तिगत स्तरपर अबतक बहुत प्रयत्न हो चुके। अब तो सभी दलोंका सहयोग लेते हुए सामूहिक ढंगसे गोरक्षाके लिये प्रयत्न करना चाहिये।

पूज्य श्रीकरपात्रीजीकी गायके प्रति निष्ठा सराहनीय है। संयुक्त प्रयासके लिये तुरन्त सहमत हो गये। अपराह्ण कालमें शपथ-पत्रपर पूज्य श्रीकरपात्रीजी, पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी और बाबूजीके हस्ताक्षर हो गये। यही 'सर्वदलीय' स्वरूपका बीजारोपण था। फिर तो उस शपथ-पत्रपर देशके प्रमुख-प्रमुख धर्माचार्योंके, राजनैतिक-सांस्कृतिक-सामाजिक संस्थाओंके प्रधानोंके और गणमान्य व्यक्तियोंके हस्ताक्षर हुए। पूज्य श्रीकरपात्रीजी महाराज तथा पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी महाराजके हस्ताक्षर एक स्थानपर होनेसे भावात्मक गतिरोधका निवारण हुआ था और बाबूजीके पहल और प्रयाससे इस आन्दोलनको सर्वदलीय स्वरूप मिला। यह इस आन्दोलनकी सबसे बड़ी विशेषता थी। इस आन्दोलनकी प्रगतिमें समय-समयपर गतिरोध उत्पन्न होते रहे। ये गतिरोध कभी पारस्परिक वैमनस्य, कभी व्यक्तिगत स्वार्थपरता, कभी सरकारी कुप्रयास, कभी शास्त्रीय सैद्धान्तिकता, कभी दलबन्दी आदिके कारण उत्पन्न हुए, परंतु बाबूजी इन गतिरोधोंके निवारणके लिये सतत प्रयत्नशील रहे, जिससे यह आन्दोलन सफल हो सके। दिल्लीमें ७ नवम्बर १९६६ को महाविराट जुलूस निकलनेवाला था। महाभियान समितिने सोचा कि यदि हमारे आन्दोलनको शृंगेरीके श्रीशंकराचार्यजी, जो उस समय दिल्लीमें ही विराज रहे थे, उनका भी यदि शुभाशीर्वाद प्राप्त हो जाय तो हमारे शुभ प्रयासको महान बल मिलेगा। इसी उद्देश्यसे उसी दिन प्रातः श्रीपुरी-शंकराचार्यजी महाराज, बाबूजी और श्रीमानकरजी आदि श्रीशृंगेरी-शंकराचार्यजी महाराजके पास गये। श्रीपुरी-शंकराचार्यने अनुरोध किया— आप चलनेकी कृपा करें तथा चलकर गोरक्षाके निमित्त प्रातः दस बजे निकलने वाले जुलूसको अपना आशीर्वादात्मक शुभ सन्देश प्रदान करें।

अपनी एकान्तप्रियताके कारण श्रीशृंगेरी-शंकराचार्यजीने जाना स्वीकार नहीं किया, बल्कि जानेके स्थानपर 'गो' शब्दको लेकर दोनों पूज्य शंकराचार्योंमें शास्त्रार्थ-सा चल पड़ा। बाबूजीने मनमें सोचा— यह तो बड़ा विलम्ब हुआ। जुलूसके निकलनेका समय हो चुका है। शास्त्रार्थके लिये दो घंटा क्या, दो दिन या दो मास भी कम है और भारतकी इन दो महान विभूतियोंके बीचमें मैं बोलूँ भी तो कैसे बोलूँ?

बाबूजीने थोड़ी देरतक प्रतीक्षा की। अधिक विलम्ब होता देखकर बाबूजीने पूज्य श्रीशृंगेरी-शंकराचार्यजीसे हाथ जोड़कर अनुरोध किया— स्वामीजी महाराज! आप स्वभावसे

एकान्तप्रिय हैं, अतः आपका जाना उचित नहीं। आप दोनों ही के श्रीचरणोंमें मेरा अनन्त प्रणाम है। आप दोनों ही विद्वान हैं। शास्त्रार्थका तो कहीं अन्त नहीं है, किन्तु अब विलम्ब हो रहा है। आप अपना आशीर्वाद लिखकर दे दें, इसीसे काम हो जायेगा।

पूज्य श्रीशृंगेरी-शंकराचार्यजीने यह स्वीकार कर लिया। असल बात यह थी कि पूज्य श्रीशृंगेरी-शंकराचार्यजी अपनी एकान्तप्रियताके कारण व्यक्त रूपसे सामने नहीं आना चाहते थे, इसी कारण उन्होंने चलनेके प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया। बाबूजीका प्रस्ताव मानो एक बीचका रास्ता था। बादमें पूज्य श्रीपुरी-शंकराचार्यजीने कहा– हनुमान! तुमने अपनी 'बनिया-बुद्धि' से बड़ा सुन्दर बीचका रास्ता निकाल लिया।

इस प्रकारके कई-एक प्रसंग हैं, जब कि बाबूजीकी सूझ-बूझसे चल रहे आन्दोलनके मध्य जब-तब उत्पन्न होने वाले गतिरोधोंका निवारण समय-समयपर होता रहा।

'कल्याण'का सहयोग भी कम नहीं था। जून १९६६ के बादसे प्रत्येक अंकमें गोरक्षा सम्बन्धी कोइ-न-कोई सामग्री प्रकाशित होती रहती थी। कभी किसीका लेख, कभी अपना ही वक्तव्य, कभी कविता, कभी घटना, कभी अपील, इस प्रकारकी सामग्री कल्याणमें बाबूजी देते रहते थे। उस समय कल्याणके लगभग डेढ़ लाख ग्राहक थे। पाठक तो न जाने कितने रहे होंगे। फिर तो बाबूजीके पास पत्रोंके आनेका ताँता लग गया। कोई जप-कीर्तन-पाठ-अनुष्ठानकी सूचना लिख करके भेज रहा था, कोई मनीआर्डर या चेक या ड्राफ्ट भेज रहा था, कोई सत्याग्रह या अनशनके लिये प्रस्ताव कर रहा था। १२ सितम्बर १९६६ को आन्दोलन सम्बन्धी कई बातोंके बारेमें निर्णय लेनेके लिये वाराणसीमें जो बैठक हुई थी, उसमें ही पूज्य श्रीकरपात्रजीने कह दिया था– भाई हनुमान! अर्थकी सारी व्यवस्थाका भार तुमपर है।

वहींपर अनुमान लगा लिया गया था कि इस आन्दोलनमें कई लाख रुपये व्यय होंगे और खर्च अनुमानसे अधिक हुआ, पर उस सारे खर्चकी व्यवस्था मुख्य रूपसे बाबूजीने की। श्रीसनातन धर्म प्रतिनिधि सभा, पंजाबके प्राण, स्वामी श्रीगणेशानन्दजीने अपने पत्रमें बाबूजीको लिखा– यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपने इस महान यज्ञका यजमान बनना स्वीकार कर लिया है।

आन्दोलनकी अर्थ-व्यवस्थाके भारका दायित्व और भी कई लोगोंने स्वीकार किया था, किन्तु इन सभी सूत्रोंसे मिलनेवाला सहयोग अपर्याप्त था। बाबूजी द्वारा धन-संग्रहका जो कार्य अधिकांशतः गुप्तरूपसे किया गया, वह बड़ा महत्त्वपूर्ण था और उसकी सराहना स्वयं पूज्य श्रीकरपात्रीजी महाराजने समय-समयपर की।

इस गोरक्षा आन्दोलनमें एक विशेष बात हुई। बाबूजी कभी भी सार्वजनिक कार्यमें व्यय होने वाले धनके लिये अपील नहीं करते। सदा कुछ दैवी संयोग रहा कि धन स्वतः खिंचा चला आता था। एक बार मेरी गलतीसे 'चतुर्धाम वेद भवन न्यास' की अपीलमें बाबूजीका नाम छप गया। जनतासे धन-संग्रहके लिये अपील की गयी थी। बाबूजीने इन छपे हुए कागजोंमेंसे अपना नाम काट देनेका आदेश दिया। मैंने बाबूजीसे कहा– इसे रहने दें, क्या बिगड़ता है?

तब बाबूजीने कहा– धन देनेके लिये मैं किसीसे अपील नहीं करता।

छपे हुए कागजोंमेंसे बाबूजीका नाम काट दिया गया। धनके लिये अपील न करनेका यह

निश्चय भी बाबूजीकी गोभक्तिमें बह गया। अपने कई निकट जनोंको बाबूजीने लिखा, प्रेरणा दी, प्रोत्साहित किया और इस आन्दोलनके लिये कितना अर्थ संग्रह हुआ, उसका उल्लेख करना यहाँ उचित नहीं।

बाबूजीने कल्याणमें छापनेके लिये जिस सामग्रीका लेखन-सम्पादन-चयन किया, विभिन्न समाचार-पत्रोंमें जो वक्तव्य भेजे, स्थान-स्थानकी सभाओंमें जो भाषण दिये, प्रेस-रिपोर्टरोंके प्रश्नोंके जो उत्तर दिये, देवाराधनके लिये जो अनुष्ठान किये-करवाये, यह जन-मानसको सामूहिक रूपमें प्रोत्साहित करनेकी दिशामें उनका एक सफल प्रयास था। व्यक्तिगत स्तरपर किये गये प्रयासके द्वारा ही उन्होंने अनुपम चेतना जगायी। बाबूजीको पता चला कि सरकारी-गैरसरकारी तौरपर यह प्रयत्न अत्यधिक रूपमें हो रहा है कि पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी अपना अनशन छोड़ दें। इस बातकी जानकारी मिलते ही बाबूजीने पत्र द्वारा उनसे निवेदन किया कि वे अपने व्रतपर अडिग रहें। अनशन भंग करवानेका यही प्रयत्न श्रीपुरी-शंकराचार्यजीके साथ भी हो रहा था। तब बाबूजी उनके श्रीचरणोंमें सुदृढ़ व्रत और निश्चयके लिये तार दिया था। आन्दोलनमें जैसे-जैसे तेजी आती गयी, बाबूजीका पत्र-व्यवहार वैसे-वैसे बढ़ता जा रहा था। विभिन्न सरकारी अधिकारियोंको प्रतिदिन पत्र या तार भेजते ही रहते थे। इसी प्रकार देशके विभिन्न क्षेत्रोंके प्रमुख व्यक्तियोंको तार या पत्र या वक्तव्यकी प्रतिलिपि भेजकर बाबूजी लोगोंको प्रेरणा देते, प्रार्थना करते, जिससे आन्दोलनमें शिथिलता न आवे, लोगोंका उत्साह कम न हो, कार्यकर्ताओंमें फूट न हो, विघटनका सरकारी कुप्रयास सफल न हो और किसी प्रकारसे भारतके भालसे गोहत्याका कलंक मिट जाय। अधिक क्या कहा जाय, बाबूजीने गुप्त रूपसे और सांकेतिक रूपसे परम पूज्या आनन्दमयी माँ, जिनके प्रति प्रधान मन्त्री इन्दिरागाँधीकी महान भक्ति थी, उनको कहलाया कि वे भी सम्मान्या इन्दिराजीको गोरक्षाके लिये प्रेरणा दें। गोरक्षाके लिये सामूहिक और व्यक्तिगत दोनों स्तरसे जन-मानसको प्रोत्साहित करनेका बाबूजीने अथक और अकथ प्रयास किया।

बाबूजीका विश्वास था कि दैवी कृपासे हमारी अनेक भौतिक विपत्तियोंका निवारण होता है तथा लक्ष्यकी सिद्धि होती है। मानव मात्र यदि कुछ नहीं कर सकता, तो कम-से-कम गोरक्षाके लिये अपने-अपने घरमें रहते हुए भगवानसे प्रार्थना कर सकता है, जप-अनुष्ठान कर सकता है। इसके लिये बाबूजीने मानवमात्रसे अपील की। अपील की गई कल्याणके माध्यमसे और उससे कल्पनातीत सफलता भी मिली। कोने-कोनेसे जपके, अनुष्ठानके, कीर्तनके, रुद्राभिषेकके, यज्ञके, प्रार्थनाके, पाठादिके समाचार आने लगे। इसके साथ ही बाबूजीने इस गोरक्षा आन्दोलनके कार्यकी सँभालके लिये अपने कई जिम्मेदार व्यक्ति दिये। उन्होंने गणमान्य व्यक्तियोंको अपना दृष्टिकोण समझानेके लिये, अपना संदेश पहुँचानेके लिये अपने सम्पादकीय विभागके प्रमुख व्यक्तियोंको विभागका आवश्यक काम छुड़वाकर स्थान-स्थानपर भेजा।

बाबूजीकी तरह ही चिर वन्दनीय गो-भक्ति है माँकी। माँकी भक्ति-भावनामें गम्भीरता है। वह विख्याति और प्रदर्शनसे दूर है। माँकी गो-निष्ठा अनन्य है। घरपर अपनी निजी गोशाला है। लगभग आठ-नौ गायें हैं। उनकी सँभालमें माँ स्वयं ध्यान देती है। राजस्थानमें जब-जब अकाल पड़ता है, गायोंकी समस्यामें माँ विशेष दिलचस्पी लेती है। इन दिनों गोरक्षा आन्दोलनकी चर्चा

प्रायः चल पड़ती थी। गायोंके वधकी चर्चा जब माँके सामने आती, माँका हृदय रो पड़ता था। ७ नवम्बर १९६६ को दिल्लीमें निकलनेवाले विराट जलूसमें भाग लेनेके लिये बाबूजी गोरखपुरसे प्रस्थान करने वाले थे। यह आशंका थी कि शायद दिल्लीमें बाबूजीकी गिरफ्तारी हो जाय। एक बार माँके पास कमरेमें कुछ महिलाएँ और भाई लोग बैठे थे। श्रीमोतीलालजी पारीक भी वहीं थे। श्रीमोतीजीने पूछा– माँ ! यदि बाबूजी गिरफ्तार हो गये, तब क्या होगा ? क्या तुम भी जेल चलोगी ?

श्रीमोतीजीके इस प्रश्नमें कुछ सच्ची जिज्ञासा भी थी और कुछ मधुर विनोद भी था। माँने धीरेसे एक हलकी मुस्कान बिखेर दी। बैठी महिलाओंने यही अर्थ लगाया कि माँने अपनी सहमति व्यक्त की है। फिर तो वहाँ एक विचित्र भावपूर्ण वातावरण उपस्थित हो गया। श्रीमोतीजीने माँसे कहा– तेरी सारी बेटियाँ, तेरे सारे बेटे जेलके दरवाजेपर ही धरना देंगे।

उस विचित्र भावपूर्ण वातावरणमें माँ, बाबूजीके जेलके तथा नजरबन्दीके पुराने विवरण सुनाने लगीं, जब वे कलकत्तेकी जेलमें तथा शिमलापालमें नजरबन्द रहे तथा माँ उनके साथ रही थी। बाबूजी जिसे उत्सर्गोन्माद कहा करते थे, जो बलिदानोल्लास बंगालके क्रान्तिकारियोंमें था, उसीकी कुछ-कुछ हलकी-हलकी झाँकी यहाँपर दिखलायी देने लगी। मेरे लिये यह पहला ही अवसर था, जब कि माँके इर्द-गिर्द बलिदानी भावनाओंका वातावरण सृष्ट हो गया हो।

दिल्लीमें ७ नवम्बर १९६६ को माँने महाविराट जुलूस भी देखा। उस विराट जुलूस और प्रदर्शनमें भाग लेनेवाले गोभक्तोंके पावन दर्शनसे माँ अपनेको वंचित नहीं होने देना चाहती थी। स्वस्थ न होते हुए भी माँ अपनी इच्छाका संवरण नहीं कर सकी और कई घंटेतक जुलूसको देखती रही। माँके साथ-साथ दिल्ली जानेवाला महिला समुदाय भी उस जुलूसको देखता रहा। जुलूसको देखकर घर आनेके बाद जब माँको पता चला कि पार्लियामेंट स्ट्रीटमें मंचके ऊपर और उसके आस-पास अश्रुगैस-गोली-आगजनी आदिका काण्ड हो गया है, तब बाबूजीके मंगलकी कामनाको लेकर माँ बहुत घबरा गयी। नारी हृदय अपने सर्वस्वको सदा सुरक्षित देखना चाहता है। यही बात माता कस्तूरबाके साथ थी। माँ कस्तूरबाने सदा ही महात्मा गाँधीजीका साथ दिया। प्रत्येक राजनैतिक-सामाजिक आन्दोलन या सुधारमें सहयोग दिया। वे जेल भी गयीं। यह सब ठीक था, पर जब भी गाँधीजी अनशन करते, वह अनशन चाहे छोटा हो या लम्बा, तब माँ कस्तूरबाका मन बड़ा अशान्त हो जाता। गाँधीजीका अनशन माँ कस्तूरबाके लिये सबसे बड़ी विपत्ति थी। ऐसी ही बात माँके साथ थी। इस दिल्लीवासकी अवधिमें जब-जब बाबूजीकी असुरक्षाकी स्थिति अथवा वैसी किसी सम्भावनाकी चर्चा या चित्र माँके सामने आया, माँ सदा ही चिन्ताकुल हो उठती थी। माँकी यही चाहना था कि ये (बाबूजी) सदा सुरक्षित, सकुशल एवं सानन्द रहें तथा सोत्साह गोरक्षाके लिये पूर्ण प्रयत्न करें। गोरखपुर लौटनेपर दिल्लीके गोलीकाण्डका हवाला देते हुए माँ यही कहती थी कि ये कालके गालमेंसे निकलकर आये हैं।

७ नवम्बर बाद २० नवम्बरको गोपाष्टमी आयी। प्रतिवर्षके समान ही इस वर्ष भी माँने गीतावाटिकामें गो-पूजनकी तैयारी की और गोपूजनके लिये गोशालामें गयी, पर माँका मन भारी था, इसीलिये कि श्रीपुरी-शंकराचार्यजी तथा श्रीब्रह्मचारीजीका आमरण अनशन इसी

गोपाष्टमीसे आरम्भ होने वाला था। सरकारने जनताकी गोरक्षाकी माँगको स्वीकार नहीं किया, अतः उन विभूतियोंको पूर्व-घोषित आमरण अनशन आरम्भ करना पड़ा। साथ-साथ अन्य कई साधुओंने एवं सद्गृहस्थोंने स्थान-स्थानपर आमरण अनशन आरम्भ किया। गोहत्या-निरोधके लिये जो-जो लोग अनशन कर रहे थे, उनके प्रति माँके मानसमें अपार सहानुभूति थी। महिला समुदायसे घिरी हुई माँने गोमाताका विधिवत् पूजन किया। पूजन करनेके बाद अपना आँचल पसार कर माँने अनशनकारियोंके मंगलके लिये तथा आन्दोलनकी सफलताकी याचना की। माँने गौओंको विभिन्न पदार्थ खिलाये, पर आज स्वयं भूखी रही। राष्ट्रव्यापी एक-दिवसीय सहानुभूति-अनशनमें माँने भी भाग लिया। श्रीपुरी-शंकराचार्यजीकी, श्रीब्रह्मचारीजीकी तथा अन्योंकी सहानुभूतिमें घरके किसी भी सदस्यने कुछ नहीं खाया।

ज्यों-ज्यों उनके अनशनकी अवधि लम्बी होती जा रही थी, त्यों-त्यों यह प्रसंग माँके लिये अत्यधिक कष्टदायी बनता जाता था। श्रीब्रह्मचारीजीसे अत्यधिक निकटताका सम्बन्ध था। तीस-चालीस वर्षका सम्पर्क था। माँने अपने हाथोंसे परोस-परोस करके उनको न जाने कितनी बार खिलाया था और परम पूज्य श्रीशंकराचार्यजीतो हिन्दूमात्रके लिये परम श्रद्धास्पद हैं। माँका हृदय यह कैसे सहन कर सकता था कि मेरे परम स्वजन और एक मेरे परम श्रद्धेय अनशनके द्वारा प्राणोंका विसर्जन करें ? माँके मनमें उनके कुशल समाचार जाननेकी बड़ी ही उत्सुकता रहती थी। माँका अखबारी जगत्से कभी कोई सरोकार नहीं, पर उन दिनों अवसर मिलनेपर माँ लोगोंसे अखबारमें अनशनकारियोंके समाचार सुनती। संतों-संन्यासियोंके आमरण अनशनसे माँका चित्त बड़ा व्याकुल रहता। माँ देवी-देवताओंसे यही मनौती करती कि किसी प्रकार गोभक्तोंकी रक्षा हो। माँ भगवानसे प्रार्थना करती, कातर प्रार्थना करती– हे नाथ ! हे दीन-बन्धु ! हे अशरण-शरण ! तुम ही रक्षा करो।

वस्तुतः माँ और बाबूजीकी गो-निष्ठा और गो-सेवा अपरिमेय और अनुपमेय है। 'सर्वदलीय' स्वरूपका बीजारोपण, आन्दोलनकी सफलताके लिये गतिरोध निवारण, कल्याणके द्वारा जन-जनतक प्रचार, विशाल व्ययके लिये अर्थकी व्यवस्था, सहयोगियों एवं कार्यकर्ताओंको प्रोत्साहन, देवाराधनके लिये सफल अपील, कार्यकी सँभालके लिये निजी व्यक्तियोंके भेजनेका प्रबन्ध, सरकारी-गैरसरकारी क्षेत्रके लोगोंको सही ढंगसे सोचनेके लिये अनुरोध, इस प्रकार और भी कई बातें हैं, जो बाबूजीके द्वारा सम्पन्न हुई। इस रूपमें बाबूजी द्वारा गोरक्षाके लिये किया गया प्रयास चिर स्मरणीय है। इसी प्रकार गोपूजन, अनशनकारियोंके लिये चिन्ता, देवी-देवताओंसे मनौती, व्रत-उपवास, सतत मंगल-कामना आदिके रूपमें माँकी मूक, किन्तु साथ ही गहरी गो-भक्ति भी चिर वन्दनीय है।

[२३] चिन्तित दोनों ही

सन् १९६६ के नवम्बर और दिसम्बर मासमें भारतका सम्पूर्ण वातावरण गोरक्षा आन्दोलनके कारण बड़ा क्षुब्ध हो रहा था। सत्याग्रही लोग जेल जा रहे थे और पूज्य श्रीपुरी-शंकराचार्यजी महाराज और श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी आमरण अनशन कर रहे थे। पूज्य बाबूजीने अपने निजी व्यक्ति श्रीमनोहरलालजी चौधरीको दिल्ली भेजकर नियुक्त कर रखा था, जिससे सारे समाचार सही रूपमें बाबूजीके पास गोरखपुर पहुँच सकें। दिसम्बरके अन्तिम

सप्ताहमें अकस्मात श्रीमनोहरजी रातको दस बजे गोरखपुर पहुँचे। श्रीराधाकृष्णजी बजाजने २५ दिसम्बर १९६६ को गोरक्षाके निमित्तसे एक सुझाव रखा था, जिसमें उनकी विशद योजना थी। श्रीबजाजजीके सुझावको लेकर ही श्रीमनोहरजी आये थे।

गोरखपुर आकर श्रीमनोहरजीने ज्यों ही कमरेमें प्रवेश किया, उन्होंने देखा कि बाबूजी बैठे-बैठे काम कर रहे हैं। प्रणाम करनेके उपरान्त श्रीमनोहरजीने श्रीबजाजजीसे भेंटका सारा विवरण सुनाया, उनकी योजनाका प्रारूप उनके सामने रखा और अन्तमें कहा— कल सबेरे ही दिल्ली वापस जाकर श्रीबजाजजीको उत्तर देना है।

बाबूजी श्रीमनोहरजीसे सारा विवरण सुनकर उस योजनाके प्रारूपको पढ़ने और उसका मनन करने लगे। बाबूजीको ऐसा लगा कि यह योजना पूज्य संत श्रीविनोबा भावेकी भावनाओंपर आधारित है और यदि सरकार मान ले तो स्वीकार करने योग्य है।

बाबूजीने उसी समय श्रीहरिकृष्ण दुजारीको और मुझको बुलाया। श्रीमनोहरजी तो वहीं थे ही। बाबूजीने अपने विचार लिखवाये। अब उन अभिव्यक्त विचारोंको टाइप करके कई प्रतियाँ तैयार करनी थी। टाइपका काम पूरा होते-होते रातके एक बज गये। हमलोगोंने यही सोचा— रातके एक बज रहे हैं। दिन भरके थके हुए बाबूजी सो रहे हैं, अतः उनको क्यों जगाया जाय। कागजपर हस्ताक्षर कल सबेरे करवा लिया जायेगा।

ऐसा सोचकर हम सभी लोग सोनेके लिये चले गये। दूसरे दिन सबेरे श्रीमनोहरजी सारे कागज लेकर बाबूजीके पास गये। उनके जाते ही बाबूजीने पूछा— रातको क्यों नहीं आये ?

श्रीमनोहरजीने कहा— रातको एक बज चुके थे। आप थके थे और सो रहे थे, अतः जगाना ठीक नहीं समझा।

बाबूजीने कहा— मुझको नींद आती है क्या ? मैं काफी रात तक तुम लोगोंकी प्रतीक्षा करता रहा। जब तुब लोग नहीं आये, तब मैं सो गया।

बाबूजीकी कार्य-निष्ठा, लक्ष्य-तत्परता, गो-भक्ति, आन्दोलन-चिन्ता आदिको देखकर श्रीमनोहरजीके मनमें श्रद्धा-भावनाकी बाढ़ आ गयी। कागजोंपर बाबूजीसे हस्ताक्षर करवाके श्रीमनोहरजी पूज्या माँके पास गये और उनको प्रणाम किया। श्रीमनोहरजीको देखते ही माँने पूछा— रातको सोते समय क्या ओढ़ा ? तुम्हारे पास तो ओढ़नेका बिछानेका सामान था ही नहीं। कितना कड़ा जाड़ा पड़ रहा है ?

श्रीमनोहरजीने माँसे पूछा— मेरे पास ओढ़नेका बिछानेका सामान नहीं है, यह बात आपको कैसे मालूम हुई ?

माँने बतलाया— रातको जब तुम स्टेशनसे गीतावाटिका आकर सीधे बाबूजीके पास चले गये और उनसे बात करने लगे, तब तुम्हारे बिस्तरको खोलकर मैंने टटोला था। तुम्हारे विस्तरमें रजाई थी ही नहीं। इसके बाद मैंने तुम्हारे लिये रजाई और गद्दा निकलवा करके रखा और रातके दो बजेतक मैं प्रतीक्षा करती रही। जब तुम नहीं आये, तब मैं सो तो गयी, पर यह चिन्ता बराबर बनी रही कि रात तुमने कैसे बितायी होगी।

अब श्रीमनोहरजी कुछ बोल नहीं पाये। उधर बाबूजीके मनमें गोरक्षाके लिये चिन्ता और इधर माँके मनमें स्वजनोंके लिये चिन्ता, इसे देखकर श्रीचौधरीजीका मन अत्यधिक

न्योछावर हो गया।

[२४] विनोदके क्षण

१२ दिसम्बर १९६६ को आदरणीया बाई (सौ. श्रीसावित्रीदेवी फोगला) वृन्दावनसे आयी थी। वहाँसे वह वृन्दावनके कई मन्दिरोंके प्रसाद लेकर आयी। सबेरे छतपर माँ अपने हाथसे सबको प्रसाद बाँट रही थी। वहींपर बाबूजी भी खड़े थे। माँकी इच्छा थी कि बाबूजी भी प्रसाद लें। श्रीराधारमणजीके मन्दिरके कुलिया-प्रसादको देनेके लिये माँने बाबूजीकी ओर हाथ बढ़ाया।

बाबूजीने पूछा— ले लूँ क्या ?

बाबूजीको चीनीकी शिकायत है, अतः मीठी चीज नहीं लेते। इसी कारण उन्होंने प्रश्नके मिस प्रसाद न लेनेकी इच्छा व्यक्त की थी।

माँने कुछ जोर देते हुए कहा— थोड़ा लेनेमें क्या हर्ज है ?

बाबूजीने धीरेसे हाथ फैला दिया और माँने प्रसाद दे दिया। बाबूजी श्रीराधारमणजीके प्रसादको खाने लगे। इसके बाद माँने श्रीबिहारीजीके प्रसादका वितरण किया। सबको प्रसाद देनेके बाद माँने बाबूजीको भी देना चाहा। बाबूजीने मना करनेके लिये प्रकारान्तरसे कहा— प्रसादमें चीनी है।

माँने कुछ मुलकते हुए कहा— यदि नहीं लेंगे तो श्रीबिहारीजी नाराज हो जायेंगे। फिर मैं कुछ नहीं जानती।

सभी उपस्थित लोग हँस पड़े। बाबूजीने भी हँसते हुए श्रीबिहारीजीका प्रसाद ले लिया।

[२५] माँके द्वारपर

१ फरवरी १९६७ को उत्तर प्रदेशके राज्यपाल श्रीविश्वनाथदासजी, राज्यपाल होते हुए भी भिक्षा माँगनेके लिये गीतावाटिकामें माँके द्वारपर आये। माँसे भिक्षा-याचनाका दृश्य भी बड़ा अनोखा था। उनके आनेका समाचार मिलते ही माँ घरके बरामदेमें खड़ी हो गयी। पास ही बाई (सौ. श्रीसावित्रीदेवी फोगला) खड़ी थी। बाबूजी भी खड़े थे। वाटिकाके लोग तथा बाहरसे आये हुए अनेक व्यक्ति खड़े थे। सम्मान्य श्रीविश्वनाथदासजी हिन्दी नहीं जानते, अतः उन्होंने अँग्रेजीमें बाबूजीसे कहा— आप मेरी 'अन्नदानम्' वाली योजना तथा मेरी प्रार्थना सावित्रीकी माँको समझा दें। 'अन्नदानम्' के लिये सबसे पहली भिक्षा यहीं माँगने आया हूँ। विद्यार्थियोंके लिये भीख माँगनेमें मुझ ब्राह्मणको लज्जा क्या ?

बाबूजीने माँसे कहा— आप श्रीविश्वनाथदासजी चारों धाममें चार वेद-विद्यालय स्थापित करने जा रहे हैं। योजना यह है कि यदि कोई एक व्यक्ति पाँच हजार रूपये जमा करा दे तो उसके ब्याजसे एक विद्यार्थीके लिये अन्नकी व्यवस्था सदा चलती रहेगी। इसी पाँच हजारको माँगनेके लिये तुम्हारे पास आये हैं।

माँका ऐसे शुभ कार्योंमें सदा ही सहयोग रहा है, पर बाबूजीकी उपस्थितिमें वह बोले भी कैसे ? माँने थोड़ा-सा मुस्कुरा दिया। माँकी मुस्कानका अर्थ बाबूजी तुरन्त समझ गये और उन्होंने माँकी ओरसे ही सम्मान्य श्रीविश्वनाथदासजीको उत्तर दिया— ये (माँ) पाँच हजार देंगी।

फिर श्रीविश्वनाथदासजी अँग्रेजीमें कुछ बोले। उसका अनुवाद करते हुए बाबूजीने माँसे

कहा— इतना ही नहीं, आप (श्रीविश्वनाथदासजी) की ओरसे आपको इस योजनाका प्रचार करना चाहिये तथा दानी व्यक्तियोंसे 'अन्नदानम्' के लिये धन दिलवाना चाहिये।

माँने इसका भी उत्तर उसी मन्द मुस्कानसे दिया। बाबूजीने माँकी ओरसे श्रीविश्वनाथदासजीसे कहा— इसके लिये ये प्रयत्न करेंगी।

'अन्नदानम्' वाली यह योजना कुछ ही दिन पूर्व सम्मान्य श्रीविश्वनाथदासजीके मनमें स्फुरित हुई थी और इस योजनाके क्रियान्वयनका आरम्भ हुआ माँके द्वारसे। प्रथम प्रयासमें ही प्राप्त सफलतासे श्रीराज्यपाल महोदयका मन उल्लसित हो गया और अत्यधिक सद्भावना व्यक्त करते हुए वे प्रसन्न मनसे विदा हुए। माँ और बाबूजीकी प्रेरणासे उसी समय आदरणीया श्रीललिता भाभीजी (श्रीमती ललितादेवीजी डालमिया) ने भी पाँच हजारका दान उस योजनाके लिये दिया।

फिर अढ़ाई मास बादकी बात है। माँ, बाबूजीको कमरेमें चाय पिलानेके लिये आयी थी। बाबूजी चाय तो पी चुके थे, पर अभी हाथ-मुँह धोये नहीं थे। जूठे मुँह और जूठे हाथ ही पलंगका सहारा लिये हुए आरामसे बैठे हुए थे। वहाँपर कुछ और लोग भी उपस्थित थे। आदरणीया बहिन श्रीगायत्रीबाई बाजोरिया भी बैठी थी। श्रीगायत्रीबाईको देखकर बाबूजीने कहा— कल सावित्रीकी माँ तुम्हारी बड़ी सिफारिश कर रही थी। वह कह रही थी कि गायत्री कितनी दूरसे आयी है और आये हुए कितने दिन हो गये, पर आप उससे बात नहीं करते। सो तुमने सावित्रीकी माँसे कुछ कहा था क्या?

संकोचमें दबी श्रीगायत्रीबाईने गर्दन हिलाते हुए दबी जबानमें कहा— एक बार भी नहीं।

मैंने मनमें कहा— माँ कितना ख्याल रखती है हर एकका।

बाबूजीने कहा— कल सावित्रीकी माँ तुम्हारी बड़ी सिफारिश कर रही थी सो आज हम तुमसे बात करेंगे।

तभी माँने कहा— आप वेद भवनके लिये इतना धन-संग्रह कर रहे हैं। इससे भी क्यों नहीं लेते। फिर इसका पैसा किस काम आयेगा?

बाबूजीने कहा— यह बेचारी तो देती-ही-देती रहती है। अभी कुछ समय पहले अमुक-अमुक कार्यके लिये बहुत ज्यादा धन इसने दिया है। अब नहीं लेना है।

माँने कहा— जो दे दिया, वही अपना है, बाकी सब पराया है। बाकी तो सब यहीं रह जायेगा।

बाबूजीने तुरन्त अनुमोदन किया— सत्य तो यही है। जितना अपने हाथसे दान कर दिया, वही अपना है। वही स्थायी पूँजी है, वही 'साथ जाता' है।

माँको शायद यह बात याद भी नहीं होगी कि सम्मान्य श्रीविश्वनाथदासजी धन-संग्रहके कार्यमें सहयोग देनेके लिये अनुरोध कर गये थे, पर माँ अनजानेमें ही वह कार्य कर रही थी। जो काम बाबूजी करें, वही काम माँका भी तो है।

[२६] श्रीशंकराचार्यजीका शुभागमन

परम पूज्य अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीशृंगेरी पीठाधिपति शंकराचार्य स्वामी श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराज काठमाण्डू जा रहे थे और उस यात्राके क्रममें आप ४ फरवरी १९६७ को गोरखपुर पधारे और गीताप्रेसके अतिथिभवनमें ठहरे। अपने चार दिवसीय विश्रामके बाद ८ फरवरी १९६७ को पूज्य श्रीशंकराचार्यजी आगे यात्रा करनेवाले थे। विदाईके अवसरपर माँ, बाबूजी और बाई ये लोग गीताप्रेसके अतिथि-भवन गये। महान संतोंका दर्शन करना और उनका सम्मान करना, इस परिवारका स्वभाव है।

पूज्य श्रीशंकराचार्यजीके पास पहुँचकर सबने विनम्र प्रणाम किया। बाबूजीने माँका तथा बाईका, साथ ही अन्य उपस्थित स्वजनोंका परिचय कराया। पूज्य श्रीशंकराचार्यजीका दर्शन करके माँ और बाईको बड़ी प्रसन्नता हुई। स्वस्ति-वाचन करके पूज्य श्रीशंकराचार्यजीने बाबूजीको नारियल दिया तथा कहा– इसकी खीर बनाकर खा लीजियेगा। दक्षिणमें इसके प्रयोगकी यही विधि है।

फिर स्वस्ति-वाचन करके माँको फल दिया। पूज्य श्रीशंकराचार्यजीने बाबूजीकी विनम्रता और माँके शीलकी बड़ी सराहना की। सराहनाके प्रवाहमें गीताप्रेसकी प्रशंसा करते हुए श्रीशंकराचार्यजीने कहा– गीताप्रेसने धर्म-रक्षाका महान कार्य किया है। आज हम वैकुण्ठमें हैं। उस वैकुण्ठमें जानेके बाद उसका वर्णन नहीं कर सकते, पर इस वैकुण्ठका स्थान-स्थानपर वर्णन करेंगे। गीताप्रेस वैकुण्ठ है। कल्याणमें जो बात शास्त्रके नामपर छपती है, उसका हम प्रमाण नहीं खोजते। कल्याणमें वही बात छपती है, जो शास्त्रीय होती है और जो प्रमाणिक होती है। मैं पहले कल्याण देखा करता था और अब भी देखता हूँ। मैं कल्याणमें छपे प्रिय श्लोकोंको याद कर लिया करता था, इसलिये कि ये प्रामाणिक हैं।

गीताप्रेसके वातावरण एवं कार्यकर्ताओंकी श्रद्धासे पूज्य श्रीशंकराचार्यजी इतने प्रभावित हुए कि आप दो दिनके स्थानपर चार दिन रुक गये और विश्रामके चौथे दिन गीताप्रेसके मुद्रणालयका निरीक्षण करके देवरियाके लिये प्रस्थान किया। माँ और बाबूजीको पूज्य श्रीशंकराचार्यजीका आतिथ्य करके बड़ी प्रसन्नता हुई। गीताप्रेसकी स्थापनाके बाद विगत ४० वर्षमें यह पहला ही अवसर था कि गीताप्रेसमें अपने धर्माचार्यका पदार्पण हुआ।

शिवरात्रिके शुभ दिन काठमाण्डूमें भगवान पशुपतिनाथजीका दर्शन करके पूज्य श्रीशंकराचार्यजी नेपालसे लौटे तथा श्रीबद्रीनाथ-केदारनाथके दर्शनके लिये उत्तराखण्डकी ओर उन्होंने प्रस्थान किया। श्रीकेदारनाथजीको जाते हुए २२ मई १९६७ को पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज ऋषिकेश पधारनेवाले थे। श्रीशिवानन्द आश्रमके प्रधान स्वामी श्रीचिदानन्दजी महाराजने बाबूजीको पूज्य श्रीशंकराचार्यजीके पधारनेकी सूचना दी। बाबूजी उस समय गीताभवन, स्वर्गाश्रममें सत्संगके लिये आये हुए थे। बाबूजीने तुरन्त स्वामी श्रीचिदानन्दजीसे अनुरोध किया– पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज गीताभवन अवश्य पधारनेकी कृपा करें।

उनके पधारनेका कार्यक्रम भी बन गया। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजके शुभागमनसे गीताभवन पवित्र हो गया। मन्दिरमें भगवान श्रीलक्ष्मीनारायणजीका दर्शन, चित्रोंमें अंकित सारी रामकथाका अवलोकन, पत्थरोंपर खुदी हुई गीताकी सराहना, गीताप्रेसके कार्यकी प्रशंसा

और गीताभवन हॉलमें उपस्थित सत्संगी भाइयोंको उपदेश आदिके पश्चात् पूज्य श्रीशंकराचार्यजी गीताभवनसे परमार्थनिकेतन जाने लगे। मार्गमें परमार्थनिकेतनके स्वामी श्रीसदानन्दजीने उनका स्वागत किया। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज, स्वामी श्रीसदानन्दजी तथा बाबूजी साथ-साथ परमार्थ निकेतन जा रहे थे। मार्गके दोनों ओर खड़ा हुआ श्रद्धालु दर्शक समुदाय श्रीशंकराचार्यजी महाराजकी जयकार बोल रहा था। चलते-चलते मार्गमें स्वामी श्रीसदानन्दजीने बाबूजीसे पूछा— आपका स्वास्थ्य अब कैसा है ?

बाबूजीने संक्षिप्त उत्तर दिया— अब ठीक है।

स्वामीजीने अपना आशय स्पष्ट करते हुए कहा— मेरा मतलब आपकी मस्तिष्ककी स्थितिसे है।

बाबूजीने पुनः संक्षिप्त उत्तर दिया— इस समय सही है।

यह भला कैसे उचित था कि पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजके समक्ष अपनी भाव-समाधिकी चर्चा आवे, पर वह चर्चा तो आ ही गयी। स्वामी सदानन्दजी और बाबूजीके पारस्परिक संलापका अर्थ पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज समझ नहीं सके। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजने जिज्ञासा प्रकट की, तब स्वामी सदानन्दजीने कहा— महाराजजी ! यह हमारी निजी बात है और निजी शब्दावली है, जिसका अर्थ हम ही लोग समझते हैं, वैसे आपके समक्ष विनम्र निवेदनके रूपमें दो शब्द रख दूँ कि भाईजी हमारे इस क्षेत्रमें हमलोगोंके बीच एक जीवन्मुक्त पुरुष हैं। मेरे श्रद्धेय हैं। अधिक क्या बताऊँ, जब मेरे गुरुजीके लिये श्रद्धेय हैं तब मेरे लिये तो और भी अधिक श्रद्धेय हैं। भाईजीको आजकल समाधि लग जाती है और बाह्य जगतका ज्ञान नहीं रहता।

इतना सुनते ही पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजको आश्चर्य हुआ तथा विस्फारित नेत्रोंसे और खुले अधरोंसे बाबूजीको देखकर पूछा— क्या ऐसा ?

बाबूजी इस प्रसंगको नहीं चाहते थे, किन्तु वह उपस्थित हो गया, अतः संकुचित वाणीमें विवशतः कहना पड़ा— महाराज ! यह आप महात्माओंका ही आशीर्वाद है। जब कभी ऐसा होता है तो बाह्य चेतना लुप्त हो जाती है तथा कभी-कभी बाह्य चेतना १५, १५ घंटेके लिये लुप्त रहती है।

ऐसा सुनकर पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजको अत्यधिक प्रसन्नता हुई तथा बाबूजीको बहुत साधुवाद दिया। परमार्थ-निकेतनको देखकर परम पूज्य श्रीशंकराचार्यजी अब स्वर्गाश्रमको जा रहे थे। मार्गमें ही पड़ती थी डालमिया कोठी। ज्यों ही माँको पता चला कि पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज इधरसे जाने वाले हैं, वह तुरन्त कोठीसे बाहर निकली। हाथमें फलोंका थाल लिये कोठीके द्वारपर खड़ी हो गयी। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजके आते ही माँने झुककर उनकी चरणपादुकाको प्रणाम किया। चरणोंपर फलोंका थाल रखा। बाबूजीने माँका परिचय कराया। परम पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजने शुभाशीर्वाद दिया। एक बार तो शुभ दर्शन गोरखपुरमें हुआ ही था, आज पुनः दर्शन करके माँको बड़ी प्रसन्नता हुई।

स्वर्गाश्रमकी गद्दी थोड़ी ऊँचाईपर है। अपनी शारीरिक अस्वस्थताके कारण बाबूजी ऊपर नहीं जा सके। नीचे ही डाकघरके पास एक स्थानपर रुक गये और वहीं बैठे-बैठे पूज्य

श्रीशंकराचार्यजीके वापस लौटकर आनेकी प्रतीक्षा करने लगे। जब बाबूजी वहाँ पेड़की छायामें बैठे हुए थे, तब मैंने बाबूजीसे कहा– माँ कमरेमें लेटी थी। मैंने जाकर माँसे कहा कि पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज आ रहे हैं। इतना सुनते ही वह तुरन्त उठी और कोठीके बाहर आकर खड़ी हो गयी।

बाबूजीने बताया– उसकी संतोंमें बड़ी श्रद्धा है। उसमें तो संतभक्ति ऐसी है कि संत-दर्शनकी बात कहनेपर वह गंगाके उस पार तुरन्त चली जाय।

थोड़ी देरमें पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज वापस आ गये। बाबूजी उनके साथ गये। घाटपर नौका लगी थी। प्रणाम करके तथा नौकामें पूज्य श्रीशंकराचार्यजीको बैठाकर श्रीचरणोंको श्रद्धासिक्त विदाई दी। घाटसे लौटते समय राहमें बाबूजीने कहा– बहुत देरतक भीड़में रहनेसे अब मन उपराम हो रहा है। साथ ही माथा भी कुछ 'गड़बड़' सा हो रहा है। कोठीपर जाते ही कमरा बन्द करूँगा।

लौटकर बाबूजी कोठीपर आये और देखा कि माँ कोठीके बाहरी बरामदेमें खड़ी है। कोठीमें प्रवेश करते ही बाबूजीने पूछा– तबसे यहीं खड़ी हो क्या ? यहाँ क्यों खड़ी हो ?

माँने धीरेसे मुस्कुरा दिया। बाबूजीने फिर पूछा– तुम कैसे खड़ी थी ?

माँने कहा– श्रीशंकराचार्यजी नौकामें जा रहे थे, उन्हींको देख रही थी।

मैं मन-ही-मन सोचने लगा कि बाबूजीने पेड़की छायामें ठीक ही कहा था कि माँकी संतोंमें बड़ी श्रद्धा है। फिर बाबूजीने कहा– शंकराचार्यजी महाराज इतनी जल्दी चल रहे थे कि मैं उनको पकड़ नहीं सका। वे चल रहे थे और मैं उनके साथ भाग रहा था। मैं तो थक गया।

माँने हँसते हुए कहा– आप भी क्या कहते हैं ? आप उनके बराबर भला चल सकते थे क्या ? आप उनके पीछे-पीछे चल रहे थे, यही बहुत है। हाँ, यदि सेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) होते तो उनके साथ-साथ चलते, बल्कि उनसे आगे चलते।

बाबूजीने कहा– यह तुम ठीक कहती हो।

इसके बाद कमरेमें जाकर बाबूजीने दरवाजेको बन्द कर लिया।

[२७] कृष्ण-कथाके रसिक

सन् १९६७ के मार्चके तीसरे सप्ताहमें गीतावाटिकाके सम्पादकीय भवनके हॉलमें भागवत-सप्ताह-कथाका आयोजन हुआ। २४ मार्चको दशम स्कन्धकी कथाका शुभारम्भ था। उस दिन सुबह माँ सीढ़ीसे नीचे उतर रही थी। साथमें श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारीकी माताजी थी और हाथमें लिये थी एक छन्नीमें कोई पदार्थ। मैंने सोचा कि माँ कहीं कुछ पूजन करनेके लिये जा रही होंगी। एक बहिनसे थोड़ी देर बाद मैंने जिज्ञासा प्रकट की– माँ कहाँ गयी है ?

उस बहिनने बताया– आज दशम स्कन्धकी कथा होने वाली है, उसीमें माँ गयी हैं।

मैंने कहा– माँकी तो तबीयत खराब है। माँ बैठ नहीं सकती, इसीलिये माँके कमरेमें एक लाउड स्पीकर भी लगा दिया गया है, जिससे यहाँपर बैठी-बैठी या लेटी-लेटी कथा सुन ले। फिर माँ क्यों गयी ?

उसी बहिनने बतलाया– आज भगवान कृष्णके जन्मकी कथा है, अतः माँ अपने साथ

मक्खन-मिश्री ले गयी है। वहीं बैठकर कृष्ण-कथा भी सुनेगी और जन्म होनेपर नैवेद्य अर्पित करेगी।

कृष्ण-कथाका अनुराग है ही ऐसा, जो सोतेको जगा दे, रोगीको बैठा दे और दूरस्थको बुला ले। जब-जब श्रीराधाकृष्णकी रसमयी कथाका आयोजन होता है, माँकी श्रवणोत्कण्ठा जाग उठती है। विगत शरद पूर्णिमापर भाई श्रीदूलीचन्दजीके यहाँ भागवत सप्ताहकी कथा बाँची गयी तो उनके घरसे तार खिंचवाकर माँने अपने कमरेमें भी एक लाउड स्पीकर लगवाया। सं. २०२३ वि. की गर्मियोंमें जब श्रीरामकिंकरजी द्वारा राम-कथा हो रही थी, उस समय भी माँकी कथा-श्रवणकी लालसाका स्वरूप बड़ा अनोखा था।

बाबूजीकी कथा-लालसा और भी अनोखी है। यह भागवत सप्ताह २० मार्चसे आरम्भ हुई। इन दिनों बाबूजीका 'माथा ठीक नहीं' रहता था, इसके बाद भी वे नियमित रूपसे कथामें आकर दो घंटे बैठते थे। इसी गीतावाटिकामें पाँच-छः भागवत सप्ताह कथाका आयोजन बाबूजीके द्वारा हो चुका है और यह परिचायक है उनके कृष्ण-कथानुरागका।

बाबूजी जैसे अद्वितीय श्रोता हैं, वैसे ही अद्वितीय वक्ता भी हैं। वक्ता ऐसे हैं, जो स्वयं कृष्ण-कथाके रसमें बहें और अपने श्रोताओंको बहा दें। आजके कई साल पहले गीतावाटिकामें प्रवचनके समयमें कृष्ण-कथाका नियमित कार्यक्रम चला। यह परम रसमय और सुन्दर कार्यक्रम दो माहके लगभग लगातार चला होगा। यज्ञपत्नी लीला, दामोदर लीला, और कालीय-नाग लीला कही गयी। सभी श्रोता अपने स्थानपर बैठ जाते और रुचिपूर्वक कथाका श्रवण करते। कालीय नागके फणपर बाल कृष्णके नृत्यका वर्णन बड़ा ही अद्‌भुत था। उस नृत्यके वर्णनके समय कौन-कौन नहीं नाचा? उधर वृन्दावनकी दिव्य लीलामें चल रहा था नागके फणोंपर भगवान श्रीकृष्णका नृत्य, कृष्ण-दंशन अथवा आत्मरक्षण हेतु फणोंका नृत्य, क्षुब्ध ह्रदकी चंचल लहरोंका नृत्य, कालीय पत्नियोंके निवेदनका नृत्य, तटीय सखाओंकी आकुलताका नृत्य, व्रजवासियोंकी आतुरताका नृत्य, गोपियोंके संतप्त नेत्रोंका नृत्य और इधर गीतावाटिकाके प्रांगणमें चल रहा था बाबूजीके अन्तरमें कालीय लीलाका नृत्य, उनके अधरोंपर सरस्वतीका नृत्य, उनके कण्ठमें भावावरोधका नृत्य, श्रोताओंके नेत्रोंमें जलकणोंका नृत्य, वातावरणमें भगवदीय भावोंका नृत्य और कण-कणमें कथा-रसका नृत्य। दो मास तक प्रतिदिन ऐसा ही रोचक, आकर्षक और मादक वर्णन रहता।

हरि-कथाके लिये माँ और बाबूजी, दोनोंके तन, मन और वचनमें सदैव व्याप्त रहने वाली रसिकताका नृत्य वस्तुतः वर्णनातीत है।

[२८] बनारसी साड़ी

सं. २०२४ वि. के फाल्गुन मासमें पूज्य बाबूजीकी दौहित्री प्रिय पुष्पाबाईका मंगल परिणय हुआ। परिणयके पूर्वका एक प्रसंग है। विवाहके अवसरपर देने-दिलवानेके लिये बढ़िया रेशमी साड़ियोंकी आवश्यकता रहती ही है। वाराणसीसे व्यापारीका आदमी बढ़िया रेशमी साड़ियोंकी दो-तीन पेटी लेकर आया। बनारसी साड़ियोंमेंसे जो पसन्द आयेंगी, वे रख ली जायेंगी, शेष वापस चली जायेंगी। पूज्या माँके कमरेमें साड़ियोंकी पहली पेटी खोली गयी। वह आदमी एक-एक करके साड़ियाँ निकालकर दे रहा था। माँके पास आदरणीया बाई (सौ. श्रीसावित्रीबाई

फोगला) आदरणीया भाभीजी (श्रीमती ललितादेवी डालमिया) आदि-आदि कई महिलाएँ-बहिनें बैठी हैं। कुछ पुरुष भी बैठे हैं। समीपमें बैठे हुए भाई श्रीरामनिवासजी ढंढारियासे माँने कहा— उनको बुला लो।

यह तो श्रीढंढारियाजीके मनकी बात थी। वे तुरन्त जाकर पूज्य बाबूजीको बुला लाये। बाबूजीके विराजते ही सबकी आँखोंमें उल्लास छा गया। व्यापारीके आदमीसे साड़ी ले-ले करके आदरणीया भाभीजी ही सबको दिखला रही थीं। जब बाबूजीको दिखलाया जाता तो वे भी सराहना करते— यह साड़ी बढ़िया है, इसकी किनारी चौड़ी है, उसका आँचल सुन्दर है और इसके बेलबूटेमें बड़ी कारीगरी है।

बाबूजीके मुखसे सराहना सुनकर श्रीढंढारियाजीने कुछ मुस्कुराते हुए पूछा— यह जो साड़ी आपके हाथमें है, इस साड़ीकी कीमत आपके विचारसे कितनी होनी चाहिये ?

बाबूजीने एक-दो मिनट ठहरकर कहा— यह साड़ी शायद अढ़ाई-तीन सौ रुपयेकी होनी चाहिये।

श्रीढंढारियाजीका व्यवहार संकोचरहित है। वे हँसते हुए बोले— आपने तो सारा ही गुड़ गोबर कर दिया।

बाबूजीने पूछा— क्या बात हो गयी ?

श्रीढंढारियाजीने कहा— आप बता रहे हैं तीन सौ रुपयेकी और यह साड़ी है ग्यारह सौ रुपयोंकी।

तुरन्त बाबूजीके मुस्कुराते चेहरेपर निरीहता-निर्लिप्तता-दीनता-सरलता आदिके मिले-जुले भाव उभर आये और उन्होंने सहज स्वरमें कहा— अरे भाई ! मुझे क्या मालूम कि कौन-सी साड़ी कैसी है ? घटिया-बढ़िया, सस्ती-मँहगीकी न मुझे पहचान है और न मैं जानता हूँ। यह सब मेरे समझसे परेकी बात है। तुम लोगोंने पूछा और तुम्हारे संतोषके लिये मुझे कुछ बोलना चाहिये था; अतः बोल दिया। मैंने तो अपनी मतिसे कुछ अधिक ही दाम बतलाये थे।

श्रीढंढारियाजी बाबूजीकी बात सुनकर मुस्कुरा भी रहे थे और उनके भोलेपनपर बलिहार जा रहे थे। यही भाव धारा सभी उपस्थित लोगोंकी थी। उसी समय कहींसे टेलीफोन आ गया और बाबूजी फोनपर बात करनेके लिये चले गये।

जितनी साड़ियाँ वहाँ कमरेमें देखनेके लिये उस पेटीमेंसे निकाली गयी थीं, उनमेंसे कुछ साड़ियाँ विवाहकी दृष्टिसे पसन्द करके रख ली गयीं। शेष साड़ियोंको समेट लेनेके लिये कह दिया गया। निर्देश मिलते ही व्यापारीका आदमी साड़ियोंको इकट्ठा करके मिलाने लगा तो एक साड़ी नहीं मिली। एक बार, दो बार, तीन बार सारा माल मिलाया गया, पर बार-बार खोज करनेपर भी वह एक बनारसी साड़ी नहीं मिली। उसका मूल्य नौ सौके लगभग था। सबने यही अनुमान लगाया कि किसीने चुरा ली है, अन्यथा जाती कहाँ ? सारे वस्त्र उलट डाले गये। यदि यहाँ होती तो मिल ही जाती।

उधर तो साड़ीकी खोज हो रही थी, इधर माँके मनमें भयका संचार हुआ। यदि साड़ीकी चोरी पकड़ ली गयी, तो उसका अनादर होगा, जिसने चुपचाप ले ली है। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न ही क्यों हो ? अतः बातको एकदम दबा देनेके लिये माँने सबसे कहा— तुम सब शोर क्यों करती

हो ? वह साड़ी यहीं कहीं घरके विस्तरवाले कपड़ोंके नीचे शायद दब गयी होगी। बादमें मिल जायेगी। तबतक दूसरी पेटीका माल देख लो।

माँके ऐसा कहते ही दूसरी पेटी खोली गयी और साड़ियोंका देखना-दिखलाना आरम्भ हो गया। क्रमशः यह भी समाप्त हो गया, परंतु अन्ततः वह साड़ी नहीं मिली। होती, तब न मिलती ! माँकी सूझने तथा निर्णयने किसीकी इज्जतको बचा लिया।

यही बात बाबूजीके पास शिकायतके रूपमें पहुँची। बाबूजीने सारी बात सुनी। बाबूजीने कहा– साड़ी चोरी चली गयी तो क्या हुआ ? जो भी ले गया है या ले गयी है, वह भी अपनी बेटीको देगा या देगी। वह बेटी भी तो मेरी पुष्पा ही है। यह पुष्पा न सही, वह पुष्पा उसको पहनेगी।

बाबूजीके इस उत्तरको सुनकर शिकायत लेकर जानेवाले देखते-के-देखते रहे गये। फिर चोरी गयी बनारसी साड़ीके खोज-बीनका प्रश्न ही कहाँ उठता ?

[२९] वेष - निरपेक्षिता

सन् १९६७ के मार्च मासमें दौहित्री पुष्पाबाईका शुभ विवाह हुआ। विवाहके पूर्व आदरणीया बाई (सौ. श्रीसावित्रीदेवी फोगला) ने बाबूजीको भात भरनेका निमन्त्रण दिया। निमन्त्रणके दो दिन बाद बाबूजीने भात भरा। भात भरनेका नेगचार गीतावाटिकाके पंडालमें हुआ। पंडालमें सारी व्यवस्था ठीक प्रकारसे हो रही है या नहीं, इसकी देखभालके लिये बाबूजी बारह बजे ही ऊपरसे नीचे आकर खड़े हो गये थे। सफेद धोती और सफेद कुरतेकी धवलताके बीच बाबूजी बड़े जँच रहे थे।

बाबूजी भवनके बरामदेमें खड़े थे। उसी समय बाईने आकर कहा– बाबूजी ! यह कुरता पहन लीजिये।

वह कुरता रेशमी था। मैंने रेशमी कुरता पहने हुए बाबूजीको आजतक नहीं देखा। वे रेशमी कपड़ा नहीं पहनते। बाबूजी केटिया (एक प्रकारका शुद्ध रेशमी वस्त्र) पहनते हैं, परंतु केवल पूजा करते समय, वह भी विशेष पूजाके अवसरपर, जैसे श्रीराधाष्टमी। उनका सदाका पहनावा है सूती वस्त्र केवल धोती और गंजी। यदि कहीं बाहर जाना हुआ तो गंजीपर खद्दरका कुरता और पहन लिया करते थे। पास खड़े सभी व्यक्तियोंकी दृष्टि बाबूजीपर लग गयी– देखें, बाबूजी क्या उत्तर देते हैं ?

बालकोचित सहज सरलताके साथ बाबूजीने वह रेशमी कुरता ले लिया। अपना खद्दरका कुरता उतार करके वह रेशमी कुरता पहन लिया। पहनते-पहनते कहा– शरीरको ढकना है, कपड़ा रेशमी हो या सूती, इससे क्या फरक पड़ता है ? तुम्हारे मनकी बात ही सही।

विवाहका अवसर समझकर माँने ही कहा था कि उनके लिये कम-से-कम एक कुरता अच्छा-सा सिलवा देना चाहिये। पहननेके थोड़ी देर बाद रेशमी कुरतेकी बटन बन्द करते हुए बाबूजीने कहा– मुझे पता नहीं कि किसने सिलवाया ? कुछ दिन पहले एक दर्जी आया था नाप लेनेके लिये। मुझे क्या पता कि वह क्यों नाप ले रहा है और नाप लेनेके लिये किसने भेजा है ?

कुरता पहन लिया, परंतु उसकी फिटिंग ठीक नहीं। बाबूजीका इस बातपर ध्यान नहीं।

उनके भावे तो सब 'ठीक' है। कुरता पहन लिया, परंतु अन्दरकी सूती गंजी गर्दनके पास बाहर दीख रही है। बाबूजीका इसपर भी ध्यान नहीं। यह भी 'ठीक' है। वस्त्र सूती हो या रेशमी, फिटिंग सही हो या गलत, पहनावा सुरूप हो या साधारण, इन सबसे बालकोचित सरलताको क्या लेना क्या देना? बाबूजीकी बालकोचित सरलताने समीप खड़े हुए लोगोंको मुग्ध कर लिया। सम्मान्य श्रीजयदयालजी डालमिया ने आगे बढ़कर कुरतेको ठीक करना चाहा कि बाहर दिखलायी देने वाली गंजी ढक जाये। उन्होंने गंजीको ढकनेका प्रयास भी किया, पर वे ढक नहीं सके। कुरतेकी फिटिंग ही ठीक नहीं थी। ठीक नहीं थी हमारी आँखोंकी कसौटीके अनुसार, पर उनके लिये तो सब 'ठीक' था।

[३०] भातकी चूनरी

आदरणीया बाई (सौ. श्रीसावित्रीबाई फोगला) की सुपुत्री पुष्पाका मंगल विवाह ४ मार्च १९६७ को हुआ। उसी अवसरका यह प्रसंग है। आदरणीया बाईके मनमें पूर्ण उत्साह है। विवाहकी विशद तैयारियाँ हो रही हैं। किसीके जिम्में जनवासेकी सुसज्जा-सुव्यवस्थाका काम है, किसीके जिम्मे मिठाइयोंके बनवानेका काम है, किसीके जिम्मे घरकी सजावटका काम है, किसीके जिम्मे कोई काम, किसीके जिम्मे कोई काम, सब अपने-अपने काममें संलग्न हैं। बाबूजीसे जुड़े हुए जितने व्यक्ति आये हैं, चाहे वे गोरखपुर नगरके हैं, चाहे वे बाहरके हैं, सभी सोत्साह कार्य कर रहे हैं।

विवाहके दो दिन पहलेकी संध्याकी बात है। बाई भात नूतनेके लिये जानेवाली है। माँ और बाबूजीको भात भरनेके लिये बाई निमन्त्रण देगी। बाईके लिये माँ और बाबूजी ही सर्वस्व हैं। लोक, परलोक और परमार्थके लिये बाबूजीपर ही विश्वास है और बाबूजीका ही बल है। भात नूतनेकी सारी तैयारी हो गयी है। महिलाओंसे आँगन भरा है। उनके अंग-प्रत्यक्ष वस्त्राभूषणसे सजे हैं। आँगनका आकाश मंगलगीतोंसे गूँज रहा है। थालमें भात नूतनेकी सामग्री सजी हुई है। प्रिय चन्द्रकान्त संग्रहणीय एवं भावपूर्ण दृश्योंके छाया-चित्र कभी स्वयं उतार रहा है और कभी उतारनेके लिये फोटोग्राफरसे कह रहा है। भात नूतनेकी सामग्री लेकर गीत गाते हुए महिलाओंका मण्डल सीढ़ियोसे चढ़ा और चढ़कर माँ और बाबूजीके पास छतपर आया। सारी छत भर गयी। एक ओर महिलाएँ हैं और दूसरी ओर बाबूजीके प्रियजन उपस्थित हैं। गीत गाते हुए उल्लसित मनसे बाईने भात भरनेका निमन्त्रण दिया। इस निमन्त्रणको माँ और बाबूजीने स्वीकार किया। श्रीराधाबाईके नेतृत्वमें भातका मंगल गीत गाया जाने लगा।

शुमंगल ब्याह पुष्पाका, हृदयसे मुदित है बाई।
चली है भात नूतनको, पिताके आज घर बाई॥
मनाती देव गीतोंमें,
पिताके गीत कण्ठोंमें,
चला है वृन्द महिलाका, सुशोभित बीचमें बाई।
मिली जाकर पिता-माँसे,
सभी, भाई, सहेलीसे,
उमड़ता हर्ष मैयाका, भवन मेरे खड़ी बाई।

पितासे कह दिया मनका,
'रचा है ब्याह बेटीका,
बुलावा भातका देती', पितापर निर्भरा बाई।
'भरोसा आपका ही है,
सभी शुभ आपसे ही है,
सम्भालें कार्य सारा ही', सरस बचना सरल बाई।
'पधारे आप मेरे घर,
पधारे आपके परिकर,
पधारे बन्धु-भाई वर', विनय से अति विनत बाई।
हृदय हुलसित पिताजीने,
कहा- 'फिर भातको भरने,
चलेंगे हम सभी जन ही', बदन-मन-पुलकिता बाई।
किया अति चाव मैयाने,
कहा अति भावसे अपने,
'भला हो ब्याह पुष्पाका', शुभाशिष आश्रिता बाई।
पली है दूधसे जिनके,
छकी है नेहमें जिनके,
बही है मोदकी सीमा, हृदयसे विह्वला बाई।

विवाहके दिन बाबूजी भात भरने वाले हैं। एक भावना रह-रहकर बाईको उल्लसित कर रही है। 'आज बाबूजी भात भरेंगे', यह भावना ही बाईके तन-मनको विह्वल कर रही है। बाबूजी भक्त हैं, परम भक्त हैं, ऐसे हैं, जिनके जीवनका एक-एक क्षण राधामाधवके 'संग' में व्यतीत होता है, जिनका अन्तर्मन राधामाधवकी अन्तरंग लीलामें सदैव निमग्न रहता है, ऐसे बाबूजी भात भरनेके लिये आयेंगे, इसकी कल्पना ही कितनी मनोरम है ? और इस कल्पनाका यथार्थ तो कल्पनातीत मनोरम होगा। बाई अपने भाग्यकी सराहना करते थकती नहीं थी।

गीत

(राग पीलू)

सखी री, मेरे भाग्य बड़े।
भरने भात पिताजी आये, मेरे भवन खड़े॥
राधा-माधव-लीलामें रत, अनुदिन जिनका मन।
वे ही चुनरी लिये पधारे, पुलकित मेरा तन॥
जिनके युग-कर पल-पल करते, प्रभु-पदका अर्चन।
चुनरी उढ़ायेंगे उन करसे, धन्य हुआ जीवन॥
जिनके भाल सदैव सुशोभित, प्रभु-पद-रज सुन्दर।
उसी भालपर तिलक करूँगी, हुलसित है अन्तर॥

भात भरनेका नेग-चार पंडालमें सम्पन्न होगा। पंडालमें समुचित व्यवस्था हो गयी है। माँ और

बाबूजीका स्वागत करनेके लिये बाई खड़ी है। भतईके रूपमें बाबूजी पधारे। गीत गाती हुई महिलाओंके साथ पीछे-पीछे माँ आयी। जितनी भीड़ छतपर नहीं थी, उससे कई गुनी भीड़ पंडालमें है। वह भी एक अनोखा दृश्य था। थोड़ी देरमें आये श्रीरामनिवासजी ढंढारिया बड़-भतईके रूपमें। श्रीरामनिवासजीकी बहिनके साथ बाबूजीका प्रथम विवाह हुआ था, इसी कारण श्रीरामनिवासजी माँको बाई कहते हैं। माँ भी श्रीरामनिवासजीको सगे भाईसे बढ़कर अपना स्नेह दान करती है।

चुनरी उढ़ानेके दृश्यको सभी देखना चाहते हैं, अतः आगे रहनेकी लोगोंमें स्पर्धा लगी हुई है। इस स्पर्धाके कारण थोड़ी अव्यवस्था भी हुई। यह अव्यवस्था सह्य है, पर उस दृश्यको देखनेसे वंचित रहना सह्य नहीं है। बाबूजीने चौकीपर खड़े होकर बाईको चुनरी ओढ़ाई। सचमुच बाई निहाल हो गयी। बाईने बाबूजीके भालपर तिलक किया, अपने आँचलसे बाबूजीकी छाती नापी और आरती उतारी। प्रफुल्लित महिलाओंने गीत गाना आरम्भ कर दिया—

गीत

(राग माँड)

सजनी! सुन्दर चुनरी लाल।
ओढ़ पिताजीके शुचि करसे, तन-मन आज निहाल॥
जिनका स्पर्श तुरत कर देता, शुचिताका संचार।
उन्हीं करोंसे मिली चूनरी, सभी सुखोंका सार॥
रक्तिम अम्बर, चम-चम तारे, चन्दासे हैं फूल।
नभ-गंगा-सी फैली लम्पी, हुआ सभी अनुकूल॥

बाईको चुनरी ओढ़ानेके बाद बाबूजीने पूछा— कुँवरजी (श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगला) कहाँ हैं?

आ. जीजाजी (श्रीफोगलाजी) तो दूर एक कोनेमें खड़े-खड़े इस सारे दृश्यको देख-देखकर अपने भाग्यको सराह रहे थे। भाग्यको सराहनेकी बात भी थी। बाबूजीके ऐसा पूछते ही लोगोंने देखना शुरू किया कि जीजाजी कहाँ हैं? जीजाजीने बाबूजीकी आवाज नहीं सुनी थी। लोगोंने कहा कि आपको बाबूजी याद कर रहे हैं। जीजाजी तुरन्त बाबूजीके पास गये। जीजाजीको देखते ही वात्सल्यसे उल्लसित वाणीमें मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए बाबूजीने पूछा— आप कहाँ थे?

जीजाजीने कहा— यहीं पासमें ही खड़ा था।

बाबूजीने जीजाजीको तिलक किया। रोली लगी अँगुली ज्यों ही जीजाजीके भालपर लगी, भावसे विभोर और स्नेहसे सजल जीजाजीके नेत्र मुँद गये। तिलकके बाद बाबूजीने द्रव्य और श्रीफल देना चाहा, पर लेनेवाला तो नेत्र मूँदे भावलीन था। बाबूजीने जीजाजीकी हथेली खोलकर उसमें द्रव्य और श्रीफलको रखा। जितना बाई अपनेको धन्य कह रही थी, जीजाजी उससे अधिक अपनी धन्यताको मना रहे थे।

इसके बाद बाबूजीने कई बहिन-बेटियोंको नवीन परिधान दिये। कई दर्शकोंको इस दृश्यसे रोमाञ्च हो आया। प्रिय सूर्यकान्त तो अपने उल्लासाश्रुओंको रोक नहीं पाया। उसने कई बार

गीतोंका गायन करवाया।

बाबूजीको सभी बाबूजी कहते हैं और बाईको सभी बहिन मानते हैं। सभीको बाईने तिलक किया, यहाँतक कि वाटिकाके एक-एक नौकरको तिलक किया और हरएक नौकरने अपने सामर्थ्यके अनुसार भात भरनेके नेगमें कुछ-न-कुछ पत्र-पुष्पके रूपमें बाईको दिया। यह एक अभूतपूर्व और भावपूर्ण दृश्य था।

इसके पश्चात् श्रीरामनिवासजीने माँको चुनरी ओढ़ाई। माँका मन विभोर हो गया। स्नेहसे माँ इतनी विह्वल हो रही थी कि तिलक करना भी कठिन हो गया। अँगुलियाँ काँपने लगीं। माँने काँपती अँगुलियोंसे तिलक किया और उसी तरह स्नेहसे काँपती वाणीमें उसने कहा– हे भगवान! मेरे भाईको कभी नजर न लगे।

काँपते हाथोंसे माँने श्रीरामनिवासजीकी छाती नापी तथा आरती उतारी। श्रीरामनिवासजीके स्नेहाश्रु नेत्रोंमें झलक आये, बादमें कपोलोंपर छलक भी पड़े। फिर श्रीरामनिवासजीने बाई (सौ. श्रीसावित्रीबाई फोगला) को भी चुनरी ओढ़ाई। उपस्थित सभी लोग यही चाहते थे कि सभीके यहाँ ऐसा ही भात नूता जावे, इसी प्रकार भात भरा जावे, ऐसे ही भतई आवे और घर-घर भातकी चुनरीका ऐसा ही समारोह हो।

[३१] हरि-नाम प्रेम

फाल्गुनी पूर्णिमाके दिन गोरखपुरके बंगाली भक्तगण महाप्रभु श्रीश्रीचैतन्यदेवका जन्मोत्सव मनाया करते हैं और वे लोग एक दिन पहले हरिनाम-संकीर्तन करते हुए गीतावाटिका आया करते हैं पूज्य बाबूजीको निमन्त्रण देनेके लिये। २६ मार्च १९६७ के दिन पूर्णिमा थी, अतः वे लोग २५ मार्चके सूर्यास्तके समय कीर्तन करते हुए गीतावाटिका आये। यह एक विचित्र संयोग था कि २५ मार्चकी शामको श्रीमद्भागवत-सप्ताहकी कथा सम्पन्न हुई थी। श्रीवृन्दावनधामसे पूज्य श्रीभट्टजी महाराज कथा कहनेके लिये पधारे और गीतावाटिकाके सम्पादकीय कार्यालय भवनके हॉलमें यह कथा हुई थी। बाबूजी अभी वहीं हॉलमें ही थे।

सूर्यास्तके समय जब ये लोग संकीर्तन करते हुए वहाँ पहुँचे, उसके पाँच-दस मिनट पूर्व ही भागवत-सप्ताहकी आजकी कथाका विश्राम सम्पन्न हुआ था तथा आरती एवं प्रसाद-वितरणके उपरान्त श्रोतागण हॉलसे बाहर निकल रहे थे। बंगाली भक्त-मण्डलके आते ही सारे श्रोता फिर जमा हो गये। हरि-कथाके बाद हरि-नाम संकीर्तनका रंग बहने लगा। बंगाली भक्तोंके कण्ठोंमें मंगल ध्वनि गूँज रही थी–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

इसीके साथ गूँज रहे थे, उनके हाथके वाद्य-यंत्र हारमोनियम-खोल-झाँझ-करताल आदि। हॉलका सारा वायुमण्डल गूँज उठा हरि-नामकी मंगल ध्वनिसे। हरि-नामके मधुर सस्वर कीर्तनको सुनकर बाबूजीका रोम रोम थिरक उठा। उनके करतल पुलक उठे। बाबूजी मस्तीमें हाथसे ताली बजाने लगे और खोल-झाँझके साथ कीर्तन करने लगे कीर्तनकारोंके स्वरमें स्वर मिलाते हुए। जब वे बंगाली भक्त अपनी मस्तीमें नाच-नाचकर कीर्तन करने लगे, तब बाबूजीने

उन कीर्तन प्रेमियोंपर कई बार पुष्प वर्षा की। बहुत देरतक हरिनाम संकीर्तनका रस प्रवाहित होता रहा। इसके बाद कीर्तनकार पूज्य बाबाकी कुटीयाकी ओर चलने लगे। बाबूजीने कीर्तन-मण्डलीको भूमिपर माथा टेककर प्रणाम किया।

जब इधर सम्पादकीय हॉलमें कीर्तन हो रहा था, तब उधर कीर्तन-ध्वनि सुनकर माँकी भी उत्सुकता बढ़ी। अस्वस्थताके कारण माँ नीचे उतरकर सम्पादकीय कार्यालयमें तो आ नहीं सकती थी, वह वहीं कमरेमें ही बैठे-बैठे हरिनाम-कीर्तनको सुनती रही। जब बंगाली भक्तगण सम्पादकीय हॉलसे बाहर निकलकर कीर्तन करते हुए कुटियाकी ओर जाने लगे, तब कीर्तनकी मंगल ध्वनि वाटिकाके आँगनमें बिखर गयी। माँ कमरेमेंसे बाहर निकल आयी। छतपर खड़ी होकर इन कीर्तनकारोंको स्नेह और सम्मानकी दृष्टिसे देखने लगी। माँ छतपर खड़ी-खड़ी उनके कीर्तनोल्लासको देख रही थी तथा हरिनाम-कीर्तनकी मंगल एवं तुमुल ध्वनिको सुन रही थी। माँ तबतक खड़ी रही, जबतक उन्हें कीर्तन मण्डली दिखायी देती रही।

इसी तरह सं. २०२३ वि. के राधाष्टमीके अवसरकी बात है। प्रायः कलकत्तेसे श्रीभोलारामजी केडिया अपनी कीर्तन मण्डली लेकर आया करते हैं। उनका काम ही है कि इस अवसरपर प्रत्येक आवासपर, जहाँ-जहाँ आगन्तुक भक्त सज्जन ठहरे हैं, वहाँ-वहाँ जाना और हरि-नाम वितरण करना और बाबूजी एवं बाबाके यहाँ तो विशेष रूपसे। मण्डलीका सुमधुर कीर्तन—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

कण-कणको जन-जनको पावन एवं प्रफुल्ल कर देता।

राधाष्टमीका उत्सव सम्पन्न हो गया था। अधिकांश भक्त वापस जा चुके थे। श्रीभोलारामजी भी कलकत्ता वापस जानेवाले थे। अन्तिम दिनकी बात है। उस दिनको घर-घर हरिनाम वितरणका अन्तिम दिवस जानकर वे द्वार-प्रति-द्वार घूमते-घूमते और हरि-नामसे लोगोंको आप्यायित करते हुए अपनी मण्डली सहित बाबूजीके पास आये। उस समय प्रातः लगभग सात बजे थे।

बाबूजी अपने कमरेमें पूजा कर रहे थे। मण्डली छतपर ही कीर्तन करने लगी। खोलकी थाप, झाँझकी ताल, हारमोनियमका वादन और कण्ठका स्वर, सभीने समाँ बाँध दिया। छतकी दो दिशाओंसे अपने-अपने कमरेसे माँ और बाबूजी आये। माँ अपने कमरेसे बाहर आयी। उनके आते ही कम्बल बिछा दिया गया। माँ उसपर बैठ गयी। बाबूजी अपने कमरेसे आये, पर वे खड़े रहे। कीर्तनका स्वर ऊँचा और उसका प्रभाव गहरा होने लगा। बहुत देरतक कीर्तन होता रहा और बाबूजीका मन लहराता रहा हरि-नाम-कीर्तनकी रस-धारामें। माँ मुग्ध नेत्रोंसे देखती रही कीर्तनकारोंके उल्लासपूर्ण नृत्यको। उपस्थित जनोंमें कुछ कीर्तन कर रहे थे और कुछ झूम रहे थे।

सूर्यके ऊपर चढ़ आनेपर कीर्तनको विराम मिला। सभीने माँ और बाबूजीको प्रणाम किया। स्तब्ध और गद्गद बाबूजी कुछ बोल नहीं सके। जो हरि-नामका वितरण करता है, उससे क्या कहें, क्या दें?

[३२] एकमात्र अनुसारिणी

१ अप्रैल १९६७ की रातकी बात है। माँ बाबूजीको खिलाकर कमरेसे बाहर निकली। कमरेके सामने मिल गयी आदरणीया श्रीनौरतीबाई। श्रीनौरतीबाई चाहती थी बाबूजीसे बात करना, पर कई दिनसे अनुकूल अवसर नहीं मिल रहा था। माँने श्रीनौरतीबाईसे कहा– अब चाहो तो चली जाओ। बाबूजी अकेले हैं। बात कर सकती हो।

माँको यह पूर्ण विश्वास है कि श्रीनौरतीबाईके पास भगवान बालकृष्ण नित्य बाल-लीला करते हैं। उनके प्रति माँका बड़ा सद्भाव था। नौरतीबाई बाबूजीके पास चली गयी। बाबूजी और नौरतीबाईकी बहुत-सी बातें हुई। बाबूजीने भी खुलकर बात की। श्रीनौरतीबाईने उनसे पूछा– आपको जब समाधि लगती है, तब कमरा क्यों बन्द कर लेते हैं ?

बाबूजीने बताया– उस समय किसीका भी समीप रहना प्रिय नहीं लगता। पता नहीं, क्या स्थिति रहे शरीरकी और क्या चेष्टा हो देहसे। इसके अतिरिक्त वह व्यक्ति तो बिल्कुल नहीं सुहाता, जिसके जीवनमें असत्य है। असत्य भावित व्यक्तिके प्रवेश करनेपर ऐसा लगता है मानो कमरेमें तपता हुआ आगका गोला आ गया हो। शीलके कारण किसीको मना कर सकता नहीं। इसके अलावा मना करनेकी स्थिति भी नहीं रहती, अतः कमरेका दरवाजा बन्द कर लेना ही ठीक है।

बाबूजीके कमरेमें एक मोखा (VENTILATION) था। लोग ऊपर चढ़कर उसमेंसे देखनेका प्रयास करने लगे। बाबूजीने वह मोखा भी बन्द करवा दिया। श्रीनौरतीबाईको भाव-समाधिके बारेमें बतलाते हुए बाबूजीने यह और बतलाया– यदि स्थितिकी यह प्रगाढ़ता चार-पाँच दिन लगातर बनी रहे, तो हो सकता है शरीरका पतन भी हो जाय।

फिर बाबूजीसे बाबूजीके पास आने जाने वाले लोगोंके विषयमें चर्चा चल पड़ी। नौरतीबाईने कहा– आपके पीछे तो बहुत-से लोग हैं और काफी साधन-भजन करते हैं।

बाबूजीने बताया– सच पूछा जाय तो कोई नहीं है। सभी अपने-अपने कर्मके जालकी लपेटमें हैं। एक सावित्रीकी माँ है, जो मेरे पीछे चल रही है, एक मात्र सावित्रीकी माँ।

[३३] रात्रिमें कार्यरत

९ अप्रैल १९६७ को उत्तर प्रदेशके राज्यपाल तथा भारतीय चतुर्धाम वेद भवन न्यासके मन्त्री श्रीविश्वनाथदासजी गीतावाटिका आ रहे थे न्यासका हिसाब देखनेके लिये, ८ अप्रैलके सारे दिन मैं और श्रीमनोहरलालजी चौधरी हिसाबकी तैयारीमें लगे रहे। श्रीमनोहरलालजी हिसाब-किताबके पूरे जानकार हैं, अतः उनको भी मैंने अपने साथ बैठा लिया। न्यासका हिसाब तैयार करके रातके साढ़े ग्यारह बजे हमलोग बाबूजीके पास गये।

बाबूजी डेस्कपर बैठे हुए कल्याणके फरमोंके प्रूफ देख रहे थे। कल्याणके ढेर सारे प्रूफ देखकर कल सबेरे ही उनको गीताप्रेस भेजने थे। बाबूजीने हमलोगोंको देखकर कहा– भइया ! बस पाँच मिनट रुक जाओ। यहीं बैठो, अभी इस पृष्ठका प्रूफ देखकर वेद भवन न्यासका हिसाब भी देख लेता हूँ।

हम दोनों वहींपर बैठ गये, पर छतपर बैठी हुई माँको चैन नहीं था बाबूजीको जागते

देखकर। रातके ग्यारह बज गये, फिर वे कब सोयेंगे ? माँको क्या पता कि साढ़े ग्यारह बज गये हैं। छतपरसे माँ बाबूजीके कमरेके पास आयी। कमरेके दरवाजेपर खड़े-खड़े ही माँने मीठा-सा उलाहना दिया— क्यों, सोनेका मन नहीं है क्या ? कबतक यह लिखा-पढ़ी चलती रहेगी ?

बाबूजीने कहा— अभी तो इतने सारे प्रूफ देखने हैं।

माँने थोड़ी वक्र भाषामें पूछा— फिर सारी रात जगना है क्या ?

बाबूजीने बड़ी विनम्र और मधुर भाषामें कहा— थोड़ी देरका काम है। बस, यह थोड़ा-सा काम सलटाकर सो जाऊँगा।

माँने सोनेके लिये प्रेरित करते हुए कहा— घड़ी देखते नहीं क्या ? बारह बजनेवाले हैं।

बाबूजीने बताया— बस, थोड़ा-सा काम है। यह प्रूफ देखकर और थोड़ा-सा वेद भवनका हिसाब देखकर अभी सो जाऊँगा। बंका और मनोहर, ये दोनों हिसाब दिखानेके लिये ही तो बैठे हैं। कल राज्यपाल साढ़े तीन बजे आ रहे हैं, अतः सारा हिसाब तैयार करना है।

माँने कहा— तब तो हिसाब कल सबेरे भी देखा जा सकता है। आधी रात हो गयी। सोते क्यों नहीं ?

बाबूजीने विनीत वाणीमें समझाया— बस, केवल दस-पन्द्रह मिनटका काम है। हिसाब तो तैयार है, केवल एक नजर भर डालनी है। बस, अभी सोता हूँ।

माँ हारकर फिर छतपर चली गयी। बाबूजीने पृष्ठका प्रूफ देखकर वेद भवनका हिसाब देखा और फिर कहा— नौकरसे कह दो कि खाट बिछा दे। नहीं तो सावित्रीकी माँ और अधिक नाराज हो जायेगी।

फिर कुछ मुस्कुराकर दबे स्वरमें बाबूजीने धीरेसे कहा— मच्छरदानीके अन्दर लेटे-लेटे प्रूफ देख लूँगा। किसीको क्या पता चलेगा कि मैं काम कर रहा हूँ।

मैंने मन-ही-मन कहा— देखो न ! बाबूजीको भी माँकी भावनाओंका कितना ध्यान रहता है और माँको प्रसन्न रखनेके लिये कितना प्रयत्न करते हैं।

[३४] आधे पागल

जीवनके उत्तर कालमें बाबूजी प्रायः 'माथा खराबी' की स्थितिमें रहा करते थे और उस स्थितिमें बाबूजीको सँभालना और उनके कमरेकी चौकसी करना, यह सब माँ करती थी। १७ अप्रैल १९६७ को हिसाब जोड़ते-जोड़ते ही बाबूजी अन्तर्मुख हो गये थे। तब माँने ही डेस्कके पाससे उठाकर बाबूजीको सुलाया था।

१८ अप्रैलके सबेरे वाटिकाके ही हम कई लोग बाबूजीके पास उपस्थित थे। कोई बैठा था, कोई खड़ा था, तभी माँने हम लोगोंसे कहा— अरे, तुम लोग इतने जने हो, थोड़ा ख्याल रखा करो। आजकल इनका (बाबूजीका) माथा ठीक रहता नहीं। तुम लोगोंको थोड़ी सँभाल रखनी चाहिये कि कहीं बिना पत्रका लिफाफा पोस्ट न कर दें, लिफाफेमें गलत चिट्ठी न डाल दें, लिफाफेपर गलत पता न कर दें। कलकी ही बात है कि लिफाफेपर लिखना चाहिये था जज साहबका नाम श्रीरामप्रसादजी दीक्षित, पर ये लिख गये श्रीरामप्रसादजी अवस्थी। इन भूलोंको तो तुम लोग भी ठीक कर सकते हो।

फिर मीठा विनोद करते हुए माँने कहा– आजकल तो ये हमेशा आधे पागल, आधी समाधिमें ही रहते हैं।

बाबूजी थोड़ा मुस्कुरा पड़े। हम लोगोंने माँको आश्वासन दिया। उसी समय बाबूजीको कहीं जाना था। डेस्कमें ताला बन्द करनेके लिये ताला खोजने लगे, पर मिला नहीं। डेस्कपर ही एक ताला पड़ा था। उस तालेकी ओर इशारा करके हममेंसे किसीने कहा– यह पड़ा तो है।

बाबूजीने पहले तो सहज ढंगसे कहा– यह वह ताला नहीं। वह तो दूसरा ताला है।

फिर विनोद करते हुए उन्होंने कहा– मुझे सचमुच पागल समझ लिया है क्या? मैं पागल कहाँ हूँ? यदि पागल होता तो दूसरा वाला ताला क्यों खोजता?

सभी लोग बाबूजीके इस विनोदपर खिलखिलाकर हँस पड़े।

[३५] 'दूसरे' प्रवचनका आरम्भ?

७ मई १९६७ को स्वर्गाश्रम, गीताभवनके रात्रिके प्रवचनमें बाबूजीने श्रीरवीन्द्र बाबूकी गीताञ्जलिके एक गीतको सुनाया और साथ ही अर्थ भी बताया– हे नाथ! विपत्तिके आनेपर मेरी यह प्रार्थना नहीं है कि तुम मेरी विपत्तिको दूर कर दो, अपितु वह शक्ति देना, जिससे विपत्तिको सह सकूँ, विपत्तिके पार जा सकूँ।

पदकी व्याख्या भी उतनी ही भावपूर्ण और प्रभावपूर्ण थी, जितना कि वह स्वयं पद। कई श्रोता रीझ गये। प्रवचनकी समाप्तिपर गीताभवनसे बाबूजी अपने वासस्थान डालमिया कोठीपर आ रहे थे। गीताञ्जलिके उस पदपर बाबूजीकी रीझन अभी अन्दर-ही-अन्दर सरसा रही थी। वे लगे गीताञ्जलिके भावोंकी सराहना करने कि प्रभुके प्रति विनय अनोखा है। उन्होंने रास्तेमें चलते-चलते सबको बताया कि कुछ वर्ष पूर्व गीतावाटिका, गोरखपुरमें गीताञ्जलिपर बँगला भाषामें ही कथा कही थी, जिसे सुननेके लिये बंगाली प्रोफेसर, डाक्टर, विद्वान आदि आया करते थे।

बाबूजी कोठीपर आ गये। कोठीमें फिर गीताञ्जलिके भावोंकी चर्चा चल पड़ी। बाबूजी कमरेके दरवाजेपर खड़े हो गये। खड़े-खड़े ही फिरसे गीताञ्जलिके सबसे पहले पदको सुनाया और उसका अर्थ करने लगे। घरके हम सभी सदस्य वहीं खड़े थे।

श्रीरामसनेहीजीने बाबूजीके भोजनके लिये कमरेके भीतर पाटा बिछा दिया। इतनेमें आदरणीया श्रीसावित्रीबाई सेकसरिया भी आ गयी। बाईने बाबूजीसे कहा– रवीन्द्र बाबूका यह पद लिखकर दे दीजिये।

बाई इस पदकी व्याख्या प्रवचनमें सुन चुकी थी। बाबूजीने बड़े स्नेहसे कहा– लेकर तुम क्या करोगी? यह तो बँगला भाषामें है।

बाईने कहा– उसकी हिन्दी भी साथ-साथ लिख दीजियेगा।

बाबूजीने कहा– इसके भावोंको अपने हृदयमें लिख लो।

इधर ये सब बातें चल रही थीं, उधर श्रीरामसनेहीजी भोजनकी सामग्री ले आये।

कमरेके दरवाजेपर हम लोगोंका जमघट लगा था। बाबूजीको भोजन परोसनेके लिये माँ आयी, पर भीड़ देखकर वह वापस जाने लगी। हम लोगोंने कहा– माँ! जाती क्यों हो? हमलोग

यों ही इकट्ठे हो गये थे। भोजन करानेके लिये जबतक तुम नहीं आयी, तबतक के लिये हमलोग बाबूजीसे उनकी बातें सुन रहे थे।

इतना कहकर हमलोग जाने लगे। उसी समय माँने विनोद किया– मैं तो समझी कि यहाँ एक और दूसरा प्रवचन आरम्भ हो गया है, एक तो अभी गीताभवनमें समाप्त हुआ ही है। और तुम सब लोग इतना सुनते हो, कभी एक बात तो मनपर असर करे!

माँके विनोदका मन्द हास्यसे अभिनन्दन करते हुए हम सभी वहाँसे चले आये।

[३६] सभी अवतारोंको महत्त्व

१८ मई १९६७ के दिन सीता नवमी होनेसे स्वर्गाश्रमकी डालमिया कोठीके बरामदेमें जगज्जननी भगवती श्रीसीताके जन्मोत्सवको मनानेकी तैयारी हो रही थी। आविर्भावका समय भी समीप था। बाबूजी कमरेमें बैठे थे और पास ही बैठे थे पूज्य पं. श्रीहरिवक्षजी जोशी। माँ बरामदेमें खड़ी थी। माँको देखकर बाबूजीने माँसे कहा– जरा, मैं निमट (शौच हो) आऊँ।

माँने कहा– नहीं, अभी नहीं।

बाबूजी बोले– तो बोलो, क्या करूँ?

यह सारा कुछ भोलेपनकी पराकाष्ठा लिये हुए ऐसी अत्यन्त स्वाभाविक रीतिसे हुआ कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। बाबूजीने एक अनोखी बालकोचित सहज सरलताके साथ कहा था– तो बोलो, क्या करूँ?

पं. श्रीजोशीजी हँस पड़े और खड़ी हुई माँसे कहा– हाँ बताओ। यदि शौच नहीं जाना तो फिर क्या करना?

वहींपर मैं खड़ा था। मैंने धीरेसे कहा– बाबूजी! आज श्रीसीतानवमी है तथा प्राकट्यका समय लगभग हो चुका है।

पं. श्रीजोशीजीने जिज्ञासा की– क्या है?

बाबूजीने बतलाया– आज श्रीसीतानवमती है। आज मध्याह्नमें श्रीसीताजीके प्राकट्यका उत्सव मनाया जायेगा।

फिर कुछ देर रुककर बाबूजीने जोशीजीसे कहा– हमलोग अपने घरमें सभी अवतारोंका जन्मोत्सव मनाते हैं, भले आधे घंटेके लिये ही मनायें। वामन-जयन्ती, नृसिंह-जयन्ती, रामनवमी, कृष्णाष्टमी, यह सभी हमलोग मनाते हैं।

फिर माँके कहनेपर बाबूजी बाहर जाकर जगज्जननी श्रीसीताजीका पूजन करने लगे।

[३७] बाबा सोनकदास

मई १९६७ की बात है। स्वर्गाश्रमकी घटना है। सबेरेके समय डालमिया कोठीके बरामदेमें मैं खड़ा था। उसी समय केवल कौपीन पहने हुए नग्नवदन बाबा सोनकदास आये। उस समय बाबा सोनकदासकी आयु लगभग २२-२३ वर्षकी रही होगी। आन्ध्र और मैसूर राज्यकी सीमापर आपके माता-पिताका घर है। गीतावाटिकामें सर्वप्रथम सं. १९६० में आये थे। वे हमेशा मौन रहते थे और जाड़ेमें भी वस्त्रका प्रयोग नहीं करते थे। उनके शीशकी बढ़ी हुई जटाएँ, उनके शरीरका कृष्ण वर्ण तथा उनके अधरोंका मन्द हास्य दर्शकपर प्रभाव डाल देता

था। उन दिनों वे अधिकांशतः वाराणसी रहते थे। वे जब-तब वाराणसीसे बाबूजीके पास आध्यात्मिक प्रयोजनसे आते रहते थे।

बाबा सोनकदासजी बाहरसे आये और उन्होंने सीधे माँके कमरेमें प्रवेश किया, निःशंक प्रवेश किया। उनके मनमें था न कोई संकोच, न कोई हिचक, न कोई भय। मैं खड़ा-खड़ा बाबा सोनकदासके अन्तरके इस सरल विश्वासको देख रहा था, जिसके बलपर वे बेखटके चले जा रहे थे। ये केवल इसी अवसरपर चले जा रहे हों, सो बात नहीं थी। गोरखपुरमें भी इसी प्रकार निर्बाध प्रवेश था इनका। कोई भी कह सकता है कि माँके पास जाते समय कम-से-कम वस्त्रावरण रहना चाहिये, पर न तो माँका इसपर ध्यान और न बाबाकी इसपर दृष्टि। बाबाको विश्वास था कि माँके पास जा रहा हूँ और बाबाको देखकर माँके नेत्रोंमें भी तो वात्सल्य उमड़ पड़ता था।

मुझे पता नहीं था कि बाबा आज वृन्दावन जा रहे हैं और माँसे विदाई लेने आये हैं। कमरेमें माँ नहीं थी। कमरेसे बाहर आकर संकेतसे मुझसे पूछा— माँ कहाँ है ?

मुझे पता नहीं था। मैंने कहा— किसी काममें लगी होंगी। अभी आ जायेंगी।

बाबा सोनकदास कोठीके बाहर बैठ गये माँकी प्रतीक्षामें। वहीं एक व्यक्ति खड़े थे। मैं अपने भावोंको रोक नहीं पाया और उनसे कह बैठा— ये भी माँ और बाबूजीके एक परिकर हैं। इस विशाल परिवारमें निर्धन और धनी, शिक्षित और अशिक्षित, कौपीनधारी और फैशनेबल, साधु और गृहस्थ सभी हैं। माँ और बाबूजीका परिवार ऐसा ही है। यह परिवार बड़ा लम्बा है और बहुत दूरतक फैला हुआ है।

बाबाके जानेका समय हो रहा था। ऋषिकेशमें रेलगाड़ी पकड़नी थी। एक बहिनने जाकर माँसे कहा— माँ ! बाबा सोनकदास आये हैं। ऐसा लगता है कि वे कहीं बाहर जानेवाले हैं।

माँ आयी। बाबा सोनकदास कोठीके गलियारेमें खड़े थे। माँके पीछे-पीछे चली आने वाली कई महिलाएँ भी वहाँ खड़ी थीं और माँके सामने खड़े थे बाबा सोनकदास। बाबाने पहले झुककर प्रणाम किया। माँने पूछा— कहीं जा रहे हो क्या ?

बाबाने धीरेसे गर्दन हिलाकर 'हाँ' कहा। बाबा मन्द-मन्द मुस्कुराने लगे और तभी उन्होंने अपने दोनों हाथोंकी अँगुलियाँ इस प्रकार कर दी, मानो माँके चरणोंमें फूल चढ़ा रहे हों।

माँने फिर पूछा— कहाँ जा रहे हो ?

बाबाने वंशी बजानेका नाट्य करके संकेत कर दिया कि वृन्दावन जा रहा हूँ।

माँने कहा— लगता है, किसी साधुके चक्करमें पड़ गये हो। यहाँ क्यों नहीं रहते ?

माँकी बात सुनकर बाबा सोनकदास सकुचा गये। फिर बाबाने आँखोंमें श्रद्धा और लज्जाका भाव लिये हुए अधरोंपर बालकोचित हास्य बिखेरते हुए अँगुलियों द्वारा पुनः पुष्पार्पणका भाव प्रकट किया।

माँने पूछा— कुछ खाया कि नहीं ?

इस बार बाबा मौन रहे। माँने कहा— खाये भी नहीं हो और जा रहे हो ? जाना था तो पहले कहना चाहिये था।

फिर माँने एक बहिनसे कहा— जल्दीसे फल बिनार।

वह बहिन फलकी व्यवस्थाके लिये चली गयी। बाबा केवल फलाहार करते थे। दूसरीने आसन बिछाया। तीसरी जल ले आयी। बाबा आसनपर बैठे और माँने स्वयं परोसा। माँ तबतक बैठी रही, जबतक वे फल खाते रहे।

फलाहार हो चुकनेपर बाबाने माँके चरणोंपर शीश रखकर प्रणाम किया। माँने जाते समय बाबाके हाथमें फल दिया। फिर बाबूजीको प्रणाम करके बाबा सोनकदासने वृन्दावनके लिये प्रस्थान किया। मार्ग-व्ययकी सारी व्यवस्था बाबूजीने कर दी थी।

[३८] जर्मन संन्यासिनी श्रीउमाशंकरानन्दाजी

२ जून १९६७ के प्रातःकाल नौ बजे सम्मान्या श्रीउमाशंकरानन्दाजीका भजन-कार्यक्रम हुआ। सम्मान्या श्रीउमाशंकरानन्दाजी एक जर्मन माताजी हैं। इस समय आयु लगभग तीस वर्षकी होगी। भारतमें विगत सात वर्षसे रह रही हैं। अभीतक उन्हें भारतीय नागरिकताका अधिकार प्राप्त नहीं है। प्रत्येक वर्ष उसका नवीनीकरण करवाना पड़ता है। डिवाइन लाइफ सोसाइटीके संस्थापक ब्रह्मलीन स्वामी श्रीशिवानन्दजी महाराजकी आप शिष्या हैं। संन्यास ग्रहणके बाद उनका नाम उमाशंकरानन्दा पड़ा। जर्मनीमें घरपर दादाजी हैं, पिताजी हैं, एक भाई और दो बहनें हैं, परंतु सम्बन्ध केवल पत्र-व्यवहारतकका है। वे लोग जर्मनी बुलाना चाहते हैं, पर आप जाती नहीं। भारतीय संगीतका अच्छा अभ्यास है। वीणापर संस्कृतके स्तोत्र एवं हिन्दीमें तुलसी, मीरा, सूरके पद बड़े ही ललित स्वरमें गाती हैं। संस्कृत भाषाका सुन्दर ज्ञान है। उन्होंने भारतीय देवी-देवताओंकी सुन्दर प्रतिमाओंका निर्माण किया है। आप लक्ष्मण-झूलासे ऊपर एक मीलकी दूरीपर एक गुफामें रहती हैं।

जबसे बाबूजीसे सम्पर्क हुआ है, प्रत्येक ग्रीष्ममें बाबूजीसे मिलने आती हैं और कई बार आती हैं। उनके भोजनके लिये आटा-दाल-शाक आदिकी व्यवस्था बाबूजीके द्वारा हो जाया करती है। इस वर्ष भी वे बाबूजीके पास आयीं। जर्मन संन्यासिनीजीका कल पहली जूनकी रात्रिमें ही भजनका कार्यक्रम होने वाला था। वे माँ और बाबूजीको अपने भजन सुनाना चाहती थीं। धूपमें आनेके कारण उनका शरीर कुछ अस्वस्थ हो गया था, अतः भजनका कार्यक्रम अगले दिनके लिये स्थगित कर दिया गया। रात्रिमें उनकी सेवाका भार माँने एक बहिनको सौंप दिया। माँने भी रात्रिमें समय-समयपर उन जर्मन संन्यासिनीजीकी सँभाल की। सबेरे माँने उनसे पूछा— तुम्हारे पास पहननेके लिये वस्त्र हैं या नहीं?

जर्मन संन्यासिनीजीने उत्तर दिया— मेरे पास तीन वस्त्र हैं और मुझे पर्याप्त हैं।

माँने कहा— आवश्यकता हो तो और ले लो।

जर्मन संन्यासिनीजीने लेनेसे अस्वीकार कर दिया। उनके बात करने और उत्तर देनेकी शैलीमें बड़ा ही संकोच था, मानो भारतीय नारीका स्वर्णिम गुण शील उनके रोम-रोममें उतर आया हो। माँके पास बैठी थी तो जर्मन संन्यासिनीजीको देखनेके लिये बहुत-सी स्त्रियाँ इकट्ठी होने लगीं, तब उन्होंने अपना मुँह ढक लिया।

दूसरी जूनके सबेरे बाबूजीके कमरेमें जर्मन संन्यासिनीजीका कार्यक्रम आरम्भ हुआ। एक ओर माँ बैठी हैं। माँकी तबीयत ठीक नहीं है। रक्त चापसे तबीयत खराब है, फिर भी वह बैठी है। बाबूजी अपनी डेस्कके सामने बैठे हैं। जर्मन संन्यासिनीजीका भजन आरम्भ हुआ। पहले

उच्चारणकी शुद्धताकी बाबूजीने बड़ी सराहना की। फिर श्रीशंकराचार्यजीके एक स्तोत्रको उन्होंने सुनाया। इसके बाद वैदिक सूक्त और फिर श्रीतुलसीदासके भजनका गायन हुआ। सारे श्रोता मुग्ध नेत्रोंसे उनकी ओर अपलक देखते रहे। जबतक वे संस्कृतके स्तोत्र या सूक्त सुनाती रही, तबतक माँके कुछ समझमें आया नहीं, पर जब उन्होंने हिन्दीमें भजन सुनाया तब माँने रुचि पूर्वक सुना। कार्यक्रमके पूर्ण हो जानेपर बाबूजीने भोजन, सुरक्षा, स्वास्थ्य, जीवन-निर्वाह, स्वाध्याय आदिसे सम्बन्धित अनेक बातें उनसे पूछी, जिनका उन्होंने यथोचित उत्तर दिया। उन उत्तरोंको सुनकर बाबूजीके नेत्रोंसे सन्तोष झलक रहा था।

[३९] पूज्य स्वामी श्रीरामसुखदासजीकी भिक्षा

सन् १९६७ के २७ सितम्बरकी बात है। पूज्य स्वामी श्रीरामसुखदासजीकी आज बाबूजीके यहाँ भिक्षा है। भिक्षा करनेके लिये पूज्या माँजीने अनुरोध किया था। पूज्य स्वामीजी भिक्षा करनेके लिये गीतावाटिका लगभग सवा दस बजे पधारे। बाबूजी अपने कमरेमें खाटपर लेटे हुए थे। स्वामीजीके आते ही वे खाटसे उठकर खड़े हो गये। स्वामीजीने कमरेमें प्रवेश करते ही 'राम' शब्दका उच्चारण किया। स्वामीजी और बाबूजी, दोनोंने एक-दूसरेका अभिवादन किया और नीचे बैठ गये।

स्वामीजी और बाबूजी, दोनोंकी नामपर बड़ी निष्ठा है। नाम-जपपर बात चल पड़ी। स्वामीजीने कहा— नाम जपके लिये अनुरोध किया था, कुछ प्रयत्न भी किया और उसका फल भी सुन्दर मिला। जितनी संख्याके लिये अनुरोध किया था उससे बहुत अधिक जप हुआ।

बाबूजीने बताया— हमलोग प्रतिवर्ष दस करोड़ नाम-जपके लिये 'कल्याण'में प्रार्थना प्रकाशित करते हैं। इससे अधिक कुछ नहीं करते, व्यक्तिगत स्तरपर कोई प्रयास नहीं करते, परंतु प्रत्येक वर्ष दुगुना-तिगुना जप होता है। इस वर्ष भी ऐसा ही हुआ है।

स्वामीजीने उल्लसित वाणीमें कहा— भाईजी! यह तो बड़ा ही सुन्दर कार्य है। यह विश्व-कल्याणका एक समर्थ साधन है।

बाबूजीने इसपर एक पुराना प्रसंग सुनाया। बाबूजी एक बार साबरमती आश्रम गाँधीजीसे मिलनेके लिये गये थे। गाँधीजीके सामने 'कल्याण' द्वारा नाम-जप करवाये जानेकी चर्चा चल पड़ी थी। उस समय गाँधीजी बहुत प्रसन्न हुए और कहा— इतने नाम-जप करनेवालोंमें यदि सौ भी सच्चे मन और सच्ची निष्ठासे नाम-जप करनेवाले हों तो बड़ा ही कल्याणप्रद है।

जब यह पारस्परिक चर्चा चल रही थी, तभी माँके पाससे आये हुए एक भाईने पूज्य स्वामीजीसे भिक्षा करनेके लिये प्रार्थना की। नीचे आँगनमें भिक्षा करानेकी सारी तैयारी हो चुकी थी। पूज्य श्रीस्वामीजी भिक्षा करनेके लिये नीचे पधारे। स्वामीजीके साथ-साथ बाबूजी भी गये। पूज्य स्वामीजी केवल एक बार परोसवाते हैं, अतः स्वयं माँने परोसना आरम्भ किया। माँको परोसते देखकर पूज्य स्वामीजीका जी भर आया। भिक्षा करते हुए स्वामीजीका दर्शन करनेके लिये वहाँ काफी लोग जुट आये थे। वहाँ पूज्य बाबूजीके पास ही पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी भी बैठे हुए थे। गोस्वामीजीकी ओर उन्मुख होकर पूज्य स्वामीजीने कहा— माँजीका वात्सल्य, माँजीकी संत-सेवा और माँजीका परोसना देखकर मुझे तो पूज्य सेठजीकी माताजीकी याद आ रही है। वे भी इसी प्रकार बड़े ही प्यारसे परोसा करती थीं। मुझे वे दिन याद आ रहे हैं,

जब बाबा (पूज्य स्वामी श्रीचक्रधरजी) और मैं साथ-साथ भिक्षा किया करते थे और पूज्य सेठजीकी माताजी बड़ी वत्सलतापूर्वक भिक्षा कराया करती थीं।

परोस चुकनेपर माँने भिक्षारम्भ करनेके लिये स्वामीजीसे अनुरोध किया। पूज्य स्वामीजीने भिक्षा करना आरम्भ किया। संयोगकी बात कि आज बिजली नहीं है, अतः स्वामीजीके सामने बैठकर बाई (सौ. श्रीसावित्रीदेवी फोगला) पूज्य स्वामीजीको पंखा झलने लगी। बाईकी सेवा-भावनाको देखकर माँ और बाबूजीको बड़ी प्रसन्नता हो रही थी। वहीं पर खड़ी हुई एक बहिनके मनमें ऐसा आया कि माँको भी गर्मी लग रही है, अतः वह माँको पंखा करने लगी। पूज्य स्वामीजीकी उपस्थितिमें ऐसा करना उचित नहीं, अतः तुरन्त माँने आँखके इशारेसे उस बहिनको मना कर दिया। यही तो पूज्या माँका शील है।

भिक्षा कर चुकनेपर पूज्य स्वामीजी जानेकी शीघ्रता करने लगे। पूज्य स्वामीजीको आज कहीं ट्रेनसे जाना है। अतः जानेकी जल्दी भी है। विदाई लेते समय पूज्य स्वामीजीने गम्भीर स्वरमें 'राम' कहा और बाबूजीकी हथेलीको अपनी हथेलीमें लेकर अपने मस्तकसे उसका स्पर्श कराने लगे। स्पर्श कराते हुए पूज्य स्वामीजीने विनोद किया— क्या करें? चरणोंका स्पर्श करनेपर आप चमकते हैं, अतः आपके करोंसे ही स्पर्श प्राप्त कर लें।

तुरन्त बाबूजीने भी विनोद किया— मुझसे ज्यादा तो आप चमकते हैं। आप तो अपने चरणोंका रंचमात्र भी स्पर्श नहीं करने देते।

पूज्य स्वामीजी बाबूजी तथा उपस्थित सज्जनोंका मुक्त हास्य सारे वातावरणमें भर गया। बाबूजीसे विदा होकर पूज्य स्वामीजी मोटरमें बैठे। मोटरमें बैठानेके लिये पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी आगे आये। मोटरके चलते-चलते पूज्य स्वामीजीने गोस्वामीजीसे कहा— माँका स्नेह और उनका वात्सल्य तो अद्भुत है।

[४०] श्रीदुर्गार्चन

१२ अक्टूबर १९६७। आज शरत्कालीन नवरात्रिका अन्तिम दिवस है। दुर्गानवमी होनेसे नीचे भगवती श्रीदुर्गाका सविधि पूजन और आरती होगी। पहले बाबूजी ही सारी पूजा बैठकर करवाया करते थे, भले ही डेढ़-दो घंटा लग जाय, पर आजकल तो बाबूजीकी उपरामता और एकान्तप्रियता अत्यधिक बढ़ गयी है। उनका स्वास्थ्य भी शिथिल रहता है। बाबूजीने प्रिय सूर्यकान्तसे कहा— तुम जाकर पूजा करवा दो। मैं आरतीके समय आ जाऊँगा।

माँ तो श्रीदुर्गा नवमीकी पूजामें आरम्भसे अंततक रहा करती हैं, पर आज उसका भी स्वास्थ्य ज्यादा खराब है। रक्तचापका कष्ट बहुत बढ़ा हुआ है। तकलीफ तो कई दिनोंसे है, पर आज तो ज्यादा ही है। सुबहसे ही चादर ओढ़कर लेटी हुई है। अपनी अस्वस्थताके कारण माँ पूजामें नहीं जा सकी।

नीचे प्रिय सूर्यकान्तने श्रीदुर्गाजीकी पूजा करवायी। जब पूजा लगभग अपनी सम्पन्नतापर थी, तब मैं बाबूजीको बुलानेके लिये ऊपर गया। बाबूजीने पूछा— क्या, अब केवल आरती ही शेष है?

मैंने कहा— हाँ, भोग लगाना है और आरती करनी है।

बाबूजीने कहा— सावित्रीकी माँ उठ गयी क्या? वह तो सबेरेसे ही लेटी पड़ी है। आज

बीमारी ज्यादा है।

बाबूजीके ऐसा कहनेपर मैं माँके कमरेमें गया। माँ चादर ओढ़कर सोयी हुई थी, पर अब माँका उठना और जाना भी आवश्यक था। माँके बिना तो सारी पूजा ही अधूरी और फीकी लगेगी।

मैंने धीरे-धीरे तीन-चार बार माँ, माँ कहा। नींद टूटनेपर माँने धीरेसे पूछा– क्या बात है भइया?

मैंने कहा– माँ! नीचे पूजन हो चुका है। आरती करनी बाकी है। बाबूजी जाने वाले हैं और तुमसे पुछवाया है कि तुम चलोगी क्या?

माँने कुछ कहा, पर मैं समझ नहीं सका। मैंने आकर बाबूजीसे कहा– माँ नींदमें थी। अब जग गयी है और उन्हें आरती वाली बात भी कह दी है।

मेरी बात सुनकर बाबूजीने कहा– वह आयेगी जरूर। उसका हृदय बड़ा श्रद्धालु है।

तुरन्त थोड़ी देर बाद बाबूजीने कहा– श्रद्धा जीवनको अनन्त प्रेरणा और अमित शक्ति देती है। श्रद्धा व्यक्तिसे असम्भव भी सम्भव करवा लेती है। श्रद्धा जीवनकी सच्ची निधि है।

बाबूजीसे यह बात हो ही रही थी कि माँ बाबूजीके कमरेके सामनेसे होते हुए नीचे गयी। फिर बाबूजी भी श्रीदुर्गाजीकी आरतीमें सम्मिलित होनेके लिये नीचे चले गये।

[४१] तीर्थयात्रीका शव

स्वर्गाश्रम स्थित गीताभवनके बगलमें बूबना भवन है और बूबना भवनके बगलमें डालमिया कोठी है। बूबना भवनके मध्यमें भगवान श्रीलक्ष्मीनारायणजीका एक मन्दिर है। १९ अप्रैल १९६८ की रात्रिमें एक वृद्ध तीर्थयात्रीका देहावसान हो गया। वह वृद्ध और उसका जामाता, बस ये दोनों दो-तीन दिन पहले ही तीर्थयात्रीके रूपमें स्वर्गाश्रम आये थे और बूबना भवनकी एक छोटी-सी कोठरीमें ठहर गये थे। यहाँपर उनका कोई परिचित नहीं था। विधिका विधान, उस वृद्धकी मौत ही उसको यहाँ बुला लायी थी। मृत्यु रातके नौ बजे हुई। उसके पास जामाताके अतिरिक्त और कोई नहीं था। श्वसुरकी मृत्युके शोकसे वह जमाता बड़ा संतप्त था। उस असहाय, निरुपाय, एकाकी एवं किंकर्तव्यविमूढ़ जामाताने श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिरके श्रीपुजारीजीको इस प्रसंगकी दुःखद सूचना दी।

श्रीपुजारीजीने सान्त्वना दी और सारा प्रबन्ध करनेका आश्वासन दिया, पर साथ ही वे थोड़े परेशान भी हुए। अब प्रातःकाल चार बजे श्रीठाकुरजीके मन्दिरमें मंगला आरती कैसे होगी? जबतक शव मन्दिरके भवनमें पड़ा है, तबतक आरती हो नहीं सकती और इस समय रात्रिमें शवको जलानेके लिये कोई जायेगा नहीं। एक-दो व्यक्तियोंसे श्रीपुजारीजीने कहा भी, परंतु निराश होना पड़ा। श्रीपुजारीजी चुप मारकर बैठ गये। श्रीपुजारीजी शवको घाटपर रख या रखवा सकते थे, परंतु सारी रात घाटपर शवका पहरा कौन देगा? इस विवशताके कारण रातभर शव कमरेमें पड़ा रहा। सबेरे चार बजेके आस-पास एक-दो व्यक्तियोंकी सहायतासे श्रीपुजारीजीने वह शव भगवती गंगाजीके बूबना-भवन-घाटपर लाकर लिटा दिया और लगभग पाँच बजे श्रीठाकुरजीकी मंगला आरतीका कार्य सम्पन्न हो सका।

सूर्योदय हो जानेसे माँ जग चुकी थी और खाटपर लेटी हुई थी। उसी समय गीताभवनके कार्यकर्ता श्रीहरीसिंहजीने आकर कोठीके बरामदेंमें खड़े भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीसे कहा— एक तीर्थयात्रीकी लाश घाटपर पड़ी हुई है। उसकी दाह-क्रियाकी कोई व्यवस्था करनी चाहिये।

श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा— नौ बजेके पहले कुछ भी नहीं हो सकता।

श्रीकृष्णजीने ठीक ही कहा था। नौ बजेके आस-पास पूज्य श्रीबाबाकी श्रीगिरिराज-परिक्रमा समाप्त हुआ करती है, उसके बाद ही कुछ हो सकता था। उनका उत्तर सुनकर श्रीहरिसिंहजीने कहा— अच्छा, कोई बात नहीं। नौ बजे ही सही। मैं जाकर अन्य आवश्यक सामग्रीकी व्यवस्था करता हूँ।

ऐसा कहकर श्रीहरीसिंहजी चले गये। माँको उस तीर्थयात्रीकी मृत्युका समाचार रातको ही मिल गया था। इस समय बरामदेमें भाई श्रीकृष्णजी और श्रीहरीसिंहजीके बीच जो बात हुई, वह सारी बात माँने सुन ली। खाटपर लेटे-लेटे माँ सोच रही थी— एक बेचारा तीर्थयात्री ऋषिकेश-स्वर्गाश्रमकी श्रीगंगाजीमें स्नान करनेके लिये आया और कल रात उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी लाश घाटपर ही पड़ी है। उसका एक जँवाई है, पर वह अकेला क्या कर लेगा?

माँ इन विचारोंमें पड़ी हुई थी कि अचानक पूज्य बाबूजीके कमरेके खुलनेकी और उनके बाहर आनेकी आहट माँको मिली। माँ उठकर अपने कमरेसे बाहर आयी। माँने देखा कि बाबूजी कोठीसे बाहरकी ओर जा रहे हैं। माँको अपने मनकी एक बात कहनी थी, पर किसी बातको कहनेका-रखनेका ढंग भी माँका अपना अलग ही है। धीरेसे माँने पूछा— आप कहाँ जा रहे हैं?

बाबूजीने कहा— नहानेके लिये गंगाजी जा रहा हूँ।

बाबूजीने जो कहा, वह कुछ अस्पष्ट और कुछ स्फुट वाणीमें था। इसका कारण यह था कि बाबूजीका 'माथा एकदम ठीक' नहीं था। न तो उनकी वृत्तियाँ जगतको ठीक प्रकारसे पकड़े हुई थीं और न उनकी इन्द्रियोंका कार्यव्यापार ठीक प्रकारसे सम्पन्न हो पा रहा था। बाबूजीको प्रेरित करते हुए माँने कहा— घाटपर एक लाश पड़ी हुई है। उसको गंगाजल दे आइये।

माँकी बातको बाबूजी ठीक प्रकारसे न सुन पाये और न उसका अर्थ ठीक प्रकारसे ग्रहण कर पाये। उन्होंने माँसे पूछा— तुम क्या कह रही हो?

माँने फिर अपनी बात दुहरायी— कल रात एक तीर्थयात्रीकी मृत्यु हो गयी। उसकी लाश घाटपर पड़ी हुई है। उसको गंगाजल दे दीजिये।

माँको शवके क्रिया-कर्मकी चिन्ता नहीं थी। माँको इतना ज्ञात था कि गीताभवनकी ओरसे इसकी व्यवस्था हो जायेगी। माँ जानती थी कि यदि बाबूजी उसपर एक बार अपनी दृष्टि डाल देंगे और उसपर गंगाजल छिड़क देंगे तो उसकी सद्‌गति हो जायेगी। यही तो माँका वात्सल्य है, जो सबके मंगलकी कामना करता है और सबके हितमें नित्य संलग्न रहता है। मातृत्व इस बातकी अपेक्षा नहीं रखता कि वह अपना है या पराया।

माँकी बातका विरोध करते हुए भाई श्रीकृष्णजीने कहा— बाबूजी वहाँ जाकर क्या करेंगे? उसके जलाने आदिकी व्यवस्था हो ही रही है।

भाई श्रीकृष्णजीने सोचा कि 'माथा-खराबी' के लक्षण बाबूजीमें क्रमशः अधिकाधिक

अभिव्यक्त होते जा रहे हैं और ऐसी स्थितिमें घाटपर जाना ठीक नहीं है। फिर बाबूजीकी ओर उन्मुख होकर श्रीकृष्णजीने कहा— बाबूजी ! गंगाजीमें स्नान करके आप कोठीमें ही आ जाइये।

भाई श्रीकृष्णजी कुछ भी सोचें और कहें, पर मातृत्वको एक जीवके कल्याणकी कामना थी। माँने फिर कहा— अजी, आप चले जायेंगे तो क्या हो जायेगा ?

बाबूजीने पूछा— लाश कहाँ है ?

माँने बतलाया— बूबना भवनके घाटपर लाश पड़ी हुई है।

बाबूजीके हित-चिन्तनमें निमग्न श्रीकृष्णजी भले वहाँ जानेका विरोध कर रहे थे, पर वे मातृत्वके इस अहैतुक अनुग्रहपर मन-ही-मन बलिहार भी हो रहे थे। बाबूजी घाटकी ओर जाने लगे। माँ भी डालमिया कोठीके बाहर आयी। अपनी अस्वस्थताके कारण माँका जानेका मन नहीं था, पर आज मातृत्वमें किसीकी कल्याण-भावना समायी हुई थी। बाबूजी डालमिया कोठीके बाहरी आँगनमें ही खड़े हुए थे। माँ कोठीसे बाहर आकर, फिर डालमिया-कोठीके घाटवाली छतपर आकर खड़ी हो गयी। बाबूजी डालमिया कोठीसे बाहर आकर डालमिया कोठीके घाटकी सीढ़ियोंकी ओर बढ़ने लगे। माँने उन्हें रोकते हुए कहा— अजी, इन सीढ़ियोंसे नहीं। इन सीढ़ियोंसे उतरनेके बाद आपको बहुत पत्थर पार करने पड़ेंगे, जो आपसे नहीं हो पायेगा। आप बूबना भवनके घाटकी सीढ़ियोंसे उतरिये।

बाबूजीकी उस समय ऐसी मुद्रा हो गयी, जिससे स्पष्ट झलकता था कि उन्होंने माँकी बातें समझी नहीं है। अपनी 'माथा-खराबी' के कारण माँकी बातको पूरी तरहसे ग्रहण नहीं कर पा रहे थे। माँने फिर समझाते हुए कहा— आप इस घाटसे नहीं, बूबना भवनके घाटकी सीढ़ियोंसे उतरिये।

बाबूजी तदनुसार धीरे-धीरे आगे बढ़े। बाबूजीके साथ-साथ चल रहे थे भाई श्रीकृष्णजी, श्रीहरिजी आदि। बूबना भवनके घाटकी सीढ़ियोंपर बाबूजी छड़ीके सहारे इस प्रकार टटोलते हुए उतर रहे थे, जैसे मानो दिखलायी नहीं दे रहा हो। उनका इस प्रकारसे उतरना देखकर माँके मनमें सन्देह हुआ कि माथा भली प्रकारसे 'ठीक' है नहीं और पता नहीं, वहाँ पहुँचकर गंगाजल छिड़केंगे या नहीं। बाबूजी सीढ़ियोंसे उतरकर उस शवके पास आये। शवके पास आकर खड़े हो गये। खड़े-खड़े एक-दो मिनट बीत गये। इस प्रकार खड़े देखकर माँका सन्देह और दृढ़ होने लगा कि बाबूजी शायद गंगाजल नहीं छिड़क पायें। सन्देह इसलिये कि वहाँ पहुँचकर भी बाबूजी वैसे ही खड़े हैं। न तो उन्होंने अपने शरीरकी चादर उतारी है और न उस लाशपरसे कपड़ा हटाया गया है।

माँ इस प्रकारसे सोच ही रही थी कि बाबूजीको पूरा होश हो आया। उन्होंने अपनी चादर उतारी और फिर गंगाजल माँगा। श्रीहरिकृष्णजीने मिट्टीके कुल्हड़में गंगाजल बाबूजीको दिया। शवके पास वह जवाँई बैठा था। उसने शवका मुख खोला। बाबूजीने उस शवपर १०८ बार अभिमन्त्रित गंगाजल छिड़का, पहले मुखमें, फिर सारे शरीरपर। १०८ बार गंगाजल छिड़कनेके बाद बाबूजी गंगा-स्नानके लिये चले गये। उपस्थित जन उस वृद्धकी जीवात्माकी सराहना करने लगे, जिसने अपने पाञ्चभौतिक कलेवरका परित्याग स्वर्गाश्रममें किया, जिसपर माँका अहैतुक अनुग्रह ढुलक पड़ा और जिसके शवपर बाबूजीने अभिमन्त्रित

गंगाजल छिड़का।

[४२] राधाष्टमीपर शोभा यात्रा

गोरखपुरके श्रीराधाष्टमी-महोत्सवके इतिहासमें ३१ अगस्त १९६८ को सर्वप्रथम शोभा यात्रा निकली। इस शोभा यात्राका अपना एक विशेष महत्त्व है। शोभा यात्रामें पाँच दल थे। चार दल पुरुषोंके थे, जिनमें देशके कोनोंसे आये हुए भक्तगण श्रीहरिनामका सोत्साह सुमधुर संकीर्तन कर रहे थे। पाचवाँ दल था माताओं और बहिनोंका। इस दलमें सबसे आगे थी माँ और माँके नेतृत्वमें सभी माताएँ एवं बहिनें पंक्तिबद्ध कीर्तन करते हुए चल रही थीं।

महिला दलमें सबसे आगे माँको देखकर मेरे आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। माँके आनेकी तो किसीको कल्पना नहीं थी, यहाँतक कि बाबूजीके भी आनेकी सम्भावना नहीं थी। महोत्सव पंडालमें शोभायात्राकी सूचना प्रसारित करते समय यह निवेदन किया गया था कि जो बहिन या भाई डेढ़-दो मील पैदल नहीं चल सकते हैं और डेढ़-दो घंटे खड़े नहीं रह सकतें हैं, उन्हें इस शोभा-यात्रामें भाग नहीं लेना चाहिये। इस सूचनामें संशोधन करते हुए बाबूजीने लाउड स्पीकरपर कहा— मैं तो पैदल चल सकूँगा नहीं और गाड़ीमें बैठूँगा नहीं, अतः थोड़ी दूर पैदल जाऊँगा और फिर लौट आऊँगा। इसी प्रकार मेरे जैसे अशक्त लोग भी इस लाभसे वंचित क्यों रहें? वे लोग सम्मिलित हों और जब थक जायँ, वे वापस लौट आयें। हाँ, जिनमें उत्साह है, उमंग है, सामर्थ्य है, वे लोग शोभा-यात्रामें पूर्ण रूपसे भाग लें तथा पैदल चलें।

ऐसी सूचना प्रसारित होनेके बाद आशा यही थी कि बाबूजी शोभा-यात्रामें भाग तो अवश्य लेंगे, परंतु बीस-तीस गज चलकर वापस आ जायेंगे। जहाँतक माँकी बात है, वे शोभा-यात्रामें भाग लेंगी, इसकी सम्भावना क्या, किसीको कल्पना भी नहीं थी। माँ प्रायः अस्वस्थ रहती है। अधिकांश बार अपने कमरेमें लेटी रहती है। पूज्य बाबाको भिक्षा करानेके लिये जानेका जब प्रश्न सामने आता है, तब बाबूजी यही कहा करते हैं— तुम मत जाओ। सीढ़ीसे चढ़ने-उतरनेमें तुमको तकलीफ होगी। मैं चला जाऊँगा।

माँका शरीर प्रायः अस्वस्थ रहता है, ऐसी शारीरिक शिथिलताके बाद भी आज श्रीराधाष्टमी महोत्सवमें प्रातः नौ बजेसे लेकर अपराह्न कालके चार बजेतक वे लगातार पंडालमें बैठी रही थी। इससे उनके शरीरका अत्यधिक श्रमित और थकित हो जाना स्वाभाविक था। पंडालमें चार बजे कार्यक्रम सम्पन्न होने तथा सभा विसर्जित होनेके बाद सभी बहिन एवं भाई लोग तो शोभा-यात्राके लिये गीतावाटिकाके द्वारकी ओर बढ़े और माँ अपने कमरेकी ओर चली। माँके साथमें थी आदरणीया श्रीसीताबाई पोद्दार। उन्होंने कहा— माँ! तू अपनी वाटिकाके द्वारतक चल। तेरे शुभाशीर्वादसे शोभा-यात्रा सानन्द पूरी हो जायेगी। शोभा-यात्राके आरम्भ होनेपर वापस चली आना।

माँ थकी थी। अपनी साड़ीके आँचलसे अपना मुँह पोंछ रही थी। चेहरेपर श्रान्तिके लक्षण प्रकट थे, फिर भी माँ द्वारतक आयी और नंगे पैर ही चली आयी। माँको आते हुए देखकर माँके पीछे-पीछे और भी माताएँ-बहिनें आयीं। माँका शुभाशीर्वाद प्राप्त करके शोभायात्राका पुरुषोंवाला प्रथम दल आगे बढ़ा। शोभा-यात्रा आरम्भ हो गयी। फिर दूसरा दल आगे बढ़ा। दूसरेके बाद माताओं-बहिनोंका तीसरा दल प्रस्थान करने वाला था। इस अवसरपर

आ. श्रीसीताबाई पोद्दारने पुनः प्रार्थना की— माँ ! यदि तुम चार पग साथ चली चलो तो सभी बहिनोंमें उत्साह आ जाय।

आदरणीया श्रीसीताबाईके लगे-लगे अन्य एक-दो बहिनोंने भी ऐसा ही निवेदन किया। माँके मुखपर मुस्कुराहट आ गयी। माँ आगे बढ़ी। फिर तो माँ आगे बढ़ती ही चली गयी। आ. श्रीसीताबाईने तो चार पगके लिये, मात्र चार पग चलनेके लिये प्रार्थना की थी, पर यह किसने सोचा था कि माँ सारी शोभा-यात्रामें पैदल चलेगी, आगे-आगे चलेगी और तारकोलकी गरम-गरम जलती-जलती सड़कपर नंगे पैर चलेगी। छतसे नीचे आना भी जिनके लिये एक प्रश्न रहता है, उसी माँको आज शोभा-यात्रामें महिला-मण्डलके सबसे आगे पैदल चलते देखकर सभीके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी। माँकी उपस्थितिने शोभा-यात्रामें प्राण डाल दिये। 'प्राण डाल दिये' इन शब्दोंसे उस उत्साहपूर्ण स्थितिकी वास्तविक अभिव्यक्ति नहीं हो पा रही है। माँ स्वयं उपस्थित होकर महिलाओंमें आगे-आगे नंगे पैर चल रही है, यह बात बिजलीकी तरह फैल गयी। यह बात सुनते ही लोगोंके हृदयमें उमंग उमड़ पड़ा, सभीमें उत्साह और उल्लासका ज्वार आ गया। जिन अशक्त या असमर्थ लोगोंने ऐसा सोचा था कि दूरसे खड़े होकर शोभा-यात्राका दर्शन करना है, अब वे भी शोभा-यात्रामें सम्मिलित हो गये।

बाबूजी भी कुरता पहने और हाथमें छड़ी लिये शोभा-यात्राके साथ-साथ चल रहे थे, पर थे एकदम पीछे। उन्हें पता ही नहीं था कि माँ भी इस शोभा-यात्रामें महिला-दलमें आगे-आगे चल रही है। मैंने जाकर बाबूजीसे कहा— बाबूजी ! आज तो आश्चर्य हो गया कि माँ महिलाओंमें आगे-आगे पैदल चल रही है।

बाबूजीके मुखपर प्रसन्नताका भाव उमरा, पर प्रसन्नताके साथ-साथ व्यग्रताका भाव भी एकदम स्पष्ट था। व्यग्र मनसे बाबूजीने मुझसे कहा— अब तबीयत किसकी खराब होगी और किसे परेशानी उठानी पड़ेगी ?

इतना कहकर बाबूजी आगे बढ़े वस्तुस्थितिको देखनेके लिये। अन्तके दो पुरुष दलको पार करके बाबूजी महिला दलके समीप आये। बाबूजीने देखा कि पुरुषोंकी अपेक्षा महिलाएँ अधिक अनुशासित और अधिक सुव्यवस्थित रीतिसे पंक्तिबद्ध होकर चल रही हैं। बाबूजीने महिलाओंके इस संयमकी सराहना की। सराहना करते-करते बाबूजी महिला-दलके आगे आये और वहाँ देखा कि माँ सबसे आगे-आगे है। माँने देखा कि बाबूजी आ गये हैं। शीलकी प्रतिमा तथा संकोचकी मूर्ति माँ बाबूजीको पीठ देकर खड़ी हो गयी। माताओं-बहिनोंके आगे-आगे माँको चलते हुए देखकर बाबूजी आगे बढ़ गये। नारी सुलभ लज्जाके साथ माँ धीरेसे-हलकेसे मुस्कुरा दी। फिर माँ द्वारा हुआ वही, श्रीहरिनाम संकीर्तन करते-करते हुए क्षण-प्रति-क्षण वातावरणको रसमय बनाना तथा महिला मण्डलके आगे-आगे चलना।

माँ न कहीं बैठी और उसने न कहीं विश्राम किया। वह अनवरत चलती रही। यह एक महाश्चर्य था कि माँ शोभा-यात्राके अन्ततक पैदल चलती रही और इसके बाद भी उनका स्वास्थ्य खराब नहीं हुआ। बाबूजी भी पैदल चलते रहे और शोभा-यात्राकी सफलताके लिये यथावश्यक यथास्थान निर्देश करते रहे। शोभा-यात्रा लगभग डेढ़-दो मीलकी दूरी तय करके सूर्यास्तके समय श्रीकृष्ण निकेतन पहुँचकर वहीं समाप्त हो गयी। शोभा-यात्राके साथ

श्रीराधा-माधवके श्रीविग्रह थे। श्रीकृष्ण निकेतनमें श्रीविग्रहको पधराया गया। उनका माँ और बाबूजीने पूजन किया और तदुपरान्त प्रसाद-वितरणसे शोभा-यात्रा सम्पन्न हो गयी। शोभा-यात्रा परम सरस रही और इस शोभा-यात्राके आशातीत रूपसे सफल होनेका श्रेय भगवत्कृपाकी अमोघ शक्ति एवं भगवतीस्वरूपा माँकी उपस्थितिको है।

[४३] पारस्परिक बातचीत

पूज्या माँ स्वभावसे परम उदार है। न जाने कितना-कितना किसको-किसको देती रहती है। अनेकों अभावग्रस्त एवं आर्तजनोंको आश्रय पूज्या माँके परमोदार आँचलके नीचे मिलता है। कभी शरीर ढकनेके लिये, कभी पढ़ायी करनेके लिये, कभी झोपड़ी बनवानेके लिये, कभी भूख मिटानेके लिये, कभी तीर्थ करनेके लिये, कभी दवा खरीदनेके लिये, इस प्रकार माँ सबको देती रहती है और लोगोंकी भिन्न-भिन्न जरूरतोंकी पूर्ति किसी-न-किसी अंशमें माँके द्वारा होती रहती है। सयानी कन्याओंकी बात सामने आते ही माँका हृदय तत्काल द्रवित हो उठता है और उनकी विदाईके लिये माँने चुपचाप जितना किया है, उसकी कोई सीमा नहीं। विभिन्न स्तरके परिवारोंको कन्याके विवाहके अवसरपर अथवा उसके गौने (मुकलावे) के अवसरपर न जाने कितने वस्त्र एवं आभूषण माँके द्वारा छिपे-छिपे दिये गये हैं। जब इस प्रकार देनेका अवसर आता, तब माँ मुझसे कहती— भैया! कलकत्ते सीताको पत्र लिख देना कि अमुक-अमुक चीज जैसे अँगूठी या हार या नथ या पायजेब बनवाकर मेरे पास भिजवा देगी।

पूज्या माँके कहते ही मैं कलकत्ते आरदरणीया श्रीसीताबाई पोद्दारके पास पत्र लिख देता और बाई उन-उन चीजोंको बनवाकर माँके पास भिजवा देती। एक बार माँने मुझसे कहा— भैया! सीताको लिख देना कि जो चीजें बनवाकर उसने भेजी हैं, उनका हिसाब लिखकर भेज देगी।

हिसाब तो माँ सदा ही मँगाती रही और श्रीसीताबाई भेजती रही, पर यह मुझे मालूम नहीं कि श्रीसीताबाई द्वारा हिसाब देनेकी पद्धति क्या थी। या तो वह स्वयं जब कभी गोरखपुर आती होगी, तब माँको दे दिया करती होगी अथवा पत्र द्वारा माँके पास सीधे भेज दिया करती होगी, पर इस बार जब मैंने हिसाब भेजनेके लिये लिखा तो उसने हिसाबका पर्चा मेरे पास लिफाफेमें रखकर भेज दिया। दोपहरके समय गीताप्रेससे गीतावाटिकाकी डाक आयी, उसी डाकमें यह लिफाफा भी था। लिफाफा खोलते ही वह हिसाबका पर्चा मेरे हाथमें आ गया और अब यह पर्चा मुझे माँको देना था।

दोपहरको माँ कमरेमें बैठकर बाबूजीको भोजन करा रही थी। श्रीरामसनेहीजी भोजनकी सामग्री चौकेमेंसे ला रहे थे और उसे माँ थालीमें परोसती जाती थी। वहाँ और कोई नहीं था, अतः एकान्त समझकर मैं कमरेमें गया और वह हिसाबका पर्चा मैंने माँको दे दिया। पर्चेके साथ श्रीसीताबाईके हाथका लिखा पत्र भी था। पत्र और पर्चा ज्यों ही मैंने माँको दिया, त्यों ही बाबूजीने सहज रूपमें पूछा— क्या बात है?

माँने वह पत्र और पर्चा बाबूजीके हाथमें दे दिया। बाबूजी दाहिने हाथसे भोजन कर रहे थे और बायें हाथसे उसे लेकर देखने लगे। पत्रमें जानी-पहचानी हैंडराइटिंगको देखकर बाबूजीने जान लिया कि यह पत्र श्रीसीताबाईका है और पत्रके साथ संलग्न हिसाबके पर्चेको देखकर

तुरन्त समझ लिया कि जो चीजें लोगोंको देनेके लिये कलकत्तेसे बनकर श्रीसीताबाईके पाससे आयीं हैं, उसका हिसाब है। पत्रको पहचानने और पर्चेको समझनेमें क्षणार्ध भी नहीं लगा होगा और उसी समय भोजन करते-करते बाबूजीने कहा— सावित्रीकी माँ। तू बहुत खर्चा करती है।

माँने कहा— मैं खर्चा करती हूँ तो आपसे माँगती हूँ क्या ?

बाबूजीने तुरन्त प्रश्न किया— फिर इस पर्चेकी रकमका भुगतान तुम कैसे करोगी ?

माँने सहज ढंगसे कहा— आपकी तरह मेरे भी बहुतसे भगतिये हैं।

बाबूजीने कहा— तुम्हारे जो-जो भगत हैं, उनको मैं भी जानता हूँ। मैं उन सब लोगोंको मना कर दूँगा। फिर कोई भी तुमको सहयोग नहीं देगा।

माँने कहा— आप कहकर देख लीजिये कि वे लोग आपकी बात मानते हैं अथवा मेरी बात ?

इतनी बात होते-होते मैं वहाँसे उठकर कमरेके बाहर चला आया और नितान्त खिन्न मन होकर अपनी केबिनकी कुर्सीपर बैठ गया। मेरे मनमें ग्लानिकी सीमा नहीं थी। मैं कुर्सीपर बैठा-बैठा स्वयं ही स्वयंकी जितनी भर्त्सना कर सकता था, कर रहा था। मुझे इस बातका अत्यन्त दुःख था कि मेरे ऊपर माँजीका जो विश्वास था, उसका निर्वाह मेरे द्वारा नहीं हो पाया। यह राधेश्याम मेरे कार्योंको सुगुप्त रखेगा, ऐसा विश्वास करके मेरे द्वारा माँ सारा कार्य करवाती थी, अब उस विश्वासकी मेरे द्वारा वंचना हो गयी। मुझे वह हिसाबका पर्चा एकदम अकेलेमें माँको देना चाहिये और पर्चा देनेके बाद यह माँके समझने और करनेकी बात थी कि उस पर्चेका भुगतान किस प्रकारसे हो, पर मैंने दिया बाबूजीके सामने और उनके सामने देनेके कारण ही तो सारी बात खुल गयी, जिसके परिणाम स्वरूप वह पारस्परिक बात हुई, जिसे मैं कमरेमें सुन चुका था। जो बात माँकी एकदम गुप्त थी, उसको मैंने अपनी नादानीसे एकदम चौड़े कर दिया, यह कितनी बड़ी भूल मेरे द्वारा हो गयी ? मुझे पता नहीं कि माँ उस पर्चेके हिसाबका भुगतान किस प्रकारसे करती, पर मेरी नादानीने माँके सामने एक समस्या खड़ी कर दी। अब माँ मुझ नादानके बारेमें और मेरी भूलके बारेमें मन-ही-मन न जाने क्या सोच रही होगी ? मेरे मनमें घना पश्चाताप था। मैं खिन्नता और खेदके सागरमें डूबा हुआ था। उस सागरकी एक-एक लहर मुझे बुरी तरह संत्रस्त कर रही थी। इस संतापमें कुर्सीपर बैठे-बैठे दो अढ़ाई घंटे निकल गये, पर मुझे पता ही नहीं चला। अब कोइ उपाय नहीं बचा था इसके अलावा कि मैं जाकर माँसे क्षमा याचना करूँ। अवसन्न मनसे मैं अपनी कुर्सीसे उठा और माँके कमरेमें गया। मेरे मनमें कहनेके लिये बहुत-सी बातें उमड़-घुमड़ रही थीं, पर उन बातोंको कहनेसे पहले मैंने भूमिका रूपमें एक सीधा-सा प्रश्न माँसे कुछ आतंकित-सशंकित स्वरमें पूछा— माँ ! अब उस हिसाबका क्या होगा ?

बड़े सहज और सरल ढंगसे स्नेहसने शब्दोंमें माँने कहा— अरे भइया ! वे ही देंगे। उनके अलावा मेरा और कौन है ? पहले भी उन्होंने ही दिया है और अब भी वे ही देंगे।

पूज्या माँके इन उद्गारोंको सुनकर मैं तो चकित हो गया। एक ओर बाबूजीका वह उपालम्भ और दूसरी ओर माँके ये उद्गार, इनमें क्या कहीं रंचमात्र संगति है ? इस विसंगतिमें मैं संगतिको खोजनेका प्रयास कर रहा था, पर मेरा प्रयास थक जाता था। भले मेरा प्रयास बार-बार असफल हो जाता था, पर मेरा मन अत्यधिक बलिहार था माँपर उनके समर्पणको देखकर,

उनकी आस्थाको देखकर, उनके एकाश्रयको देखकर। मैंने तो मनमें यह सोच रखा था कि भूमिका रूपमें उस प्रश्नको पूछकर और फिर कुछ कहकर अपने मनके भारको हलका करूँगा, पर अब तो कुछ कहनेके लिये रहा ही नहीं। माँके पाससे चलकर मैं बाबूजीके कमरेमें आया और बाबूजीसे दबे-दबे स्वरमें पूछा— बाबूजी ! अब मैं श्रीसीताबाईको पत्रमें क्या लिखूँ?

बाबूजीसे कहा— अब लिखना क्या है ? पर्चेका हिसाब मैंने अभी भेज दिया है। तुमको उस बारेमें कुछ नहीं लिखना है।

बाबूजीके इन उद्गारोंने मुझे और गहरे आश्चर्यके आवर्तमें डाल दिया। बाबूजीके इन उद्गारोंको सुनकर जो आश्चर्य हुआ, इसने तो उस आश्चर्यको भी मात कर दिया, जो माँके उद्गारोंको सुनकर हुआ था। बाबूजीके सामने भी मेरे मनकी वैसी ही उलझन पूर्ण स्थिति थी कि एक ओर बाबूजीका वह उपालम्भ और दूसरी ओर बाबूजीके ये उद्गार, इनमें क्या कहीं रंचमात्र भी संगति है ? इस प्रकट विसंगतिमें जो महासंगति प्रच्छन्न रूपसे परिव्याप्त है, उसे मैं नादान भला कैसे समझ पाऊँ? भोजनके समय बाबूजी द्वारा दिया गया वह स्नेहोद्भूत विनोदभरा उपालम्भ बाबूजीके ही योग्य था और माँ द्वारा दिया गया स्नेहोद्भूत विनोदभरा वामोत्तर माँके ही योग्य था। जब दोनों साथ-साथ बैठे थे, तब चल पड़ी थी अनोखी विनोदभरी बातचीत और जब दोनों अलग-अलग बैठे थे तो बह पड़े थे अनोखे स्नेहसने उद्गार। उस बातचीतमें था उपालम्भ एवं वामोत्तरसे संयुक्त पारस्परिक विनोदका लोकाद्भुत प्रवाह और इन उद्गारोंमें था समर्पण एवं सुखदानसे भरपूर पारस्परिक एकात्मताका लोकोत्तर सौरभ। ऐसे परस्परालाप एवं परस्परैकात्मताके अणु-अणुमें परिव्याप्त जो दिव्य महारस है, वह है मात्र आस्वादनीय, चुपचाप आस्वादनीय, चुपचाप एकान्तमें आस्वादनीय, वस्तुतः चुपचाप एकान्तमें गहरे पैठकर आस्वादनीय।

[४४] स्नेहोपहारका सम्मान

कलकत्तेकी आदरणीया श्रीसीताबाई पोद्दारसे सम्बन्धित एक प्रसंग उल्लेखनीय है। आदरणीया श्रीसीताबाई बाबूजीकी प्रिय दौहित्री श्रीराधाबाई भालोटियाकी ननद हैं। श्रीसीताबाईका पितृघर भालोटिया परिवार है, पर उनका श्वसुर-घर पोद्दार परिवार है। माँ और बाबूजीका वंश और श्रीसीताबाईका वंश एक ही है, पर यह वंशवेलि कितनी पीढ़ी पहले अलग-अलग हुई, इसकी जानकारी नहीं। माँ और बाबूजीके प्रति श्रीसीताबाईकी अगाध श्रद्धा है और उसी प्रकार माँ और बाबूजीका श्रीसीताबाईके प्रति अगाध वात्सल्य है। बिहारके सिल्ली नामक स्थानपर श्रीसीताबाईका निजी बगीचा है और उन्होंने अपने बगीचेके आमकी एक पेटी माँ-बाबूजीके पास गीतावाटिका भेजी। बाईने वह पेटी भेजी थी अत्यधिक श्रद्धापूर्वक और उस स्नेहोपहारको देखकर माँ और बाबूजी, दोनोंने ही श्रीसीताबाईकी श्रद्धा-भावनाका मन-ही-मन अभिनन्दन किया।

दोपहरके समय माँ बाबूजीको भोजन करा रही थी। भोजन करते-करते बाबूजीने माँसे कहा— अरे, सीताने आम भेजे थे न ?

माँने कहा— हाँ, वे रखे हुए हैं।

बाबूजीने कहा— जरा देखूँ तो सही कि उनका स्वाद कैसा है ?

बाबूजी चाहते थे बाईके स्नेहोपहारको सम्मान देना, पर माँको भय था कि आम खानेसे बाबूजीकी तकलीफ बढ़ जायेगी, इसीलिये कि उनको चीनीकी शिकायत है। भयान्वित माँने धीरेसे कहा– आपको चीनीकी शिकायत है न ?

बाबूजीने मुस्कुराते हुए कहा– आधा या चौथाई आम खा लेनेसे तकलीफ कहीं बढ़ती है क्या ?

माँका यह तर्क असफल रहा। बात यह नहीं कि माँके मनमें उस स्नेहोपहारके लिये महत्त्व नहीं, पर माँके मनमें उससे भी बढ़कर महत्त्वपूर्ण बात थी बाबूजीका स्वास्थ्य। माँ चाहती थी कि यदि किसी प्रकार आमके खानेका प्रसंग टल जाय तो अच्छा हो। यह बात सोचकर माँने फिर दूसरा तर्क दिया– क्या आप अपनी राधाकी ननदके घरका आम खायेंगे ?

चाहे जो हो, पर बाबूजीको तो उस स्नेहोपहारको सम्मान देना था। माँने बात ठीक ही कही थी, पर उसे सुनकर बाबूजीने माँसे कहा– यह सही है कि वह राधाकी ननद है, पर फिर भी है वह अपने कुलकी पोद्दार ही, अतः उसका आम लेनेमें क्या हर्ज है ?

अब माँ कुछ बोल नहीं पायी। उसने श्रीरामसनेहीजीसे कहकर पेटीमेंसे एक आम मँगाया और छीलकर थालीमें परोस दिया।

[४५] मधुर उपालम्भ

२१ सितम्बर १९६८ की रात्रिके समय माँ और आदरणीया नौरतीबाई गीतावाटिकाकी कोठीकी छतपर परस्पर बातचीत कर रही थीं। रातके लगभग दस बजे थे। माँ चारपाईपर लेटी थी और नौरतीबाई छतपर बैठीं थी। इसी समय बाबूजी अपने कमरेसे निकलकर बाहर आये। उनके आते ही माँ छतपर बिछी हुए चटाईपर बैठ गयी और बाबूजी खाटपर लेट गये।

बाबूजीके आनेसे बाबूजीसे ही बातचीत चल पड़ी। चर्चाके बीचमें माँने कुछ उपालम्भ देते हुए नौरतीबाईसे कहा– ये तो मुझे कुछ बताते ही नहीं। सारी दुनियाको सुनाते हैं, पर मुझे सुनानेके लिये तो समय ही नहीं है।

इस उपालम्भको सुनकर बाबूजी हँसने लगे। फिर मुस्कुराकर बोले– अरे, सच्ची बात यह है कि सुनाये उसको, जिसमें कमी हो।

बाबूजीकी बात सुनकर माँ कुछ बोली नहीं। फिर कुछ क्षण बाद बाबूजी बोले– यदि मेरेमें अधूरापन है तो तुममें भी अधूरापन है। यदि मेरेमें अधूरापन नहीं है तो तुममें भी नहीं है।

माँने कहा– मुझको तो मेरेमें कुछ भी दिखलायी नहीं देता।

बाबूजीने नौरतीबाईसे पूछा– क्यों, यह ठीक कह रही है क्या ? तुम इसे कभी बताती नहीं क्या कि तुम्हारा इसके प्रति इतना अधिक झुकाव क्यों है ?

नौरतीबाईने कहा– मैं तो कई बार माँको समझाती हूँ, पर इसे मेरी बातपर विश्वास नहीं होता। यह तो सदा अपनेमें कमी ही बतलाती है।

बाबूजीने अति स्निग्ध स्वरमें कहा– सदा कमीका अनुभव होना, यही इसके जीवनका सच्चा भूषण है।

[४६] माँको भगवद्दर्शन

बंगालके शिमलापाल ग्रामकी नजरबन्दीकी अवधिमें जो स्वाध्याय, नामजप और ध्यानाभ्यास हुआ, उससे बाबूजीकी साधना-सम्पत्ति दिन दूनी रात-चौगुनी बढ़ने लगी। पूज्य श्रीसेठजीके पथ-प्रदर्शनने साधनाको सिद्धिके द्वारतक ला दिया और प्रभुके अहैतुक अनुग्रहने सिद्धिके द्वार खोल दिये। सन् १९१७ में बाबूजीको भगवान श्रीविष्णुका साक्षात्कार हुआ। साथी-संगी उनके भाग्यकी सराहना करने लगे।

सभी मुक्त कण्ठसे सराहना कर रहे थे और सभी यह मना रहे थे कि बाबूजीकी तरह हमारा भी भाग्योदय हो, परंतु एक आशंका माँके मनमें आकुलता उत्पन्न कर रही थी। वह आशंका थी भविष्यमें बाबूजी द्वारा विरक्त जीवन स्वीकार कर लिये जानेकी एक क्षीण सम्भावनाके रूपमें। बाबूजीको भगवत्साक्षात्कार हुआ, इससे माँको प्रसन्नता थी, पर माँने ऐसा सुन रखा था कि भक्ति-भावनामें डूब जाने वाला व्यक्ति जगतको भूल जाता है और लौकिक व्यवहारसे अतीत होकर संसारसे अन्यमनस्क हो जाता है। भविष्यकी कल्पनासे माँके मनका विचलित होना स्वाभाविक था।

माँको खिन्न देखकर एक बार बाबूजीने पूछा– तुम उदास क्यों रहती हो ? क्या बात है ?

माँने खिन्न वाणीसे कहा– आपको तो भगवत्साक्षात्कार हो गया, पर मेरे भविष्यका क्या होगा ? आप कहीं विरक्त हो गये तो . . . . ।

बाबूजीने मुस्कुराते हुए कहा– अरी, मैं तो तेरे लिये वही हूँ, जैसा पहले था।

ऐसा कहकर बाबूजीने माँके कंधेपर हाथ रखकर धीरज बँधानेका प्रयास किया। बाबूजीके स्पर्श करते ही एक अलौकिक चमत्कार हुआ। माँको चतुर्भुज भगवान विष्णुके दर्शन हुए। भगवानका यह देदीप्यमान दर्शन माँको लगातार पाँच या छः माहतक सतत होता रहा। उसके बाद बन्द हो गया।

आज भी माँके पूजा-गृहमें चतुर्भुज भगवान श्रीविष्णुजीका श्रीविग्रह है, जिसकी नित्य पूजा होती है और ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमाको प्रतिवर्ष ज्येष्ठाभिषेक महोत्सव मनाया जाता है।

भगवान श्रीविष्णुके अतिरिक्त माँको वाराणसीमें भगवान श्रीविश्वनाथके भी पावन दर्शन हुए थे।

बात सम्भवतः १९६४ की है। पूज्य श्रीसेठजी अपने रोगके निदानके लिये बाँकुड़ासे वाराणसी आये और उस कार्यको भली प्रकारसे सम्पन्न करानेके लिये बाबूजी गोरखपुरसे वाराणसी गये थे। साथमें थे पूज्य बाबा और पूज्या माँजी। सभी डालमिया कोठीमें ठहरे थे। माँके मनमें आया कि काशी आये हैं तो भगवान श्रीविश्वनाथ एवं भगवती श्रीअन्नपूर्णाजीका दर्शन करना चाहिये। माँ उस अवसरकी टोहमें थी, जब वह अपनी यह इच्छा बाबूजीके सामने रख सके, पर बाबूजीकी अत्यधिक व्यस्तताके कारण वह अवसर मिल नहीं पा रहा था। अवसरकी प्रतीक्षामें समय निकलता चला जा रहा था। सेठजीकी चिकित्साके कारण बाबूजी जरूरतसे ज्यादा व्यस्त थे और उस व्यस्तताके मध्य माँ कुछ बोल नहीं पा रही थी। समय इतना अधिक निकल गया कि उसे अतिकाल कहना चाहिये। एक ओर दर्शनकी उत्कण्ठा और दूसरी ओर परिस्थितिकी विवशता, इन दो सीमाओंमें घिरी माँके मनपर निराशा और खिन्नता छा गयी।

क्रमशः खिन्नता बढ़ती ही गयी। डालमिया कोठीमें माँके ठहरनेके लिये अलग कमरा था। माँ अपने कमरेमें जाकर लेट गयी और खिन्नताकी अधिकतामें रोने लगी। रोते-रोते वह यही सोच रही थी कि हाय, यह कैसी परिस्थिति है कि काशी आ करके भी भगवान श्रीविश्वनाथके दर्शन नहीं कर पा रही हूँ। थोड़ी देर बाद एक विचित्र बात घटित हुई। सारा कमरा प्रकाशसे पूर्ण हो गया। वह प्रकाश बड़ा प्रखर था। माँको बड़ा आश्चर्य हो रहा था। उसी प्रकाशके मध्य माँने देखा कि उनके सामने आकाशमें भगवान श्रीविश्वनाथ खड़े हैं और कह रहे हैं– तू क्यों रो रही है? मेरा दर्शन ही तो तू चाहती थी। ले, मैं यहीं आ गया।

भगवान श्रीविश्वनाथका दर्शन पाते ही वह सारा रोना और वैसा सोचना न जाने कहाँ तिरोहित हो गया। थोड़ी देर बाद भगवान श्रीविश्वनाथ अन्तर्हित हो गये।

अब मैं अपने अन्तरकी एक आस्थाका उल्लेख कर रहा हूँ। जो मैं कहने जा रहा हूँ, उसके लिये प्रत्यक्ष स्तरपर मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है, पर मेरा ऐसा विश्वास है कि पूज्या माँको भगवान श्रीविश्वनाथजीके परम पावन दर्शनका जो शुभ अवसर मिला, वह मिल पाया पूज्य बाबूजीके किसी परोक्ष एवं अमोघ 'प्रयास' से। बाबूजीको माँके विह्वल अन्तरका आभास भली प्रकारसे हो गया था और उस आभासने प्रयासके लिये प्रेरणा दी। बाबूजीके द्वारा किये गये प्रयासका आभास समीपस्थ हम लोगोंमेंसे किसीको भी नहीं हो पाया, पर मेरे मनकी आस्था यही है कि माँकी विकलता बाबूजीके लिये असह्य हो उठी और उसीका पावन परिणाम था वह शुभ अवसर।

रात्रिमें जब माँ बाबाको भिक्षा कराने गयी तो उसने यह सारा प्रसंग विस्तार पूर्वक बाबाको बतलाया। सारा प्रसंग सुनकर बाबाको परमाह्लाद हुआ और उन्होंने माँसे कहा– इस बारकी काशी यात्रा बड़ी महत्त्वपूर्ण है।

भगवान श्रीविश्वनाथके दर्शनके लगभग बीस वर्ष बाद सन् १९८५ में माँको भगवान श्रीकृष्णकी गोचारण लीलाका दर्शन गीतावाटिकामें हुआ। माँकी श्रीकृष्ण-लीलाओंके श्रवणमें अत्यधिक रुचि है। माँ स्वयं तो पढ़ पाती नहीं, अतः वह कभी किसीसे पढ़वाकर श्रीकृष्ण-कथा सुनती रहती है। पूज्य बाबा द्वारा लिखित श्रीराधाकृष्णकी सरस लीलाओंका संग्रह 'केलि कुञ्ज' नामसे प्रकाशित है। इस संग्रहको आदिसे अन्ततक माँ न जाने कितनी बार सुन चुकी है। लीला-श्रवणके समय किसी प्रकारका व्यवधान माँको प्रिय नहीं लगता। यदि कोई भोजनकी स्मृति दिलावे तो वह बात भी माँको अच्छी नहीं लगती। माँ प्रतिदिन भगवान श्रीकृष्णकी लीलाकी टेपें सुना करती है। पूज्य बाबूजीने श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके आधारपर भगवान श्रीकृष्णकी व्रजलीलाओंका बड़ा सुन्दर वर्णन अपने दैनिक प्रवचनमें किया है। दैनिक प्रवचनमें लीलावर्णनका यह क्रम कई सप्ताह चला है। वर्णनका आरम्भ दशम स्कन्धके प्रथम अध्यायसे ही आरम्भ हुआ है। वर्णनकी भाषा अतीव सरल और सरस है। सुनते समय ऐसा लगता है मानो सब कुछ प्रत्यक्ष सामने हो रहा है। वर्णनके मध्यमें स्थान-स्थानपर बाबूजीने लीलाओंके मर्मका भी उद्घाटन किया है। यह सारा वर्णन टेपोंमें संग्रहीत है।

व्रज लीलाओंका चिन्तन सहज रूपसे सदा होते रहनेके बाद भी ११ जनवरी १९८५ को दोपहरके समय माँको भगवान श्रीकृष्णकी गोचारण लीलाका दर्शन हुआ। माँने जैसा बताया,

उसके अनुसार उस दृष्ट लीलाका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

गोचारणका समय हो गया है। बड़े-बड़े गोप तथा ग्वाले गायोंको लेकर वनमें जानेकी तैयारी कर रहे हैं। गोचारणके लिये चलनेके पूर्व सारी गायों और बछड़ोंको तीन समुदायमें बाँट दिया गया है। सबसे पहला समुदाय अल्प वयस्क बछड़ी-बछड़ोंका है। दूसरा समुदाय बड़ी-बड़ी गायोंका है और तीसरा समुदाय दोनोंके बीचका है।

कन्हैया अभी छोटा बालक है, अतः छोटी-छोटी बछड़ी और बछड़ो वाले समुदायको चरानेका दायित्व कन्हैयाको दिया जाता है। कन्हैया अपने समुदायको लेकर वनकी ओर चलने लगा और बड़े-बड़े गोप दूसरे दो समुदायको लेकर चलनेके लिये प्रस्तुत हुए। बड़ी-बड़ी गायों-बछड़ोंके उन दो समुदायोंने वनकी ओर जाना अस्वीकार कर दिया। इन दो समुदायोंको कन्हैयासे विलग होना सर्वथा प्रिय नहीं लगा। कल वनसे आते समय वे गायें तथा बछड़े कन्हैयावाले समुदायमें मिल गये थे और तब उनको कन्हैयाके स्पर्शकी प्राप्तिका सौभाग्य मिला था। उसी स्पर्शका प्रभाव था कि वह समुदाय कन्हैया वाले समुदायमें सम्मिलित होकर वनमें जाना चाहता है। बड़े-बड़े गोप बड़ा प्रयत्न करते हैं कि वे गायें वनमें चलें, पर सारे प्रयत्न असफल हो जाते हैं। तब सारे गोप कहने लगते हैं— ऐसा लगता है, मानो इस कन्हैयाने कोई जादू-टोना कर दिया है।

जब गायें वनकी ओर चरनेके लिये नहीं जाती हैं तो सारे गोप व्रजेश नन्द बाबाके पास जाते हैं और अपनी कठिनाई बताने लगते हैं। सबकी बात सुनकर नन्द बाबाने कहा— तुम लोगोंकी सारी बात सुनकर मेरी समझमें यह बात आ रही है कि गायें कन्हैया बिना वनको जाना ही नहीं चाहतीं। गायोंकी चाह उसीके साथ जानेकी है। अब तुम लोग एक काम करो। समुदायमें विभाजन मत करो। बछड़ी-बछड़ोंके साथ ही सभी गायोंको उसीके साथ वनमें भेज दो।

नन्द बाबाके ऐसा कहते ही सारी समस्या समाप्त हो जाती है। अब सारे गो-समुदायके मनकी बात हो गयी। कन्हैयाको अपने सामने देखकर सभी गो-गोवत्सोंका मन प्रसन्न हो जाता है। फिर कन्हैया अपने सखाओंके साथ गायोंको लेकर वनमें जाता है। सारे सखा खूब गाते-बजाते-नाचते हुए चल रहे हैं। साथ-साथ बड़े गोप भी चल रहे हैं।

वहीं वनमें एक गाय एक वत्सको जन्म देती है। यह नवजात वत्स बड़ा ही छोटा है तथा काले रंगका है। कन्हैयाके मनमें स्फुरणा होती है कि इस नवजात वत्सको दूध पिलाऊँ। कन्हैया गायके थनको अपनी हथेलीसे पकड़ लेता है तथा दुहकर दूधकी धार वत्सके मुखकी ओर छोड़ता है। वत्स दूध पीना आरम्भ कर देता है। दूध पीते समय 'चुसर-चुसर' की बड़ी मधुर ध्वनि हो रही है।

यह दृश्य बड़ा ही मनोहारी है। अनेक देवता अपने विमानोंमें चढ़कर आये हैं। आकाशमें यहाँ-वहाँ कई विमान हैं। अपने-अपने विमानमें बैठे हुए ये देवता इस मनोहारी दृश्यको देखकर बहुत प्रसन्न हो रहे हैं।

इसके बाद सभी गायों तथा बछड़ोंकी पूजा करनेकी भावना कन्हैयाके मनमें आती है। तभी पूजनकी सामग्री इकट्ठी हो जाती है। इसी समय मैंके मनमें एक सन्देह उत्पन्न हो जाता है कि कन्हैया है एक और गायें हैं असंख्य। अकेला कन्हैया सबकी पूजा कैसे कर पायेगा? इस

प्रकारसे माँ सोच ही रही थी कि तभी सबके पूजनका शुभारम्भ हो जाता है। माँको यह देखकर बड़ा विस्मय हुआ कि सभी गायों तथा बछड़ोंको सुन्दर-सुन्दर तिलक हो गया है। यह सब कैसे हो गया, कब हो गया? इसका निर्णय माँ नहीं कर पायी।

तिलक, पुष्पमाला आदिके बाद कन्हैया सभी गायोंको और बछड़ोंको मोतीचूरका लड्डू खिलाना चाहता है। ज्यों ही वह लड्डू लेकर सामने आता है, उन लड्डूओंको देखकर लीला देखते-देखते माँ भी आश्चर्य करने लगी कि इतने बड़े लड्डू तो मैंने कभी देखे नहीं और इन बड़े लड्डूओंको ये गायें कैसे खा पायेंगी? लड्डू कन्हैयाकी हथेलीमें है और वह गायोंको सहलाकर खिलाना चाहता है। लड्डू खानेके लिये गाय ज्यों ही अपना मुख खोलती है, तभी एक अनचाही घटना हो जाती है।

एक बहिनने आकर माँको झकझोरते हुए कहा— माँ, माँ! तुमको एक आसनसे लगातार बैठे कितनी देर हो गयी? इससे तो पैरमें दर्द हो जायेगा। थोड़ा फैला लो।

उस बहिनने तो माँको झकझोरा था सेवाकी भावनासे भावित होकर, पर उस सेवोत्साहने सारे रंगको ही भंग कर दिया। लीला-दर्शनका तार खण्डित हो गया। माँने मीठा-सा उपालम्भ भी दिया— तूने तो मेरा सारा मजा ही बिगाड़ दिया।

इस गोचारण लीलाका दर्शन करनेमें निमग्न होनेके कारण माँ बहुत देरतक निस्पन्द बैठी रही। निमग्नताके कारण शरीरका हिलना-डुलना हो नहीं पाया। इसे एक प्रकारका जड़िमा भाव ही कहना चाहिये। माँके पैरोंमें बड़ा दर्द हो गया। मालिश करनेसे यह दर्द कम हुआ। एक आसनसे लगातार बैठे रहनेके कारण शरीरको कष्ट अवश्य हुआ, पर लीला-दर्शनसे जो सुख मिला, उस आनन्दकी आज सीमा नहीं थी। भीतरी उमंगके कारण आज माँके मुखका रंग कुछ और ही हो गया था।

समीपस्थ लोगोंका यह कहना है कि माँके मुखपर ऐसी प्रसन्नता कभी देखनेमें नहीं आयी। वाटिकाके कई लोग तो केवल उस प्रसन्नताका दर्शन करनेके लिये ही माँके कमरेमें गये। उस आनन्द, उस उल्लास, उस उमंगको देखकर यही लगता था कि माँ आज मानवीय धरातलपर नहीं है। आज माँकी चेष्टाएँ, उनकी बतरावन, उनकी बोलन कुछ दूसरे ही प्रकारकी हो गयी थी। माँ जब नवजात वत्सके दूध पीनेके दृश्यको बता रही थी तो वे 'चुसर-चुसर' ऐसे बोल रही थी मानो वे अभी भी उस ध्वनिको सुन रही हैं और उस ध्वनिकी प्रतिध्वनि माँके अधरोंपर ध्वनित हो रही है। इसी प्रकार नवजात वत्सके आकारको माँ अपने हाथ फैलाकर बता रही थी और लड्डू खानेके लिये गायोंने जब मुँह खोला तो वह मुँह खोलकर अपने अधर फैलाकर दिखला रही थी। कई दिनोंतक माँके तन-मनपर गोचारण लीलाकी माधुरी छायी रही। ■